अनन्त कथामृत

बाबा नीब करौरी जी महाराज

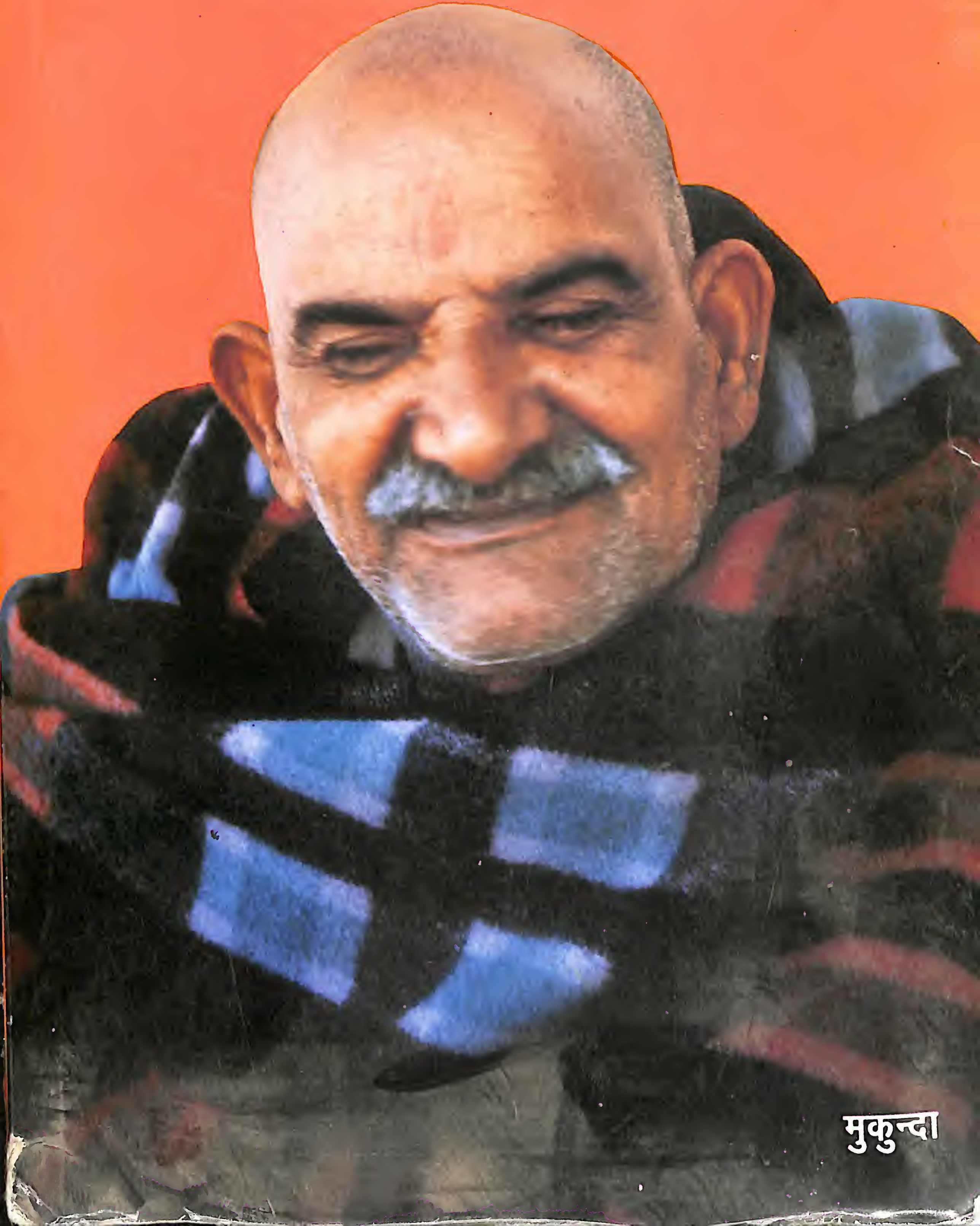

मुकुन्दा

अनन्त कथामृत

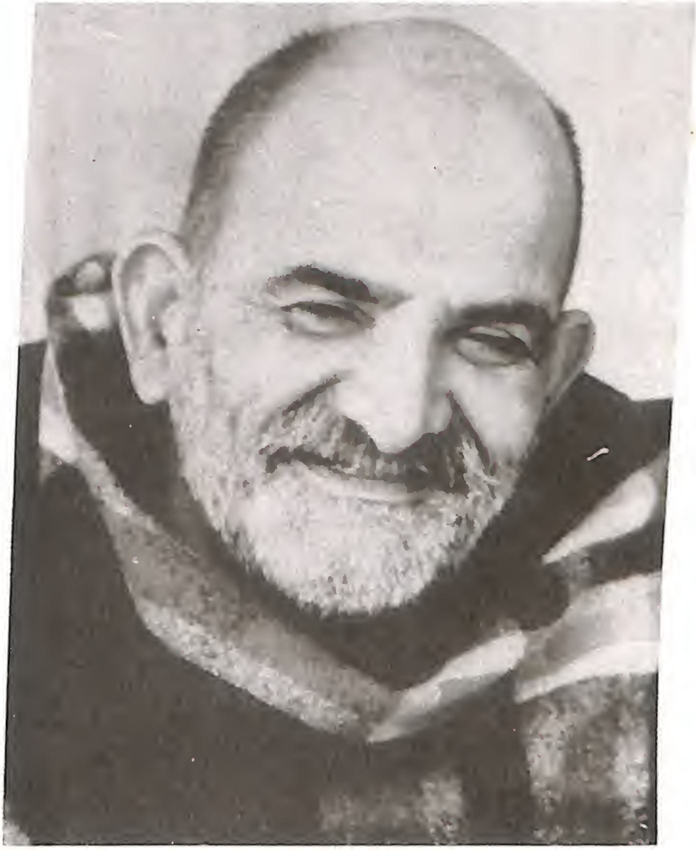

अनन्त महाप्रभु बाबा नीब करौरी जी महाराज

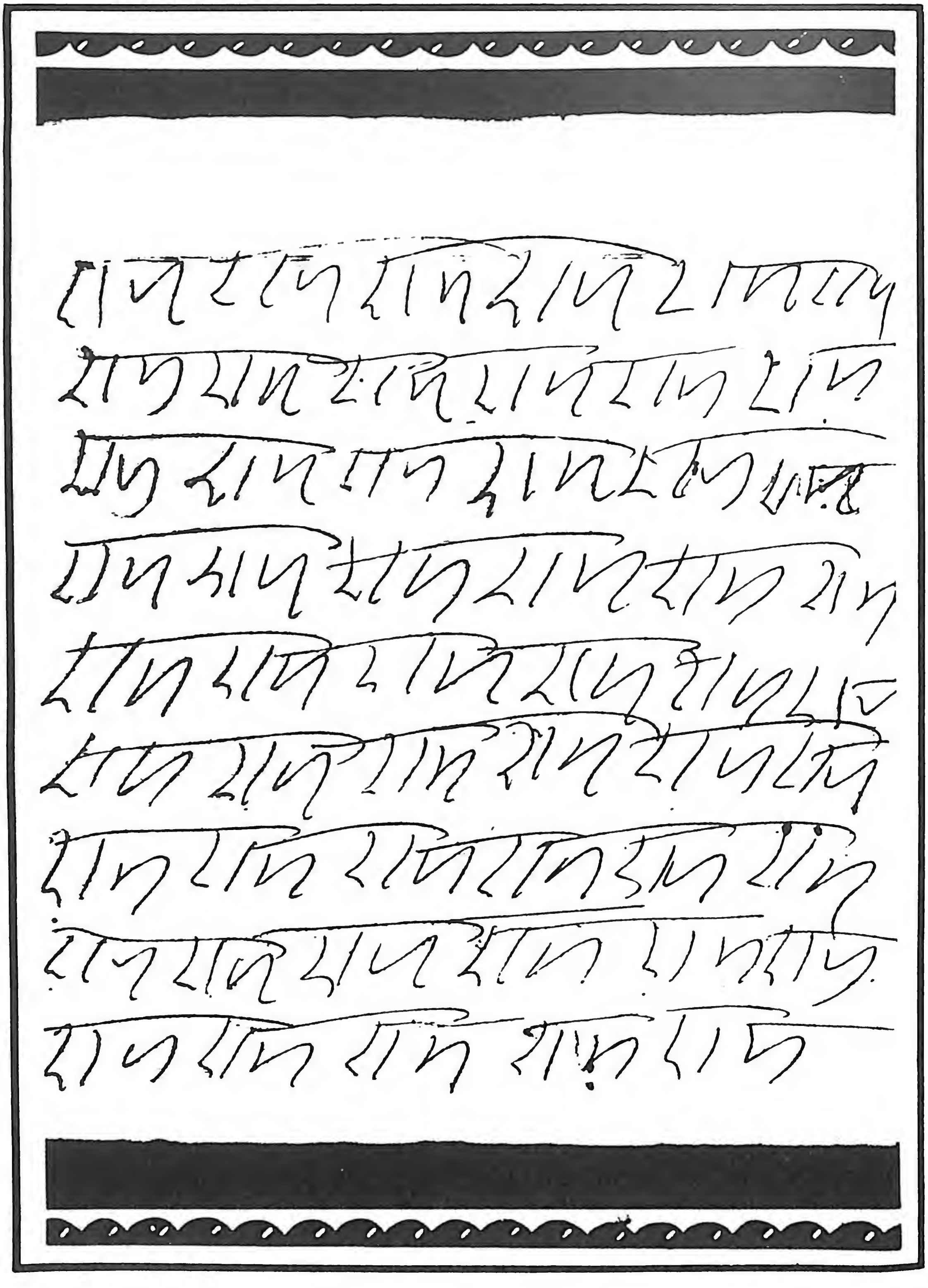

बाबा का हस्त लेख

अनन्त कथामृत

श्री श्री बाबा नीब करौरी जी महाराज

के

श्री चरणों में प्राप्त अनुभव

एवं

अनुभूतियाँ

लेखक

एवं

संकलनकर्ता

श्री माँ-महाराज चरणाश्रित

मुकुन्दा

अनन्त कथामृत

© सर्वाधिकार श्री कैंची हनुमान मंदिर एवं आश्रम के पास सुरक्षित

लेखक तथा संकलनकर्ता :– प्रकाश चन्द्र जोशी 'मुकुन्दा'

विमोचन :— श्री श्री हनुमान जयन्ती (१९९७)
एवं श्री श्री सद्‌गुरु देव भगवान
की मूर्त्ति का प्रतिष्ठापन पर्व
(चैत्र पौर्णमासी सं० २०५४ –
वीरभद्र – ऋषिकेष)

प्रथम संस्करण :– एक हजार (वर्ष १९९७)
(श्रीमती गीताञ्जलि सिक्का के सहयोग
से प्रकाशित)

द्वितीय संस्करण :–एक हजार (वर्ष २००१)

तृतीय संस्करण :- एक हजार (वर्ष २००६)

प्रकाशक :– श्री कैंची हनुमान मंदिर तथा आश्रम
कैंची

डी. के. फाइन आर्ट प्रैस प्राईवेट लिमिटेड
दिल्ली-११००५२

जोइ देख्यो - सोइ लेख्यो

जै जै हे कृपा के धाम तेरो रूप तेरो नाम
महिमा अपार कोई कहाँ कूति पायौ है ।
मोंसौं जड़ जीव जन्तु जाने कहा तेरो तन्तु,
श्रद्धा को सुमन तेरे चरनन चढ़ायौ है ।।

(प्रभू दयाल – 'पुष्पाञ्जलि' में)

कोई कोई मूक भयो, प्रेम रस पान किये,
कोई कोई गुन गाय गाय न अघायौ है ।
बाबा तेरे लीला गुन जानि नहिं पायौ कोऊ,
जानो है वही जाको तैने ही जनायौ है ।।

(प्रभू दयाल –'पुष्पाञ्जलि' में)

दो शब्द

परम पूज्य बाबा श्री नीब करौरी जी महाराज की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप ही इस धरातल पर हमें परम पुरुष रूप में उनकी जन-कल्याणमयी लीलाओं को देखने-सुनने एवं स्वयं के आध्यात्मिक उत्थान का सुअवसर प्राप्त होता रहा । पुनः वर्ष १९७३ में उनके द्वारा सहसा **महासमाधि** ले लिये जाने के बाद **हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता** के अनुरूप उनकी अलौकिक लीलाओं को सुनने-समझने का अवसर भी हमें भक्तों के मध्य उनकी इन कृपा-लीलाओं पर चर्चाओं के माध्यम से प्राप्त होता रहा ।

शनैः शनैः इन कृपामयी लीलाओं का लिपि-बद्ध होना भी प्रारम्भ हो गया जिनके माध्यम से बाबा जी महाराज के विभिन्न स्वरूपों को निरूपण करने का प्रयास हुआ तथा जिसने प्रथम तो वृन्दावन आश्रम से प्रकाशित वार्षिक पत्रिका **स्मृति सुधा** का रूप लिया, और फिर श्री सुधीर मुखर्जी 'दादा' द्वारा पहले **संत कृपामृत** और पुनः **पारस स्पर्श** तथा श्री रवि प्रकाश पाण्डे 'राजदा' द्वारा लिखित **अलौकिक यथार्थ** नामित पुस्तकें प्रकाशित हुईं ।

विगत नवरात्रियों में मुझे श्री प्रकाश चन्द्र जोशी 'मुकुन्दा' द्वारा लिखित **अनन्त कथामृत** नामित पुस्तक (जो अभी प्रकाशन में है) के कई विशिष्ट अंशों को पढ़ने का भी अवसर मिला । उनकी अपनी शैली में पूज्य बाबा जी महाराज की दया-कृपा लीलाओं का, उनके **परमगुरु एवं ईश्वरावतार** के स्वरूप में जो वर्णन किया गया है, उसे पढ़कर जन साधारण को भी बाबा महाराज की कृपा की अमृत-वर्षा की अनुभूति अवश्य होगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

सर्वदमन सिंह रघुवंशी

दिनांक २१–१०–१९९९

(सर्व दमन सिंह 'रघुवंशी')
अध्यक्ष
श्री कैंची हनुमान मंदिर एवं आश्रम
कैंची (नैनीताल)

ॐ

नमो भगवते श्री नीब करौरी
बाबाय नमः

ॐ

श्री माँ-महाराजाय नमः

एहि मँह भुक्ति-मुक्ति कर सारा
***महाराज** कर नाम उदारा*
अस्तु,

समर्पित –

परम स्नेहमयी-करुणामयी
श्री श्री सिद्धी माँ के पुनीत माध्यम से
उन
समस्त प्रेमी भक्तों को
जिनके जीवन में प्रतिपल
श्री श्री आराध्य देव बाबा जी महाराज
श्वास-प्रच्छ्वास-रूप में बसे हुए हैं

युगलचरणाश्रित
मुकुन्दा

श्री गुरुपूर्णिमा,
श्री-धाम, कैंची
(नैनीताल)
२२ जुलाइ, १६६४
पुनः
श्री गुरु पूर्णिमा
३० जुलाई, १६६६

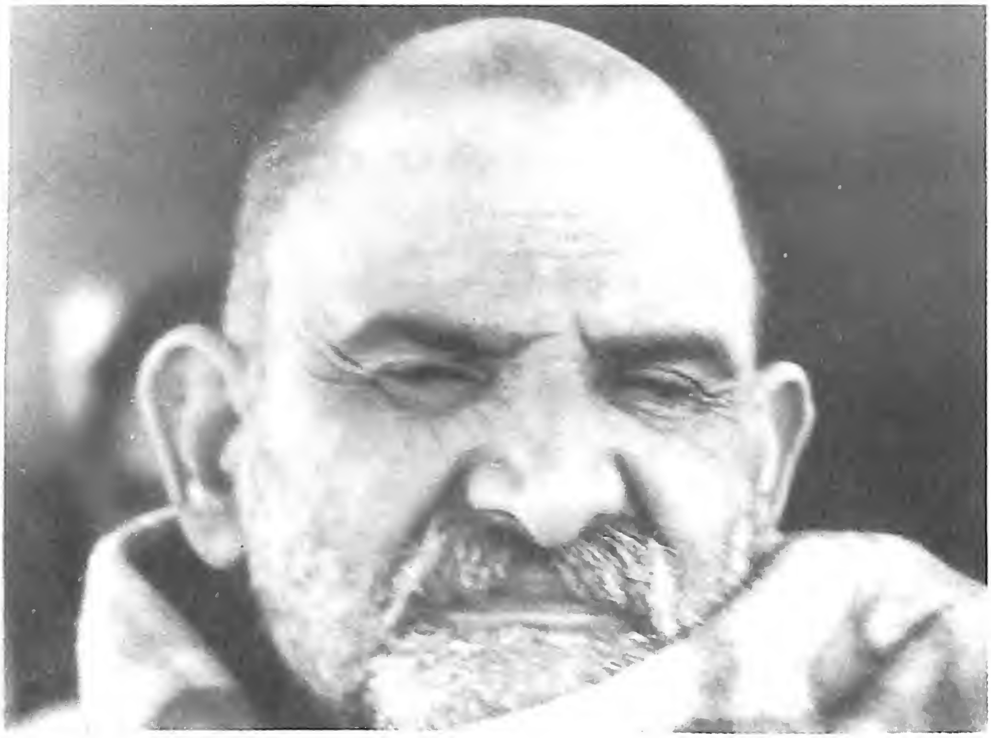

मम आराध्यम् शरणांगतम्

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
प्रेरणा-श्रोत		i-iii

प्रथम सर्ग

लीला-सागर में प्रवेश

विनय	अपने आराध्य से	१
निवेदन	पाठकों से	५
प्रथमावरणार्चनम्	संभवामि युगे-युगे	११
द्वितीयावरणार्चनम्	एक पूर्वावलोकन	१७
त्रितीयावरणार्चनम्	जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे	२३

द्वितीय सर्ग

प्राकट्य एवं लीला-सागर

प्रथम पुष्पाञ्जलि	प्राकट्य (सूक्ष्म परिचय)	३५
द्वितीय पुष्पाञ्जलि	नीब करौरी में लीलाएँ	४१
त्रितीय पुष्पाञ्जलि	उत्तराखण्ड-लीलाएँ	६१
चतुर्थ पुष्पाञ्जलि	उत्तराखण्ड में हनुमान मंदिरों की स्थापना	७१
पञ्चम पुष्पाञ्जलि	एकादशरुद्र हनुमान जी (बाबा जी महाराज के परिप्रेक्ष्य में)	८६
षष्टम पुष्पाञ्जलि	गजेन्द्र मोक्ष (एवं अन्य लीलाएँ)	१०५
सप्तम पुष्पाञ्जलि	सद्गुरु रूप में बाबा जी महाराज	१४७
अष्टम पुष्पाञ्जलि	दया-क्षमा के अवतार बाबा जी (जन-कल्याणार्थ 'असिव' रूप भी)	१८३
नवम पुष्पाञ्जलि	बाबा जी महाराज और 'प्रकृति'	१६५

		पृष्ठ संख्या
दशम पुष्पाञ्जलि	कुछ और लीला कौतुक	२२५
एकादश पुष्पाञ्जलि	'मैं कौन हूँ'	३४१

त्रितीय सर्ग

स-शरीर लीला-सागर का संवरण

प्रथम भावाञ्जलि	महासमाधि एवं उपरान्त	३६५
द्वितीय भावाञ्जलि	अपने तत्त्व-पीठों हेतु स्थल-चयन	३६१
त्रितीय भावाञ्जलि	कैंची तथा वृन्दावन में तत्त्व-पीठ मन्दिरों का निर्माण	४०१
चतुर्थ भावाञ्जलि	निराकार में प्रवेश के बाद भी 'मनसा-पूर्ति !!'	४१३
पञ्चम भावाञ्जलि	निराकार रूप की कुछ और लीलाएँ	४३१

अन्त्य कथन

✧✧✧✧✧✧✧✧

प्रेरणा-श्रोत

अपनी महासमाधि के पूर्व तक बाबा जी महाराज मुझसे २६ वर्षों (१९४७-७३) तक जब-तब दर्शनों के मध्य जो ***खेल*** *खेलते* रहे अपनी प्राकृत रूप लिये अलौकिकताओं के साथ, उसने मुझे ***उन तक पहुँचने*** (उन्हें समझने) नहीं दिया । (वस्तुतः *ऐसा* अन्य सभी ही के साथ भी हुआ ।) परन्तु उनकी आकस्मिक ***शरीर लीला*** ने मेरे मन-मानस को ऐसा झकझोर दिया कि उनकी छोटी-छोटी भी, और (तब) खिलवाड़-सी लगने वाली लीला-क्रीड़ाओं ने एकाएक अपने को स्पष्ट से स्पष्टतर करते परम पुरुष महावतार बाबाजी महाराज के अपने विभिन्न रूपों का प्रतिबिम्ब एवं उनकी ***लीलाओं*** में निहित ***सार*** को मन-मानस में अंकित करना प्रारम्भ कर दिया। और तब उनसे बिछुड़ जाने की दावाग्नि और भी दग्ध करने लगी अन्तर को । उसी विरह की विशेष अवस्थाओं में मैंने अपने मन-मानस में उमड़ते-घुमड़ते उद्गारों को शाब्दिक अभिव्यक्ति देना प्रारम्भ कर दिया और जब इससे भी संतुष्टि नहीं मिल पाई तो अपने आराध्य के प्रति अपने मन में उठते इन भावों को **उन्हें ही सम्बोधित** करते हुये पत्रों द्वारा कैंची-धाम को प्रेषित करना प्रारम्भ कर दिया । (इनमें से कुछ पत्रों को श्री माँ ने **श्री सद्गुरु कृपा** नामित पुस्तिका द्वारा प्रकाशित भी करवा दिया था — वर्ष १९८० में ।) इनमें से एक पत्र में मैंने महाराज जी से उनके परम **भागवत** एवं **हनुमद स्वरूप-शिव रूप** को संसार के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु सामर्थ्य की प्रार्थना भी की थी ।

तब लगा कि मानो महाराज जी मेरे मन-मानस को बारम्बार ठोकर-सी **दे-देकर** कह रहे हैं — **लिखता क्यों नहीं ? लिख** । परन्तु फिर भी इस हेतु प्रबल इच्छा होने पर भी मैं समुचित हिम्मत न जुटा पाया, यद्यपि अपने इन भावों की शाब्दिक अभिव्यक्तियों को मैं श्री सिद्धी माँ को यदा-कदा सुनाता रहता था । तभी माँ ने ही मुझे इस सम्बन्ध में प्रोत्साहित करना प्रारम्भ कर दिया । तब अपने **उपास्य**, अपने **आराध्य** श्री श्री अनन्तकोटि रूप-स्वरूप **बाबा नीब करौरी जी महाराज** के प्रति **स्तुति** रूप में अपने हृदयोद्गार लेखनी के माध्यम से उड़ेलने के इस प्रयास को मैंने गुरुवार, चैत्र-शुल्का नौमी, संवत २०४० (श्री राम नवमी, १९८३) को प्रारम्भ कर दिया ।

और इसके मध्य जब-तब मन-मानस में प्रभु-प्रेरित उठते भावों की लहरों को मैं शब्द-रूप देता रहा हूँ, यद्यपि ये शाब्दिक चित्रण ऐसे हृदयोद्गारों को **सीमित** भी करते रहे। परन्तु लहरों का अन्त तो कभी होता नहीं जो कभी शान्त, कभी हल्की, तो कभी ऊँची-ऊँची वेग पूर्ण हो उठती हैं — और इन्हीं लहरों के अनुरूप अन्तर में अपने आराध्य के भी नये-नये रूप-स्वरूप उदीयमान होते गये। तब लगा कि अगर मैं इन लहरों का पीछा करता रह गया तो **स्तुति** कभी पूरी न हो पायेगी और मेरी वह उत्कट अभिलाषा, जो अपने आराध्य से (स्तुति प्रारम्भ करने के पूर्व) **विनय** रूप में श्री राम नवमी, वर्ष १९८३ को प्रगट कर चुका था, फिर से दबी रह जायेगी।

अस्तु, **स्तुति रूप** अब तक जितने भी नये-पुराने, सुगन्धित अथवा गन्धहीन श्रद्धा-सुमन बटोर सका हूँ, उन्हें ही पुनः सँवार सँजोकर अपने उपास्य, अपने आराध्य के श्री चरणों में अर्पित-निवेदित कर रहा हूँ, (जिसके कुछ अंश अन्य रूप में **प्रेमावतार — बाबा नीब करौरी जी महाराज** नामक पुस्तिका में भी प्रकाशित किये जा चुके हैं।)

इस संकलन में आबद्ध लीला-कथाओं, भक्तों के अनुभवों एवं अनुभूतियों से स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि बाबा जी महाराज स्वयँ में ही सभी आदि देवों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) के विभिन्न अवतारों (यथा — राम, कृष्ण, शिव और विशेषकर अजर-अमर एकादशरुद्रावतार हनुमान जी) की ही **सग्रन्थित इकाई** हैं। इस सम्बन्ध में मैं अधिक कुछ न कहकर पाठकों को उनके स्वयं के निष्कर्षों पर छोड़ देना श्रेयस्कर समझता हूँ।

बाबा जी महाराज की इस **लघु भागवत** के लेखन में जो मार्ग दर्शन मुझे श्री केहर सिंह जी (आई० ए० एस०, रिटायर्ड कमिश्नर) द्वारा इन वर्षों में, विशेषकर पिछले ३-४ वर्षों से लगातार प्राप्त होता रहा, उसके लिये मैं उनके प्रति **आजन्म** ऋणी रहूँगा — उन्हें *केवल* धन्यवाद देकर, *केवल* आभार व्यक्त कर मुक्त हो जाना नहीं चाहूँगा। साथ में अन्य प्रेमी भक्तों के प्रति भी, जिनके नाम कहीं कहीं पर उनकी अनुभूति गाथाओं के साथ दिये गये हैं, मैं हृदय से आभारी हूँ — उनके द्वारा इस संकलन को सफल बनाने में अपनी अनुभूतियों को मुझसे व्यक्त कर, जिसमें वर्षों तक बाबा महाराज की छत्रछाया में रहे पूरनदा की अनुभूति गाथाओं ने भी (जिन्हें उन्होंने **२५ सितम्बर, १९७४** को ही श्री-धाम वृन्दावन से लौटते हुये

ट्रेन में अपने पुत्र मुकुल द्वारा लिपि-बद्ध करा दिया था) मुझे विशेष रूप से उत्साहित किया ।

श्रीमाँञ्चल
७१ बी/२बी, स्टैनली रोड,
कमलानगर,
प्रयाग, (इलाहाबाद) – २११००२
दिनांक – महाशिवरात्रि
१० अप्रैल, १९९४

युगलचरणाश्रित
(मुकुन्दा)

पुनश्च :—

मैं तो बाबा महाराज की **लघु भागवत** को अपनी ओर से समेट कर श्री माँ को समर्पित भी कर चुका था श्री गुरु पूर्णिमा – १९९४ को ही। पर इस बीच प्रकाशन में कुछ विलम्ब के कारण और भी कुछ सुनने को मिल गया कुछ भक्तों की बाबा महाराज की दया-कृपा की अनुभूतियों पर जिनको भी इस ग्रन्थ में सम्मिलित कर लेने का लोभ मैं संवरण न कर सका ।

वीरभद्र आश्रम
श्री हनुमान जयंती
२ अप्रैल, १९९६

युगलचरणाश्रित

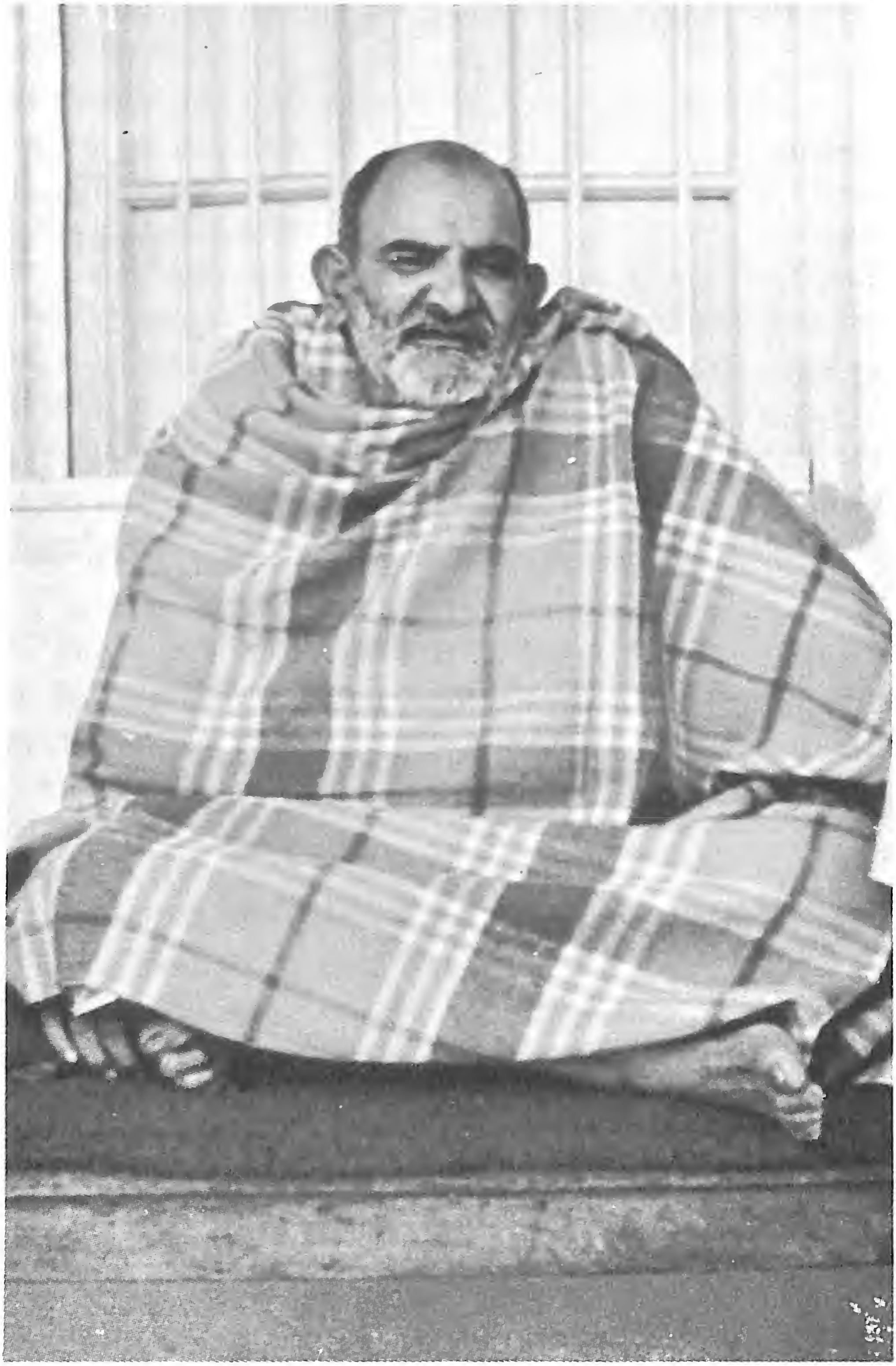

मेरे आराध्य

प्रथम सर्ग

लीला-सागर में प्रवेश

विनय

(*अपने आराध्य के प्रति*)

मेरे आराध्य !

अपनी संकुचित दृष्टि से मैं आपके परम पावन लीला-चरित्र के महाकोष में झांकने की धृष्टता कर रहा हूँ । कभी (वर्ष १९७५ में) एक अनधिकार इच्छा भी की थी कि आपकी पतित पावनी लीलाओं को, आपके परम भागवत-स्वरूप व भगवद्-रूप को मैं भी भक्त संसार के सम्मुख लिपि बद्ध कर प्रस्तुत करूँ ताकि सभी भगवद्-प्रेमी आपके पावन तत्व का भागी और भोगी बन सकें, और आपसे इस हेतु करबद्ध प्रार्थना भी की थी कि इस प्रयास की पूर्णता हेतु आप मुझे समुचित क्षमता एवं सामर्थ्य प्रदान करें।

कई वर्ष बीत चुके हैं तब से । उक्त इच्छा दबी ही रह गई । सम्भवतः आपने मुझमें इस हेतु यथेष्ट परिपक्व योग्यता नहीं पाई कि आपकी **मन-बुद्धि-वाणी** से परे लीलाओं का मैं समुचित रूप से बखान कर पाऊंगा । परन्तु अब यह इच्छा पुनः भड़क उठी है श्री श्री सिद्धी माँ द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर कि मैं अपने उक्त मनोरथ को पूर्ण करने हेतु कटिबद्ध हो जाऊँ ।

और, **हे आनन्दकन्द** ! आज मधुमास की इस नौमी तिथि (श्री राम नवमी, १९८३) को मैंने इस महाप्रयास का श्री-गणेश कर ही दिया है इस **विनय** द्वारा, आपके सम्मुख अपने संपूर्ण बुद्धि, बल, विवेक एवं अहं को आपके श्री चरणों में समर्पित कर। यह प्रयास पूर्णता कब प्राप्त कर पायेगा, अथवा यह प्राप्ति होगी भी या नहीं, आप ही जानें, क्योंकि अब इस महाप्रयास की सफल पूर्णता केवल *आपकी ही इच्छा* पर निर्भर है । मेरी तो केवल ***अर्जी*** है, **मर्जी** तो आपकी ही रहेगी सरकार ।

परन्तु, **हे महाप्राण** ! आपके चिन्मय सच्चिदानन्द-स्वरूप के ***किस*** अंश का संसार के सम्मुख निरूपण करूँ मैं ?

निर्गुण ब्रह्म रूप में या सगुण स्वरूप में ?
राम, कृष्ण, शिव, महाशक्ति रूप में ?
अवतारी विभूति रूप में ? हनुमद रूप में ?
भगवद् रूप में या परम भागवत रूप में ?
गुरु रूप में या परम-गुरु रूप में ?
ऋषि, महर्षि, साधु, मुनि, वैरागी, जोगी, जीवन-मुक्त रूप में ?
चमत्कारी सिद्ध के रूप में ? बाजीगर की भूमिका में या **छलिया** के रूप में ?
माँ-पिता, बन्धु-सखा रूप में ? परिवारी के रूप में ?
बाल रूप में ? परम ज्ञानी-विज्ञानी के रूप में ?
प्राकृत मनुज के रूप में अथवा अनासक्त विशिष्ट मानव के रूप में ?
आराध्य रूप में ? उपास्य रूप में ? प्रणव स्वरूप में ?

आप ही बतायें सरकार, आपका कौन सा रूप-स्वरूप ऐसा है जो ***असत्य*** अथवा ***अपूर्ण*** है?

और जब ये सभी रूप पूर्ण व सत्य हैं तब इतने रूप-स्वरूपों का समन्वय कर एक ***विराट*** की रचना कर पाना और उसे **सही** रूप में संसार के सम्मुख रख पाना क्या मेरे मान की चीज है ? यह तो केवल आपकी इच्छा पर निर्भर रहेगा कि मेरी इस ***आराधना*** में आप अपने किस रूप-स्वरूप का कितने **परिमाण** में **निरूपण** करवाना चाहेंगे । मेरा तो एक अनर्गल-सा लगने वाला प्रलाप होगा यह । इसमें रस-माधुरी घोलना और पीने वाले को उसकी मिठास की अनुभूति कराना भी आपकी ही इच्छा पर निर्भर रहेगा ।

मेरे सर्वस्व ! जहाँ तक मेरी अपनी भावना का प्रश्न है, मैं तो जब आपकी राम-रूप, कृष्ण-रूप, हनुमान-रूप अथवा किसी अन्य **दैवी** स्वरूप में कल्पना करता हूँ तो आप **अदृश्य**-से हुये मुझसे दूर लगने लगते हैं । जब आपकी **गुरु** रूप में कल्पना करता हूँ तो पाता हूँ कि आप बहुत ऊँचे आसन पर विराजमान हो गये हैं तथा मेरे जैसे काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकारादि-जन्य कर्मों से ग्रस्त व्यक्ति की पहुँच के नितान्त बाहर हो गये हैं । और जब आपकी सन्त-रूप में कल्पना करता हूँ तो पाता हूँ कि इस संसार में, विशेषकर भारतवर्ष में पूर्व में भी तो संत-रूप विभूतियाँ स्वरूप

धारण कर चुकी हैं, कर रही हैं, करती रहेंगी, (ईश्वरेच्छा के अन्तर्गत) जब कि आपका **स्वरूप**, आपका **तत्व *न भूतो, न भविष्यति*** का निरूपण करता है।

तब मैं पाता हूँ कि आपको केवल एक ही स्वरूप में, एक ही रूप में प्राप्त किया जा सकता है — यथा, अपने **प्रियतम**, अपने **उपास्य**, अपने **आराध्य** के रूप में — और तभी ही कोई भी **अवरोध** — सांसारिक अथवा आध्यात्मिक अथवा व्यावहारिक — आपके और मेरे बीच नहीं रह पाता । तब **प्रियतम** रूप में मैं अपने को आपके आलिंगन में बद्ध आपके वक्ष में सिमटा पाता हूँ, **उपास्य** रूप में मैं अपने को आपके पावन चरणों में लिपटा पाता हूँ और **आराध्य** रूप में आपको अपने अन्तर में, अपने **रोम-रोम** में व्याप्त पाता हूँ ।

(प्रभो ! मुझे भलीभाँति ज्ञात है कि मैं ही नहीं, सैकड़ों अन्य भक्त भी इसी रूप में, इसी भाव से आपकी आराधना में रत हैं ।)

अतः आज मैं आपकी स्तुति मुख्यतः इसी भाव से आपकी लीलाओं के माध्यम से करने की चेष्टा कर रहा हूँ, भले ही आप इसके मध्य पाठकों को अपने अन्य विभिन्न रूपों की भी **झलकी** प्रदान करते रहें ।

अस्तु, पुनः कर-बद्ध विनय है –

दीन बन्धु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ ।
दीन बन्धु दीनानाथ, *ले लो* डोरी अपने हाथ ।

महाराज

८८ एलनगंज,
प्रयाग,
गुरुवार, चैत्र शुल्क पक्ष,
श्री श्री राम नवमी-सं० २०४०

श्री माँ-महाराज चरणाश्रित
(मुकुन्दा)

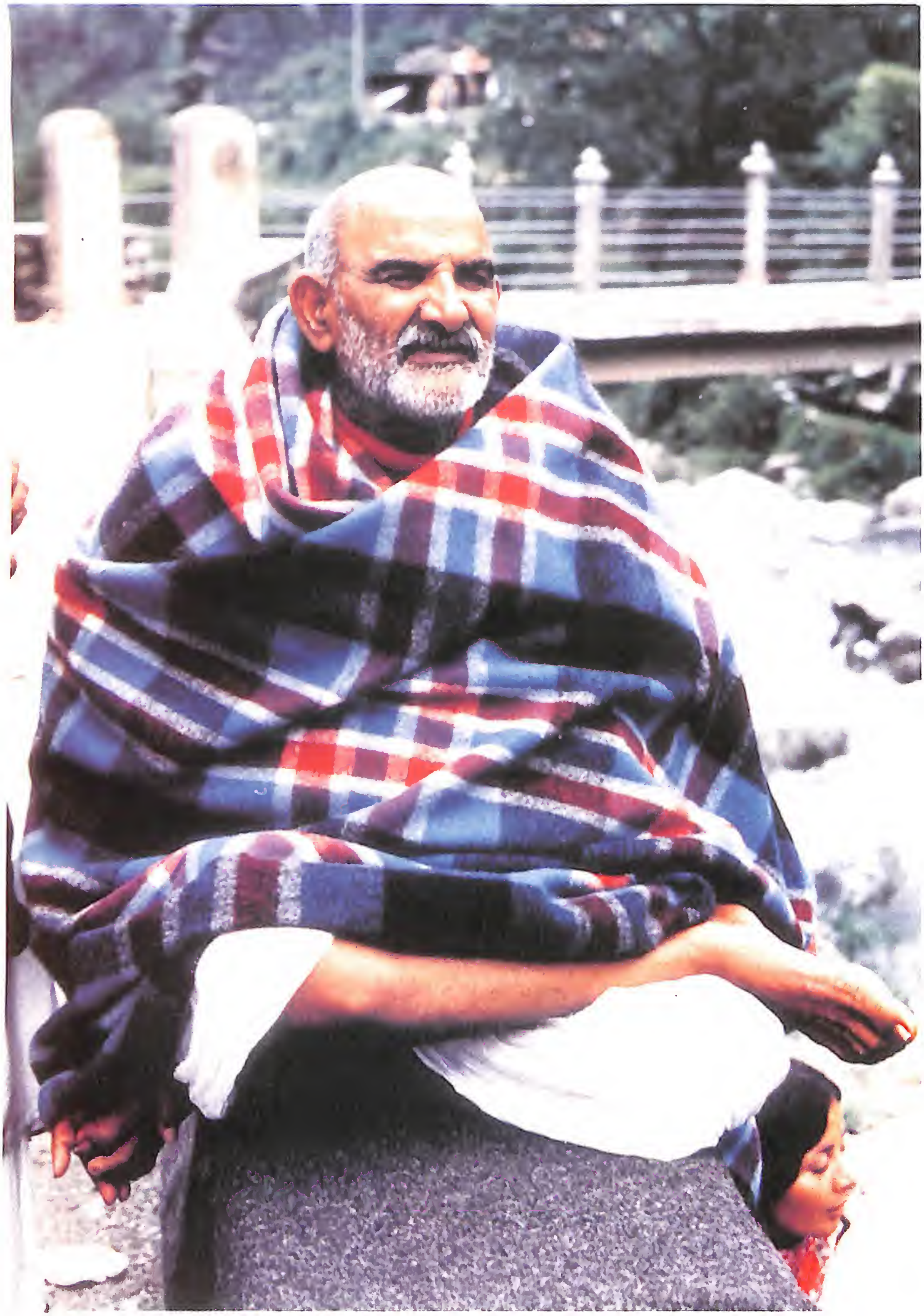

निवेदन

(*प्रेमी पाठकों से*)

मेरा सविनय प्रणाम ।

परम पिता परमात्मा के निर्गुण स्वरूप के वर्णन में शंकर भगवान ने **तुलसी** के माध्यम से कहा :–

> ***बिनु* पद चलइ, सुनइ *बिनु* काना ।**
> **कर *बिनु* करम करइ विधि नाना ।।**
> **आनन *रहित* सकल रस भोगी ।**
> ***बिनु* वाणी वक्ता बड़ जोगी ।।**
> **तन *बिनु* परस, नयन *बिनु* देखा ।**
> **ग्रहइ घ्रान *बिनु* बास असेषा ।।**
> **अस सब भाँति *अलौकिक* करनी ।**
> **महिमा जासु जाइ नहिं *बरनी* ।।**
> ***सोइ* दशरथ सुत *भगत हित*, कोशल पति *भगवान* ।**

सूक्ष्म में —

सतयुग में भगवान के *ऐसे* निर्गुण स्वरूप का **अनुभूति दर्शन** केवल ज्ञान-ध्यान से ही संभव रहा ।

त्रेता में जहाँ अनेक कारणों के होते हुये भी **रामावतार** का **मूल *सो केवल भगतन* हित *लागी*** रहा, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की सगुण लीलायें मानव को मूलतः त्याग, वैराग्य, भक्ति और प्रेम के माध्यम से भुक्ति-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कराती रहीं । **शरणांगति** का माध्यम मूलतः दास भाव से भक्ति बनी और प्रभु दर्शन का मूल *प्रेमा-भक्ति* — **सो अज प्रेम-भक्ति बस कौशल्या की गोद ।**

द्वापर में जहाँ जगदगुरु श्री कृष्ण ने छल तथा कूटनीति से दुष्टों, दानवों तथा अमानवीय शक्तियों का संहार किया/कराया, वहीं अपने **प्रेमास्त्र** से भक्तों एवं शरणांगतों को अपने अमोघ सम्मोहन से खींच तथा प्रेम-डोर से बांध कर उन्हें सखा-भाव से **महारास** की रसानुभूति भी करवाई तथा उन्हें **भोग** और **योग** दोनों से परिपूर्ण कर तृप्त कर दिया । **शरणांगति** का माध्यम मूल रूप में **सख्य** एवं **राधा-कृष्ण प्रेम** — (यथा, **प्रिया-प्रियतम भाव**) बना, जिसमें ही गीता-ज्ञान — **अनन्याश्चिंतयन्तो मां**

यो जनाः पर्युपासते, तथा **सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज** समाहित हुआ । *प्रेमाभक्ति ने* ***विशुद्ध प्रेम*** *का स्थान* ले लिया ।

इस प्रकार इन तीन युगों में भगवान ने मानव को ज्ञान-ध्यान, विज्ञान, भक्ति एवं प्रेम के माध्यम से भुक्ति-मुक्ति प्रदान की ।

परन्तु इस हेतु श्री राम, श्री कृष्ण ने प्राकृत रूप में त्रेता-द्वापर में जो लीलाएँ की थीं उनके मध्य केवल विशिष्ट अवसरों को छोड़कर — जब उन्हें या तो अपने स्वरूप या अपनी शक्ति को अनिवार्य रूप से अपने **अवतार** के **हेतु** की पूर्ति के लिये प्रगट करना पड़ा था — साधारणतः उन्होंने प्राकृत अवस्था में ही केवल सामान्य नर-लीलायें ही कीं, तथा समान्य मनुज-अनुकूल ही आचरण-व्यवहार किया । इसी कारण उनके माता-पिता, भाई-बन्धु, *वंशज*, सखा, प्रजादि भी यह न जान सके कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक स्वयँ नर-रूप में जन-कल्याणार्थ, धर्म संस्थापनार्थाय लीला हेतु अवतरित हुए हैं राम-रूप, कृष्ण-रूप लेकर । ये सभी उनके मूल स्वरूप, मूल परमतत्व व ईश्वरीय सत्ता-क्षमता के प्रति साधारणतः **अचेत** ही रहे। और बीच बीच में यदि जनसाधारण को कभी उनकी **अलौकिकता** का दर्शन अथवा आभास हुआ भी तो शीघ्र ही उनकी प्राकृत लीलाओं ने उन्हें पुनः विमोहित कर दिया । अयोध्यावासी, मथुरा-गोकुल वासी सभी इन लीलाओं में ही ***खो*** गये— उन्हें मात्र राजा, राजकुमार समझकर ।

पाठक, यदि आपको बाबा जी महाराज (नीब करौरी) जी के *इस* लीला-चरित्र के पाठ के मध्य निर्गुण परमात्मा एवं उसके सगुण रूप श्री कृष्ण, श्री राम, अथवा ऐसी ही अवतार विभूति **सदाशिव रूप एकादशरुद्र श्री हनुमान जी** के उपरोक्त गुण-विशेषों की, व्यक्तित्व की, अलौकिकता की, तथा उनकी कल्याणमयी ***लीलाओं के सदृश झलकी*** मात्र भी प्राप्त हुई तो मैं अपने आराध्य के लीला-चरित्र के इस संकलन को पूर्ण रूपेण सफल-सार्थक मानूंगा । मेरी ओर से तो यह मूलतः ***जोइ देख्यो, सोइ लेख्यो*** मात्र है और मात्र **स्वान्तः सुखाय** भी ।

हमने तो **भगवान** को देखा नहीं कभी । (पाठक, क्या आपने देखा है ?) हाँ, सुना और पढ़ा भी कि **वह** है, और सब कुछ **वही** करता है । **उसी** के द्वारा संचालित है समस्त सृष्टि, जिसका **वही** सृजन करता है, **वही** पालन करता है, और **वही** संहार भी करता है — आदि-आदि । परन्तु **वह** क्या है ? कैसा है ? कैसे क्या करता है ? — सब कल्पना का विषय बन कर ही रह गया । पढ़ा और सुना कि वही **राम** है, **कृष्ण** है, **शिव** है, **ब्रह्मा** है — सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वत्र स्थित — आदि-आदि । परम्परागत

इस मान्यता को हमने भी **संस्कारवश** मान लिया। पर न देखा, और न विश्वसनीय रूप से अनुभूति ही हुई उस परब्रह्म की, और (शायद) अन्तर में, मन-मानस में सदा ही इसी उहापोह के शिकार बने रहे कि — क्या यह सब सच है? या कोरी कल्पना है? कैसे समझें? कैसे विश्वास करें ?

परन्तु जब अपने आराध्य की लीलाओं में डूबे, (वस्तुतः उन्हीं के द्वारा डुबोये गये,) उतराये, फिर डूबे, और फिर फिर डूबे, तो जो कुछ भी सुना था, पढ़ा था (सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वसमर्थ राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, हनुमान — आदि आदि) सभी की अलौकिकताओं की अपने **आराध्य** देव की उन लीलाओं के मध्य अनुभूति होने लगी । नाम तो केवल **उपाधि** मात्र है और **तत्व** उसी नामधारी की **शक्ति** है, तथा **शरीर** उस **शक्ति** की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र — और जब *उसी* अलौकिक शक्ति की अनुभूति हुई तो अपने आराध्य में ही राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, शक्ति आदि सभी का तत्व-दर्शन प्राप्त कर लिया ।

यूँ तो महाराज जी की लीलाओं का, उनके व्यक्तित्व का, उनके **चरित** की अलौकिकता का वर्णन कुछ भक्त पूर्व में भी कर चुके हैं — रामदास (डा० रिचर्ड एल्पर्ट) द्वारा लिखी पुस्तक **मिरेकिल ऑफ लव** में, **स्मृति-सुधा** पत्रिका में, श्री रविप्रकाश पाण्डे जी की पुस्तक **अलौकिक यथार्थ** में तथा मुखर्जी दादा की पुस्तक **बाई हिज ग्रेस** में । मैं भी यहाँ यही कर रहा हूँ ऐसे वर्णन का प्रयास । आगे भी करेंगे कई भक्त । परन्तु क्या ये शाब्दिक चित्र महाराज जी की *सही* प्रतिमूर्तियाँ हैं ***सही अर्थ*** में ? एक ही उत्तर होगा इस प्रश्न का — **कदापि नहीं** । सच ही कहा एक अमरीकन महिला भक्त अंजनी (ताओस, न्यू मैक्सिको) ने —**"महाराज जी की कोई जीवनी,उनका कोई भी वर्णन हो ही नहीं सकता — वर्णनातीत हैं वे। वे (महाराज जी) कौन थे/कौन हैं — उसकी केवल अनुभूति भर की जा सकती है अन्तर में । उनके सन्मुख होने पर परम शांति की नैसर्गिक वर्षा होती रहती थी — आल्हाददायक, अमृतमयी और *अब* उनकी (भौतिक) अनुपस्थिति, लगता है, सभी को अपने साधारण से *पट्टूदार कम्बल* में समेट चुकी है, समेटती जा रही है ।"**

वस्तुतः महाराज जी तो **वायु** की तरह अस्पृश्य थे — उन्हें न तो पकड़ा जा सकता था और न बाँधा जा सकता था — **मन-बुद्धि-वाणी** से परे उन्हें केवल ***महसूस भर*** किया जा सकता था — अपनी-अपनी क्षमतानुसार, अपनी-अपनी अनुभूतियों के आधार पर आशिक रूप से ही

पहिचाना जा सकता था/जाना जा सकता है । उनका **विराट** (सम्पूर्ण स्वरूप) न कभी एकमुश्त दृष्टिगोचर हो सकता था और न किसी में *ऐसी* दैवी अथवा जप, तप, साधना आदि की शक्ति थी कि उस **विराट** के पूर्ण दर्शन पा सके । इसीलिये उनके **मूल** तत्व का ***केवल अंशों में ही*** दर्शन एवं अनुभूतियों के आधार पर शाब्दिक चित्रण संभव हो पाता है — पूर्णता से फिर भी बहुत दूर ।

अस्तु, मेरा भी यह प्रयास अपने प्रियतम, अपने उपास्य, अपने आराध्य बाबा नीब करौरी जी महाराज के साथ *मुख्यत:* अपने और अपने परिवारी जनों के अनुभवों एवं अनुभूतियों, तथा साथ में प्रसंगवश आये कुछ अन्य भक्तों के अनुभवों पर ही आधारित है, जिसमें *अपने भावों* की आधार-शिला पर अपने आराध्य की शब्द-मूर्ति गढ़ने की चेष्टा की गई है— केवल पूजा-अर्चना स्वरूप, जिसे, आशा है, पाठक अपनी सहज सहिष्णुता के साथ इसी भाव से स्वीकार करेंगे । इस भावाञ्जलि द्वारा ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं की जा रही है, और न ही जानबूझ कर कोई ऐसा प्रयास किया जा रहा है कि बाबा जी महाराज के प्रति मेरे *इन* उद्‌गारों को, मेरी इन भावनाओं को पाठक वृन्द पर थोपा जाये । बाबा जी महाराज के प्रति किसी की भी भावनाओं का, अथवा बाबा जी की कृपा-दया के भागी एवं भोगी की उसकी अपनी अनुभूतियों का कोई परिसीमन नहीं हो सकता । भक्तों के अन्तर में तो और भी अधिक उत्कृष्ट भावनायें बाबा जी महाराज के प्रति विद्यमान हैं — इसका मुझे पूर्ण ज्ञान है । अत: अपने इन सीमित उद्‌गारों के लिये मैं ऐसे अनुंभूति-प्राप्त भक्तों के प्रति क्षमा-प्रार्थी हूँ । मैंने अपने चर्म चक्षुओं से जो देखा तथा अल्पबुद्धि से जो भी, जितना भी समझा, उसे ही शाब्दिक अभिव्यक्ति देने की चेष्टा की है *जो न तो बाबा जी की* ***जीवनी*** *है और न ही कोई* ***इतिहास*** ।

इस स्तुति में संकलित-सम्मिलित कुछ लीलायें (जिनसे मैं भी पूर्व से ही *भिज्ञ रहा* तथा जिनके संकलन हेतु प्रयासरत रहा हूँ) अब तक के प्रकाशित लेखों, पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में भी आ चुकी हैं । परन्तु उन लीला-कथाओ में *निहित* कुछ विशिष्टताओं को अपने ही भावानुरूप उपयुक्त प्रासंगिक संदर्भों के अन्तर्गत चित्रण करने का लोभ भी मैं संवरण न कर सका । अत: पाठक एवं पूर्व के संकलनकर्ता मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें । मैंने तो अपने आराध्य की *वही* मूरत उजागर करने की चेष्टा की है *जिसे* मैं वर्षों से अपने मन-मानस में संवारे-संजोये हूँ ।

निवेदन पाठकों से

महाप्रभु के प्रति अपने भावों की अभिव्यक्ति हेतु मैं उपयुक्त शब्दावली का चयन भी तो न कर सका । न तो मैं लेखक रहा हूँ, न साहित्यकार, और न अध्ययनशील ही । अस्तु, इसमें शब्दों के प्रयोग, भाषा-प्रयोग एवं वाक्य-विन्यास में त्रुटियाँ आ जाना स्वाभाविक है । मेरे लिये तो इस रचना में केवल ***एक ही* विशिष्टता** है — मेरे आराध्य की पतित पावनी लीला-गाथायें तथा इसमें समाहित *उनका **पावन नाम*** । आशा है पाठकवृंद भी *इसी* भाव से इस रचना को इसके वर्तमान स्वरूप में ग्रहण करेंगे, (*और* **केवल** साहित्यिक दृष्टि-कोण न अपनायेंग ।)

दो शब्द यहाँ और भी कह देना समुचित होगा । बाबाजी की कृपा-दया का क्षेत्र इतना विस्तृत रहा है तथा उनकी दया-कृपा की लीलायें इतनी तीव्र गति से प्रतिदिन (प्रतिदिन क्यों कहूँ — प्रतिपल) इतने व्यापक रूप से होती रही हैं कि उनको क्रमवार पूर्ण विवरण सहित स्मृति में संजोये रख लिपि-बद्ध कर पाना असंभव ही था किसी के लिये भी, और न (अपनी **प्रसिद्धि-ख्याति** के प्रति *सदा* उदासीन) बाबा जी ने ही किसी को ऐसा करने दिया । (**भवन्स जरनल** में श्री के० एम० मुन्शी को उनके द्वारा नीब करौरी के **रेल-प्रसंग** के लिखे जाने पर तथा स्व० राजा साहेब भद्री को महाराज जी की कथा-लीलाओं का संकलन करने के प्रयास में बाबा जी का कोपभाजन बनना पड़ा था ।) पुनः स्वयँ बाबा महाराज भी तो यदाकदा केवल क्षेत्र विशेष अथवा स्थान विशेष में रम कर अपनी अलौकिक लीलायें करते रहे भिन्न भिन्न भक्तों एवं भिन्न भिन्न प्रकार की जनता के मध्य, जिनके अपने अपने अनुभव भी उसी प्रकार भिन्न ही होते रहे उनकी अपनी अपनी क्षमताओं के अनुरूप। अस्तु, अब तो केवल भावभीनी स्मृतियों का सहारा लेकर ही उनके बारे में कुछ कहा-लिखा जा सकता है। इस कारण स्वाभाविक है कि इन लीला-प्रसंगों के *क्रम में एवं विवरण में*, अथवा महाराज जी की **कथित** वाणी (उक्तियों) में कुछ हेर-फेर हो सकता है परन्तु (फिर भी) *इन* लीला प्रसंगों तथा **वाणी** के **सार** में नहीं।

कहीं-कहीं पर पूर्व में कही जा चुकी बातों की *पुनरावृत्ति* की गई है — प्रसंगवश भी और कुछ जानबूझकर भी — केवल संदर्भित बात को पुनः एवं पूर्णतः हृदयंगम कराने हेतु । पाठक क्षमा करें।

वीरभद्र आश्रम, ऋषिकेष, युगलचरणाश्रित
श्रीराम नवमी, सं० २०५० (१-४-१९९३) (मुकुन्दा)

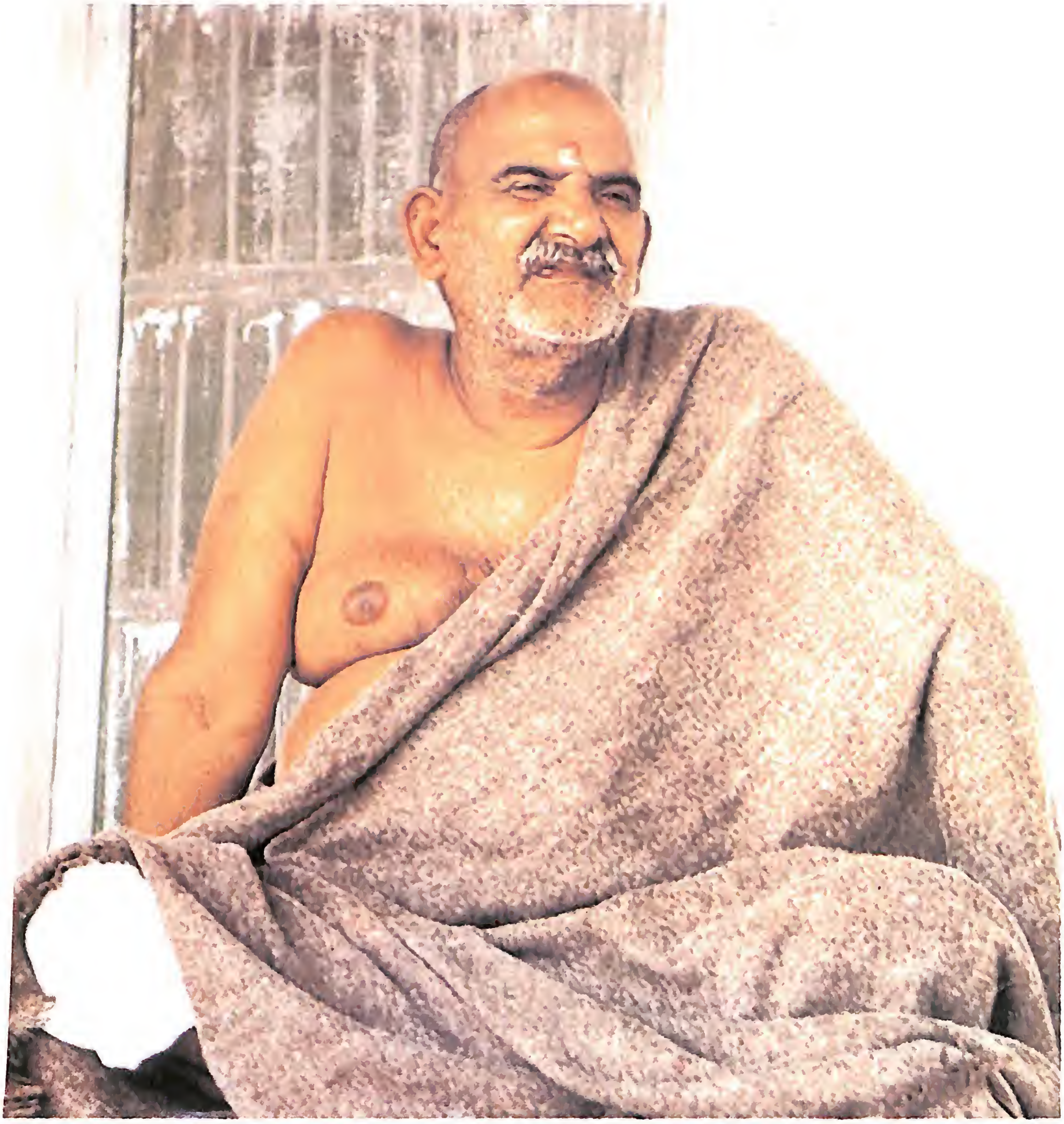

प्रथमावरणार्चनम्

संभवामि युगे युगे

महाभारत युद्ध में अर्जुन को गीतोपदेश के माध्यम से भगवान ने संसार को आश्वासन दिया था कि —

यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।।

और कि — **परित्राणाय साधूनां, विनाशायच दुष्कृताम । धर्म संस्थापनार्थाय *संभवामि युगे युगे***।।

सहज भाव में हम इस आश्वासन का यही अर्थ लगाते रहे हैं कि उक्त अवस्था में भगवान विभिन्न युगों में फिर से **राम** अथवा **कृष्ण** बनकर आयेंगे — **धर्म संस्थापनार्थ** । यह नहीं सोचा कि भगवान अपने प्रतिनिधि स्वरूप संत-फकीरों को भी तो भेज सकते हैं (या उनका रूप धारण कर *स्वयँ* भी तो आ सकते हैं) उक्त कार्य हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में — आवश्यकतानुसार । वही कार्य तो करते आये हैं संत-फकीर सदा ही से । क्या ऐसे संत-फकीर का प्रादुर्भाव स्वयँ में भगवान के *उक्त* आश्वासन की पूर्ति नहीं है ?

ऐसी मानव शरीरधारी, पूर्ण संतत्व प्राप्त अथवा अवतारी-विभूति स्वयँ में ईश्वर का ही अंश होती है और भगवान की तरह ही उसमें भी सम्पूर्ण कलाओं पर आधिपत्य एवं पूर्ण नियंत्रण रखने की क्षमता होती है । ऐसी विभूति का समस्त जीवनकाल केवल जन-जन के कल्याण में, दीन दुखियों का दुःख-दर्द मिटाने में, जड़-चेतन की निःस्वार्थ सेवा में ही उत्सर्ग हुआ होता है और *केवल* ऐसे संत-फकीर के ही लिए कहा गया है — **जो न करे लकीर, सो करे फकीर** । ऐसे संत-फकीर के किये-कहे के समक्ष प्रकृति भी नत हो जाती है और उसका अकाट्य नियम कि '*कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा*' भी निष्क्रिय अथवा निलम्बित हो जाता है । ऐसे संत-फकीर की मौज के अनुकूल प्रकृति भी अपनी दिशा मोड़ देती है — रंक राजा हो जाता है, पंगु चलने-उड़ने लग जाता है, अंधा ब्रह्माण्ड दर्शन करने लगता है, भाल के कठिन अंक भी मिट जाते हैं । यहाँ तक कि ***मूल प्रकृति*** भी बदल जाती है ।

जैसा कि किसी कवि ने नदी और संत के तुलनात्मक विवेचन में कहा है — नदी उँचाई से (बहकर) नीचे आती है अपने **मूलगत** स्वभाव से बँधी, पर अपनी इच्छा पूर्ति हेतु नहीं, वरन अपने निर्मल-करुणामय-दयापूर्ण स्वभाव के कारण — **परहित** हेतु । वह अपने किनारों पर बसे अगणित लोगों की तृषा तृप्त करती है, खेतों का सिंचन कर उनके लिए ही नहीं वरन जन-जन के लिए क्षुधा एवं तृषा निवृत्ति का साधन बनती है । हिम, ताप, वर्षा सभी का प्रकोप सहती, मार्ग के कंटक, रोड़े, अवरोध सबको झेलती-ठेलती अपना मार्ग बनाती चलती रहती है — जन-सेवार्थ, जन-कल्याणार्थ — **परहित लागि** — बिना भेदभाव के समान रूप से, और फिर स्वयँ जाकर **महासागर** में विलीन हो जाती है ।

इसी प्रकार संत-फकीर भी ऊपर से **नीचे** (इस धरा पर) आते हैं— **अपने मनोरंजन हेतु नहीं, अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए नहीं — वरन जन-जन में शांति सुख, वैभव, आध्यात्मिक आलोक प्रदान करने अवतरित होते हैं** — स्वयँ परमपिता परमेश्वर का अंश बनकर, ईश्वरीय प्रभुसत्ता और क्षमता लिए । संतप्त, विवश, विकल, बलहीन, दीन-दुःखी, स्वकर्म से शापित मानव को इन तापों से मुक्ति दिलाने, भयातुर को **अभय** प्रदान करने, **विश्वासी** की **अविश्वास** से रक्षा करने हेतु ही स्वयँ में ये **जीवनमुक्त** परम संत परम गुरु-रूप में अवतरित होते हैं । स्वयँ दुःख झेलकर मानव को सुख देने, माया-जन्य प्रलयंकारी झंझावातों से मानव को बचाने, मर्यादा पुनः स्थापित कर मानव को जीवन का आदर्श समझााने हेतु वे सतत प्रयासशील रहते हैं ताकि सुखमय, शांतिमय एवं एकतापूर्ण समाज की सृष्टि हो सके । वे **लेने** के लिए नहीं **देने** के लिए आते हैं । वे तो हर प्रकार से स्वयँ में ही **पूर्ण** होते हैं । प्राकृत मनुज-लीला खेलकर वे संसार की निःस्सारता के प्रति भक्तों को जागरूक करते हैं । संतप्त मानव जीवन को अपनी **आध्यात्मिक** छाँह में शीतलता, शांति, मुक्ति एवं भक्ति का अवलम्बन देने आते हैं । वे उस आध्यात्मिक सृष्टि का निर्माण करते हैं जिसके बल पर मानव **मानवता** प्राप्त करता है और अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है । वे परम प्रभु का आत्म-स्वरूप बन उसका प्रेम-संदेश लाते हैं मानव के लिए । वे केवल यह नहीं बतलाते कि **स्वर्ग** क्या है — वे स्वयँ ही *इसी* धरा पर भक्त समुदाय के लिए स्वर्ग का निर्माण कर देते हैं। वे **संचय** नहीं करते, वरन मुक्त-हस्त से अपने **अक्षय** भण्डार से शांति, सुख, वैभव, यश आदि बाँटने-लुटाने आते हैं — स्वयँ वैभव-ख्याति से दूर,

उसे तिरस्कृत कर अपने आश्रितों को *उस* वैभव का, *उस* ख्याति का भोग-सुख प्राप्त करा, तृप्त कर इच्छा-मुक्त कराते हैं । भक्तों को **राम-रहस्य** की मुक्ता चुगाते हैं, नर को ईश्वरता प्राप्त कराते हैं । इन्हीं अलौकिक कर्मों हेतु वे **अवतरित** होते हैं ।

इन्हीं अलौकिकतापूर्ण दैवी गुणों, कर्मों एवं *स्वभाव को धारण कर* **श्री श्री बाबा नीब करौरी जी महाराज** हमारे मध्य आये — अपनी **अलौकिक लीलाओं** के माध्यम से भवताप से पीड़ित अपने जन्म-जन्म के चरणाश्रितों, अनगिनत दीनों, शापित मनुष्यों एवं भगवद्भक्तों को दैहिक-दैविक-भौतिक तापों से मुक्त करने हेतु । उन्होंने उनके लिये *आश्रमों में ही नहीं,अपितु उन्हीं के घरों में ही* **स्वर्ग** का निर्माण कर दिया दोनों हाथों से अपने अक्षय भंडार से वैभव मुक्त भाव से लुटाकर — बिना पात्र-कुपात्र, संत-असंत, भक्त-अभक्त की भावना के । अपनी प्रकाशमयी लीलाओं से भक्त समुदाय एवं आश्रितों को ऐसा अवलम्बन दिया जिसके बल पर उनका अपना **संसार** ही नहीं, **परमार्थ** भी निर्मित हो गया ।

बिना किसी भेद-भाव के वे गुन-हीन का गुन बने, अंधे की आँख बने, बलहीन का संबल तथा असहाय के सखा बने । **माई-बाप** बनकर उन्होंने अनगिनत भूखों को भोजन दिया तथा निराधार को अपनी आत्म-शक्ति का आधार । भक्तों, ज्ञानियों को ईश्वरीय प्रेम का **सुख-सार** प्रदान कर उन्हें भवसागर से पार करने हेतु स्वयँ ही **सेतु** बन गये । **अकुलीन** को ऐसा अपनाया कि उनके स्वयँ का नाम ही उसका कुल-धन बन गया। जीवन-पर्यन्त-सुबह-शाम, रात-दिन, हर पल इन्हीं कर्मों में रत रहे *गरीब-नेवाज बाबाजी* ।

और स्वयँ ? घर छोड़ा, वैभव छोड़ा, स्वजन छोड़े, अगाध पैतृक संपत्ति का मोह तथा भोग छोड़ा । सभी सांसारिक सुखों का परित्याग किया — और यह सब भी सबसे **गुप्त** रखकर !! (संसार को पता तक न लग पाया उनके इस त्याग का, उनकी सत्ता, उनके ईश्वरत्व को *उनकी शरीरावस्था के मध्य* !!) अधिकतर जंगलों और वीरानों में घूमते रहे अपने परिकरों के साथ और अकेले भी — शीत, वर्षा, ग्रीष्म में — बिना छाँह छप्पर के शिलाओं के ऊपर, मार्गों में रातें बिताते — केवल एक धोती लपेटे (और बाद में एक कम्बल अथवा चादर ओढ़े) रूखा-सूखा भोजन (जो भी जब-जहाँ प्राप्त हो जाये) करते शहरों, गाँवों तथा घरों में डोलते रहे

अपनी दया-कृपा लुटाते, जन जन की **पीर** हरते । **अपना** कहने को कुछ भी न रखा । निद्रा, विश्राम सबका परित्याग किया । भूख-प्यास सभी विसर्जित किये जन-मानव के सुख एवं उसके उद्धार के लिए । यहाँ तक कि आश्रितों, भक्तों की **रुचि** रखने को बरबस अपनी स्वयँ की *अभिरुचियों* और **मूल** व्यक्तित्व का भी **होम** कर दिया । भक्तों के कर्म-फल स्वयँ भी भोगे, उनके घोरतम जघन्य अपराधों को भी क्षमा किया (*रहति न प्रभु चित चूक किये की*) — केवल अपने दयालु स्वभाव के कारण — केवल **येन-केन-प्रकारेण** उनके उद्धार हेतु । न तो अवगुण देखे, न पात्रता देखी, न कर्म देखे, न वर्ण देखा — जो आया उसी का मनोरथ पूर्ण कर दिया ।

और *इसी* क्रिया में — केवल भक्तों के मध्य ही नहीं, *अपितु जन-जन के बीच ईश्वरीय सत्ता को प्रकाशित करने हेतु*, उन्हें जीवन की सार्थकता का, उसका **सार** समझाने के लिए — अपना समस्त **मानव** जीवन उत्सर्ग कर दिया ।

महाराज जी ने भक्तों के साथ अपनी लीलाओं में एक ओर जहाँ **त्रेता** के मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र (मर्यादा, आदर्श, क्षमा, दया, करुणा, कृपा, साकार प्रेमा-भक्ति) की भूमिका का निर्वाह किया, तो वहीं दूसरी ओर उन्हें **द्वापर** के राधा-कृष्ण प्रेम के माधुर्य व **महारास** की अनुभूति कराते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग व राधा-गोपी प्रेम में भी सराबोर कर दिया । इसी के साथ उन्हें **सतयुग** के ज्ञान-ध्यान योग में भी लाकर खड़ा कर दिया । पल में राम, पल में कृष्ण, एक पल **सगुण लीला-युत** परम संसारी तो दूसरे क्षण (सगुण रहते भी) **निर्गुण लीलाओं** में रत हो **निरासक्त** बनकर तथा अपने अनेक रूपों, गुणों से युक्त ऐसी लीलायें दिखा भक्तों को भी इन रसानुभूतियों से पूर्ण रूपेण सराबोर कर, परमानन्द की अनुभूति करा उन्हें परिष्कृत करने की क्षमता केवल **पूर्ण पुरुष** में ही हो सकती है, अन्य में नहीं । और **ईश्वर** ही तो **पूर्ण पुरुष** है !!

इस घोर कलिकाल में सतयुग, त्रेता व द्वापर के योग-क्षेम का *एक ही* शरीर द्वारा *ऐसा* समन्वय, और **कलि** के भक्तों के ऊपर अपनी लीलाओं का व्यापक रूप से *ऐसा* चमत्कार पूर्ण प्रभाव साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप बाबा जी महाराज जी के रोम रोम में व्याप्त *पराशक्ति* का ही ज्वलन्त प्रमाण है। ज्ञान-ध्यान, कर्म-योग व प्रेम-भक्ति से परिपूर्ण लीलाओं का *एक साथ* प्रदर्शन करने की क्षमता रखने वाले महाराज जी केवल ***उस पराशक्ति*** के

ही स्वरूप हैं जो इस सौर मण्डल को संचालित करती है — इसमें न तो कोई संदेह है और न कोई अतिशयोक्ति ।

और यह **सब कुछ** बाबा जी महाराज ने कोई विशिष्ट अवतारी विभूति, सिद्ध जोगी अथवा महापुरुष-महामानव रूप धारण कर नहीं किया, वरन जो भी लीलायें कीं वह एक साधारण मानव शरीर, वेष व आचरण के अन्तर्गत ही कीं (राम और कृष्ण की भाँति — मात्र मनुज-लीला !!) और यही विशेष कारण था उनके सर्वत्र **सर्वप्रिय**, **सर्वमान्य** एवं *प्रेमीभक्तों* के **मनमोहन**, **प्रियतम** बन जाने का । इसी **अस्त्र** का उन्होंने अपने **मूल स्वरूप**, **मूल तत्व** को जन साधारण से गुप्त रखने हेतु भी प्रयोग किया !!

ऐसी विभूति बाबा नीब करौरी महाराज जी की लीलाओं का यथावत, यथारूप शाब्दिक चित्रण कर पाना संभव भी नहीं । जो देखा आँखों ने देखा — जिह्वा ने नहीं, और न उसे मन-मानस ही पूर्ण रूप से **पकड़** पाया — सब कुछ मन-बुद्धि-वाणी से परे । फिर भी — **प्रभु प्रभुता जानइ सब कोई, तदपि कहे बिन रहा न कोई** । और मैं भी ***इसी कोई*** में ***एक और*** होने का प्रयास कर रहा हूँ ।

महाराज

युगलचरणाश्रित
(मुकुन्दा)

८८ एलनगंज,
प्रयाग,
श्री रामनवमी-संवत २०४०

द्वितीयावरणार्चनम्
एक पूर्वावलोकन

श्री श्री बाबा जी महाराज (नीब करौरी) जी के **लीला-चरित** के अंशों का जो वर्णन आगे प्रस्तुत है, अथवा उनके **लीला-चरित्र** पर अब तक लिखे जा चुके (एवं भविष्य में भी लिखे जाने वाले) ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित है /होगा संभवतः कुछ अनजान-अनभिज्ञ पाठकों को उनमें **अतिशयोक्ति** प्रतीत हो । परन्तु जो भक्त, जो शरणांगत, जो आश्रित बाबा जी महाराज की लीलाओं के प्रत्यक्ष रूप में पात्र अथवा दृष्टा रहे हैं, तथा जिन्होंने महाराज जी की करुणा, दया, क्षमा, कृपा की स्वयँ प्राप्ति की है, स्वयँ अनुभूति की है (और आज भी उसी प्रकार कर रहे हैं,) वे जानेंगे कि *इन* चन्द पंक्तियों, चन्द लीला-कथाओं में महाराज जी के पूर्ण स्वरूप का, पूर्ण व्यक्तित्व का, एवं उनके **अवतार** के **मूल** का *केवल* अंशमात्र ही चित्रण हो पाया है — और वह भी अपने में अपूर्ण-अधूरा ।

वस्तुतः बाबा जी महाराज की व्यापकता व क्षमता की कथाओं-दृष्टान्तों का, जो केवल उनकी जन जन के प्रति करुणा, दया, क्षमा, कृपा, वात्सल्य, भक्तवत्सलता, पतितोद्धार आदि की भावनाओं के प्रतिबिम्ब-मात्र हैं, अपार भण्डार है—बाबा जी की स्वयँ की **अपारता** की तरह, जिन सबका वर्णन कई महाग्रन्थों की रचना करने पर भी पूर्ण होने में सन्देह है। कारण—हर भक्त के साथ, हर शरणांगत के साथ, हर आश्रित के साथ, (यहाँ तक कि हजारों *उन* व्यक्तियों के साथ भी जो महाराज जी के व्यक्तित्व, सामर्थ्य एवं प्रभुता से बिल्कुल अनभिज्ञ थे/रहे) महाप्रभु ने उस भक्त, उस शरणांगत, उस आश्रित, उस अनजान-अनभिज्ञ व्यक्ति की ही क्षमतानुसार, उसके प्रारब्ध-कर्म-मनेच्छा आदि के अनुकूल एवं अनुरूप ही अलग-अलग प्रकार की कृपा-दया की लीलायें की। इस प्रकार हर कृपा-पात्र, हर दया-पात्र, हर क्षमा-पात्र की **रामायण** भी अलग-अलग ही रही (रामायण शत कोटि अपारा) तथा हर कृपा-दया पात्र के अन्तर में महाप्रभु की भिन्न-भिन्न मूरत तद्रूप गुणवत्ता लिये (और अधिकतर दया-पात्रों की अपनी ही भावनाओं के अनुरूप) समा गई—यथा, किसी के लिए वे **राम-रूप** हैं तो किसी के लिए **कृष्ण-कन्हैया**, किसी के लिए **सर्व समर्थ हनुमान** हैं तो किसी के लिए शिव-रूप अथवा शक्तिरूप, और अधिकांश आश्रितों के लिये *केवल* सखा, बन्धु, प्रियतम, मित्र, गुरु, परमगुरु, अवतारी महामानव,

ग्रहण करने अथवा उसका स्वाद जानने के लिए) जिह्वा की, न (व्यक्ति-विशेष के अन्तर में अथवा **समूह** में उठते आन्तरिक भाव-स्पन्दन को जान लेने के लिए) स्पर्श की ही—आदि आदि। वाणी से बिना विस्तृत शब्द-जाल का प्रयोग किये भी वे केवल अपनी आत्मशक्ति से अथवा किसी को भी माध्यम बनाकर **प्रकृति** एवं **पुरुष** के गहनतम रहस्यों को सूक्ष्म में ही — सूक्त रूप में — स्पष्ट कर देते या करवा देते ।

सूक्ष्म में — बाबा जी महाराज पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों एवं **मन** — (ग्यारहों रूद्रों) की स्वयँ में ही संयुक्त-सग्रन्थित **पूर्ण इकाई** अर्थात **सदाशिव** थे/हैं — सगुण स्थूल रूप में भी निराकार ब्रह्म की भाँति **सर्वज्ञ**, **सर्वव्यापी**, **सर्वशक्तिमान** — काल और अन्तराल (समय और दूरी) से सर्वथा परे। **सर्वकालीन** बाबा महाराज से कुछ भी छिपा न था — न प्रत्यक्ष की कोई स्थिति और न परोक्ष की — न भूत की, न वर्तमान की और न भविष्य की। और न किसी के चेतन-अवचेतन मन-मानस की। सब कुछ दृश्यमान था उनके लिए — गोपनीय से भी गोपनीय सत्य एवं तथ्य।

यहीं नहीं, वरन यही **परोक्ष की सब कुछ देख लेने की** तथा **परोक्ष** में होती शब्द-ध्वनि *सुन लेने की ऐसी क्षमता* वे अपने भक्तों को भी प्रदान कर देते थे । न केवल अपने को वरन अपने साथ अपने परिकरों को भी अदृश्य कर देना उनके लिए कोई **सिद्धि-प्रयोग** की क्रिया न होकर मात्र **सहज** लीला होती थी ।

उनका **स्थूल** (भौतिक) शरीर कभी भी एकरस, एकरूप, एक आकार का नहीं रह पाता था — उसके आकार अथवा भार में (उनकी इच्छानुसार तत्त्वों में न्यूनता अथवा आधिक्य आ जाने से) परिवर्तन होते रहते थे । अपने किसी भी अंग या पूरे शरीर को उसकी सामान्य आकृति या आकार की तुलना में **मौलिक** रूप से विस्तृत या संकुचित कर लेने, या उसे नया रूप-स्वरूप दे देने में उन्हें क्षण भर का भी समय नहीं लगता था। यहाँ तक कि उनकी मुखमुद्रा, मुखकांति तथा **वर्ण** में भी इन्हीं उतार-चढ़ाव-बदलावों के अनुकूल परिवर्तन आते रहते थे । संभवतः उनके शरीर एवं मुखमण्डल में ये परिवर्तन उनकी लीला-क्रीड़ाओं के अनुरूप ही चलते रहते थे जिनका रहस्य समझ पाना नितान्त दुरूह था ।

साथ में लीलाओं के अनुरूप कोई भी रूप-स्वरूप धारण कर लेने की उनमें अलौकिक क्षमता विद्यमान थी । शरीर के विभिन्न अंगों में ऐसा

यौगिक चमत्कार भरा पड़ा था कि **नटनागर** का कोई भी अंग कहीं को भी, कितने ही परिमाण में उनकी इच्छानुसार मोड़ ले लेता था ।

बाबा जी महाराज का **दरबार** में विद्यमान शरीर जहाँ उपस्थित भक्त-समूह के मध्य अपने **सब काम** सुनियोजित रूप से पूर्णतः चैतन्यावस्था में करता होता, वहीं वे स्वयँ न मालूम कहाँ कहाँ प्रगट-अप्रगट रूपों में (स्वरूप में भी और अन्य रूपों में भी) कल्याणमयी लीलायें करते होते । आर्त की पुकार कहीं भी सुन या तो स्वयँ, या जड़-चेतन माध्यमों द्वारा (उनमें स्वयँ प्रगट हो या उन्हें प्रेरित कर) दूर करते रहते थे ।

और ये लीलायें तो प्रतिपल निर्वाध रूप एवं गति से अनन्त रूप में चलती रहती थीं, (और आज भी तो उसी प्रकार चल रही हैं !!) यही कारण था कि वे कभी भी *स्थिर आसन* ग्रहण न कर पाते थे — उनका शरीर, अथवा उनके दिव्य अंग सदा ही चलायमान रहते थे । यहाँ तक कि *जिसे* हम उनकी **समाधिस्थ** अवस्था अथवा उनकी प्रगाढ़ *निद्रावस्था* समझते होते, उसमें भी वे कहीं **जाकर** लीला करते होते ।

बाबाजी महाराज की ऐसी कथाओं, लीलाओं की कोई गिनती नहीं, कोई सीमा नहीं। फिर भी उन्हें शब्द रूप देने के जो प्रयास पूर्व में अन्य भक्तों द्वारा किये गये हैं तथा यहाँ भी किये जा रहे हैं, आशा है, पाठक उसे उक्त संदर्भ में सहज-रूप में ग्रहण करेंगे। **गागर** में **सागर** भर पाने

की क्षमता हजारों लेखकों-कवियों में शायद किसी एक विरले में पाई जा सके। और यहाँ तो महाराज जी का *लीला चरित* **महासागर** से भी अधिक अगम-अगाध एवं रहस्यमय है जिसे *इस* छोटी-सी गागर में समेट पाना नितान्त असम्भव है। महाप्रभु के व्यापक **विराट** की **झलकी** प्राप्त कर पाना तो *किसी* परम विरागी, *परम-त्यागी*, अटल, ***निःस्पृह सेवक***, प्रेमी-भक्त को उसी की स्वयँ की प्रेमा-भक्ति के **प्रसाद** स्वरूप, और उस पर भी महाराज जी द्वारा प्रदत्त शक्ति के बल पर ही संभव है—वह भी केवल **अनुभूति** रूप में जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाने की क्षमता उस **महाभाग** में भी न होगी — गूँगे के गुड़ की तरह !!

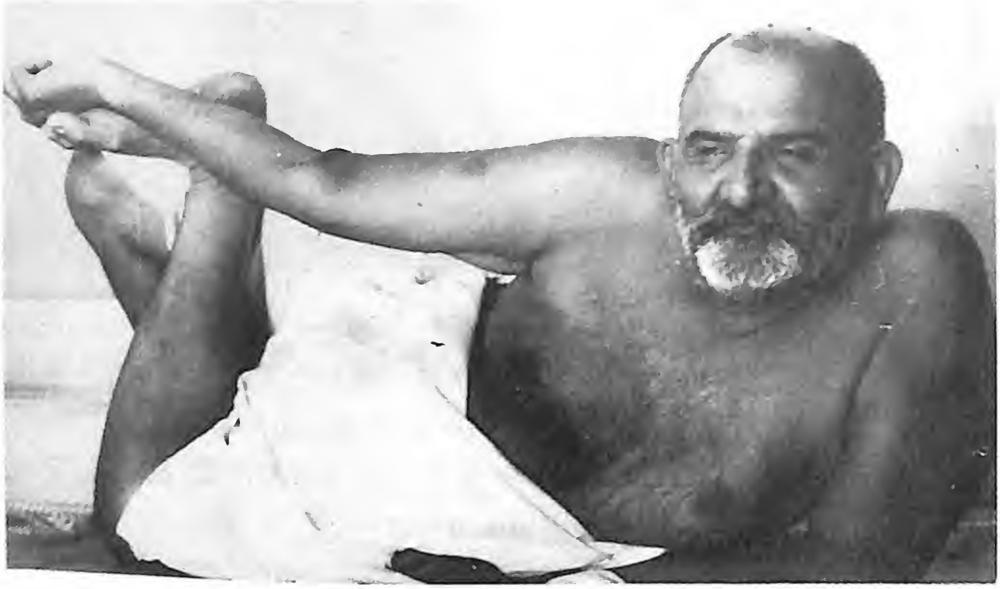

अन्त में, यह रचना भी—जो स्वयँ में बाबा जी महाराज द्वारा *संरचित* एक और लीला है—उनकी करुणा-दया-क्षमा की दर्पण-छाया मात्र है, तथा उनके **लीलाचरित** रूपी **महाभागवत** का—जिसका न कोई **आदि** ही है, न **मध्य** और न **अन्त** ही है—मात्र दृष्टांत रूप में केवल आंशिक एवं लघु चित्रण है—उक्त संदर्भ के अन्तर्गत ।

महाराज

८८, एलनगंज,
प्रयाग,
२५-१२-८५

युगलचरणाश्रित
मुकुन्दा

त्रितीयावरणार्चनम्

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे

परमगुरु-रूप, पूर्ण-पुरुष, करुणा-दया-क्षमा के आगार, परम प्रेम के *मूल श्रोत* व दाता, अवतार विभूति श्री श्री बाबा नीब करौरी जी महाराज की असीम भवमोचिनी परमकृपा मेरे जैसे दीन-हीन पर किस प्रकार हुई, इसका कुछ विवरण जानकर पाठकवृन्द भी आनन्द की अनुभूति करेंगे — ऐसा मेरा विश्वास है — क्योंकि यह केवल मेरी अपनी गाथा नहीं, वरन महाराज जी के हर **आश्रित** व **शरणांगत** पर कृपा की कथा है — घर-घर की कथा है — कुछ उलट-फेर लेकर ।

बाबा जी महाराज के *प्रथम* दर्शन मुझे नजरबाग (लखनऊ) में उनके एक भक्त, श्री प्रेमबल्लभ पाण्डे जी के निवास में वर्ष १६४३ में हुए थे । उनके मकान में कुछ भीड़-भाड़ सी देखकर कौतूहलवश मैं भी अन्दर चला गया । देखा — तखत पर साधू के-से वेश में स्थूलकाय-से एक अधेड़ वय के व्यक्ति विराजमान हैं — ऊँची धोती के ऊपर एक साधारण-

सा चौखाना (काला-सफेद) कम्बल लपेटे, अध-बढ़ी दाढ़ी, कुछ गंजापन लिये सिर, **बावले-से** — और भक्त जनों से घिरे हुए । पूछा तो पता लगा **नीम करौली बाबा** हैं । विचित्र-सा नाम लगा । मैंने भी प्रणाम किया । कुछ देर बैठा भी रहा । कभी इससे तो कभी उससे छोटे छोटे वाक्यों में मन्द स्वर में वे बातें करते रहे मुस्कुराते हुए । मुँह निहारता रहा उनका — बहुत अच्छे लगे । फिर उठकर चला आया । उसी वर्ष महाप्रभु ने मेरी (भावी) पत्नी को भी (जैसा बाद में विदित हुआ) उसी के घर जाकर दर्शन दे दिये थे। पर तब बात आई-गई हो गई । समय बीता और मैं इलाहाबाद नौकरी पर चला आया वर्ष १६४७ में ।

परन्तु इस बीच बाबा जी महाराज मेरे बड़े भाई, पूरन चन्द्र जोशी (पूरनदा) को अपनी शरण ले चुके थे तथा उनसे यदा-कदा प्राप्त पत्रों द्वारा श्री-चरणों की महत्ता का विवरण मुझे प्राप्त होता रहता था । फिर भी अपने यौवन की मस्ती में खोया मैं उदासीन ही रहा इस ओर । परन्तु महाराज जी की **बराइ विरद हित हठि हठि *अधम* उधारे** वाली लीलाएँ तो सर्वत्र चलती ही रहती थीं, तो मैं भी कैसे बच पाता उनके **कृपा-जाल** से ?

अस्तु, एक दिन १६४७ सन् में ही अचानक वह स्वर्णिम अवसर पुनः आ गया मेरे जीवन में जब एक भक्त, श्री नन्द किशोर जोशी जी के घर अनायास ही (अनायास क्यों कहूँ ? वह तो महाप्रभु द्वारा *सृजित* अवसर था कि मैं कार्यालय से लौटती बेर *उसी* राह से अकारण निरुद्देश्य निकल पड़ा था) श्री-चरणों के दर्शनों का परम सौभाग्य पुनः प्राप्त हो गया मुझे । अगस्त का महीना था । तब प्रभु धोती के ऊपर सफेद चादर ओढ़े हुए थे। अबकी प्रभू से प्रणामोपरान्त वार्तायें भी हुईं। *पूरन का भाई* होने का पास-पोर्ट था ही मेरे पास । बहाना बन गया यह महाप्रभु के लिए भी मेरे प्रति विशेष **अपनत्व** बरसाने हेतु !! अगले ३-४ दिन तक प्रभू का दरसन-परसन प्राप्त होता रहा । उनके साथ इधर-उधर आने-जाने का अवसर भी मिलता रहा । उसी वर्ष २-३ बार पुनः दर्शन मिल गये । इसके बाद तो प्रतिवर्ष यही सिलसिला जारी रहा — कई-कई बार महाप्रभु का दर्शन, दिव्य-स्पर्श प्राप्त होता रहा और बढ़ता रहा उनके प्रति आकर्षण भी — *उन्हीं के द्वारा प्रेरित* ।

वर्ष १९४९ में मेरा विवाह हो गया और प्रारम्भ हो गया मेरे अभाव-ग्रस्त गृहस्थ-जीवन का भी । व्यस्तता के बावजूद महाराज जी के दर्शन यदा-कदा हो ही जाते । होता यूँ था कि अपनी राह न होते हुए भी श्री-चरणों द्वारा संचालित पग उसी तरफ मुड़ जाते *जिस* घर या गली में महाप्रभु विराजमान होते !! और मुझे *बिना* विशेष प्रयास के ही दर्शन हो जाते । केवल दो चार प्रश्नोत्तरी, वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि एवं सिर या पीठ पर एक दो थपकी, बस — और मैं तृप्त होकर, मगन होकर चल देता पुनः **अपने संसार** की ओर । पता नहीं क्यों, (परन्तु) अपने अभावग्रस्त जीवन की किसी भी समस्या को मैंने (तब) महाप्रभु के समक्ष प्रगट नहीं किया । और न उन्हें कभी अपने घर का अता-पता ही बताया कि **आइये** । और न कभी उन्होंने पूछा कि कहाँ रहते हो ? फिर भी, यदि दर्शन मिले अधिक समय हो जाता तो स्वयँ ही (अकेले आकर) मकान के नीचे से (दारागंज में भी, टैगोर टाउन में भी और एलनगंज में भी) पुकार उठते *तीखी* आवाज में मेरा नाम लेकर — **मकुन्द !** (मुकुन्द) — और फिर ऊपर आकर जो भी आसन हम दे देते (तब) — नंगी मूँज की खाट, अधटूटी कुर्सी आदि —प्रभू उसी पर आसीन हो जाते । कुछ मीठा और ठंडा पानी — बस यही होती हमारी उनके प्रति सेवा, हमारा अर्पण । हमारी इच्छा हो न हो, हमें इस हेतु सावकाश हो न हो, स्वयँ ही यदा-कदा दर्शन दे जाते । किसी विशेष-रूप, किसी विशिष्ट-भाव से उनका अभिनन्दन भी तो नहीं करते थे तब हम, और न *विशेष* रूप से आकृष्ट ही थे हम उनके प्रति कि उनके *बिना* बेचैन हो उठें — विशेषकर मेरी पत्नी जिन्हें तभी ही महाराज जी ने **तर्की** की उपाधि दे दी थी !!

और महाराज जी को इस प्रकार, इस मात्रा में अपनी ओर आकर्षित करने हेतु स्वयँ हम में भी तो कोई गुण-विशेष न थे — न तपबल था, न धनबल, न यशबल, न भुजबल, न विद्वता, न सामाजिक अथवा सरकारी पद-प्रतिष्ठा अथवा ख्याति और न ज्ञान-पाण्डित्य अथवा अन्य कोई सामर्थ्य ही । सभी कुछ तो इसके विपरीत ही था । संक्षेप में— हमारे द्वारा प्रभू का किसी भी प्रकार का कोई भी **हित** सम्भव ही न था । (वैसे भी ***अपने हित*** की अपेक्षा ही कब रही प्रभू को किसी से भी ?) उनको छोड़ उनके किसी भक्त, शरणांगत, आश्रित का भी तो कोई हित

मुझ जैसे दीन-हीन-सामर्थ्यहीन से सम्भव न था । इस सन्दर्भ में प्रभू स्वयँ भी कई बार कह भी चुके थे — **तुमको सऊर नहीं है !!** तब भी, लगता था, हमारे **पीछे** पड़ गये हैं — **मान न मान** । और कभी-कभी तो सचमुच एक **उलझन**-सी भी प्रतीत होने लगती थी (तब) उनके आगमन पर !!

परन्तु विरोधाभास रूप इतना अवश्य होता कि प्रभु के दर्शन या उनके *सान्निध्य* के फलस्वरूप कुछ और नहीं तो अन्तर में एक शांतिप्रद **गुदगुदी** एवं मन में एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति भी प्राप्त होती रहती थी — उल्लासपूर्ण और आशायुक्त — नवजीवन-सा देने वाली — जो कई दिन तक भी बनी रहती । फिर भी ऐसा न था कि उनके दरसन-परसन के उपरान्त मुझमें ऐसी भक्ति, अनुराग, या अनासक्ति उत्पन्न हो उठती हो कि *सब कुछ* छोड़कर **भजन** में रम जाता होऊँ। मेरा *अपना* संसार (?) यथावत चलता रहता फिर भी — माया-जन्य (काम, क्रोध, मद, लोभ अहंकारादि के अन्तर्गत कृत) कर्मों को लेकर। परन्तु साथ में एक **छाप** श्री-चरणों की भी बनी रहती इन सबके साथ, और जब वह धुँधली पड़ने लगती तो सरकार स्वयँ पधारकर उसे पुनः *ज्योतिर्मय* कर जाते — जब-तब आकर अपना **कौतुक** कर चले जाते । कितने धीरे-धीरे परन्तु कितने विश्वसनीय तरीके से महाप्रभु ने मेरा रुझान शनैः शनैः अपनी ओर किस प्रकार किया, इसे पाठक स्वयँ समझें । कितना परिश्रम करना पड़ा होगा प्रभु को *मेरे जैसे* हरि-विमुख, कठिन प्रारब्ध वाले, सभी प्रकार

लेखक श्री चरणों में

के अपराधों में लिप्त संसारी को अपनी (भगवान की) ओर खींचने में — मानो ऊसर में बीजारोपण, सिंचन और फिर फल-फूल उगाना !! जो कुछ इस बीच चलता रहा, मानो एक *ढीठ* बालक को तरह तरह के प्रलोभन देकर बहलाने-फुसलाने की लीला थी ।

और तब तो किंचित मात्र भी आभास न था, तनिक भी ज्ञान न था कि किस महान, महानतम *अवतारी विभूति* की अनुपम, अहैतुकी दया-कृपा हो रही है इस नादान पर। अन्तर का अहंकार प्रबल था जिसने बुद्धि-विवेक को भी कुंठित किया हुआ था। और ऐसी अहंकार-युक्त बुद्धिवादी प्रकृति के कारण मन में अनेक शंकायें, तर्क-कुतर्क उठते रहते थे उनकी *उन* भ्रामक लीलाओं को लेकर जो भरे **दरबार** में भी चलती रहती थीं — और ये शंकायें, तर्क-कुतर्क विचलित करते रहते थे हमें । पति-पत्नी के बीच प्रभु की भ्रामक लीलाओं पर विवेचन, उनका विश्लेषण होता रहता था। इन लीलाओं में *निहित* रहस्यों को ढूँढ निकालने में जूझे रहते थे हम। और नतीजा यही होता कि मन-मानस महाराज के व्यक्तित्व और उनकी अति विचित्र लीलाओं में और भी अधिक उलझ जाता कि **आखिर सत्य क्या है ?** बेचैनी और भी अधिक बढ़ जाती। **न उगलते बने**, **न निगलते** वाली किंकर्तव्यविमूढ़ता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हम। यहाँ तक कि कई बार संकल्प भी ले चुके कि **अब नहीं जायेंगे बाबा के पास**। पर फिर-फिर यन्त्रचालित-से पहुँच जाते श्री-चरणों में, उनके अपनत्व भरे सम्मोहन से खिंचे !! न उन्हें ही भूल पाते हम और न उनकी लीलाओं को ही जिन्होंने हमारे मन-मानस को जकड़-सा लिया था। हर क्षण, हर पल **अपने** पर ही मन-प्राण केन्द्रित करवा लेने की विचित्र पद्धति थी यह महाप्रभु की !! और इसे ही वे **प्रैम** (प्रेम) की संज्ञा भी दिये हुए थे !!

परन्तु **विश्वास** कोसों दूर होते हुए भी एक अनिर्वचनीच ढंग से हमारे मन-प्राण को पकड़े हुए था, मानस को जकड़े हुए था — केवल महाप्रभु की असीम अनुकम्पा के फलस्वरूप ही। विचित्र स्थिति थी कि महाप्रभु के प्रति भावों की *स्थिरता* नाम मात्र को भी न होने पर भी, इतने तर्क-कुतर्क मन में समाये रहने पर भी जब भी सूचना मिलती कि (दादा के घर) श्री चरण पधारें हैं, हम सब काम छोड़ दौड़ पड़ते दिव्य दर्शनों को,

श्री चरणों में लोटने को !! और सरकार भी हमें देखकर ऐसे प्रसन्न हो उठते, मानो (हमारे उनके पास आ जाने से) हमें नहीं वरन् उन्हें ही कोई **निधि** मिल गई हो — मानो *उन्हीं का मनोरथ* पूरा हो गया हो !!

फिर भी अभी महाप्रभु तक हमारी अपनी **पहुँच** बहुत दूर थी यद्यपि उन्होंने हमें स्वयँ पकड़ रखा था। कभी कभी यह स्थिति होती कि हम भाग जाना चाहते थे उनसे, तभी उनकी **जकड़** अधिक दृढ़ हो जाती । और जब हम कुछ **रमना** चाहते तो वे स्वयँ हमारी तरफ उदासीन, निरासक्त बन जाते अथवा हमें भी यही भान कराने लगते । विचित्र क्रिया थी हमें उलझाने की कि एक हाथ से केवल पकड़े ही नहीं है अपितु मन-मानस को भी जकड़े हुए हैं और दूसरे हाथ से धकियाकर खदेड़ भी रहे हैं अपनी भ्रामक लीलाओं के माध्यम से !! हम तो केवल मूक-बधिर की भाँति ये सब लीलायें वर्षों देखते रह गये । शायद यही क्रिया, यही **चाल** थी **बंशीवाले** की अपने जाल में पूर्णतः फँसाने की और हमारे बुद्धि-विवेक की अपरिपक्वता हरने की।

महाराज जी इसी भाँति आते रहे, जाते रहे और इन्हीं क्रियाओं से हमें सम्मोहित करते रहे, अधिक अधिक हर बार — अपनी अनेकानेक प्रकार की लीलाओं के द्वारा । हमारे तो न कुछ पल्ले पड़ता-सा नजर आता और न कुछ प्राप्त होता-सा । केवल एक ही वस्तु शेष रह जाती थी अन्ततोगत्वा। और वह थी मन में एक अवर्णनीय **गुदगुदी**, एक नैसर्गिक आल्हाद, तथा हर्ष-उल्लास की भावना जो महाप्रभु के स्वयँ की अलौकिकता की अपनी **देन** थी । उनकी विस्मयकारी और कभी-कभी अत्यन्त ही भ्रामक लीलाओं के विवेचन-विश्लेषण के माध्यम से उनकी **निरन्तर स्मृति** के साथ हमें मोह, भ्रम, विश्वास, अविश्वास, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, निष्ठा, दिव्य रसानुभूति — आदि प्राप्त होते रहते थे । इनमें कब किस भाव का बाहुल्य अथवा प्राबल्य रहता, इसका निर्णय कर पाना नितान्त असम्भव था ।

परन्तु वह गुदगुदी, वह रोमांच जो सरकार हर स्थिति में अपनी **स्मृति** के फलस्वरूप प्रदान करते रहते थे, अपनी जगह बराबर *स्थित* रहता, अविश्वास व भ्रम की स्थिति में भी !! इसमें क्या रहस्य था **वे** ही जानें पर हम उनके प्रेम-जाल में फँसी मछली बन चुके थे — कन्हैया के प्रेम-पाश में मन-प्राण से बँधी गोपियों की तरह हम भी सरकार के श्री

चरणों में उनके द्वारा बाँध लिये गये थे। प्रभु का दर्शन, उनका स्पर्श, उनका हास-परिहास, व्यंगात्मक उक्तियाँ, लीला-वैचित्र्य, मधुर मनोहारी मुस्कान (जिसमें कभी कभी उनके श्यामल कपोल भी उषा की लाली बन जाते थे) कृत्रिम क्रोध, विभिन्न मुद्रायें, परम-प्रेम-पूर्ण दृष्टि, ललित चितवनि, वात्सल्य, अपनत्व — तथा इन सबमें ***आध्यात्मिक परिपूर्णता*** — सबने मिलकर हमें सम्मोहित कर लिया था। सरकार की वय-प्राप्त स्थूल काया (एक प्रकार से बेडौल,) दन्त-विहीन मुख, (अधिकतर) बढ़ी हुई दाढ़ी — आधी श्वेत, आधे से अधिक केश-विहीन सिर, अस्त-व्यस्त आवरण, बावली मुद्रा — और उसमें भी सोलहों कलायें लिये *श्यामसुन्दर का-सा माधुर्य, आकर्षण और सम्मोहन* !! हम क्या, सभी अन्य भी तो डूब चुके थे उनकी प्रेम-तलैया में !!!

हमारे प्रति उनके परम प्रेम, उनकी करुणा-दया, वात्सल्य एवं अपनत्व की कोई मिति, कोई सीमा न थी, परन्तु *अभी* तो केवल **झलकी**-मात्र थी इस गोपी-कृष्ण प्रेम की ।

इसी प्रकार सरकार की विभिन्न रूपों में विचित्र क्रियायें, लीलायें; चलती रहीं — इलाहाबाद में, लखनऊ में, कानपुर में, वृन्दावन में, कैंची में — और महाप्रभु की हमारे मन-प्राण, रति-गति-मति पर जकड़ बढ़ती चली गई । विलम्ब से दर्शन बेचैनी का कारण बनने लगा अब । परन्तु साथ-साथ हमारा अपना संसार भी चलता रहा — राग-विराग सहित — कभी प्रभु संचालित तो कभी प्रारब्ध एवं कर्मफल के अन्तर्गत । हम देखते रहे, अनुभूति भी करते रहे प्रभु के अलौकिक क्रियाओं के फलाफल की । कभी ऊँचा उठा लेते, फिर पटक देते धरा पर, कभी निरासक्त कर देते, कभी आसक्ति का वेग बढ़ा देते । कभी अपने **सगुण** रूप का प्रभाव डालते कि हम सम्मोहित हो जाते पूर्णरूपेण, पर तभी स्वयँ ही **निर्गुण** रूप-निरासक्त बनकर हमारे अन्तर में भी *वही* भाव उत्पन्न कर देते । विरागी अनासक्त **राम** से परम अनुरागी **कृष्ण** बन जाने में पल का भी समय न लगता । और फिर दूसरे ही क्षण ज्ञान-ध्यान में भी डुबकियाँ लगवाने लगते हमें । परन्तु *तब* तो होश ही न था हमें कि *यह* सब क्या हो रहा है ।

सुबह-शाम, रात-दिन, मिनट-घंटे, दिन-माह, वर्ष — कब, कैसे और कितने बीतते रहे उसका भान ही न रहा । इतनी तीव्र गति से लीलायें

होतीं भिन्न-भिन्न प्रकार की कि किसी में भी स्थिर हो पाने की गुंजाइश नहीं रह पाती थी । और न उन पर *सार्थक* विवेचन का ही अवसर अथवा समय मिल पाता ।

इस प्रकार इन्हीं क्रियाओं, लीला-क्रीड़ाओं के प्रवाह में डूबते-उतराते रहे हम और श्री-चरणों की कृपा की **छाप** गहरी होती चली गई हमारे मन-मानस में । अब यह दशा हो चली कि **आराध्य देव** के समीप जाते ही **संसार** लोप हो जाता । मन की पीड़ा, भौतिक ताप, भवसागर के कष्ट तिरोहित हो जाते स्वयँ ही। आश्चर्यजनक सम्मोहन था कि तार्किक मस्तिष्क भी अपना काम करना भूल जाता। मन-मानस की सारी शक्ति प्रभु में समा जाती *परिष्कृत* होने को । हमारी स्मृति-विस्मृति दोनों ही बाँध लेते सरकार अपने पास। परोक्ष में रचित अथवा संकल्पित प्रभु के साथ वार्त्तालाप, प्रश्नोत्तरी, तर्क—सभी उनके सम्मुख जाते ही विलीन हो जाते—मानो महाप्रभु की ओर से *सबका* एक ही उत्तर होता— ***सब कुछ मैं ही तो हूँ*** — **केवल** !!! हम तो मात्र उनके मुख चन्द्र को निहारते रह जाते और उसमें *जो* नैसर्गिक, आल्हादपूर्ण रसानुभूति, सुखानुभूति होती, *वही* महाप्रभु का दिव्य प्रसाद सभी समस्याओं, प्रश्नों, तर्कों का उत्तर बन जाता !!

वर्षों बीत गये इसी प्रकार। महाप्रभु की अमोघ शक्ति की साकारता अपना उद्घोष करने लगी। अन्तर की कृपणता, लोभ, मदादि शलभ **होम** होते रहे प्रभु की प्रेमाग्नि में। महाप्रभु की ओर से कोई उपदेश नहीं, कोई प्रवचन नहीं, कोई नेम नहीं — केवल सान्निध्य व सामीप्य, और साथ में उल्टा-सीधा अनर्गल-सा लगने वाला सांसारिक वार्तालाप !! पर *ऐसे ही* वार्तालापों में, सूक्त-रूप उक्तियों में *सारे* उपदेश, आदेश, व्यावहारिक आदर्शों के सिद्धान्त, गृहस्थ धर्म का निचोड़, प्रकृति और परमेश्वर के रहस्य, वेदोपनिषदों में निहित *तत्व*, गीता-रामायण-भागवत का **सार** आदि सभी समाहित रहते ।

इसी प्रकार के **चरित** नित्य प्रति होते रहते और महाप्रभु के अपने दिव्य व्यक्तित्व की गहराई हमें अन्तरतम तक सिंचित करती चली गई । स्थिति ऐसी हो गई अब कि —

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

महाराज

शायद अभी तक यह केवल **मोह** की स्थिति थी हमारी — महाप्रभु की लीलाओं का प्रभाव-मात्र । परन्तु ***इस*** मोह ने ग्यारह सितम्बर, १९७३ की सन्ध्या से (जब हमें इलाहाबाद में आराध्यदेव द्वारा वृन्दावन के अस्पताल में **महासमाधि** ले लिये जाने का हृदयविदारक समाचार मिला था) एक अकथ विरहाग्नि का स्थान ले लिया जिसकी ज्वाला का ताप असह्य हो उठा । इस उल्कापात के कठिन आघात के कारण उत्पन्न हुई अपनी निराधार, असहाय अवस्था में महाप्रभु की विगत लीलाओं की स्मृतियाँ (जो मन-मानस में छन-छन कर एक के बाद एक उतरती चली गईं) उनका हमारे प्रति अपनत्व, उनके प्रेम, वात्सल्य की *याद* ही अब एक मात्र जीवनाधार रह गई । और उन्हीं के विवेचन में ही १२ सितम्बर से २९ दिसम्बर १९७३ तक कार्यालय से अवकाश की अवधि व्यतीत हो गई जिसके मध्य महाराज जी की स-शरीर उपस्थिति में (उनकी भ्रामक लीलाओं एवं प्राकृत आचरण तथा *अपनी* भी अल्पबुद्धि के कारण) जो प्राप्त न हो सका था, वह धीरे धीरे निर्गुण में प्रविष्ट बाबा जी महाराज की दया-कृपा के फलस्वरूप हृदयन्तर होने लगा — स्पष्ट से स्पष्टतर होता— यथा, उनकी लीलाओं में निहित **सार**, उनकी करुणा-दया-क्षमा की छबि, उनके मूल तत्व की अनुभूति, उनके **अवतार** का मूल — और साथ में उनके नये नये रूप-स्वरूप । उनके श्री मुख के अपने प्रति वचन कि,

"तुम तो घर के ही हो, तुम्हारी बात *और* है", बारम्बार मन-मानस में नाद-सा करने लगे ।

और इस नैसर्गिक धारा का प्रवाह बाबा जी महाराज की **प्रतिच्छाया-स्वरूप** श्री सिद्धी माँ के **स्नेहाञ्चल** का आधार पाकर कालान्तर में और भी प्रगाढ़, वेगपूर्ण होता चला गया ।

महाराज

बहुत कुछ कह डाला है अब तक महाप्रभु के गुणानुवाद एवं स्तुति में, और अपने लिये भी । क्या यह सब भावुकता का प्रमाद अथवा उसमें बहकर मात्र कल्पना की उड़ान भर थी? या महाप्रभु की चमत्कारी लीलाओं का प्रभाव ? नहीं — *अपने जीवन* से सम्बन्धित बड़ी से बडी चमत्कारिक घटनायें भी हमें कदाचित इतना आन्दोलित, इतना प्रभावित न कर पातीं *जितना कि* बाबा जी महाराज की मानवता, अपनत्व एवं आत्मीयता भरी छोटी-छोटी लीलाओं ने (जिनको इस लीला-चरित्र में आगे स्थान-स्थान पर प्रबन्धित किया जा रहा है) हमें सरकार का तन-मन-प्राण से दास बना लिया। चमत्कारों की कथायें तो बचपन से ही पढ़ते–सुनते आये हैं। ये भी उनमें से ही **कुछेक *और*** होतीं। और पूर्व में पढ़ी-सुनी चमत्कारी घटनाओं का भी तो विशेष असर हुआ नहीं था जीवन-क्रम में *प्रभावी* **मोड़** देने के लिए । क्षणिक भावावेश आया था तब, और चला भी गया ।

महाराज जी के अपनी शक्ति द्वारा किये गये चमत्कारों की भी मिति नहीं है जिन्हें हम भी यदा-कदा देखते-सुनते रहे — यथा, (तब के) निरक्षर भट्टाचार्य भगवान सिंह से गीता पाठ सुनवाना, खण्डित मूर्ति को केवल दृष्टिपात से ही पूर्ण कर देना, बन्द कमरे से **मसक समान** रूप धारण कर निकल जाना, बिना डाइनेमो-पेट्रोल के अथवा पेट्रोल की जगह पानी से गाड़ी चलवा लेना, घी की जगह पानी में पूरियाँ तलवा देना, जीवन-दान देकर आती मृत्यु को टाल देना, कई स्थानों पर एक ही समय प्रगट हो लीलायें करना, भण्डारे की न्यून सामग्री से वृहद् जन समुदाय को तुष्ट करवा देना—आदि आदि, (अन्त नहीं ऐसी चमत्कारी लीलाओं का।) इन्हें सुनकर-देखकर तत्काल के आनन्द के सिवा (कम से कम) हमें तो विशेष कुछ प्राप्त हुआ नहीं, और नहीं ही हम सरकार के श्री-चरणों में इन चमत्कारों से प्रभावित होकर ही इतना बँधे **जितना कि उनकी हमारे जैसे दीन-हीनों के प्रति वात्सल्य, प्रेम, अपनत्व, और आत्मीयता-पूर्ण**

लीला-क्रीड़ाओं से विभोर होकर । हमारी तो सदा एक ही पुकार रही — **मेरी छूँछ गगरिया जब छलके, गुन जानूँ मैं तेरे पनघट का** ।

और सरकार ने हमारे अन्तर्मन की यह पुकार सुन ली—छलका दिया हृदयन्तर की सूखी-प्यासी गागर को । हमें तो जो संसार से नहीं मिला, परिवार से नहीं मिला, राजकीय दबार से नहीं मिला, और *करतार* से भी न मिल पाया, वह सब अपने **सरकार** से मिल गया—*भरपूर अनन्य प्यार, पूर्ण अपनत्व व आत्मीयता*—जिसमें उनकी ओर से *प्रतिकार की कोई अपेक्षा कभी न रही*। हमें मिली हमारे सांसारिक *एकाकीपन* में सरकार के अपने व्यक्तित्व की *गहनता*, हमें मिला अपने संघर्षपूर्ण-शुष्क-निराशापूर्ण जीवन में पग पग पर उनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष *सहारा*, सांसारिक झंझावतों के गहन अन्धकार में उनकी *दया* की *प्रकाश-किरण*। चमत्कार यह था कि एक ओर जहाँ अपनी गर्व-प्रहारी लीलाओं से महाराज जी हमारे मूलगत दम्भ एवं अहं को चूर-चूर करते रहते, वहीं दूसरी ओर हमारे अन्तर के ***सात्विक*** स्वाभिमान का भी सिंचन एवं उसकी रक्षा करते रहते—यही विश्वास दिलाकर, (और उसे दृढ़ कर) कि **जब बाँह पकड़ ली जब्बर की, परवाह नहीं है कब्बर की।** सरकार द्वारा पोषित *इसी* स्वाभिमान की शक्ति से हम *बिना* किसी के सम्मुख किसी प्रकार की भी दीनता दिखाये बड़े बड़े सांसारिक झंझावतों, प्रारब्ध-गत संकटों आदि के लरजते-गरजते भवसागर के थपेड़ों के बीच जीवन-नैया खेते चले आये, खेते चले जा रहे हैं—*केवल बाबा जी महाराज की प्रेम-पतवार के सहारे*—**श्री माँ के स्नेहाञ्चल तले** ।

महाराज

युगलचरणाश्रित
मुकुन्दा

८८ एलनगंज,
प्रयाग,
१-१-१९८६

जटा-धारी बाबा जी

द्वितीय सर्ग

प्राकट्य एवं लीला-सागर

प्रथम पुष्पाञ्जलि

प्राकट्य एवं आविर्भाव

(*सूक्ष्म परिचय*)

युवावस्था को छूती वय का भस्म लपेटे कौपीनधारी जटायुक्त एक **जोगी बाबा** हाथों में चिमटा-कमण्डल लिये ग्राम नीब करौरी (जिला– फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश) के बीच होते हुए गंगा स्नान हेतु फर्रुखाबाद जाया करते थे। वय, वेष तथा मुख मण्डल के तेज से प्रभावित ग्रामवासियों ने एक दिन आपस में मंत्रणा कर जोगी से ग्राम में ही बस जाने का आग्रह किया। जोगी ने भी स्नान के बाद पुनः वहीं लौट आने का आश्वासन दे दिया। और स्नानोपरांत लौटकर ग्राम में एक विशाल वृक्ष के नीचे (जिसमें एक साथ नीम और पीपल के तने एक सूत्र में बँधे अपनी अपनी ऊँचाई व फैलाव लिये खड़े थे) आसन जमा लिया। शीघ्र ही ग्राम के कुछ लोग वहाँ एकत्रित हो गये और *जोगी की इच्छानुसार* पास के एक खेत में भूमि खोदकर उनके आवास के लिए एक बड़ी गुफा बना दी।

और सर्वकालीन बाबा नीम करौरी जी महाराज *अब* **बाबा लछमनदास** (लक्ष्मणदास) बनकर नीब करौरी ग्राम में रहने लगे ।

समकालीन भक्तों के लिए **एकादशरुद्रावतार** बाबाजी महाराज की **आविर्भाव**-लीला नीब करौरी धाम से ही प्रारम्भ होती है । और यहीं से प्रारम्भ होती हैं उनकी अलौकिक कल्याणमयी लीलायें (जिनके कुछ अंशों का वर्णन इस **स्तुति** में किया जा रहा है ।)

महाराज

वैसे, उत्तर प्रदेश के (तब) आगरा जिले के **नागउ** ग्राम समूह के अकबरपुर ग्राम में एक कुलीन, संभ्रान्त, वैभव-पूर्ण ब्राह्मण परिवार में **प्रगटे** श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा (बाबा जी महाराज) धन-धान्य से परिपूर्ण, सम्पत्ति युक्त अपने पूर्वजों की जमीन्दारी एवं वैभव को बाल्यावस्था-किशोरावस्था के बीच की वय में ही त्यागकर घर से निकल गये थे । जन कल्याणार्थ

अवतरित, जन्म से ही अन्तरमन से परम वैरागी बाबाजी के लिए विमाता का व्यवहार एक मात्र बहाना बन गया गृह-त्याग हेतु । अकबरपुर की एक वृद्धा के अनुसार तो — **वाकी डोर तो सदा राम में ही लागी हती ।**

महाराज

पैतृक घर से निकलकर, जानकारी के अनुसार, वे सुदूर गुजरात प्रदेश के *मौरवी* नामक स्थान से लगभग ४० किमी० दूर एक वैष्णव संत के पास बबानियाँ नामक ग्राम में भी ६-७ वर्ष तक *तथाकथित* योग-साधना में रत रहे । यहीं उनका नाम **बाबा लक्ष्मणदास** पड़ गया । इस *कथित* साधनाकाल में वे अधिकतर वहाँ एक तालाब में भी गर्दन तक डूबे संसार से दूर रहते थे, और तभी उन्हें **तलैय्या बाबा** की भी उपाधि मिल गई । कहा जाता है कि गाँव के लड़के गाय-बकरी चराने जब वहाँ आते थे तो अपने दोपहर का भोजन-पानी पास के पेड़ में टाँक देते थे और जब खाने का समय आता तो अक्सर पाते कि उनके पात्र-पोटली खाली हैं । तब वे पत्थर फेंक कर बीच तालाब में डूबे **तलैय्या बाबा** से कहते, "हमारी रोटी लाओ", और बाबा जी हँस-हँस कर तलैय्या के भीतर से तरह-तरह के खाद्य पदार्थ निकाल निकाल कर उनकी ओर फैंकते थे !!

महाराज

महाराज जी द्वारा की गई ऐसी प्रारम्भिक क्रियाओं को हम उनकी **तपस्या** अथवा **साधना** की संज्ञा देते रहे हैं । किन्तु वे तो केवल उनकी **त्रिगुणात्मक कया** के परिष्करण हेतु की गईं क्रिया मात्र थीं न कि सिद्धि प्राप्ति हेतु की गईं तपस्यायें अथवा साधनायें । **स्वयँ सिद्ध**-रूप अवतरित बाबा जी महाराज को किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्ति हेतु कोई प्रयास की आवश्यकता थी ही नहीं । परन्तु *त्रिगुणी माया से संभूत तथा प्राप्त* शरीर को पँचभूतों-पँचतत्वों के *आकर्षण* से मुक्त रखने हेतु रजोगुणी एवं तमोगुणी तत्वों का विभिन्न क्रियाओं द्वारा *शुद्धीकरण* हर अवतारी विभूति को करना पड़ता है । राम ने भी किया, कृष्ण ने भी किया (गुरु-आश्रमों में रहकर) और सभी अवतारी संत भी करते रहे हैं ।

इस संदर्भ में महाराज-श्री ने स्वयँ ही अपने श्री-मुख से अपनी मौज में एक भक्त से कह डाला — **पूरन, १७ वर्ष की उम्र में ही हमें**

कुछ भी करने को बाकी नहीं रह गया था । (अर्थात, त्रिगुणात्मक काया का पूर्णरूपेण परिष्करण हो चुका था ।) *इसके बाद* तो बाबा जी का नीब करौरी में **गुफा-निवास** एक कौतुक मात्र था — **अवतार** के उद्‌देश्य (**भगतन हित लागी**) की पूर्ति हेतु *उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में* — जैसा नीब करौरी में तथा उसके उपरान्त की गई लीलाओं से स्पष्ट है ।

अस्तु, बबानियाँ में तालाब में घुसे बाबा जी ने उसी के किनारे पर एक हनुमान मूर्ति को भी खुले स्थान में प्रतिष्ठित कर दिया था, (जिसके लिए कालान्तर में एक मन्दिर भी बन गया ।) परन्तु **रमते जोगी** को एक ही स्थान में रमे रह जाना कैसे भाता ? और **अवतार का हेतु** — जन-जन का कल्याण — एक ही स्थान में बने रहने से कैसे पूरा होता ? अतएव, ६-७ वर्ष बाद (वर्ष १९१६ के लगभग) मंदिर एवं आश्रम को **रामबाई** नामक महिला-संत को सौंपकर, पुनः वहाँ से निकलकर आप उत्तर की ओर चल दिये और नीब करौरी ग्राम को अपना नया **लीला-क्षेत्र** बना लिया, जैसा प्रारम्भ में कहा जा चुका है ।

महाराज

कुछ काल बाद महाराज जी ने अपनी खेत वाली गुफा त्याग दी तथा एक नई गुफा और बाद में एक कुटी उस स्थान पर बनवाई जो संयुक्त तने वाले वृक्ष से २०-२५ गज दूर था उत्तर-पश्चिम की ओर । वैसे यह स्थान अत्यन्त निकृष्ट था जहाँ पास में मनुष्य, गधे और सुअर सभी विष्ठा करते थे । परन्तु **सकल भूमि गोपाल की** वाले बाबा जी के लिए यह कोई **रोक** का कारण नहीं हो सकता था । शीघ्र ही वहाँ, कुछ हटकर पेड़ के उस पार, महाराज जी ने एक हनुमान विग्रह की स्थापना भी कर दी (बिना उसके ऊपर वर्त्तमान रूप मंदिरनुमा भवन बनवाये ।) मूर्ति दीवार से सटकर सीमेंट की बनाई गई — **हाथ वज्र अरु ध्वजा विराजे-काँधे मूँज जनेऊ साजे** वाली मुद्रा लिये । उसी के पास, वृक्ष के दूसरी ओर एक शिवलिंग की भी स्थापना कर दी । एक हवन कुंड भी बनवा लिया । अब वहीं पर महाराज जी की **चौपाल** भी लगने लगी थी । भक्तों एवं गाँव वालों की भीड़, कीर्तन-भजन तथा भिन्न-भिन्न पौराणिक एवं अन्य प्रकरणों पर वार्तायें भी यहीं चलती रहतीं।

महाराज

नीब करौरी में हवन यज्ञ के अवसर पर

इस मंदिर के पूर्णरूपेण यथाविधि प्रतिष्ठापन में बाबा जी महाराज ने (जनहित हेतु) एक माह के हवन-यज्ञ महोत्सव का भी आयोजन किया। लीला-नायक के इस यज्ञ में जगह-जगह से प्राप्त सैकड़ों मन हवन सामग्री व घी आदि का प्रयोग हुआ। इसी के साथ वृहद्-भण्डारा भी आयोजित हुआ जिसमें आस पास के गाँवों एवं जिलों से आये हजारों स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, युवक-युवतियों ने नित्य हलुवा, पूरी, आलू का प्रसाद पाया। इसी अवसर पर बाबा जी महाराज ने अपनी जटाओं का भी विसर्जन कर दिया।

इसके बाद महाराज जी की प्रसिद्धि, ख्याति स्वतः चहुँ ओर फैलने लगी । अब तो और भी दूर-दूर से भक्त, जिज्ञासु, आरत, दीन-दुखी उनका **अमोघ** आशीर्वाद पाने नीब करौरी आने लगे । अब तक का यह नगण्य-सा गाँव एक **तीर्थ** का रूप ले उठा, और इसके अधिष्ठाता — *मूर्तिरूप* में हनुमान जी और *शरीर रूप* में बाबा जी महाराज — सर्वमान्य हो गये मनसा-पूर्ति हेतु !!

महाराज

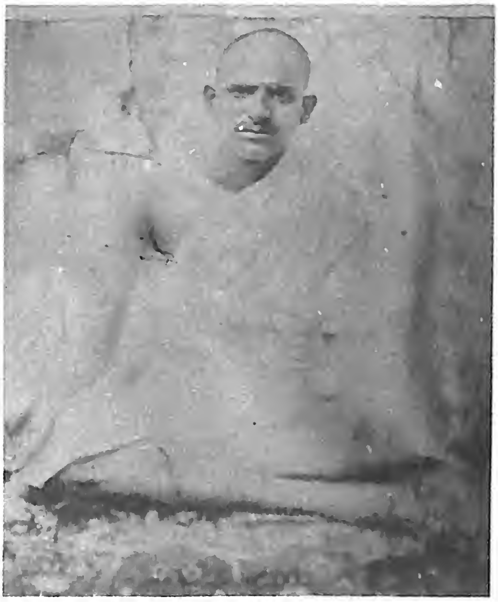

नीब करौरी में जटा-विसर्जन के बाद

एक भावपूर्ण मुद्रा

द्वितीय पुष्पाञ्जलि

नीब करौरी में लीलाएँ

महाराज जी के नीब करौरी प्रवास के मध्य जो जो लीलायें हुईं उनका क्रमवार अथवा पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है । उनकी **शरीर-लीला** के बाद श्री सिद्धी-माँ के *बार बार* नीब करौरी पधारने पर तथा *आग्रह पूर्ण जिज्ञासा* व्यक्त करने पर महाराज जी के प्रवास काल के कुछ जीवित बचे वृद्धों तथा अन्य लोगों— यथा, चौबे जी (अब दिवंगत) श्री रामसेवक गुप्ता, सुदामा, देवी जी (जिन्हें गाँव छोड़ने के पूर्व महाराज जी मंदिर का कार्यभार सौंप गये थे — अब दिवंगत,) एक वृद्ध मुसलमान भक्त, लालता प्रसाद कनौजिया — आदि आदि द्वारा महाराज जी की लीलाओं के कई रोचक-अलौकिक प्रसंग सुनने को मिले । यद्यपि ४०-४५ वर्ष पूर्व की इनकी स्मृतियाँ कुछ धुँधली-सी पड़ गई थीं परन्तु कुछ प्रसंग इन्हें बहुत कुछ स्पष्ट रूप से स्मरण थे, यथा :—

खेत में बनाई गुफा में एकान्त में समाधिस्थ बाबा जी का कठोर आदेश था कि बिना उनकी आज्ञा के कोई भी गुफा में प्रवेश न करे । बाहर से ही बाबा जी की सेवा हेतु दूध, फल तथा अन्य भोज्य पदार्थ उन्हीं के द्वारा चयनित एक सेवक, गोपाल बहेलिया (हरिजन) द्वारा रख दिये जाते थे । बाबा जी कब बाहर आते, स्नान शौचादि से निवृत होते, यह कोई न जान पाता । एक दिन गोपाल बिना आज्ञा अपनी ही धुन में गुफा में प्रवेश कर बैठा तो वहाँ का दृश्य देखकर भयभीत हो दूध का लोटा फेंककर गुफा के बाहर आकर बेहोश हो गया । उसने देखा था — बाबा जी लेटे हुए हैं — अर्धनग्न, समाधिस्थ-से — और बड़े-बड़े फणिधर (नाग) उनके चौड़े वक्ष में खेल रहे हैं !!

महाराज

महाराज जी अक्सर एक चितकबरे कुत्ते, **गेंडुवा** की पीठ पर सवार हो गाँव में घूम फिर लेते थे । (शिव के **भैरव** स्वरूप में ?) बाबा जी के हृष्ट-पुष्ट जवान शरीर के भार को वह कुत्ता कैसे वहन कर ढो पाता था,

इस रहस्य का खुलासा बाबा जी ही कर सकते हैं — गाँव वालों के लिए तो यह तथ्य पहेली ही बना रहा ।

परन्तु अपने शरीर को अपनी इच्छानुसार **भारी-हल्का** कर लेने की अनेक कथायें (जिसमें से यहाँ भी आगे कुछेक दी जा रही हैं) इस रहस्य पर यही प्रकाश डालती हैं कि प्रकृति पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाले बाबा जी के लिए अपने शरीर के तत्वों की मात्रा में वृद्धि अथवा न्यूनता ले आना *महज* एक कौतुक-मात्र होता था ।

महाराज

अपनी (तब की) तरुण अवस्था की मौज में महाराज जी गाँव वालों के साथ गुल्ली-डंडा, कबड्डी, लुका-छिपी आदि खेल भी खेल लेते थे । गाँव वालों से अपने को **छिपाये** रखने का यह भी एक साधन बन जाता था। कबड्डी में बाबा जी से पार पा सकना किसी के वश की बात न रह जाती — शक्ति में और साँस रोकने में योगेश्वर बाबा जी का मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता था — सब मिलकर एक साथ भी । और लुका-छिपी में बाबा जी तो सब को क्षण भर में ढूँढ निकालते पर उन्हें ढूँढ पाना उनके *पास* ही खड़े रहने पर भी असम्भव हो जाता — **अदृश्य** हुये को कौन ढूँढ पाता ? और तभी वे एकाएक सबके मध्य प्रगट हुये दीख जाते । महाराज जी के **योग** के ऐसे रहस्य *तब* भोले-भाले ग्राम वासी क्या समझ पाते ?

इसी प्रकार पेड़ की एक डाल से दूसरी डाल पर अथवा एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उनका पहुँच जाना भी रहस्य ही बना रहा । और आम के मौसम में गाँव वालों से **बद** कर (शर्त लगाकर) सैकड़ों आम चूस डालना उनका एक नया कौतुक होता । किस योगाग्नि में *इतनी* संख्या में आम *समाहित* हो जाते, किसी को खबर न होती ।

महाराज

एक दिन कुछ ग्राम वासियों ने महाराज जी से मथुरा-वृन्दावन यात्रा की बात कही । बाबा जी ने कहा, "**हाँ, हाँ, तुम चलो, हम भी हाल आये**", और तब गुफा में बंद हो गये । पर जब गाँव वाले वृन्दावन पहुँचे (सवारियों में) तो पाया कि बाबा जी वहाँ पहले से ही उपस्थित हैं !! और

जब गाँव पहुँचे वापिस तो पता चला कि बाबा जी तो यहीं अन्य गाँव वालों के साथ *बराबर* बने रहे थे !!

परन्तु सारा कथानक बाबा जी का एक और **कौतुक** बन कर रह गया गाँव वालों के लिये — वे न समझ पाये — **बिनु पद चलइ** — **इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा** !!

महाराज

मंदिर तथा उसके आगे कच्चे प्रांगण में पक्का चबूतरा बनने की बात उठी तो बाबा जी ने गाँव के एक समृद्ध वैश्य से ईंट और सीमेंट के लिये कहा इस हेतु । उस समय तो वैश्य महाशय ने हामी भर दी पर बाद में मुकर गये ।

अब प्रारम्भ हुआ बाबा जी का कौतुक । वैश्य की दुकान में *भीषण* आग लग गई । धुँआ ही धुँआ चारों ओर । और कोई उपाय न देख वैश्य दौड़ा-दौड़ा बाबाजी के चरणों में आ गिरा कि **बचाओ** । महाराज जी ने उसके किये गये वादे का उसे स्मरण कराया और कहा, **"हनुमान जी रुष्ट हो गये हैं तुझसे,"** तो वह रोने लगा । तब दया-निधान ने कमण्डल से कुछ जल हाथ में लेकर वैश्य की दुकान की तरफ छींटे फेंके और कहा, **"जा कुछ नहीं हुआ, आग बुझ गई है ।"**

दूर से फेंके जल के उन चन्द छींटों से ही वह आग बुझ गई और पता चला कि दुकान में *केवल कुछ* मिर्चें ही जली थीं !!

परन्तु इसके बाद हनुमान मंदिर तथा चबूतरा शीघ्र ही पक्का हो गया ।

महाराज

मंदिर के पास जल की व्यवस्था न थी । महाराज जी ने इस हेतु **मनसा** की । तभी गाँव के एक निःसन्तान दुखी वैश्य ने बाबा जी के आगे अपना दुखड़ा रोया । बाबा जी ने कहा, **"कुआँ खुदवा दे मंदिर के आगे। लड़का हो जायेगा।"** बाबा जी की अन्य लीलाओं से प्रभावित वैश्य ने कुआँ खुदवा दिया और शीघ्र ही फल प्राप्त कर लिया। परन्तु लड़की हुई तो वैश्य को निराशा-सी हुई। बाबा जी ने उसे धैर्य धारण करने को कहा। और पुनः जो संतान हुई वह आज गाँव में श्री राम सेवक गुप्ता के रूप में

महाराज जी के परम आशीर्वाद का सुफल भोगते हुये मंदिर, आश्रम एवं भक्तों की सेवा में रत हैं । कुऐं में लगे पत्थर में **बाबा लक्ष्मणदास** नाम खुदा है ।

परन्तु जब कुआँ खुद गया तो उसमें पानी *खारा* निकला । तब बाबा जी ने कहा, **"इसमें कुछ बोरे चीनी के डाल दो ।"** ऐसा ही किया गया । पानी मीठा हो गया (जो आज भी यथावत मीठा ही है !!) क्या केवल चीनी डालकर खारी कुएं मीठे हो जाते हैं ? बाबा जी के इस चमत्कार पर *परदा* डालने हेतु चीनी *माध्यम* बन गई ।

महाराज

मंदिर में प्रतिष्ठापन के साथ साथ महाराज जी ने गाँव में हर वर्ष वैशाख शुल्कपक्ष की त्रयोदशी के दिन से एक माह का **मेला** आयोजित किये जाने की भी व्यवस्था कर दी। इस मेले में कई कोस दूर बसे व्यापारी और गाँव वाले खरीद-फरोख्त हेतु आने लगे जिससे गाँव में स्वतः समृद्धि आने लगी। जनता के मनोरंजन हेतु मेले में खेलकूद,लाठी-तलवार के करतब, झूले, हिंडोले आदि भी आयोजित होने लगे ।

परन्तु बाबा जी स्वयँ इस मेले में कभी नहीं जाते थे । एक बार गाँव वालों की जिद पर गये भी तो अपनी आखों में पट्टी बाँधकर !! और *इसी* अवस्था में (बिना किसी सहारे के) सारे ऊबड़-खाबड़ मेड़ों से भरे मेला क्षेत्र का चक्कर लगाकर वापिस चले आये !! **नयन बिनु देखा** — आँखें बंद हों चाहे खुली — एक ही बात थी उनके लिये ।

महाराज

महाराज जी की आज्ञा थी कि मेले में कोई चोरी नहीं करेगा, दुकानों में कोई ताला नहीं लगायेगा — रात को भी । एक माह के इस मेले में प्रतिदिन सैकड़ों की भीड़ में कभी कोई चोरी-चपाटी नहीं होती थी। रात में भी सब सामान यूँ ही पड़ा रहता था ।

फिर भी एक दिन एक व्यक्ति लालच में एक बड़ा तरबूज उठा ले गया एक दुकान से, बिना बताय । परन्तु बाबा जी से यह चोरी कहाँ छिप सकती थी — गाँव से पटरी पार जाते हुये उसके पाँव रेल की पटरी में ही चिपक गये । लाख प्रयास करने पर भी वह अपने को मुक्त न कर

सका । वह व्यक्ति तब बहुत घबरा गया। इधर गाड़ी आने का भी समय हो चला था । अब तो वह बहुत दीन भाव से बाबा जी से क्षमा याचना करने लगा । दयानिधान ने **दीन पुकार** सुनकर कुछ आदमी यह संदेश लेकर भेजे कि **"अब पूरा तरबूज अकेले वहीं पर खाओ, और वादा करो कि आगे चोरी नहीं करोगे ।"** मरता क्या न करता। उसने बाबा जी द्वारा भेजे आदमियों के सामने ही पूरा तरबूज किसी तरह उदरस्थ किया और चोरी न करने का वायदा किया । तभी एकाएक उसके पाँव पटरी से छूट गये !!

शायद अन्य लोगों को भी सबक पढ़ाने हेतु यह लीला की हो महाप्रभु ने ।

महाराज

एक दिन कुछ लोग एक पागल युवक को जंजीरों से बाँधकर बाबा जी के पास ले आये । बाबा जी दूर ही से चिल्ला कर बोले, **"खोल दो इसकी जंजीरें।"** पर लोगों ने कहा, महाराज, "यह आदमी वहशी हो जाता है । मारपीट करता है ।" बात सत्य थी, पर फिर भी बाबा जी पुनः बोल उठे, **"नहीं, छोड़ दो इसे ।"** और जब जंजीरें खोल दी गईं तो बाबा जी ने उस पागल से कहा, **"पेड़ पर चढ़ो ।"** वह पेड़ पर चढ़ गया । **"अब उतर जाओ ।"** वह उतर गया । ऐसा उससे बाबा जी महाराज ने कई बार करवा दिया तो अन्त में वह पागल स्वयँ बोल उठा, "पेड़ पर चढ़ने-उतरने से क्या होगा ?" बाबा जी ने तब कहा, **"ले जाओ इसे, अब यह ठीक हो गया है !!"**

महाराज

प्रसंगवश — इसी तरह की एक घटना अकबरपुर ग्राम की भी है जहाँ चौपाल में बैठे बैठे बाबा जी ने जान लिया कि फिरोजाबाद का एक मुसलमान डाक्टर बाबा जी महाराज की अलौकिक शक्ति की कथायें सुनकर अपने अर्ध-विकसित मस्तिष्क वाले एवं गूँगे लड़के को लेकर महाराज जी को खोजते खोजते वहीं को आ रहा है बड़ी आशायें लेकर — उपचार हेतु । अकबरपुर वालों से अपने को **छिपाये** हुये बाबाजी ने तुरन्त ही अपने एक विश्वसनीय आदमी को भेजकर उस डाक्टर से मार्ग में ही कहला भेजा कि, **"जा, तेरा लड़का ठीक हो जायेगा ।"**

और वह लड़का इतने में ही समय के साथ ठीक हो गया !!

महाराज

नीब करौरी मंदिर में महाराज जी के **दरबार** में दर्शनार्थियों की भीड़ तो लगी ही रहती थी । उनमें एक दारोगा भी आते थे अपनी घोड़ी पर चढ़े । घोड़ी बड़ी ही बिगड़ैल थी तथा अन्य किसी सवार को उछाल कर गिरा देती थी । दारोगा के मन में विचार आया कि अगर बाबा जी भी इस पर बैठें तो घोड़ी उन्हें भी गिरा देगी । मन के भाव को छिपाये उसने बाबा जी से घोड़ी के बारे में *यह* शिकायत कर दी । परन्तु अन्तर्यामी से दारोगा के मन की बात कैसे छुपी रहती ?

सो एक दिन जब दारोगा जी घोड़ी की जीन लगाम खोल उसे पास के पेड़ से बाँधकर आये तो बाबाजी फुर्ती से उठकर घोड़ी के पास पहुँच गये और उसे खोलकर उसकी नंगी पीठ पर सवार हो गये उछलकर। घोड़ी बेतहाशा दौड़ पड़ी और उछल-उछल कर बाबाजी महाराज को गिराने की चेष्टा करने लगी । गाँव वालों के कथनानुसार घोड़ी बड़ी देर तक उछलती-कूदती रही । पर महाराज जी कभी उसकी पीठ पर तो कभी गर्दन पर और कभी उसकी पेट से चिपके उसे लगातार दौड़ाते ही रहे जब तक कि वह बुरी तरह हाँफ न गई और मुँह से फेन के साथ खून न आने लगा । दारोगा के साथ सभी इस विस्मयकारी लीला को देखते रह गये । तभी घोड़ी एकदम शांत हो गई और बाबा जी उतर कर पुनः अपने आसन पर पूर्ण रूपेण साधारण अवस्था में बैठ गये (मानो कुछ हुआ ही नहीं और न कुछ श्रम ही हुआ !!) दारोगा जी उलाहना देने लगे कि, "आपने मेरी घोड़ी बेकार कर दी ।" तब बाबाजी ने केवल इतना भर कहा, **"तूने क्यों सोचा था कि घोड़ी मुझे गिरा देगी ?"**

सुनकर दारोगा जी चुप हो गये ।

महाराज

और वह सुप्रसिद्ध **रेल-प्रसंग** जिसे श्री के० एम० मुंशी ने अपने **भवन्स जरनल** में भी प्रकाशित करवा दिया था । अपनी मौज में एक दिन बाबा जी महाराज पास के स्टेशन से उस रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास डिब्बे में बैठ गये जो नीब करौरी गाँव से गुजरती थी । गाड़ी के कुछ मील तक चल चुकने के बाद डिब्बे में एक एंग्लो-इंडियन टिकट चेकर आ गया और

एक अर्धनग्न भारतीय साधू को चिमटा-कमण्डल लिये डिब्बे में बैठा देख अचकचा गया । टिकट मांगने पर नकारात्मक उत्तर पाकर उसने क्रोध में साधू को अपशब्दों से तिरस्कृत कर एक फ्लैग स्टेशन पर गाड़ी से उतार दिया । साधू भी शांत भाव से एक पेड़ के नीचे चिमटा गाड़ कर बैठ गया। गाड़ी को आगे बढ़ने के संकेत मिले, परन्तु इंजन स्टार्ट करने पर भी गाड़ी आगे न बढ़ पाई । **फुल-स्टीम** देने पर भी कोई असर न पड़ा और पहिये अपने स्थान पर घूमते रह गये । इंजन की मशीनरी की चेकिंग हुई, सभी कुछ सही था । तब ? यूरोपियन गार्ड बेचैन होकर ड्राइवर के पास आया कि क्या बात है ? ड्राइवर किसी खराबी को न बता सका । बहुत प्रयास करने पर भी गाड़ी टस से मस न हुई । उधर पटरी पर अन्य गाड़ी के **पास** होने का समय हो चुका था । तब कुछ भारतीय यात्रियों ने राय दी कि साधू महाराज को गाड़ी में चढ़ा लो, तभी गाड़ी चलेगी । इस पर वे विदेशी अधिकारी पहले तो झल्लाये पर अन्त में हताश होकर उन्होंने राय की कि, **"चलो यह भी करके देख लें ।"** बाबाजी के पास आकर क्षमा मांगी और उनसे गाड़ी में सवार होने की प्रार्थना की। परम कौतुकी बाबा जी महाराज ने कहा कि, **"तुम कहते हो तो चलो, बैठ जाते हैं ।"**

और तब बाबाजी के गाड़ी में बैठते ही गाड़ी चल दी !!

और इसी घटना के कारण भारतवर्ष के अनगिनत नगण्य गाँवों में शामिल **ग्राम नीब करौरी** एकाएक प्रसिद्ध हो उठा, तथा इस गाँव में कई वर्षों के प्रवास के बाद जब उक्त बाबा लक्ष्मण दास गाँव से निकले तो उनका नाम ही **नीब करौरी बाबा** पड़ गया ।

सम्भवतः बाबा जी महाराज की **मनसा** हो चुकी थी कि अपनी इस प्रथम क्रीड़ा-स्थली के वासियों के लिये रेल यातायात की सुविधा होनी चाहिए जिस हेतु उन्होंने उक्त कौतुक कर दिया जिसके फलस्वरूप ही उस गाँव से गुजरती हर पैसेन्जर गाड़ी १-२ मिनट के लिये वहाँ रुकने लगी । कालान्तर में इस लीला की परिणति-रूप नीब करौरी एक नियमित स्टेशन बन गया । और अब तो ठीक गाँव के बीच **बाबा लक्ष्मणदासपुरी** नामक फ्लैग स्टेशन भी बन गया तथा मंदिर के आसपास बसे लोगों को अब घर से निकल कुछ ही दूर पर रेल यातायात सुविधा उपलब्ध हो गई है।

महाराज

नीब करौरी से गमन

बाबा जी महाराज इसी प्रकार गाँव में अपनी मनोहारी आध्यात्मिकता-युक्त प्राकृत लीलायें करते रहे — **जन कल्याणार्थ**, परन्तु जहाँ **सत्व** का उदय होता है, वहीं **तामसी** प्रवृत्तियाँ भी उसे नष्ट करने की चेष्टा में रत हो जाती हैं । वैसे भी सीधे-साधे ग्राम वासी बाबा जी की इन अलौकिक लीलाओं का **मूल** बाबा जी में न देख पाये, उन्हें पहिचान न सके। उनके लिए यह सब एक सिद्धि-प्राप्त जोगी द्वारा किया गया कौतुक-मात्र रह गया — अन्तर छू न सका उनका — केवल बाबा जी के *प्राकृत* आचरण के कारण, उनकी भ्रामक लीला-क्रीड़ाओं के कारण तथा बाबा जी के उनके साथ घुलमिल कर रहने, उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करने, मुक्त भाव से उनसे वार्तायें करने (जिसमें गाली-गलौज भी शामिल होती) — आदि आदि के कारण भी । और वैसे भी तो बाबा जी महाराज **अपने** को **प्रगट** ही कब होने देते थे ?

और इसी माहौल में एक ऐसी घटना घटी जिसकी परिणति बाबा जी के गाँव छोड़ देने में हो गई और उनके गाँव को छोड़ने का **बहाना** बन गई ।

चूँकि बाबा जी सभी वर्ग, सभी वर्ण-जाति के लोगों को समान स्थान देते थे अपनी दया-कृपा हेतु, इससे ग्राम का रूढ़िवादी ब्राह्मण वर्ग उनसे असंतुष्ट हो चला था और उनका यह आक्रोश तब और भी भड़क गया जब एक धनी परिवार द्वारा प्रचुर मात्रा में लाये गये स्वर्ण-दान को भी

ब्राह्मणों के मध्य *न* बँटवाकर महाराज जी ने लौटा दिया । तभी एक दिन महाराज जी की अनुपस्थिति में इन लोगों में से कुछेक ने एक भक्त द्वारा भण्डारे हेतु लाये गये घी के टिनों को उसे बाबा जी के विरुद्ध भड़काकर वापिस करवा दिया । वह व्यक्ति इन लोगों की बातों में आकर केवल एक टिन छोड़कर बाकी घी वापिस उठा ले गया । मंदिर आकर बाबा जी को जब यह बात मालूम हुई तो वे मंदिर को एक सेविका, **देवी जी** को सौंपकर गाँव छोड़ किलाघाट (फर्रुखाबाद – फतेहगढ़) चले गये ।

वैसे सत्य तो यही प्रतीत होता है कि अकारण-करुण बाबा जी महाराज को अपने कृपा-क्षेत्र का विस्तार करना था *जिसका समय अब आ चुका था* । वे कब तक नीब करौरी तक ही बँधे रह कर सीमित रहते । वे नीब करौरी इसके बाद भी आते रहे कभी कभी — पर गाँववालों के जाने बिना — उनसे छिपकर । परन्तु अपनी प्रथम कर्म-भूमि नीब करौरी के नाम को अपने व्यक्तित्व, अपनी **पहिचान**, अपने **नाम** का प्रतीक बनाकर अमर कर विश्वविख्यात कर गये स्वयँ **बाबा नीब करौरी** बनकर !!

महाराज

इस बीच बाबा जी महाराज ऐटा, मैनपुरी, इटावा, फतेहगढ़, आगरा — आदि जिलों में भी भ्रमण करने लगे थे । वैसे भी इसके पूर्व से ही इन जिलों तथा आस-पास के अन्य जिलों-गाँवों से सैकड़ों भक्त नीब करौरी आते रहते थे बाबा जी की चमत्कारी लीलाएं सुनकर । किलाघाट (फतेहगढ़) आकर उनकी अन्य जिलों की यात्रायें और भी बढ़ गईं — घर-घर, गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर नई नई लीलाओं के साथ-साथ — एक ही उद्देश्य लिए — **दया** एवं जन जन का कल्याण।

फतेहगढ़ किले में तब राजपूत रेजीमेन्ट का कमान्डिंग अफसर कर्नल मैकन्ना था जो बहुत सख्त था और विशेषकर भारतीय जोगी-साधुओं से बहुत चिढ़ता था । परन्तु फौज के सिपाही बाबा जी के (जो किले के बाहर अक्सर डेरा डाले रहते थे) भक्त हो चले थे बड़ी संख्या में और छिपकर उन्हें दूध, फल आदि भेंट करते रहते थे । पता नहीं किस मौज में बाबा जी ने कर्नल मैकन्ना का हृदय-परिवर्तन करने की **मनसा** बना ली, और एक दिन जब वह बाहर चला गया तो आप उसके कक्ष में जाकर उसके पलंग में लेट गयें। अर्दली, सिपाहियों आदि ने उन्हें बहुत रोका पर फिर भी आप डटे रहे। जब कर्नल आया और उसने देखा कि एक अधनंगा

साधू उसके आराम की जगह लेटा है तो वह आग बबूला हो गया और बाबा जी की अंग्रेजी और हिन्दी में अपशब्दों से खूब भर्त्सना कर अपमानित किया। (कहते हैं उसने बाबा जी को हन्टर भी लगाये।) परन्तु बाबा जी हँसते-मुस्कराते रहे उसकी इन हरकतों पर भी। इतने अपमान के बाद भी महाराज जी को निर्विकार हँसते-मुस्कराते देख कर्नल आश्चर्यचकित रह गया। पता नहीं बाबा जी की *उस* मुस्कुराहट में तथा उनके *स्पर्श* में कर्नल मैकन्ना ने क्या अनुभूति की कि तत्काल उसमें अप्रत्याशित परिवर्तन आ गया !! उसने बाबा जी से क्षमा माँगी और उनके लिए दूध-फल मँगा कर अर्पण किये। साथ में हुक्म भी दे दिया कि बाबा जी को किले के अन्दर आने दिया जाये और उन्हें फौज की तरफ से दूध-फल भी अर्पण किये जायें । इस घटना के बाद वह आजीवन तन-मन से उनका भक्त हो गया। मैकन्ना *पहला विदेशी भक्त* बना बाबा जी का।

बाबा जी ने अपनी मौज में कर्नल से कह दिया था — **"जा, तू जनरल हो जायेगा ।"** *तब* मैकन्ना को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ था, क्योंकि उस के ऊपर न मालूम कितने और अफसर थे जो जनरल बनते । परन्तु बाबा जी का **अमोघ** वचन कैसे निरर्थक होता । द्वितीय विश्व-युद्ध में वह जनरल बनकर सुदूर-पूर्व की कमान संभालता हुआ जापानियों से लड़ा था।

अपनी कमान संभाले जब वह अपनी फौज लेकर ट्रेन से सुदूर-पूर्व जाते समय इलाहाबाद स्टेशन पर रुका तो त्रिकालदर्शी बाबा जी भी *उसी समय* अकारण (!) ही इलाहाबाद स्टेशन के प्लेटफार्म पर विराज गये और गाड़ी छूटने के कुछ ही मिनटों पूर्व मैकन्ना की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । तभी वह बाबा जी को पहिचान उनके पास दौड़ा-दौड़ा आ गया और बिना हिचकिचाहट के बाबा जी के श्री-चरणों में नत हो गया। उसके द्वारा अपनी स्थिति बताने के पूर्व ही महाराज जी बोल उठे, **"जा, जा, तेरी गाड़ी जा रही है । जा, तुझे कुछ न होगा ।"** बाबा जी के इस **अमोघ** आशीर्वाद के फलस्वरूप उस महायुद्ध में बड़े पैमाने पर नरसंहार के बावजूद और ब्रिटिश फौज के प्रारम्भ में बुरी तरह हार जाने पर भी मैकन्ना युद्धोपरान्त सकुशल इंग्लैंड लौट गया ।

इंग्लैण्ड लौटने के पूर्व सुदूर पूर्व के युद्ध में विजय पाये एवं सकुशल लौटे जनरल मैकन्ना की नियुक्ति अब मध्य पूर्व के युद्ध में हो गई

थी । बाबा महाराज के अमोघ आशीर्वाद के फलाफल से प्रभावित हुआ मैकन्ना भारत छोड़ने के पूर्व महाराज जी के दर्शन पुनः करना चाहता था। इस संदर्भ में (मैकन्ना की कमान में सम्मिलित) कर्नल टी० डी० जोशी ने *बाबा महाराज के सम्मुख ही* नजरबाग (लखनऊ) में मैकन्ना को बाबा जी द्वारा पुनः दर्शन देने की लीला यूं सुनाई (जिसे बाबा जी भी बिना कोई प्रतिवाद किये चुपचाप सुनते रहे ।)

जनरल मैकन्ना अपनी फौज की चुनिंदा टुकड़ी के साथ विशेष सेना-गाड़ी से टुँडला स्टेशन पहुँच प्लेटफार्म पर बेचैनी से टहलने लगा मानो किसी को ढूँढ रहा हो। (उसका पूर्व अनुभव था कि बाबा जी यहीं आसपास फर्रुखाबाद, आगरा, शिकोहाबाद आदि शहरों में घूमते रहते हैं।) उसकी परेशानी देख मैंने भी उससे साधारण औपचारिकतावश पूछ लिया कि क्या बात है । तब उसने बिना किसी हिचकिचाहट के बताया कि भारत छोड़ने के पूर्व वह अपने गुरु बाबा नीब करौरी के दर्शन करना चाहता है । सुनकर पहले तो मैं आश्चर्य में रह गया कि यह कैसे बाबा जी का भक्त बन गया !! (कर्नल जोशी स्वयं भी तो बाबा जी के भक्तों में थे और उनके आशीर्वाद से ही द्वितीय विश्वयुद्ध में सकुशल बने रहे।) फिर मैं भी स्टेशन में बाबा जी को बिना कोई आशा के ढूँढने का नाटक करने लगा। तभी मैंने देखा कि एक बेंच के नीचे सिर तक अपने को कम्बल में छिपाये कोई लेटा है । *क्या बाबा जी हैं ?* केवल महाराज जी की प्रेरणा से ही मैं बेंच के पास पहुँच गया और *तभी* अपना मुँह उघार कर बाबा जी मेरी तरफ देखने लगे अपनी सम्मोहिनी लिये मुस्कुराहट के साथ !! तब क्या था । इस अप्रत्याशित-अभूतपूर्व दर्शन को पा इधर मैं और उधर मैकन्ना विभोर हो कृतकृत्य हो गये । मैकन्ना ने महाराज जी को दण्डवत प्रणाम कर उनका आशीर्वाद पुनः प्राप्त कर लिया । (श्री केहर सिंह जी द्वारा वर्णित ।)

कहते हैं कि बाद में मैकन्ना बाबा जी को अपने साथ इंग्लैंड भी ले गया। परन्तु बाबा जी महाराज वहाँ से दूसरे-तीसरे दिन ही भारत को लौट आये ।

(प्रसंगवश — बाबा जी महाराज को स्व० रफी अहमद किदवई के भाई मक्का-मदीना भी ले गये थे !!)

महाराज

नीब करौरी तीर्थ का पुनर्जागरण

बाबा जी महाराज की नीब करौरी गाथा यहीं पूर्ण नहीं हो जाती ।

महाराज जी के ग्राम नीब करौरी को छोड़ देने के बाद हनुमान मंदिर की व्यवस्था में ढील आ चुकी थी और मंदिर भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो चला था, तथा सिंदूरी चोले के *अभाव* में हनुमान मूर्ति भी काली पड़ गयी थी । मंदिर में जनता का आना भी न्यूनतम स्थिति को पहुँच चुका था । मंदिर की न तो कोई आमदनी थी और न कोई नियमित रूप से पुजारी ही था सेवा हेतु।

परन्तु वर्षों पूर्व महाराज जी ने जो **हयाँई बैठन को** संकल्प ले लिया था, (प्रसंग तृतीय सर्ग में देखें) उसके लिए उन्हें अपनी इस **गंगोत्री** को पुनः उजागर करना था । (इस तीर्थ के बारे में बातें करते बाबा जी ने श्री माँ को अपनी कई लीलायें बताई थीं ।) अतएव, अपनी **महासमाधि** के बाद, मानो, उन्होंने यह काम श्री सिद्धी माँ को सौंप दिया । श्री माँ ने वर्ष १९७४ से ही बार-बार नीब करौरी की यात्रायें एवं वहाँ कुछ काल के लिए निवास करना प्रारम्भ दिया । *तब* न वहाँ रात्रि विश्राम हेतु कोई समुचित व्यवस्था एवं सुविधा ही थी, न भोजन-प्रसाद की और न शौच-स्नान की ही। मोटी-मोटी, अधपकी अथवा अधजली मक्का-चना या जवा-गेहूँ की रोटियाँ एवं अधपकी, स्वादहीन हरी सब्जी ही पाई हमने *तब* श्री माँ के साथ । फिर भी ये परिस्थितियाँ माँ के संकल्प को छू न सकीं और यात्रायें एवं निवास यथावत जारी रहे ।

इन्हीं यात्राओं और निवास के फल-स्वरूप स्थानीय एवं आसपास के गाँवों की जनता में बाबा जी महाराज तथा हनुमान जी के प्रति निष्ठा पुनः जागरूक हो चली। तब से श्री माँ द्वारा श्री विनोद जोशी के माध्यम से तीन-चार बार चढ़ाये गये सिंदूरी चोले का भी पुनः पुनः नवीनीकरण होता गया जिसको सम्पन्न करने के लिए श्री माँ बड़ी मात्रा में सिन्दूर और चमेली का तेल *देवी जी* के पास छोड़ जाती थीं। (प्रथम बार जाने पर तो सिंदूर के अभाव में विनोद जी हनुमान जी को स्नान करा, भली भाँति पोंछ कर केवल अबीर का ही चोला चढ़ा पाये थे !!) मंदिर में हनुमान चालीसा, सुन्दरकाण्ड और अखण्ड रामायण के पाठ के साथ खूब भजन-कीर्तन होने लगे। हनुमान जी का चबूतरा पुनः गुलजार हो गया। घर-घर श्री माँ द्वारा वितरित महाराज जी के फोटो चित्र सज गये। प्रारम्भ में छोटे और शीघ्र

ही बाद में बड़े बड़े भण्डारे भी आयोजित होने लगे। सामूहिक रूप से हनुमान मंदिर की तन-मन-धन से सेवा भी होने लगी। ***श्री माँ के आगमन पर*** आस पास के पचीसों गाँवों तथा नैनीताल, फर्रुखाबाद, ऐटा, मैनपुरी आदि जिलों की भक्त जनता हजारों की संख्या में मंदिर में एकत्र हो महोत्सव-सा मनाने लगती। कोई टुकडी भजन करती होती, कोई कीर्तन, कोई कव्वाली, कोई नृत्य तो कोई मंदिर में पाठ—अपने अपने रंग में, अपनी अपनी तरंग में। सारा क्षेत्र बड़ी रात तक इन्हीं तमाशों से गुंजायमान रहता ।

नीब करौरी में बाबा जी की गाथायें सुनती श्री माँ

इन सबका एक ही विशेष कारण था कि प्रारम्भ से ही श्री माँ गाँव के *पुराने लोगों* से बाबा जी महाराज द्वारा की गई अनेक अलौकिक लीलाओं को स्वयँ भी सुनतीं तथा *नई पीढ़ी* के लोगों को उन लीलाओं को सुनवा सुनवा कर उनमें भी बाबा जी महाराज के प्रति निष्ठा-आस्था जागृत करती रहतीं । साथ में बाबा जी महाराज के नीब करौरी से ***चले जाने के बाद*** की अलौकिकताओं की भी अनेक कहानियाँ गाँव वालों को अपने साथ आये लोगों से सुनवाती रहतीं । बाबा जी महाराज की भी कुछ ऐसी लीला चल निकली कि *सबके* ही काम स्वतः होते चले गये और जनता की मनोकामनायें भी *पूरी* होती चली गईं । सोया-सा नीब करौरी गाँव भक्तों

के कलरव से गूँज उठा। फलस्वरूप जनता में मंदिर एवं बाबा जी महाराज की सेवा के प्रति अदम्य उत्साह उत्पन्न हो गया। और धीरे धीरे मंदिर तथा *मंदिर-क्षेत्र* के (जिसे एक वृद्ध ब्राह्मण महिला ने बाबा जी से प्रेरित होकर उनकी सेवा में भेंट कर दिया था) विस्तार एवं उसकी सुचारु रूप से व्यवस्था के लिए नये नये सुझाव एवं सहयोग के आश्वासन स्वतः आने लगे। श्री माँ ने तब स्थानीय भक्तों को ही इन सबका दायित्व सौंप दिया।

मंदिर क्षेत्र में बहुत समय से ही बाबा जी की द्वितीय गुफा तथा कुटी के स्थान पर कालान्तर में श्री गंगादीन महाजन ने लम्बे गुम्बद का आकार लिये एक भवन बना दिया था साधु-सन्यासियों के रात्रि विश्राम अथवा ठहरने के लिये । (यह भी तो महाराज जी की ही एक लीला थी भविष्य की घटनाओं की सम्पन्नता हेतु जैसा आगे वर्णित है !!) गाँव वालों का विचार था कि इसके पहले खण्ड में शंकर-पार्वती तथा दूसरे खण्ड में श्री राम-जानकी की मूर्तियाँ प्रस्थापित कर दी जायें । परन्तु बाबा जी के **ह्याँ हौं बैठोंगो** की (**त्रितीय सर्ग** की **द्वितीय भावाँजलि** देखें) **मंशा-शक्ति** ने इस प्रस्ताव को *दूसरा* ही मोड़ दे दिया । वर्ष १९८१ में कार्तिक पौर्णमासी के शुभ अवसर पर श्री माँ-महाराज जी द्वारा प्रेरित हो, बाबा जी की अलौकिक शक्ति से पुनर्जन्म प्राप्त शिकोहाबाद के भक्त, श्री बद्री विशाल जी द्वारा *इसी* भवन तथा इसकी परिक्रमा में श्री-माँ की सन्निधि में भागवत सप्ताह सम्पन्न हुआ जिसने नीब करौरी ग्राम में एक अत्यन्त भव्य एवं उत्कृष्ट समारोह का रूप ले लिया । और *इस* तरह महाराज जी के **ह्याँ हौं बैठोंगो** के संकल्प की पूर्ति हेतु उस स्थान का शुद्धीकरण पुनः स्वतः ही हो गया !! और इसी के साथ नीब करौरी में महाराज-श्री के **तत्व पीठ** की स्थापना का भी सूत्रपात हो गया !!

तब वर्ष १९८४, १५ फरवरी के दिन श्री माँ-महाराज द्वारा प्रेरित हो ग्वालियर के उद्योगपति, भक्त श्री सीताराम गुप्ता द्वारा इस भवन को नया रूप-स्वरूप देते हुए मंदिर का रूप दे दिया गया जिसमें बाबा जी महाराज की संगमरमर की एक बड़ी मूर्ति का प्रतिष्ठापन उनके द्वारा श्री माँ की छत्रछाया में अत्यन्त धूमधाम के साथ हो गया। इस परम पावन महाकार्य में गुप्ता जी की बड़ी बहन, जो भक्त समाज में **जीजी** नाम से जानी जाती हैं, तथा भाई अमरचन्द जी का भी बड़ा सहयोग रहा। इस पुनीत अवसर पर हजारों भक्तों ने महाराज जी के भण्डारे का भोग-प्रसाद पाया। इस

बाबा महाराज का तत्त्व-पीठ मंदिर (नीब करौरी)

बाबा महाराज की मूर्ति (नीब करौरी)

प्रकार लगभग **पचास** वर्ष के *बाद* बाबा जी महाराज नीब करौरी धाम में पुनः विराजमान हो गये — **मूर्ति रूप में** !!

बाबा जी के इस मंदिर को उनके **तत्व-पीठ** का स्वरूप देने हेतु श्री माँ की आज्ञा से श्री विनोद चन्द्र जोशी जी द्वारा वर्ष १९७३ से *संचित* **बाबा जी के फूलों** का कलश बाबा जी के इस विग्रह के नीचे समाहित कर दिया गया ।

साथ में दुर्गा देवी का भी एक भव्य मंदिर हनुमान जी के मंदिर के पार्श्व में बनवाकर सीताराम जी द्वारा उसी दिन प्रतिष्ठापित हो गया । पुराने शंकर जी के मंदिर को भी इसी के साथ नया रूप दे दिया गया । इस प्रकार *अब* हनुमान जी धाम में **अकेले नहीं** रह गये — साथ में **आदि शक्ति एवं *शंकर जी सहित* अपने ही *दूसरे* स्वरूप में *बाबा जी महाराज*** बनकर विराजमान हैं !!

मंदिर क्षेत्र को आश्रम का रूप देने के लिए क्षेत्र के चारों ओर से एक ऊँची दीवाल तथा दो फाटकों से घेर कर उसके भीतर आवासीय कमरे भी इसी के साथ धीरे-धीरे बना दिये गये । सारे क्षेत्र को पुनः एक ट्रस्ट को सौंप दिया गया । आज इस नीब करौरी धाम में बाबा जी की प्रेम-गंगा की इस **गंगोत्री** के दर्शन हेतु प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में दर्शनार्थी एवं भक्तगण, जिनमें महाराज जी के विदेशी भक्त भी शामिल हैं, बाबा जी का अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करने आते हैं ।

और फिर अगले वर्ष बाबा जी के सम्मुख भागवत सप्ताह की पुनरावृत्ति हो गई जिसे महाराज जी के अमोघ आशीर्वाद से शरीर-प्राप्त श्री राम सेवक गुप्ता द्वारा संपन्न किया गया ।

महाराज

गुफा का पुनर्दर्शन

जैसा पूर्व में निवेदन किया जा चुका है कि बाबा जी खेत की जिस गुफा में प्रारम्भ में रहते थे, उसे उन्होंने कुछ काल बाद छोड़ दिया था (और मंदिर के पास एक नई गुफा एवं कच्ची कुटी बनवाकर रहने लगे थे ।) इस प्रारम्भिक गुफा के ऊपर धीरे धीरे मिट्टी जमा होने लगी थी तथा कालान्तर में यह भी साथ के खेत में सम्मिलित हो चुकी थी जिसके

ऊपर हल भी चले और खेती भी हुई । इस गुफा की चर्चा गाँव के पुराने भक्त श्री सिद्धी माँ को विस्तार से सुना चुके थे ।

और *तभी से* श्री माँ इस गुफा के दर्शन हेतु अत्यन्त उत्सुक हो चली थीं, तथा वर्ष १९७७-७८ से उन्होंने इस गुफा के *वास्तविक* स्थान के बारे में जिज्ञासा प्रगट करनी प्रारम्भ कर दी थी। कुछ पुराने लोगों से भी पूछा गया, परन्तु लगभग *आधी सदी* से भी ऊपर के अन्तराल के बीच गाँव के खेतों, सड़कों, खेत की मेड़ों और भवनों की स्थितियाँ बहुत बदल चुकी थीं। कोई गुफा का एक स्थान बताता तो कोई दूसरा। कुछ वर्षों तक यही सिलसिला बना रहा और गुफा का *सही* स्थान निश्चित न हो पाया। परन्तु माँ ने न तो धैर्य खोया और न गुफा को ढूँढ निकालने की लगन को ही त्यागा। (वे तो *इस* हेतु उपयुक्त समय एवं वातावरण की प्रतीक्षा में थीं !!)

अन्त में वर्ष १९८८ में श्री माँ मंदिर के सामने के खेत में घूमते हुए **एक स्थान पर कुछ देर के लिये स्थिर खड़ी रह गईं !!** *तभी* वहाँ उपस्थित एक वृद्ध ने कह दिया, "जहाँ माँ खड़ी हैं, वहीं पर खोदो ।" (क्या माँ-महाराज ने ही प्रेरित किया उसे *ऐसा* कहने को ?) और जब दिनेश दीक्षित ने गाँव वालों की सहायता से वहीं १०-१२ फीट की गहराई तक खोदा तो बाबा जी महाराज की उस गुफा के अवशेषों के दर्शन होने लगे !! तब अत्यन्त सावधानी के साथ धीरे-धीरे खोद कर ऊपर की मिट्टी हटाकर पूरी गुफा को **प्रगट** कर लिया गया !! लगभग १२-१३ फीट लम्बी और ८-९ फीट चौड़ी तीन खण्डों में बँटी इस गुफा की बची हुई २-२, ३-३ फीट ऊँची मिट्टी की दीवारों तथा मेहराबों पर महाराज जी के *उस* **गुफा-काल** (संभवतः १९१७-१९१८) की पुती कलई (चूना) अब भी शेष थी !! कुछ मिट्टी के बर्तनों के अवशेष तथा दीवार में बनी धूनी की राख और कोयला-लकड़ी भी प्रारम्भ में मिले । गोल आकार की मिट्टी से बनी गौरी-गणेश की मूर्तियाँ भी मिलीं (जिन्हें, संभवतः, गाँव वालों ने ही बाबा जी के **गुफा-प्रवेश**-महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रतिस्थापित किया होगा हवन-पूजन के साथ ।)

गुफा के प्रगट होते ही उसमें से शाकल्य एवं धूप की सुगन्ध निकलकर व्याप गई चहुँ ओर !! गुफा दर्शन की इस अद्भुत लीला से सभी आनन्द एवं हर्षोल्लास में मगन हो उठे। **"बाबा नीब करौरी महाराज की जय"** के नारों से वायुमण्डल गूँज उठा । गुफा दर्शन हेतु सैकड़ों की

बाबा जी की गुफा (नीब करौरी)

सुरक्षित गुफा मंदिर

संख्या में जनता टूट पड़ी । उपलक्ष में कई दिन तक दर्शनों, कीर्तन-भजनों, भंडारों की, प्रसाद की धूम मची रही । धूम-धाम से गुफा का आरती-पूजन हुआ ।

श्री माँ द्वारा इस गुफा को *इस प्रकार* **प्रगट** करवाकर बाबा जी ने ६०-७० वर्ष पूर्व की गईं अपनी लीलाओं को, जो केवल **कथायें** बनकर रह गई थीं, *नई पीढ़ी* के समक्ष पूर्ण रूपेण प्रमाणित कर रख दिया !! और जनता में बाबा जी महाराज के प्रति निष्ठा-आस्था की मात्रा कई गुना बढ़कर व्याप गई। साथ में बाबा जी द्वारा प्रतिस्थापित नीब करौरी के हनुमान मंदिर के प्रति भी जनता में अपार श्रद्धा-भक्ति विकसित हो उठी ।

इस प्रकार इस गुफा को ***प्रगट करने में निहित*** श्री माँ का उद्देश्य पूरा हो गया ।

महाराज

तब गुफा को मंदिर का स्वरूप देते हुए उसको वर्षा एवं जानवरों से बचाने हेतु श्री विनोद जोशी ने श्री पी० के० चोपड़ा जी के सहयोग से उसे चारों ओर ग्रिल से घेरकर तथा ऊपर टिन की ढालदार छत से सुरक्षित कर दिया। अगले वर्ष ग्रिल को भी जालियों से घेरकर पक्षियों और छोटे जानवरों से भी गुफा को सुरक्षित कर दिया गया। इन कार्यों की सफल पूर्णता हेतु श्री सर्वदमन सिंह जी 'रघुवंशी' (श्री इन्दर जी) का भी तन-मन-धन से यथोचित सहयोग प्राप्त होता रहा । *तब* से ही दुर्गा देवी, हनुमान जी, शंकर जी एवं महाराज जी के साथ साथ इस गुफा-मंदिर का भी नियमित रूप से उसी श्रद्धा-भक्ति से आरती-पूजन होता है ।

श्री नीब करौरी धाम की जय ।

महाराज

अपनी इन्हीं यात्राओं के मध्य श्री माँ ने बाबा जी महाराज की लीलाओं की ग्रामवासियों से चर्चा करते करते बाबा जी का **चिमटा** एवं **कमण्डल** भी, जिन्हें लेकर वे नीब करौरी आये थे तथा यहीं छोड़ भी गये थे, स्थानीय भक्तों से प्राप्त कर कैंचीधाम में महाराज जी की अन्य पुण्य-स्मृति रूप वस्तुओं के साथ सुरक्षित कर लिया ।

महाराज

कैंची में माइयों के मध्य

त्रितीय पुष्पाञ्जलि

उत्तराखण्ड लीला

वर्ष १९३४-३५ में नीब करौरी गाँव छोड़ने के बाद बाबा जी महाराज का भ्रमण एवं कृपा-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो चला था । विभिन्न प्रान्तों एवं शहरों में बाबा जी महाराज ने हजारों लोगों के घर जा जा कर मुक्त रूप में अपनी दया-कृपा की चमत्कारी लीलाएं प्रारम्भ कर दीं । दीन, दुखी, रोग-ग्रस्त, जरूरतमन्द, कर्म और प्रारब्ध से अभिशप्त — ये ही विशेष रूप से उनकी दया के पात्र होते थे परन्तु इस क्रिया में अपने को **गुप्त** रखने की नीति के अन्तर्गत वे विभिन्न परिस्थितियों को (जो उनकी इच्छा के सानुरूप स्वयँ मोड़ ले लेती थीं) अथवा समृद्ध, सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं सरकारी पदों पर आरूढ़ व्यक्तियों को इन दया-पात्रों के कष्टों को दूर करने हेतु माध्यम बनाते रहते थे । कहीं कहीं ही उन्होंने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि *वे ही सब कुछ कर रहे हैं* और फिर तुरन्त कह देते, **"सब कुछ भगवान करता है । उन्हीं से** (या फिर, **हनुमान जी से) कहो । हम कुछ नहीं जानते।"** परन्तु अन्तरंग भक्त भली भाँति जानते थे कि यह **भगवान**, **हनुमान** कौन हैं, और मन ही मन बाबा जी की इन लीलाओं का आनन्द लेते रहते।

उत्तराखण्ड में महाराज जी का प्रवेश यद्यपि तीसरे दशक में ही हो चुका था, पर विशेष लीलायें वर्ष १९४०-४१ के आसपास से ही प्रारम्भ हुईं। इसके पूर्व महाराज जी अन्य प्रदेशों, प्रान्तों एवं शहरों के अलावा उत्तर प्रदेश में — (विशेषकर) बरेली, कानपुर, लखनऊ, एटा, मथुरा, मैनपुरी, शिकोहाबाद, अलीगढ़, इलाहाबाद, आगरा आदि जिलों एवं दिल्ली में अपनी प्रत्यक्ष-रूप लीलायें करते रहे थे जहाँ आपकी *कल्याणमयी* लीलाओं से मुग्ध होकर हजारों व्यक्ति आपके चरणाश्रित हो चुके थे। परन्तु किसी एक स्थान-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष से तो बाबा जी जुड़े नहीं थे और न स्थान-विशेष में ही वे अधिक काल तक निवास ही करते थे। आज यहाँ तो कल वहाँ। अपने सृजित मंदिरों-आश्रमों (कैंची, वृन्दावन, बजरंगगढ़, भूमियाधार आदि) में भी २०-२२ वर्ष की अवधि में वे अधिकतम कुल मिलाकर ६ माह से लेकर ढाई-तीन वर्ष तक ही छोटी छोटी अवधि में कभी १० दिन तो कभी १ माह तक एक आश्रम में निवास करते रहे और

पुनः अन्य स्थानों, क्षेत्रों में लीला-सृजन हेतु चले जाते। केवल अंतिम दो-ढाई वर्षों में ही वे कैंची तथा वृन्दावन आश्रम में ३-४ माह तक एकमुश्त रहे ।

परन्तु बाबा जी की कृपा के फलस्वरूप कई भक्त अथवा स्थान स्वयँ ही उनके नाम से जुड़ गये थे और ***इसी कारण ऐसे स्थानों/व्यक्तियों की अपनी भी पहिचान/प्रसिद्धि हो चली थी बिना किसी अन्य आधार के ।***

उत्तराखंड में महाराज जी ने पूर्व में केवल कुछ ही व्यक्तियों से सम्पर्क किया, या यूँ कहिये कि प्रारम्भ में कुछ ही क्षेत्रों के कुछ ही लोग बाबा जी महाराज को **कुछ कुछ** जान पाये, यद्यपि बाबा जी उत्तराखण्ड की समस्त भूमि का (जिसे वे **देव भूमि** — ऋषि-मुनियों का क्षेत्र कहते थे) जब-तब भ्रमण करते रहते थे । कभी किसी गृहस्थ के घर अल्प कालीन वास भी कर लेते थे । परन्तु इसी भ्रमण के बीच धीरे धीरे बरेली से लेकर नैनीताल तक के सैकड़ों-हजारों व्यक्ति महाराज जी की अलौकिकता से प्रभावित हो गये और उनके भक्त बन गये — विशेषकर नैनीताल-हल्द्वानी क्षेत्र के निवासी तो महाराज जी के लिए पागल-से हो गये । यद्यपि बाबा जी महाराज़ के इस क्षेत्र में आगमन हेतु कोई निश्चित समय या तिथि नहीं होती थी किन्तु भक्तों को उनके आगमन की, जो अनायास ही हो जाता सदा ही प्रतीक्षा रहती थी । कुछ ही काल में महाराज जी के प्रेम, उनकी दया-करुणा-कृपा एवं उनके इन भक्तों के प्रति *अपनत्व* का ऐसा गहन-गम्भीर प्रभाव छा गया कि महाराज जी की अनुपस्थिति में — क्या पुरुष, क्या मातायें — जब भी एक दूसरे से मिलते तो बाबा जी महाराज की कृपा-लीलाओं की चर्चा में ही डूब जाते/जातीं, विशेषकर महिला वर्ग (जो महाराज जी के शब्दों में **माइयां** कहलाती थीं) तो गोपियों की भाँति उन्हीं की याद में ही सारी गृह-चर्या करती रहतीं । एक दूसरे के घर जाकर बाबा जी महाराज के गुणानुवादों की चर्चा किये बिना उन्हें चैन न मिल पाता । बाबा जी की ही याद में इन माइयों द्वारा घर घर कीर्तन, भजन, नृत्य, अखण्ड रामायण, सुन्दरकाण्ड, हनुमान चालीसा के पाठ आये दिन आयोजित होते रहते । क्या राम में, क्या कृष्ण में, क्या हनुमान-शिव में — उन्हें सभी में बाबा जी महाराज की ही झलकी दिखाई देती तथा राम एवं कृष्ण की कथा-लीलाओं में महाराज जी ही प्रत्यक्ष नजर आते । कोई मगन हो जाती, कोई आँसू बहाती — इसी भाव में कीर्तन-भजन

करती होतीं । किसी की मुस्कान बाबा जी की *उससे की गई लीला* की स्मृति में फैली ही रह जाती, और कोई तो कुछ देर **चर्चा** के बाद समाधिस्थ हो जाती । इन्हें देख द्वापर की ब्रजगोपियों की कहानियाँ बरबस स्मृति में आ जाती थीं ।

और महाराज जी के सहसा आगमन की सूचना (जो आँधी में अग्नि के समान फैल उठती) पाते ही ये सभी बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, युवक-युवतियाँ उनके दर्शनों को, उनके चरणों में लोटने को दौड़ पड़ते, एक दूसरे से पूछते — **कां छन ? (कहाँ हैं)—तुम देखे दयाल रघुराई ?** वैदिक संस्कारों में ओत-प्रोत, भगवान शिव और शक्ति के उपासक, सरल स्वभाव के ये पर्वतीय जन वैसे भी साधु-सन्यासियों तथा जोगी जन के प्रति बहुत सम्मान और आदर का भाव रख उनकी सेवा करते रहते थे । और यहाँ तो बाबा जी महाराज जैसी विभूति के स्वयँ का इन लोगों के प्रति अविरल प्रेम स्वतः ही परावर्तित हो इनके अन्तर में प्रतिबिम्बित होकर इन भक्तों के मन-मानस को आच्छादित किये हुए था । अतएव बाबा जी के आगमन की सूचना प्राप्ति पर इनका ऐसा करना, इनका ऐसा आचरण स्वाभाविक ही था।

और बाबा जी महाराज को भी तो एक साथ इतने बड़े समूह में अन्तर से सरल, उदार प्रकृति के, भक्ति-भाव से ओत-प्रोत (बाबा जी से *बिना किसी प्रकार की सांसारिकता की अपेक्षा* वाले) निष्ठावान धार्मिक भक्तगण मिल गये अपनी कृपा-लीलाओं के विस्तार हेतु । इसके पूर्व तो महाराज जी ने सामूहिक रूप से लीलायें केवल नीब करौरी में ही की थीं, अन्यथा उनकी लीलाएं केवल गृहस्थ-विशेष, व्यक्ति-विशेष एवं उनसे जुड़े अन्य लोगों तक ही सीमित रही थीं ।

इन प्रेमी, सरल, उदार-हृदय भक्तों के मध्य बाबा जी महाराज ने भी *उसी* प्रेम, उदार एवं सरल भाव से अपनी कल्याणमयी लीलाएं कीं और भक्तों को ऐसी लीलाओं के मध्य लगता कि आज उनको अपने आराध्य, अपने उपास्य की प्राप्ति हो गई, और बाबा जी को भी (उन्हीं के शब्दों में) लगता कि वे *अपने* जन्म-जन्मान्तर के प्रेमी भक्तों के मध्य आ गये हैं। कहीं कोई दुराव नहीं, कहीं कोई छिपाव नहीं — दोनों ओर से । इतनी आत्मीयता का आदान-प्रदान अपने ही परिवार में भी संभव नहीं हो पाता जितना बाबा जी और उनके भक्तों, (विशेषकर माइयों) के बीच चलता था।

भक्त को इसका भान ही नहीं रह पाता था कि वह बाबा जी जैसी अवतारी विभूति को क्या अर्पण कर रहा है/कर रही है, तथा उनके साथ कैसा (स्वच्छन्द) व्यवहार कर रहा है/कर रही है । और भगवान (महाराज जी) को भी भक्त के इस अर्पण, इस आचरण में एक ही वस्तु, एक ही *तत्व* दृष्टिगोचर होता — *अपने प्रति* उस भक्त का निश्छल, अविरल प्रेम !! कितनी मोहक होती थीं ये लीलाएँ । (शायद) तभी ही महाराज जी ने इस क्षेत्र को **बृज** की संज्ञा दे डाली थी, और जब वे बहुत काल तक इस क्षेत्र से बाहर रह जाते तो अनायास ही उनके श्री-मुख से निकल जाता — **ऊधो ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं ।** और शीघ्र ही पुनः आ पहुँचते **अपने बृज में !!**

वैसे तो महाराज जी जिस भक्त के घर स्वयँ चले जाते तो उपस्थित भक्त मंडली भी उन्हीं के साथ वहीं चली जाती थी और उस भक्त के घर छोटा-मोटा भण्डारा हो जाता । पर जब कभी कोई भक्त बाबा जी से अपने घर चलने का आग्रह करता तो ऐसे अवसरों पर बाबा जी के पीछे भक्तों का एक बड़ा समूह भी चल पड़ता और उस भक्त के घर भण्डारे के मध्य महाराज जी का चमत्कार प्रारम्भ हो जाता । भक्त की लाज **अपनी लाज** मानकर न्यून मात्रा में बना भोग-प्रसाद पूरे भक्त समूह के लिए आवश्यकता से भी अधिक पर्याप्त कर दिया जाता बाबा जी द्वारा — *बिना* किसी को इस तथ्य का आभास मिले !! इसी प्रकार के भण्डारे दिन भर में कई घरों में सम्पन्न हो जाते और बाबा जी एक दिन में कितने ऐसे भण्डारों में प्रसाद ग्रहण करते होते, यह तो कल्पना के बाहर की बात होती। हर घर में यही समझा जाता कि बाबा जी ने हमारे ही घर का प्रसाद भरपेट बड़े स्वाद से ग्रहण किया है । और ऐसे भण्डारों का कोई समय भी तो निश्चित, नियत न था कि एकदम सुबह ही हो रहे हैं या शाम को, अथवा दोपहर को हो रहे हैं कि अर्धरात्रि में !!

अपने तन-मन की सुध भूले ये भक्त बावलों की तरह बाबा जी के पीछे पीछे घर घर डोलते फिरते । घर घर कीर्तन, भजन, भण्डारों की स्वतः धूम मच जाती । घर-द्वार, नौकरी-पेशा, व्यापार आदि सब कुछ भूले हुए ये भक्तगण इसी नैसर्गिक आल्हाद में खोये रहते । किसी को भाव-समाधि लग जाती तो कोई जड़-समाधि में जा डूबता । कोई मूक हो अश्रुपात करने लगता आनन्दातिरेक में तो कोई हतप्रभ-सा बैठा रह जाता।

बाबा जी की दिव्य उपस्थिति का प्रभाव विचित्र ही होता — तन की सुध नहीं, मन में चेतना नहीं, वस्त्रों-परिधानों की अस्तव्यस्तता का बोध नहीं । अधिकतर लोग पागल और बाकी चकित, मूक !! **महारास** की-सी अवस्था — वही भाव लिए नैसर्गिक आल्हाद में डूबे भक्तों की हृदय तंत्री के तार तार से एक ही शब्द झंकृत होता — **महाराज ! महाराज !**

और स्वयँ बाबा जी महाराज ? वे तो केवल बैठे बैठे चाभियाँ घुमाते रहते सबके मन-मानस के तालों की और स्वयँ निर्लिप्त, निर्विकार, निर्विकल्प दृष्टामात्र बने हुए इस **रास-महारास** के मध्य उसकी गति को नियंत्रित करते रहते । और जब जानते, देखते कि भावातिरेक सहन सीमा के बाहर हो रहा है कुछ भक्तों के लिए तो शीघ्र ही चाभी दूसरी ओर घुमा देते और तब पुनः सामान्य स्थिति आ जाती समूह में !!

परन्तु साथ ही कभी-कभी किसी भक्त-विशेष के अन्तर के विशुद्ध भावों की *टक्कर* पाकर, उसके (साधारण-से लगने वाले) भजनों अथवा उसके द्वारा भाव-भक्ति से पढ़ी-गई रामायण की मार्मिक चौपाइयाँ सुनकर प्रभू स्वयँ भी विकल, विह्वल हो जाते । अवरिल अश्रुपात होने लगता नेत्रों से, हिचकियाँ बँध जातीं, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता । सारा शरीर, विशेषकर मुखमण्डल एक अलौकिक दिव्य कांति-युक्त भावमुद्रा में परिलक्षित होने लगता और उसी के साथ, प्रतिक्रिया स्वरूप, भक्त समुदाय में भी स्पन्दन होने लगता । कुछ अचेत, कुछ अर्ध चेतना में, तो कुछ सचेत हुए भक्तगण केवल अवाक् होकर देखते रह जाते यह सब लीला । और जब स्वयँ के लिए भी असह्य हो जाती *यह दशा* तो प्रभु चिल्ला उठते — **"बन्द करो, बन्द करो।"** और स्वयँ या तो कम्बल से अपना मुँह ढक लेते हिचकियाँ लेते या फिर उठकर अन्य कमरे में जाकर बन्द कर लेते अपने को ।

परन्तु पूरे प्रकरण में जो कुछ भी घटित होता, वह बाबा जी की अपनी **अलौकिकता** ही होती । जो व्यक्ति बाबा जी की तरफ विशेष रूप से आकर्षित न भी हुआ होता, वह भी मूक बना अविचल निहारता रह जाता बाबा जी के मुखमण्डल को और उनकी लीलाओं को । अन्य के अन्तर में तो एक अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति, उल्लास व आल्हाद की लहर उठती रहती ।

इस प्रकार प्रभू के हर नये आगमन पर भक्तों की संख्या, दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ती चली जाती । इन्हीं क्रियाओं से जन जन के अन्तर में ढाई अक्षर वाले **प्रेम** की छाप लगा देते थे बाबा जी — *उस* **प्रेम** की जो समस्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, भागवत, गीता आदि का **सार** है।

ऐसी होती थी उत्तराखण्ड में **महारास** लीला ।

महाराज

इस **महारास** का प्रभाव केवल नैनीताल, बजरंगगढ अथवा हल्द्वानी तक ही सीमित न रहा — भूमियाधार एवं कैंचीधाम में और भी अधिक वेग पकड़ लिया इसने — विशेषकर उन ब्रज-गोपियों के अन्तर में जो पूर्व में महारास की पात्र बन चुकी थीं । घर-गृहस्थी को भूलीं ये मातायें सुबह मुंह अंधेरे ही चल पड़तीं अपने अपने घरों से भूमियाधार-कैंची के लिये (जहाँ भी बाबा महाराज विराजमान होते) — पैदल — बिना भय के, बिना मार्ग में पड़ते श्मशान घाट-कब्रिस्तान की परवाह किये — मार्ग में उन्मुक्त हो नृत्य करतीं-गातीं — ***अपने कन्हैया*** की वंशी की तान-सी सुनतीं — उसका यशगान करतीं !! ऐसा नहीं कि महाराज जी के पास पहुँच इन्हें खाने को मधुर मिष्ठान्न अथवा (सुनने को) मधुर वाणी मिलती हो — इसके विपरीत बाबा महाराज की *कही-अनकही* सुननी पड़तीं !! और घर लौटकर भी अपने पति एवं परिवारीजनों से कठोरतम प्रताड़ना एवं उलाहने सुनने पड़ते । किन्तु बाबा महाराज के प्रेम में पागल इन्हें सब प्रकार के दण्ड मान्य थे — *केवल* अपने आराध्य, अपने उपास्य के दर्शन की प्राप्ति हेतु— उनका सान्निध्य प्राप्त करने को । बाबा महाराज भी इनकी हर तरह से कठोरतम परीक्षायें लेते रहते — प्रताड़ित-अपमानित कर। परन्तु इनके *अन्तर की टीस* का उपचार तो *केवल* उनका दरसन-परसन मात्र ही था । अस्तु, इन्हें उस प्रताड़ना-अपमान आदि में भी *परमानन्द* की अनुभूति होती।

उन दिनों कैंची से नैनीताल-भोवाली आदि वापिस जाने के लिये केवल एक बस आती थी कैंची — पांच बजे सायँ । तब बाबा जी इन गोप-गोपियों को डाँट-डपट कर, खदेड़ कर आश्रम के बाहर करने लगते कि घर जायें । पर माइयाँ थीं कि कोई इधर दुबक रही है, कोई उधर छिप रही है । किन्तु अन्तर्यामी-सर्वदृष्टा की नजर से कौन बच सकती

थीं। अस्तु, बाबा जी महाराज या तो स्वयँ ही अथवा हब्बा जी (स्व० हीरालाल साह) के द्वारा इन्हें ढूंढ ढूंढ कर बाहर निकलवा देते ।

और फिर सुबह से पुनः यही क्रम चल उठता — मुंह अंधेरे ही कैंची पहुंच जाना । दिन भर डाँट-डपट सुनना, रोना, हँसना और मगन रहना और सन्ध्या समय घर को भेज दिया जाना बरबस ।

पुनः, कैंचीधाम के प्रारम्भिक दिनों में उत्सवों के अवसर पर माइयों को सेवा हेतु रात्रिकाल में भी वहीं विश्राम की आज्ञा मिल जाती थी उत्सव अवधि के लिये । *तब* आश्रम में स्नान आदि के लिये आज की-सी व्यवस्था के अभाव में ये मातायें मुंह अंधेरे ही पार्श्व में बहती *उत्तर वाहिनी गंगा* में ही नहाना-धोना कर लेती थीं । इस अवधि में कभी कभी (बाबा महाराज की **मौज** के अन्तर्गत) इन्हें या तो अनुपम नैसर्गिक दिव्य वाद्य सुनाई देने लगते या अत्यन्त मोहक *वंशी की तान* !! *इस* तान को सुन ये मन्त्र-मुग्ध हुई भूल जातीं अपने को — नहाने-धोने की विभिन्न मुद्राओं के मध्य *अचेत हुईं वैसी की वैसी रह जातीं* !! कभी कभी बाबा जी इन्हें गर्गाचल में साधना-रत सिद्धों के भी दर्शन करवा देते (जो स्वयँ भी *इस गंगा* में स्नान हेतु आये होते) और कभी तो विशिष्ट स्तर की माताओं को कैंचीधाम की पहाड़ियों के शिखर पर अत्यन्त ज्योतिर्मय सिद्धों-देवताओं की बारात भी, दिव्य वाद्य यन्त्रों एवं घंटे घडियालों की ध्वनि के साथ !!

बाबा महाराज के **अपने इस ब्रजधाम** में उनके द्वारा अपने इन ब्रज गोप-गोपियों के साथ सम्पन्न ऐसी अलौकिक गाथाओं की कोई मिति नहीं, कोई सीमा नहीं — गोपी चाहे रूसी गाँव की हरिजन कुमारी हो अथवा हरिजन बस्ती की बाल्मीकि हो, चाहे सम्पन्न उच्च घराने की माई हो, चाहे आर्थिक रूप से दीन, चाहे युवा हो अथवा वृद्धा-अति वृद्धा, सु-रूप हो अथवा कुरूप । फलस्वरूप अपने श्री-चरणों की जो अमिट छाप महाराज जी इनके अन्तर में लगा गये वह आज भी यथावत बनी है — अपितु, बाबा महाराज के *अन्तर्ध्यान* हो जाने पर तो और भी गहन हो चली है। ऐसी माताओं-बहनों एवं गोप-सखाओं के अन्तर में बाबा महाराज की *वही* मूरत पूर्ण रूपेण साकार बनी है — और भी अधिक उज्ज्वल होती — बाबा जी के प्रति *तबके* सेवा-भाव एवं प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि लिये। *तब* बहुत कुछ लौकिक-सा भी था और सीमित-सा भी जो *अब* महाराज के **असीम** हो जाने पर स्वयं भी अपरिमित हो चला है।

बाबा महाराज की यह प्रेम-गंगा **गंगोत्री** (नीब करौरी धाम) से उत्तर वाहिनी होकर दीर्घकाल के लिये, मानो, स्थिर-सी हो गई **तीर्थराज** (उत्तराखण्ड) में, जहाँ से दयापूर्ण-कल्याणकारी बादलों का रूप लेकर जहाँ-तहाँ बरस कर अन्ततः यह पुण्य सलिला पुनः दक्षिणवर्त्ती हो **गंगा सागर** (वृन्दावन धाम) पहुंच *अन्तर्ध्यान* हो गई ।

और अब तो **गोमुख** (जन्म स्थान अकबरपुर) भी पुनः ज्योतिर्मय हो जायेगा शीघ्र ही बाबा जी की मूर्त्ति के प्रतिष्ठापन के साथ । (१९९५)

महाराज

राम राम कहते
सब काम बन जाते
हैं ।

संकट में
साहस न खोना
आधी सफलता
प्राप्त कर लेना है ।

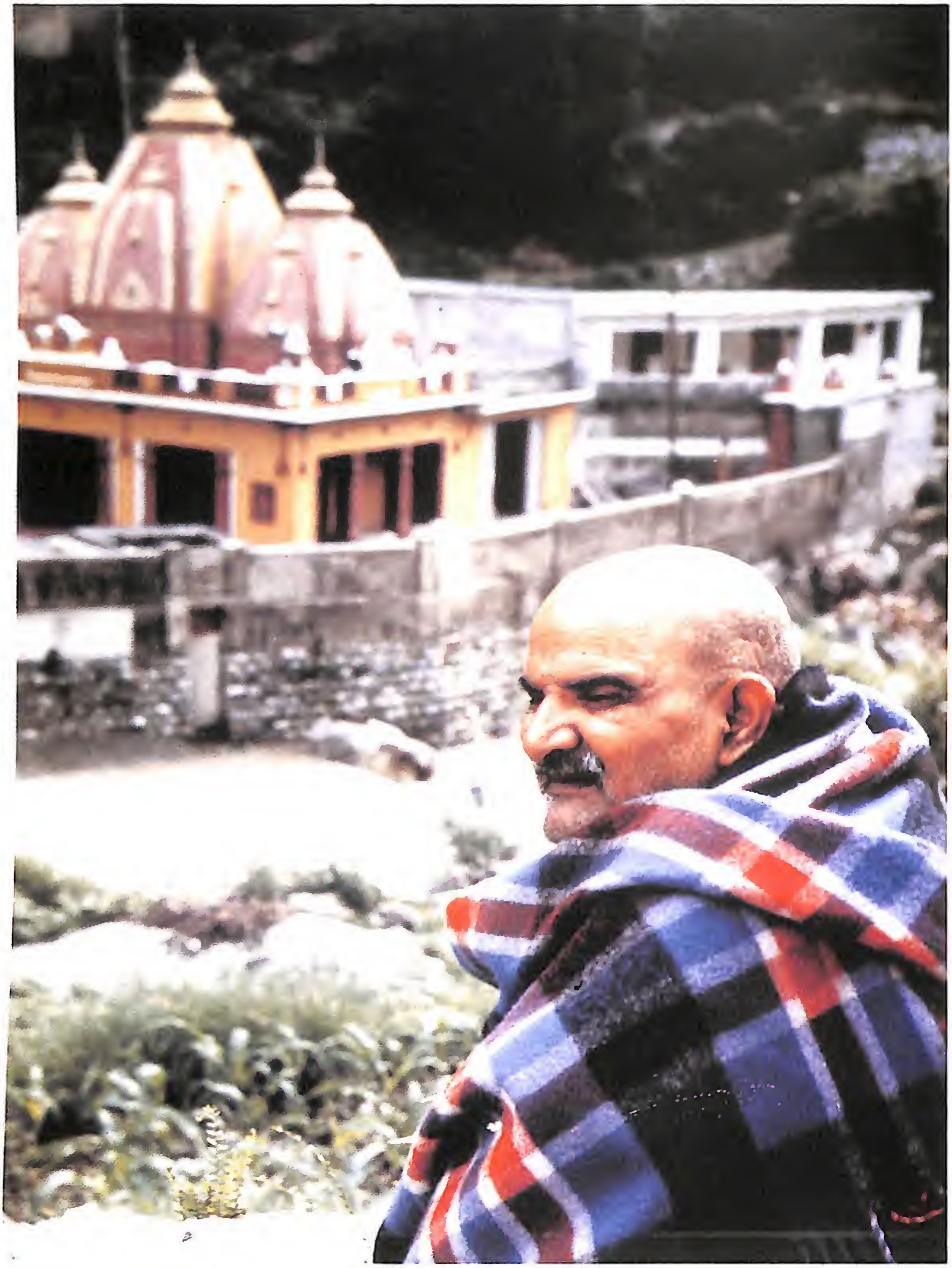

चतुर्थ पुष्पाञ्जलि

उत्तराखण्ड में हनुमान मंदिरों की स्थापना

उत्तराखण्ड-वासियों की अपने प्रति निष्ठा, सहज-प्रेम और अपनत्व के ***प्रतिदान*** स्वरूप महाराज जी ने भी उनके प्रति अपने **अमर प्रेम** की **प्रतिमूर्तियाँ** — श्री बजरंगगढ़ हनुमान-मंदिर तथा श्री कैंची हनुमान-मंदिर एवं आश्रम उन्हें प्रदान कर दिये, जिनका सूक्ष्म में वर्णन महाराज जी की उत्तराखण्ड में की गई कुछ लीलाओं के साथ इस पुष्पाञ्जलि में तथा आगे भी किया जा रहा है ।

बजरंगगढ़

बजरंगगढ़ उत्तराखण्ड में बाबा जी द्वारा स्थापित प्रथम हनुमान-मंदिर है । नैनीताल से डेढ़ कि०मी० दूर स्थित नैनीताल-हल्द्वानी मोटर मार्ग में **घाटी** नामक स्थान में बजरी के एक ऊँचे पहाड़ी टीले को बाबा जी ने इस मंदिर की स्थापना के लिए चयन कर लिया । पहाड़ इतना कच्चा था कि धँसता रहता था और इसकी तलहटी के इर्द-गिर्द बनी सड़कों के लिए भी सदा ही खतरा बना रहता था — विशेषकर वर्षा ऋतु में। साथ ही पार्श्व में स्थित **मनोरा** नामक पर्वत श्रेणी में शीतला तथा अन्य रोगों से मृत शिशुओं को दफनाया जाता था । (वहीं पर **शीतला** देवी का मंदिर भी इसी हेतु बना था।) दिन ढलने के उपरान्त कोई **घाटी** की तरफ अकेले जाता भी न था भय के कारण, और रात को गली हुई हड्डियों से निकला फास्फोरस अग्नि रूप में इधर उधर उड़कर स्थान की विभीषिका को और भी अधिक भयावह बना देता था ।

एकादशरुद्रावतार बाबा जी महाराज ने हनुमान जी को उत्तराखण्ड में स्थापित करने की **मंशा** तो बना ली, परन्तु इसके पूर्व इस हेतु जन जन के अंतर में भी हनुमान जी को स्थापित करना भी आवश्यक था । उत्तराखण्ड में तो सदा से ही शैवों और शाक्तों का बाहुल्य रहा है । यद्यपि कुछ वैष्णव भी रहे हैं, परन्तु उनकी आस्था केवल राम और कृष्ण तक ही सीमित रही । वैसे भी बहुल संख्या में भी भगवान शिव के मंदिर तथा शक्ति-पीठ ही स्थापित थे । हनुमान जी के मंदिर एक प्रकार से *नहीं*

के बराबर थे । और हनुमान जी को मात्र वानरी सेना का एक नायक एवं रामदूत के रूप में ही देखा जाता था ।

अतएव, प्रथम तो बाबा जी ने घर घर में अखण्ड रामायण का पाठ — विशेषकर सुन्दरकाण्ड तथा *हनुमान चालीसा (जिस की एक एक चौपाई को बाबा जी **महामंत्र** की संज्ञा देते थे)* का पाठ करवाना प्रारम्भ कर दिया— सामूहिक रूप में भी और एकाकी भी। इस बाह्य क्रिया के साथ साथ उन्होंने अपने संकल्प मात्र से जन जन में हनुमान जी के प्रति निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम एवं भक्ति का संचार कर दिया । वस्तुतः जनता की बाबा जी के प्रति प्रेम-निष्ठा स्वयँ ही हनुमान जी के प्रति निष्ठा-भक्ति का *पर्याय* बन गई ।

महाराज

परन्तु स्थानीय जनता को *उस* **घाटी** के बजरी के पहाड़ पर, जो पार्श्व में ही एक प्रकार की श्मशान भूमि होने के कारण जनता की दृष्टि में सर्वथा *तज्य* एवं *हेय* थी, हनुमान जी का मंदिर स्थापित करने के लिए एकाएक प्रेरित नहीं किया जा सकता था — यह भी बाबा जी भली भाँति जानते थे । अतएव नैनीताल में अपनी अन्य लीलाओं के साथ किसनपुर (कृष्णापुर — नैनीताल से करीब १ कि०मी० दूर घाटी की ओर) से आगे प्रतिदिन एक एक पैरापेट (सड़क के किनारे खड्ड की तरफ टुकड़ों में बनी चहार दीवारी) पर बाबा जी शाम-शाम को बैठ जाते थे । भक्त समुदाय भी वहीं एकत्रित हो जाता । सड़क के किनारे ही चाय भी बन जाती । भक्तों द्वारा लाये गये भेंट-प्रसाद से भण्डारे भी चालू हो जाते और महाराज जी कुछ इने-गिने भक्तों के साथ कभी कभी रात भी वहीं बिता देते । यही क्रम कई दिनों तक रुक रुक कर चला और आगे आगे बढ़ते एक दिन पगडंडी की राह बाबा जी उस बजरी के पहाड़ पर भी चढ़ गये और वहीं आसन भी जमा लिया !! भक्तों की भीड़ भी वहीं आने लगी। दिन के समय माइयाँ भी पहुँच जाती थीं तरह तरह के भोग-प्रसाद लिये । छोटे-मोटे भण्डारे भी चलने लगे वहीं (घोर श्मशान भूमि के पार्श्व में !!) चाय भी बनती, प्रसाद भी वितरण होता, पाठ भी चलते और बाबा जी महाराज का आरती-पूजन भी । ढेरों प्रसाद का वितरण होता रहता । जितना भी, जो कुछ भी प्रसाद रूप आता सब पूरा का पूरा उसी दिन बँट जाता। **खाली नहीं करोगे तो भरेगा कैसे ?** — यही कहते रहते महाप्रभु।

भीड़ बढ़ने लगी । कीर्तन, भजन, सुन्दरकाण्ड एवं हनुमान चालीसा के पाठ गूँजने लगे । संध्या समय सब चले जाते । पर कभी कभी बाबा जी बिना छप्पर-छाँह के रात भी वहीं बिता देते धूनी जलाकर — कुछ **पक्के** भक्तों के साथ ।

महाराज

और जब इस प्रकार स्थान तथा भूमि का परिष्करण हो गया, वातावरण शुद्ध हो गया तो एक दिन बाबा जी कुछ भक्तों से यह कहकर चले गये कि, **"अबकी मंगलवार को थोड़ी सी जमीन खोद जगह बनाकर हरदा (श्री हरीदत्त कर्नाटक) द्वारा बनाये गये हनुमान जी को बिठा देना।"** और इस प्रकार **बजरंगगढ़** की स्थापना का *श्री-गणेश* कर दिया बाबा जी ने ।

कथा लम्बी है और उसके अन्तर्गत महाराज जी की लीलाएँ भी अनेक हैं, पर संक्षेप में — ये ७-८ भक्त लालटेनों के साथ पूरी-पकवान, मिठाई, फल, फूल, धूप, शंख, घंटादि एवं पूजा की अन्य समस्त वस्तुएँ, साथ में कुदाल-फावड़ा लेकर मंगलवार की शाम को उस पहाड़ पर हनुमान-विग्रह को लिये पहुँच गये । कई घंटों तक धँसती बजरी को खोदते खोदते किसी तरह हनुमान जी के विराजने लायक स्थान बनाकर *जब* हनुमान विग्रह को वहाँ शंखध्वनि, घंटा-घड़ियाल वादन एवं हनुमान जी एवं महाराज जी के जैकारे के साथ स्थापित किया गया तो एक कि०मी० दूर जिला जेल के घंटे ने रात्रि के बारह बजाये !!

महाराज

और जब भोग अर्पण कर आरती होने लगी तो विकट आकार के बड़ी-बड़ी सींग वाले दो साँड़ (एक काला और एक सफेद) एकाएक वहाँ प्रगट हो गये — हनुमान जी के चरणों में अपने सींग झुकाते !! (मानो, एकादशरुद्र को **नान्दी** अपने दो रूपों में — एक सात्विक रूप में भक्तों की सात्विक भक्ति का प्रतिरूप और दूसरा रौद्र रूप में भक्तों की रक्षा हेतु दुष्टों का दमन करने के लिए — प्रणाम कर रहे हों !!) यह सब देखकर एक भक्त के भय से चिल्ला देने पर एक साँड़ तो तुरन्त लोप हो गया । दूसरे को जब भोग की पूरियाँ खिलाई गईं तो वह भी उसके उपरान्त

गायब हो गया !! (पहाड़ों में इतने ऊँचे-बड़े-स्थूलकाय साँड कल्पनातीत थे तब।)

महाराज

इस तरह हनुमान जी (अभी अपने लघु रूप में) बजरंगगढ़ में विराज गये । अब वहाँ नित्य सुबह-शाम पूजा, आरती और प्रार्थना होने लगी । हनुमान जी को तरह तरह के भोग अर्पण होने लगे । बाबा जी के वहाँ पुनः आगमन पर जब उन्हें उक्त घटना सुनाई गई तो वे इस घटना में निहित **रहस्य** को छिपाते केवल इतना बोले, **"तुम लोगों ने पहिचाना नहीं । वे दो सिद्ध थे जो हनुमान जी को प्रणाम करने आये थे ।"**

महाराज

कालान्तर में यहाँ महाराज जी की विभिन्न प्रकार की लीलाओं के साथ हनुमानगढ़ी ने अपना वर्तमान रूप ले लिया । साथ में श्री सीता-राम-लक्ष्मण जी का **रघुनाथ** मंदिर और एक शंकर जी का मंदिर भी बन गया। धीरे-धीरे अन्य भवन भी बनते रहे । यहाँ महाराज जी की प्रेरणा से भक्तों द्वारा वर्षों तक अखण्ड नाम-कीर्तन **श्री राम जय राम जय जय राम** चलता रहा। (और अब हर पर्व को तथा मंगलवार/गुरुवार को सामूहिक सुन्दरकाण्ड का पाठ होता है ।)

महाराज

इस सारी क्रिया में केवल लीला-नायक बाबा जी महाराज की अपनी **मनसा-शक्ति** का ही चमत्कार दृष्टिगोचर होता रहा — अन्य सभी यंत्रवत सब कुछ करते रहे — बाजीगर के जमूरों की तरह । स्थानीय लोगों के मन में तो यही शंका बनी रही थी कि बजरी के इस कच्चे पहाड़ पर मंदिर उठ भी सकेगा कि नहीं (एक छोटे विग्रह की स्थापना में तो उक्त दशा हुई थी !!) और यदि उठ भी गया तो ठहर भी पायेगा कि नहीं ? और कि यह मंदिर, *यह स्थान* जनसाधारण द्वारा मान्यता प्राप्त कर पायेगा भी कि नहीं ?

परन्तु महाराज जी की **मनसा-शक्ति** के समक्ष प्रकृति भी क्या कर सकती थी ? एक की जगह तीन तीन मंदिर तथा कई अन्य भवन बन गये

जो आज भी (वर्ष १९९३ में) ३९-४० वर्ष से यथावत अपनी जगह खड़े हैं । यही नहीं, मंदिर बनने के तुरन्त बाद ही बजरी युक्त पगडंडी की जगह मंदिर के द्वार तक पहुँचने के लिए बजरी के पहाड़ की परिक्रमा-सी करती पक्की मोटर रोड भी बन गई जिस पर भारी वाहन भी चलते हैं !!

आज तो इस मंदिर की भक्तों एवं जनसाधारण की मनोकामना पूर्ति हेतु प्रख्यात रूप से मान्यता हो चली है, तथा यह नैनीताल जिले का एक प्रमुख पर्यटन स्थल भी बन चुका है ।

महाराज

हनुमान जी का विग्रह सीमेंट से बनाया गया था। तब महाराज जी की आज्ञानुसार लाखों की संख्या में *राम-नाम* लिखकर भक्तों द्वारा राम-नाम लिखे कागजों को छोटे-छोटे टुकडों में काटकर गारे में मिलाया गया। हनुमान जी का **सब कुछ** तो बन गया पर मुखमण्डल नहीं बन पा रहा था। कारीगर को भी इस कारण हताशा ने घेर लिया, तथा भक्तों के मन में भी क्षोभ एवं निराशा व्याप गई। सभी महाराज जी से मन ही मन प्रार्थना करने लगे। तब एक भक्त (श्री शिवदत्त जोशी) की कन्या रजनी को, जो उस समय बाल्यावस्था में ही थी, स्वप्न की-सी अर्धचेतना में आकाशवाणी सदृश शब्दों में महाराज जी का आदेश सुनाई दिया कि, ***'दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज काहू नहिं व्यापा'*** **का सम्पुट लगाकर अखण्ड रामायण का पाठ सुनाओ हनुमान जी को।** सरल बुद्धि बालिका ने उतनी ही सरल-हृदया अपनी माँ से यह सब कह सुनाया तो उसी परिवार ने पहिले, और फिर अन्य भक्तों ने भी, इसी सम्पुट के साथ अखण्ड रामायण के पाठ पूर्ण कर दिये और तब एक सप्ताह के अन्दर हनुमान जी का मुखमण्डल भी बन गया !! भक्तों में हर्षोल्लास की सीमा न रही ।

परन्तु यह भी महाराज जी की ही एक और लीला थी — वे तो जनता तथा भक्तों के अन्तर में अपने *सभी* मंदिरों के प्रति इसी प्रकार की अनेक दैवी प्रक्रियाओं के माध्यम से पूर्ण आस्था-निष्ठा उत्पन्न करते रहते थे (जैसा अन्य मंदिरों के बारे में आगे वर्णित है ।) इस मंदिर हेतु बाबा जी द्वारा की गई अलौकिक लीलाओं में से कुछ सन्दर्भ इस प्रकार हैं —

हनुमान विग्रह प्रतिष्ठा समारोह हेतु एक वृहद् भण्डारे की योजना बनी । तब गढ़ में न बिजली थी न पानी की व्यवस्था, न लकड़ी-कोयला,

राशन, घी-तेल का ही भण्डारण था और न बर्तन-भांडे ही थे । इन वस्तुओं के लाने हेतु समुचित मार्ग भी न था । तीन दिन रह गये थे भण्डारे को परन्तु इतनी मूसलाधार वर्षा होती रही रात दिन कि थमने का नाम नहीं । जो भक्त बाबा जी के साथ थे यही सोचते रहे कि अब क्या होगा । (शायद किसी को इस लाचारी को देखकर बाबा जी की शक्ति पर ही शंका हो चली हो ।)

सुबह के समय वर्षा कुछ थम-सी गई तो बाबा जी ने लोगों से कहा, **"जाओ, बेकार बैठे हो यहाँ । नीचे सामान लेकर ट्रक खड़ा है, लाओ उसे ।"** तब भक्तगण नीचे पहुँचे तो देखा कि वास्तव में प्रचुर मात्रा में समस्त प्रकार की सामग्री लिए एक ट्रक खड़ा है !!

अब समस्या हुई कि इतनी अधिक मात्रा की भारी सामग्री को बरसात के कारण और भी अधिक क्षतिग्रस्त एवं फिसलनदार हो चुकी बजरी की पगडंडी से ऊपर कैसे चढ़ाया जायेगा ? परन्तु महाराज जी का तो दूसरा ही **खेल** चल रहा था । ठीक *उसी समय* उसी राह से डोट्यालों (पर्वतीय कुलियों) का एक दल गुजर रहा था । समुचित पारिश्रमिक देकर उनके द्वारा बात की बात में सारा सामान ऊपर पहुँच गया !!

सब प्रकार की सामग्री तो आ गई परन्तु प्रसाद पवाने हेतु पत्तलें नहीं आई थीं । विषम परिस्थिति आ गई कि कल भण्डारा है और आज पत्तलें नहीं (जो केवल हल्द्वानी-बरेली से ही आ सकती थीं दूसरे दिन ।) तब पुनः ऐसी ही एक अद्भुत लीला के माध्यम से बाबा महाराज ने पत्तलें भी उपलब्ध करा दीं — गढ़ के ठीक नीचे *उसी समय* सड़क पर जाते एक पत्तलों के व्यापारी से !!

बाबा जी द्वारा सम्पन्न विचित्र सृजनात्मक लीलायें ही थीं दोनों — डोट्यालों एवं पत्तलों के व्यापारी की *ऐन वक्त* पर गढ़ के नीचे उपस्थिति !! घटनाक्रम में उपजी उक्त विकट समस्याओं का *इतनी सहजता* से समयबद्ध निराकरण !!

महाराज

और तभी पुनः भीषण रूप की वर्षा आरम्भ हो गई । सब काम पुनः ठप पड़ गया । तब बाबा जी अपनी कुटी से निकले — द्वार पर खड़े हो काली भूरी जल भरी घटाओं से भरे आकाश की ओर देखते हुए अपने

एक भक्त से बोले, **"पूरन, बड़ी उग्र है, बड़ी उग्र है ।"** (सम्भवतः इशारा पास की श्मशान भूमि से लगे मंदिर की शीतला देवी की ओर था ।) और ऊपर देखे देखे दोनों हाथों से अपने विशाल वक्ष से कम्बल हटाते कुछ गर्जन के साथ बोले, **पवन तनय बल पवन समाना ।**

और देखते देखते तेज हवायें बादलों को उड़ा ले गईं, वर्षा थम गई, आसमान साफ हो गया !! नीचे से कनस्टरों में पर्याप्त जल भी इकट्ठा कर लिया गया । तदुपरान्त भण्डारे हेतु प्रसाद बनना प्रारम्भ हो गया । यद्यपि प्रसाद प्रचुर मात्रा में बनता रहा दिन-रात परन्तु भण्डारे के दिन इतनी अधिक संख्या में स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, युवक-युवती प्रसाद पाने आये कि भण्डारे के दिन शाम तक भी प्रसाद का बनाते रहना आवश्यक हो गया ।

इस बीच घी चुकने लगा था । बाबा जी तक सूचना पहुँची । तब वे तनिक कृत्रिम क्रोध से कुछ तेज आवाज में बोले, **"कैसे खत्म हो गया घी ? जाओ, वहाँ देखो, पानी के कनस्टरों के बीच घी छुपा रखा है किसी ने ।"** और जब खोज हुई तो वहाँ घी भी मिल गया !! पानी को ही मनसा-सिद्ध बाबा जी महाराज ने घी बना दिया — अपनी शक्ति को जनसाधारण से गुप्त रखने हेतु **घी छुपाने** का दोषारोपण-नाटक कर !!

महाराज

जब मंदिर, भवनादि सब बन गये तो एक और वृहद् भण्डारे की मंशा बाबा जी ने कर दी जिसका कोई प्रयोजन उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। ठण्डी का मौसम था । नैनीताल में केवल प्रवासी रह गये थे (तब) ४-५ हजार की संख्या में । अतएव व्यवस्था करने वालों ने उसी अनुपात में भण्डारे की व्यवस्था की । बाबा जी बीच में आये तो इतनी कम सामग्री देखकर असंतुष्ट हो लौट गये । तब और बड़ी व्यवस्था की गई । सबके मन में यही प्रश्न था कि क्या होगा इतनी सामग्री का ? परन्तु जब दो दिन तक पकाये गये हलुवा, पूरी, आलू का भण्डारा प्रारम्भ हुआ तो न मालूम कहाँ से हजारों की संख्या में लोग, जिनमें बहुल संख्या में *केवल* **बच्चे** शामिल थे, आते चले गये और भण्डारे के बाद कोई सामग्री शेष न रही !!

तब कुछ अन्तरंगों से बाबा जी ने कहा था, **"आज यहाँ की सब आत्मायें तृप्त हो गई हैं । अब यहाँ शान्ति रहेगी ।"** (स्पष्टतः इशारा मनोरा श्मशान में बिना संस्कार दफनाये गये शवों की ओर था ।) तभी इस आकस्मिक तथा असामयिक वृहद् भण्डारे के रहस्य का पता चल पाया ।

महाराज

बजरंगगढ़ के प्रारम्भ और विस्तार के मध्य बाबा जी महाराज भक्तों के साथ अपने मनोहारी लीला-कौतुक करते रहे । बाबा जी के आगमन पर नित्य ही बड़ी संख्या में भक्तों तथा दर्शनार्थियों की बजरंगगढ़ में भीड़ लगी रहती थी । एक ओर जहाँ अखण्ड *राम-नाम* चलता रहता वहीं हनुमान जी के सामने सुन्दरकाण्ड एवं हनुमान चालीसा का पाठ और कभी कभी अखण्ड रामायण भी चलते रहते । कई मन मिष्ठान्न, फल, पकवानों आदि का हनुमान जी एवं बाबा जी को भोग अर्पण होता रहता था जो सबका सब *उसी दिन* भक्तों एवं दर्शनार्थियों में प्रसाद स्वरूप वितरण हो जाता था । विशेषकर मातायें बाबा जी को नाना प्रकार के भोग अर्पण करती रहती थीं । माताओं द्वारा *इस* अर्पण का कोई निश्चित समय नहीं होता था — प्रातः सूर्योदय के पूर्व भी भोग प्रसाद बनाकर, आरती सजाकर वे ले आ पहुँचती थीं बाबा जी के समक्ष । बीच बीच में महाराज जी नैनीताल शहर में भक्तों के घर जा जा कर भी *अपनी मोहिनी* की वर्षा कर आते थे ।

महाराज

अब बजरंगगढ़ के ट्रस्टी-भक्तों द्वारा वहाँ बाबाजी महाराज के स्वयँ के मंदिर की स्थापना का भी सूत्रपात कर दिया गया है । (१९९४)

बजरंगगढ़ के प्रवास काल की भक्तों के साथ की गई कुछ अन्य लीलाओं का वर्णन आगे भी दिया गया है ।

महाराज

भूमियाधार हनुमान मंदिर

बजरंगगढ़ की पूर्ण रूपेण व्यवस्था सम्पन्न कर बाबा जी ने उसे एक ट्रस्ट के हवाले कर दिया और फिर बजरंगगढ़ आना भी कम कर दिया । लीला-क्षेत्र बदलने जो थे । पूर्व में भी जब नैनीताल आते थे तो गेठिया-भवाली (काठगोदाम-अल्मोड़ा-रानीखेत मार्ग) के बीच भूमियाधार नामक गाँव में भी आते रहते थे । बाबा जी महाराज इस क्षेत्र में भी *वही* नैनीताल के सदृश लीलायें करते रहते थे । वही भण्डारे, घर-घर डोलना, कीर्तन-भजन-पाठ आदि के मध्य कृपा-लीलाओं की धूम मच जाती । अब तो उन्होंने भूमियाधार में ही अड्डा-सा बना लिया । नैनीताल, कानपुर, लखनऊ, अलीगढ़, इलाहाबाद, हल्द्वानी-किच्छा-बरेली, दिल्ली आदि के भी भक्त समाचार मिलते ही भूमियाधार पहुँच इन लीलाओं के पात्र बन जाते। अधिकतर रातें सड़कों पर, नालों में, गधेरों (पहाड़ी नालों) के ऊपर बने पुलों के नीचे बीत जातीं इने गिने भक्तों के साथ ।

तब एक भक्त, श्री पदम सिंह ने महाराज जी के निवास के लिये अपने दुकान-नुमा भवन को अर्पण कर दिया मोटर रोड के किनारे ही । आसपास के हरिजनों द्वारा भी उसके पार्श्व से लगी अपनी अपनी भूमि के कुछ-कुछ टुकड़े दे देने पर शीघ्र ही भक्तों द्वारा वहाँ एक हनुमान मंदिर की स्थापना के साथ महाराज जी की कुटी, पुजारी का आवास गृह, तथा भण्डार गृह एवं भक्तों के निवास हेतु कमरे भी बना दिये गये । यह मंदिर भी बाबा जी ने भूमियाधार की हरिजन-बहुल जनता का अपने प्रति उनके निर्मल प्रेम के प्रतिदान स्वरूप ही बनवाया । अब महाराज जी ने जब-तब आकर भूमियाधार में निवास करना प्रारम्भ कर दिया, और यहीं से इधर-उधर (हल्द्वानी, बरेली, लखनऊ, कानपुर, अलीगढ, आगरा, इलाहाबाद, दिल्ली आदि) आना-जाना प्रारम्भ कर दिया ।

महाराज

कैंचीधाम

अब आया कैंचीधाम के मंदिर/आश्रम की स्थापना का योग । लगता है कि युग-युगान्तरों के परमपुरुष, त्रिकालदर्शी बाबा जी का ***पूर्व का*** ही संकल्प था कि उत्तराखण्ड के तथा आसपास के क्षेत्रों में बसे उनके

पूर्वकालिक भक्तों/आश्रितों को उनके *अपने प्रति* प्रेमा-भक्ति के प्रतिदान स्वरूप एक *अपूर्व* भेंट देनी है, जिसके लिये उन्होंने पूर्व में ही कैंचीधाम की स्थापना का *मन बना लिया था* । यद्यपि अपना प्रभाव अँचल तो बाबा जी ने अपने इन जन्म-जन्मान्तरों के भक्तों/आश्रितों के ऊपर बाद में (चौथे-पाँचवें दशक में) ही फहराया था, परन्तु इस भेंट की **भूमिका** *धाम की स्थापना के २०-२१ वर्ष पूर्व ही वे सम्पन्न कर चुके थे* !!

हुआ यूँ कि वर्ष १६४२ में कैंची ग्राम निवासी, श्री पूर्णानन्द तिवारी (अब दिवंगत) पीछे छूट गये कुछ मुकद्दमे के कागजातों को लाने के लिये नैनीताल कचहरी से सवारी के अभाव में पुनः पैदल ही कैंची ग्राम लौट रहे थे । सन्ध्या होने को आ गई थी, फिर भी मन में सवारी पा जाने की आशा लिये वे हल्द्वानी-अल्मोड़ा रोड स्थित **गेठिया** नामक बस स्टेशन को पैदल उतर आये । परन्तु अंधेरा होने को आ गया पर कोई सवारी न मिल पाई। हताश हो वे पैदल ही कैंची ग्राम (लगभग १५-१६ कि०मी०) की ओर चल दिये । किन्तु मार्ग में **खुफिया डांठ** नामक स्थान के (तथाकथित) भूत से वे डरते रहे, और जब उस स्थान के करीब पहुँचे तो देखा कि पैरापेट पर कम्बल लपेटे एक स्थूलकाय शरीर विद्यमान है । देखकर वे बेहद डर गये कि भूत का सामना हो ही गया । पर उस व्यक्ति ने जब इनका नाम लेकर उनके इस तरह पैदल जाने का भी प्रयोजन बता दिया तो ये कुछ आश्वस्त तो हुये पर मन में शंका बनी रही । फिर भी उन्होंने उस साधू-से लगने वाले व्यक्ति के चरण स्पर्श किये — केवल औपचारिकता वश। साधू-महाराज ने तब कहा, **"जा, डर मत, आगे ट्रक मिल जायेगा तुझे।"**तिवारी जी ने उसी सशंकित भाव से,पुनः औपचारिकता वश पूछा, **"महाराज, अब फिर दर्शन कब होंगे ?"** (भारत में, विशेषकर पहाड़ों में साधू-जोगियों को वैसे ही **महाराज** शब्द से सम्बोधित किया जाता है । अस्तु,) तिवारी जी का प्रश्न सुनते ही तपाक से उत्तर मिला, ***'बीस साल बाद !! अब जा ।'*** इस उत्तर से और भी अधिक सशंकित हुये तिवारी जी राम राम जपते आगे बढ़ गये परन्तु साधू महाराज की वाणी के अनुसार उन्हें कुछ ही दूर पहुँचने पर ट्रक भी मिल गया उन्हें कैंची तक पहुँचाने को !! फिर भी उनके लिये यह घटना शीघ्र ही **आई-गई** हो गई ।

परन्तु **ठीक *बीस साल बाद*** तिवारी जी को उन्हीं के गाँव कैंची में ही महाराज जी ने अपने वचनानुसार पुनः दर्शन दे दिये !! कैसे ?

कैंचीधाम – प्रारम्भिक अवस्था

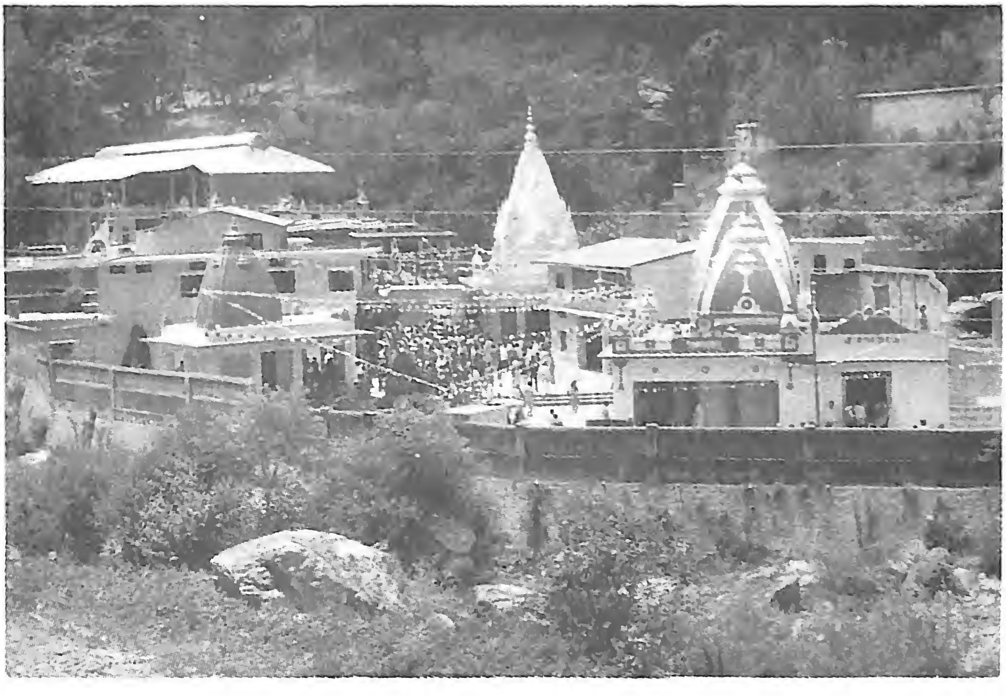

कैंचीधाम – वर्त्तमान स्वरूप

वर्ष १९६२ में महाराज जी श्री सिद्धी माँ तथा उनके पति (अब स्वर्गीय) श्री तुलाराम साह जी के साथ अपने एक भक्त श्री कुन्दन लाल साह को (जो उस समय गम्भीर रूप से बीमार थे) दर्शन देने श्री प्रेमलाल माथुर की कार में रानीखेत जा रहे थे । आधे मार्ग में ही महाराज जी के मुख से एकाएक निकल पड़ा, **"श्यामलाल अच्छा आदमी *था* ।"** श्यामलाल तुलाराम जी के समधी थे । उनके लिये बाबा जी द्वारा ***था*** शब्द का प्रयोग सुनकर श्री सिद्धी माँ का माथा ठनका, और रानीखेत पहुँच कर थोड़ी बाद उनकी शंका की पुष्टि भी हो गई — टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि (जब ये लोग मार्ग में ही थे, तभी) नैनीताल में श्यामलाल जी की हार्ट फेल हो जाने से मृत्यु हो गई !! सर्वदृष्टा बाबा जी ने देख लिया था सब कुछ !! कुछ देर रानीखेत में रहकर ये पुनः नैनीताल को लौट चले ।

परन्तु कैंची ग्राम पहुँचने पर महाराज जी गाड़ी से उतर गये और पैरापेट पर जा बैठे । तिवारी जी को बुलवाया गया । कुछ देर वार्तालाप के बाद **बीस वर्ष पूर्व** महाराज जी के दर्शन की और उनके वचनों की (***बीस साल बाद***) तिवारी जी को स्मृति हो आई !!

तभी तिवारी जी से (जानकर भी अनजान बने) बाबा जी ने खोद खोद कर स्थान के बारे में पूछताछ प्रारम्भ कर दी । नदी पार एक गुफा में उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध सिद्ध, श्री सोमवारी बाबा रहा करते थे धूनी जमाये और पास में बने हवन कुण्ड में हवन भी होता था । बाद में वहाँ **प्रेमी बाबा** भी रहे — आदि आदि । तब महाराज जी ने वह स्थान, वह गुफा देखनी चाही । श्री सिद्धी माँ के साथ बाबा जी नदी पार जंगल में गये, वहाँ *शिला-आसन* पर बैठे, और वर्तमान कैंचीधाम को अपनी चरणरज से विभूषित किया । तदुपरान्त गुफा देखी, हवनकुंड देखा, और धूनी एवं हवनकुंड की भस्मी का निरीक्षण किया ।

दूसरे दिन बाबा जी की आज्ञा से घास एवं कुछ जंगली पेड़ों को हटाकर इस धूनी को चबूतरे से ढक दिया जाने लगा तो जंगलात के हलकारों ने आपत्ति की । बाबा जी ने अपने भक्त, तत्कालीन कन्जर्वेटर तथा चीफ से सम्पर्क स्थापित कर शीघ्र ही *लीज* में कैंची जंगल की वह भूमि, जो आज मंदिरों एवं आश्रम से आच्छादित है, अधिगृहीत करवा ली, और इसके साथ ही कैंचीधाम की स्थापना का भी **श्री-गणेश** हो गया। ***बीस वर्ष पूर्व*** *(१९४२)* की **मनसा-शक्ति** अपना रूप-स्वरूप लेने लगी। वर्ष

१९६२-६३ में ही बाबा जी के लिये **राम कुटी** बन गई । उपरान्त उक्त चबूतरे के ऊपर (गुफा का कुछ भाग लिये) हनुमान जी का मंदिर बन गया जिससे सटकर श्री लक्ष्मी-नारायण मंदिर, शिव मंदिर और कीर्तन भवन (जिसके एक भाग में बाद में बाबा जी ने श्री वैष्णवी देवी के मंदिर की स्थापना की व्यवस्था कर दी थी) देखते-देखते खड़े हो गये । साथ में कुछ आवासीय कुटियाँ भी बन गईं। बीहड़ जंगल एवं बड़ी-बड़ी चट्टानें हटाकर भूमि को समतल कर, दक्षिण की ओर कुछ ऊँचाई में ***अद्वैत आश्रम*** भी बन गया । विभिन्न कुटियों के नाम क्रमशः राधा कुटी, कृष्ण कुटी, विष्णु कुटी, कृष्ण-बलराम कुटी, गोविन्द कुटी, आदि रखे गये । हनुमान जी के मंदिर के पीछे गुफा में अब भी हवन कुण्ड पूर्ण रूपेण सुरक्षित है ।

महाराज

अब बाबाजी महाराज अधिकतर भूमियाधार और कैंची धाम में ही उत्तराखण्ड में प्रवास के मध्य रहने लगे थे । भक्तों, भण्डारों, भजनों, कीर्तनों की दिनों दिन वृद्धि होने से दोनों स्थानों में धूम मच गई । कैंची धाम के प्रतिष्ठापन का दिन महाराज जी ने प्रारम्भ से ही १५ जून नियत कर दिया था — जब वहाँ हनुमान जी की तथा अन्य मंदिरों में **प्रतिष्ठित मूर्तियों** की प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी और यह १५ जून सदा के लिये कैंची धाम में शुद्ध घी में बने मालपूओं के भण्डारे के लिये प्रसिद्ध हो गया, जिसमें हजारों की संख्या में दर्शनार्थी, श्रद्धालु एवं दूर दूर से आये भक्त गण *छक कर* प्रसाद पाते हैं, और *बांध* कर घर भी ले जाते हैं ।

महाराज

प्रतिष्ठा समारोह की सबसे अलौकिक घटना, प्रत्यक्ष-दर्शियों के अनुसार, यह थी कि बाबा जी महाराज ने एक छोटी बाल्टी भर दूध हनुमान जी को स्वयँ अपने हाथों से पिला दिया !! उपस्थित भक्त (श्री किशन चन्द्र तिवारी, आदि) केवल यही देख पाये की बाल्टी का दूध थोड़ी देर में शेष हो गया — केवल एक पतली-सी दूध की धार फर्श पर थी और कुछ दूध हनुमान जी के होंठों पर लगा था !!

महाराज

इसी प्रकार १५ जून, १६७३ को श्री विन्ध्यवासिनी देवी और १५ जून, १६७४ को श्री वैष्णवी देवी के मंदिरों का भी प्रतिष्ठापन श्री कैंची धाम में मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा के साथ सम्पन्न हो गया । श्री विन्ध्यावासिनी मंदिर की स्थापना प्रभू स्वयँ करा गये थे तथा वैष्णवी देवी मंदिर की स्थापना का पूरा प्रबन्ध अपने निर्वाण (१० सितम्बर, १६७३) के पूर्व स्वयँ ही कर गये थे ।

इस कैंची धाम के मंदिरों-आश्रमों की सेवा के संदर्भ में बाबा जी श्री सिद्धी माँ से कह गये थे कि, **"अम्मा, तू देखना, मंदिर और आश्रम की सेवा और और ही (लोग) करेंगे ।"** और *अब* हो भी ऐसा ही रहा है कि कैंचीधाम की महिमा इतनी वृहद् विख्यात हो चली है कि (कुछ पुराने अनन्य सेवक-भक्तों को छोड़) मंदिर-आश्रम की सेवा हेतु हर वर्ष *और और ही* नये-नये उत्साही भक्तों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है जो तन-मन तथा धन से धाम की सेवा में रत हैं ।

और जहाँ पूर्व में १५ जून के भण्डारे में ७-८ हजार की संख्या में भक्त-मण्डली तथा जनता सम्मिलित होती थी, अब उनकी संख्या बढ़ कर ३५-४० हजार से ऊपर जा चुकी है जबकि मंदिर दूर पहाड़ों में जंगलों के बीच साधारण-से गाँव में नदी के पार स्थित है । बाबा जी कह भी तो गये थे — **देखना, एक दिन ऐसा आयेगा कि हजारों की संख्या में लोग कैंची धाम का प्रसाद पाने आयेंगे ।** अब तक पाश्चात्य देशों के सैकड़ों भक्त एवं दर्शनार्थी भी धाम-दर्शन को आ चुके हैं — आते रहते हैं । आगन्तुकों एवं विभिन्न आश्रमों से आये दर्शनार्थियों से यही सुनने को मिलता है कि धाम के प्रवेश द्वार से आगे बढ़ने पर ही परम शांति प्राप्त हो जाती है ।

इस भण्डारे की बढ़ती समस्या थी प्रसाद पवाने हेतु उचित एवं बड़े क्षेत्र की उपलब्धता की — निरन्तर बढ़ती (प्रसाद पाने हेतु आती) जनता को देखते हुए । खुले स्थान में धूप एवं यदा-कदा होती वर्षा के कारण यह सम्भव न हो पाता था । तब आठवें दशक में श्री माँ-महाराज के प्रति समर्पित श्री अर्जुन दास जी एवं विनोद जोशी की सूझ-बूझ के अन्तर्गत धर्मशाले की छत पर एक स्थायी रूप की टीनों की छत डाल दी गई — लोहा, ईंट, सीमेंट द्वारा पक्के स्तम्भों के ऊपर । तब चारों ओर से खुले, पर ऊपर से धूप, वर्षा एवं पक्षियों से सुरक्षित इस कई वर्ग मीटर

क्षेत्र ने, जिसमें एक बार में १५०० से ऊपर की संख्या में जनता भोग प्रसाद पा लेती है, एक गम्भीर समस्या का अत्यन्त सरल रूप से निराकरण कर दिया !! (बाबा महाराज की दया !) इसके साथ ही जनता की *निकासी* हेतु एक *अस्थायी* पुल भी बनाया जाता है हर वर्ष !!

महाराज

काकड़ीघाट मंदिर

कैंची धाम के मंदिरों के निर्माण के साथ कैंची ग्राम से २२-२३ कि०मी० दूर स्थित **काकड़ीघाट** नामक गाँव में भी महाराज जी ने भक्तों द्वारा हनुमान मंदिर की स्थापना करवा दी । यह स्थान पूर्व में श्री सोमवारी महाराज का लीला-क्षेत्र रहा है । उनके समय की धूनी एवं शंकर जी का छोटा-सा मंदिर अब भी सुरक्षित है जिसका जीर्णोद्धार भी ***श्री सिद्धी माँ ने*** *करवा दिया है* । यहाँ मंदिर बनवाकर बाबा जी महाराज ने सोमवारी बाबा की स्मृति को भी उनके भक्तों में पुनः जागृत कर दिया । इसी काकड़ीघाट में हनुमान मंदिर से कुछ दूरी पर स्थित शिव मंदिर में स्वामी विवेकानन्द को प्रथम बार भाव-समाधि लग जाने से एक नई आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त हुई थी ।

इस मंदिर में हनुमान मूर्ति के प्रतिष्ठापन से पूर्व महाराज जी ने एक विचित्र लीला रच डाली । पूर्व में यहाँ नदी पार मंदिर को जाने के लिये एक अत्यंत संकरा पुल था तथा पुल के उस पार से मंदिर तक जाने के लिये एक कच्ची तंग पगडंडी थी जो अक्सर टूट जाती थी । हनुमान जी की मूर्ति ६-७ फुट ऊँची भारी संगमरमर की है । जब इस मूर्ति को नदी मार्ग से उस पार ले जाया जा रहा था प्रतिष्ठापन हेतु तो न मालूम कहाँ से अनगिनत संख्या में बन्दर आकर पुल पर, पेड़ों पर, नदी के इस पार और उस पार एकत्र हो गये और अत्यन्त जोश-खरोश के साथ **चीं चीं** कर शोर मचाते रहे बड़ी देर तक — मानो वानरी सेना अपने **नायक** का स्वागत कर रही हो । इतनी संख्या में ठीक *उसी समय* बन्दरों का वहाँ इक्ट्ठे होकर यह आचरण अप्रत्याशित होने के साथ-साथ बाबा जी महाराज की **सृजनात्मकता** का एक अभूतपूर्व कौतुक था !! (जबकि उस स्थान में इतनी संख्या में बन्दर न तो कभी रहे और न अब दिखते हैं।)

समुचित मार्ग न होने के कारण ६-७ फुट ऊँची संगमरमर की भारी **मूर्ति** भी स्वतः *हल्की* हो गई फिसलनदार पत्थरों से भरे नदी मार्ग से **पार** उतरने को !! (महाराज जी का एक और **खेल** !!)

महाराज

पिठौरागढ़ मंदिर

इसी बीच महाराज जी के उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों में भ्रमण के मध्य उनके आदेशानुसार पिथौरागढ़ (उ० प्र०) में भी भक्तों के द्वारा एक रमणीक टीले पर हनुमान जी की भव्य मूर्ति के साथ एक मंदिर भी बना दिया गया जिसके निर्माण एवं प्रतिष्ठापन में (स्व०) हीरालाल साह (हब्बा जी) एवं उनके पुत्र श्री बसन्त लाल साह जी का अथक सहयोग रहा ।

महाराज

महाराज जी की प्रेरणा से, उनकी निर्वाण-प्राप्ति के बाद भी भक्तों ने, जिसमें तत्कालीन परगनाधिकारी श्री महेश्वर लाल की प्रमुख भूमिका रही, इन्डो-टिबेटन बार्डर के पास **धारचूला** एवं उससे भी आगे, मानसरोवर जाने के मार्ग पर स्थित अन्तिम भारतीय चौकी, **जिप्ती** में भी हनुमान जी को स्थापित कर हमारे देश की उत्तरी सीमा को **एहिमिस** सुरक्षा-सम्बल दे दिया ।

धारचूला मंदिर नेपाल को अलग करती काली नदी के इस पार स्थित है। भारत की ओर के भी तथा नेपाल की ओर के भी इलाके अत्यन्त पिछड़े एवं गरीब तथा एक प्रकार से भक्ति-भाव विहीन रहे थे। पर हनुमान जी के वहाँ विराज जाने के बाद न केवल भारतीय वरन उस पार की नेपाली जनता भी भक्ति-मार्गी बन उठी। साथ में दोनों ही देशों की (धारचूला एवं दरचुला की) जनता में आपसी प्रेम एवं समृद्धि का प्रवेश हो गया !!

जिप्ती में जहाँ एक मुसलमान सैनिक द्वारा मंदिर की नींव डाली गई वहीं एक ईसाई सैनिक ने मंदिर का निर्माण किया !! **सबही धर्मनि के अनुयाई, तुम्हें मनावें शीश झुकाई** वाले बाबा जी का ही एक और कौतुक

था यह भी । उतनी खड़ी चढ़ाई में उतनी ऊँची जिप्ती चोटी तक हनुमान जी सैनिकों के कन्धों पर सवार होकर पहुंच ही गये ।

महाराज

इसी प्रकार गर्जिला क्षेत्र के कोटमन्या नामक एक गाँव में भी भक्तों द्वारा हनुमान मंदिर महाप्रभु की प्रेरणा से स्थापित हो गया (जिसके निर्माण में एक अध्यापक, श्री सुरेश चन्द्र जोशी की प्रमुख भूमिका रही ।)

मंदिर में जब प्लास्टरिंग हो चुकी थी ३/४ भाग से भी अधिक तो घटायें घिर आईं, तथा बूँदें पड़नी प्रारम्भ हो गईं । स्पष्ट था कि कच्चा प्लास्टर बह जाता और गरीब जनता द्वारा चन्दा कर यह निर्माण कार्य नष्ट हो जाता । तब सभी ने हताश होकर महाराज जी से रक्षा हेतु प्रार्थना की और *तभी* उस क्षेत्र में वर्षा बन्द हो गई जब कि आस पास खूब मेह बरसता रहा !!

महाराज

पञ्चम पुष्पाञ्जलि

एकादशरुद्र हनुमान जी

(*बाबा जी महाराज के परिप्रेक्ष्य में*)

जय जय जय श्री भगवन्ता ...... तुम हो साक्षात् हनुमन्ता ।

बाबा जी महाराज ने जहाँ भी मंदिर स्थापित किये वे मुख्यतः हनुमान आराधना हेतु ही । साथ में जो भी अन्य देवी-देवताओं (दुर्गा, विन्ध्यवासिनी देवी, वैष्णो देवी, वृन्दावनेश्वरी, श्रीराम जानकी, श्री लक्ष्मीनारायण, शंकर भगवान, गणेश जी आदि) के मंदिर बने, वे मूलतः जन-मानस की अभिरुचि की तुष्टि हेतु ही बने — संस्कार-बद्ध अथवा पारिवारिक और परम्परागत मान्यताओं से बँधे भक्तों की मनेच्छा पूर्ति हेतु। (वर्ष १९७३, जून माह में कैंची धाम में विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर को इंगित कर महाराज जी ने मुझसे कहा भी था — **"तुम्हारे पहाड़ में देवी को मानते हैं, ताईसों हमने विन्ध्यवासिनी का मंदिर भी बनाय दिया ।"**)

महाराज जी ने हनुमान जी के कितने मंदिर अन्य स्थानों में बनवाये, ज्ञात नहीं, परन्तु जानकारी के अनुसार उनके द्वारा मुख्यतः प्रथम हनुमान मूर्ति गुजरात में मौरवी नामक क्षेत्र के **बबानियाँ** ग्राम में जलाशय के किनारे प्रतिष्ठित हुई थी। इसके उपरान्त उनके द्वारा ग्राम नीब करौरी, (फर्रुखाबाद) में, बजरंगगढ़-भूमियाधार-कैंचीधाम-काकड़ीघाट (नैनीताल) में, परिक्रमा मार्ग (वृन्दावन) मे, हनुमान सेतु (लखनऊ) में (दो मंदिर), पिथौरागढ़ (उ० प्र०) में, पनकी (कानपुर) में, जौनापुर (दिल्ली) में और तारादेवी (शिमला) तथा पोर्ट ब्लेयर (अन्डमान) में बनवाये गये ।

परन्तु अपने **यश**, अपनी **ख्याति** के प्रति सर्वथा उदासीन बाबा जी ने इन मंदिरों-आश्रमों में कहीं भी अपना नाम नहीं आने दिया और सभी मंदिरों-आश्रमों को हनुमान जी के नाम से निर्माण कराने के उपरान्त उनकी समुचित व्यवस्था कर उन्हें विभिन्न ट्रस्टों को सौंपते चले गये — अपने को सर्वथा तटस्थ रखते हुये। यह तो उनकी **तथाकथित महासमाधि** के बाद ही भक्तों ने इन मंदिरों-आश्रमों में बाबा जी महाराज का नाम जोड़ दिया जिसके ही *फलस्वरूप* हर मंदिर, हर आश्रम ***उनका सर्व-सिद्ध नाम*** *धारण कर स्वयँ में उत्तरोत्तर प्रसिद्धि एवं सार्वभौम समृद्धि प्राप्त करने लगा,*

और ***उनका यही नाम****, साथ-साथ, इन मंदिरों आश्रमों में व्याप्त* ***आध्यात्मिक शक्ति*** *का भी* ***श्रोत*** *बन गया ।*

महाराज जी द्वारा हनुमान-मंदिरों के ही निर्माण पर इस विशेष रूप से ध्यान दिये जाने के कारण भक्तों एवं जनता जनार्दन में उनके प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार की धारणायें उत्पन्न हो गईं । कोई उन्हें हनुमान भक्त तो कोई हनुमान सिद्ध और कोई उन्हें स्वयँ एकादशरुद्रावतार हनुमान मानने लगे । बाबा जी महाराज की स्वयँ की लीला-क्रीड़ाओं में भी हनुमान जी के सदृश ही आचरण दिखाई देता था — यथा, सूक्ष्म शरीर (मसक समान रूप) धारण कर बन्द कमरों से **लोप** हो जाना, भीमकाय शरीर बना लेना, भार-हीन हो जाना, वानरी रूप धारण कर लेना, अत्यंत भारी हो जाना, बज्र-सम कठोर देह कर लेना, क्षण-मात्र में कहीं भी पहुँच जाना — आदि-आदि । (ऐसी लीलाओं के कुछ दृष्टांत आगे दिये जा रहे हैं ।) वस्तुतः बाबा जी महाराज **शिव शक्ति** के ग्यारहवें रुद्र-रूप हनुमान जी के ही अवतार हैं ।

महाराज जी स्वयँ भी भक्तों को सदा हनुमान आराधना हेतु विशेष रूप से प्रेरित करते रहते थे, और उनसे विशेषकर ***हनुमान चालीसा***, सुन्दरकाण्ड, बजरंग-बाण, हनुमान बाहुक, आदि का पाठ करवाते रहते थे तथा हनुमान जी की स्तुतियों पर आधारित पुस्तकें भी बाँटते-बँटवाते रहते थे।

बाबा जी महाराज द्वारा (माँ सीता से *अष्ट सिद्धि नव निधि के अजर अमर दाता* का अमोघ आशीर्वाद-प्राप्त विभूति) हनुमान जी की आराधना हेतु विशेष बल दिये जाने के कई कारणों में एक कारण-विशेष यह भी रहा कि समस्त देवी देवताओं के मध्य **केवल** हनुमान जी ही **संकट मोचन** की क्षमता एवं उपाधि से विभूषित हैं । वैसे भी शंकर भगवान के अंशावतार हनुमान जी स्वयँ भी आशुतोष-अवढरदानी हैं और थोड़ी-सी आराधना से ही द्रवित हो भक्त की रक्षा करने एवं उसका संकट दूर करने (तथा भक्त को राम जी के सम्मुख करने) को तत्पर हो जाते हैं (*जिसे ही वे* **राम काज** *का विशेष अंग मानते हैं ।*)

और उनकी आराधना व कृपा प्राप्ति हेतु अनेकानेक विधाओं, अनुष्ठानों, मंत्रों एवं स्तुतियों के मध्य (जिनका अनुसरण एवं निर्वाह कर पाना जनसाधारण के लिये सम्भव नहीं) केवल सुन्दरकाण्ड एवं हनुमान

चालीसा ही, (*विशेषकर हनुमान चालीसा*) सबसे सरल सहज कुंजी है जो अनबूझे-अनपढ़ के लिये भी सर्वथा संभव है । और इसी कारण ही श्री माँ भी *सद्‌गुरु भगवान बाबा जी* द्वारा प्रदत्त इस महामंत्रों वाली हनुमान चालीसा के पाठ को ही बाबा महाराज के सभी धामों में अन्य कार्यक्रमों की तुलना में *विशेष महत्व* देती हैं ।

कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु ने जिस तरह **द्वापर** के अवतार श्री कृष्ण की आराधना की पुनः जागृति हेतु भगवान कृष्ण के अनेक मंदिर बनवा दिये तथा श्री कृष्ण नाम कीर्तन को प्रधानता दिलवाई, और रामावतार सद्‌गुरु रामानन्द जी ने भी यही काम श्री राम-आराधना की पुनः जागृति हेतु किया, उसी प्रकार एकादशरुद्रावतार बाबा नीब करौरी जी महाराज ने भी (भगवान शंकर के अंशावतार) संकट मोचन हनुमान जी के विशाल-रूप एवं भव्य मंदिरों का निर्माण एवं उनमें हनुमान जी की सर्वांगसुन्दर मूर्तियों का प्रतिष्ठापन करवा दिया, तथा जनसाधारण के कष्टों के निवारणार्थ हनुमद-आराधना हेतु श्री हनुमान चालीसा को सबल-समर्थ माध्यम बना दिया ।

प्रसंगवश — हनुमान चालीसा पाठ के प्रभाव का एक अनुभव श्री गण्डा ने यूँ सुनाया — मेरे दोनों पैरों में अक्सर रात के वक्त अत्यंत पीड़ा-युक्त क्रैम्प्स (मरोड़) पड़ जाते थे और मैं विकल हो उठता था । अपनी अमरीका यात्रा के समय मैं इस हेतु दवायें भी ले गया था । एक रात बोस्टन शहर में पुनः ऐसा हो गया । दवाओं ने भी कोई असर न किया और मैं विकल हो रोने-रोने को हो गया । जब काफी समय हो गया और पीड़ा कम न हुई तो मैंने बड़े कातर भाव से श्री हनुमान चालीसा का पाठ प्रारम्भ कर दिया । ३-४ आवृत्तियों के बाद ही मेरी पीड़ा कम होने लगी और धीरे-धीरे लोप हो गई । तब से जब भी मुझे पीड़ा होती है तो मैं श्री हनुमान चालीसा का पाठ प्रारम्भ कर देता हूँ और शीघ्र ही मुझे पीड़ा से मुक्ति मिलने लग जाती है । और अब तो ऐसे मरोड़ों की संख्या भी बहुत कम हो चली है — पीड़ा की भीषणता भी कम हो गई और उसकी अवधि भी । मुझे पूरा विश्वास है कि इस बाधा तथा व्यथा से मुझे शीघ्र ही पूरी तरह मुक्ति मिल जायेगी — केवल श्री हनुमान चालीसा की *महोषधि* से ही ।

नाशे रोग हरे सब पीरा, जपत निरन्तर हनुमद बलवीरा । (एस० डी० गण्डा, रिटायर्ड मैनेजिंग डाइरेक्टर – स्टेट बैंक)

महाराज

श्री हनुमान चालीसा का पाठ करो या पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा से कातर होकर हनुमान जी अथवा बाबा महाराज जी से 'संकट-मोचन' हेतु प्रार्थना की जाय — फलाफल समान ही मिलता है *यदि* दोनों अवस्थाओं में प्रार्थी के अन्तर में सच्चा विश्वास हो अथवा *आर्त्तता* हो।

आई० डी० पी० एल० (ऋषिकेष) के चतुर्थ श्रेणी के एक कर्मचारी के गुर्दे में **पथरी** हो गई । दर्द से बेचैन रहने लगा वह । डाक्टरों ने उक्त रोग के निवारणार्थ *केवल* ऑपरेशन पद्धति ही बताई । एक तो यह ऑपरेशन ही जीवन के लिये खतरनाक होता है, दूसरे उस कर्मचारी के पास इतना धन भी तो न था कि उतना लम्बा खर्च उठा सके ऑपरेशन का। वह लाचार एवं हताश हो गया । उसकी व्यथा बढ़ती गई ।

अन्ततः वह एक दिन बड़ी ***दीन एवं शरणांगतावस्था*** में बाबा जी महाराज के वीरभद्र आश्रम के हनुमान जी के पास आ गया और कातर होकर उनसे प्रार्थना कि, "प्रभो अब *केवल आप ही* मुझे इस कष्ट से उबार सकते हैं । आप ही कुछ कर दो ।"

प्रार्थना कर वह कर्मचारी चला गया हनुमान जी के अन्तर को हिलाकर । फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में उसका दर्द जाता रहा — पत्थर (पथरी) चूर चूर होकर निकल गया !! पुनः डाक्टरों के निदान से पुष्टि हो गई कि, "अब कोई पथरी नहीं है !! गुर्दा एकदम साफ है !!" (केहर सिंह)

(श्री हनुमान चालीसा पाठ के प्रत्यक्ष प्रभाव को दर्शाती कुछ गाथायें आगे भी वर्णित की जा रही हैं ।)

महाराज

इस कलिकाल में केवल **राम** का नाम ही एक मात्र आधार रह गया है जनसाधारण के कल्याण हेतु । कर्मकाण्ड, अनुष्ठानादि तो अब जनसाधारण की पहुँच के बाहर हो चुके हैं — सदियों से उत्पन्न होती कई परिस्थितियों के कारण । इन कर्मकाण्डों, अनुष्ठानादि में भी समय के साथ बहुत सी विकृतियाँ समा चुकी हैं और उन्हें पूर्ण रूपेण सम्पन्न करने-कराने

के लिये भी उपयुक्त पांडित्य एवं साधन दुरूह हो चुके हैं — अधिकतर लकीर पीटना भर रह गया है—केवल आत्म-संतोष हेतु, (बिना अनुकूल अथवा वांछित फल प्राप्ति के) — अथवा आजीविका का साधन-मात्र। इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा भी शंकर भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहला दिया कि, **"एहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ।।** ***रामहि सुमिरिय गाइय रामहिं*** **। संतत सुनिय राम गुन ग्रामहिं ।।** ***जासु पतित पावन बड़ बाना*** **।"** बाबा जी महाराज स्वयँ भी सदा यही कहते रहते थे कि, **"राम राम कहने से ही *सब काम* बन जाते हैं।"** वस्तुतः बाबाजी महाराज के इस **सब काम** में आत्मिक उत्थान भी समाविष्ट था ।

और अपने ही **मूल स्वरूप** में अजर-अमर, अवतारी विभूति — श्री राम के श्रेष्ठतम भक्त — **जाहि न चाहिय कबहुँ कछु** वाले हनुमान जी तो अपनी निस्पृहता के कारण बिना किसी रूढ़िवादी अनुष्ठान के ही प्रसन्न हो अपने हृदयन्तर में **निरन्तर** बसे श्री सीताराम जी के दर्शन भी करा देते हैं !! केवल शुद्ध-सच्चे भाव से इन्हें इनके बल-पराक्रम की **सुध** दिलानी पड़ती है — इन्हें **राम नाम समाधि** से जगाकर कि, **का चुप साधि रहेउ बलवाना । बुधि विवेक विज्ञान निधाना ।। कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिं होहिं नाथ तुम पाहीं ।।** और बस काम बन गया । (प्रसंगवश — मेरी पत्नी द्वारा एक विशेष निवेदन के मध्य महाराज जी ने अपने तईं भी कहा था, **"हमें अब तक क्यों नहीं बताया ? हमें *सुध* दिलानी पड़ती है ।"**)

श्री नारायण नाम का सतत जाप करने वाले ब्रह्मा जी के मानस पुत्र नारद जी भी तो श्री राम से यही वरदान माँग बैठे — ***राम*** **सबहिं नामन तें** ***अधिका*** **। होहु नाथ अघ खग गन बधिका** ।।

और इस राम का नाम लेने की प्रेरणा का मूल श्रोत भी तो ***हनुमान-आराधना*** ही है। बिना हनुमान जी के राम जी भी अपने को ***अपूर्ण*** मानते हैं। बाबा जी महाराज ने भी राम के **शंकर भजन बिना नर,भगति न पावइ मोरि** के सिद्धान्त के अन्तर्गत ही ***हनुमद-भक्ति*** (शंकर-रूप हनुमान जी की भक्ति) को ही राम-भक्ति का माध्यम भी और आधार भी बनाया।

पुनः, मनुष्यों की पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों एवं ***मन*** — इन ग्यारह इन्द्रियों का नियन्त्रण शंकर भगवान के ग्यारह रुद्रों के मध्य

विभाजित है, जिनमें से ***शिव-शक्ति*** की ग्यारहवीं — एकादशरुद्र — की भूमिका में वायु पुत्र हनुमान जी ही **मन** के अधिष्ठाता हैं — वायु से भी अधिक गतिशील **मन** के नियन्त्रक (महाराज जी के शब्दों में **कन्ट्रोलर जनरल**) हैं । मन को नियन्त्रित किये बिना न तो कोई सांसारिक उपलब्धि संभव है और न किसी आध्यात्मिक साधना के आदि, मध्य और अन्त (पूर्णता) की प्राप्ति ही संभव है । और यह **मन** ही मनुष्य की अन्य दस इन्द्रियों को सदाचार अथवा अनाचार की ओर प्रवृत्त करता रहता है — बुद्धि विवेक का भी हरण कर लेता है । अपने *मन* में *बदला लेने की प्रबल भावना* रखने के कारण घोर तपस्या के मध्य अपनी अन्य दस इन्द्रियों की आहुति दे डालने पर भी रावण केवल **दशानन** बनकर रह गया और कौशल नरेश इसी **मन-मधुप** को राघवेन्द्र के श्री चरण-कमलों में **लीन** कर सत्य अर्थ में **दशरथ** बन गये — अन्य दस इन्द्रियों का *पूर्ण भोग* करते हुए भी !!

अस्तु, बाबा जी महाराज ने अपने इन हनुमान-मंदिरों के माध्यम से भक्तों को, आश्रितों को, और जनसाधारण को भी, उनके अनजाने ही, सांसारिक एवं पारमार्थिक उपलब्धि हेतु मन के अधिष्ठाता हनुमान जी की आराधना के प्रति मुख्य रूप से जागरूक एवं सचेष्ट किया ।

इनमें से कुछ मंदिरों में स्थापित हनुमान जी को बाबा जी महाराज ने हनुमान जी के **अपने आराध्य**, श्री राम जी की तरह ही वस्त्रालंकारों से विभूषित किये जाने की भी व्यवस्था करवा दी (कि जगन्नियन्ता राम जी के सर्वप्रिय भक्त को दास की तरह केवल सिन्दूर-लंगोट लपेटे ही क्यों रखा जाये ।) संगमरमर की बनी इन अत्यन्त आकर्षक मूर्तियों को तरह तरह के रुचिकर परिधानों-वस्त्रालंकारों से विभूषित किया जाता है । ऐसी मूर्तियाँ वृन्दावन, कैंची, काकड़ीघाट, लखनऊ, कानपुर, भूमियाधार, पिथौरागढ़, दिल्ली तथा शिमला में प्रस्थापित हैं ।

वैसे तो भारत वर्ष में असंख्य मंदिर-आश्रम बन चुके हैं, बनते जा रहे हैं — कोई पुरातन हैं तो कोई नवीन । ऋषियों ने, मुनियों ने, गुरुओं ने, भक्तों ने तथा सेठ-उमराओं ने भक्ति-भाव से, दान भाव से, लोक-कल्याणार्थ अथवा परमार्थ हेतु, अथवा अपने किसी **प्रिय** की स्मृति में मठों, मंदिरों एवं आश्रमों की स्थापना करवाई । परन्तु बाबा जी महाराज द्वारा जो भी हनुमान मंदिर-आश्रम बनवाये गये वे केवल पूर्व में दिये गये संदर्भ

में ***जन-जन के हितार्थ ही*** कि **रघुबर प्रिय भक्त** हनुमान जी के माध्यम से मर्यादा-पुरुषोत्तम राम जी के प्रति उनकी भक्ति, उनका प्रेम जागृत होकर अक्षुण्ण बना रहे और उन्हें भवताप से मुक्ति दिलाता रहे । जैसा उन्होंने स्वयं अपने श्री मुख से व्यक्त किया था कि, ***इस घोर कलिकाल में गृहस्थों द्वारा अपने घरों में तो पूजा-पाठ होगा नहीं, (अस्तु) केवल मंदिरों द्वारा ही धर्म के सनातन पक्ष की रक्षा हो सकती है, और धर्म-निष्ठ भक्तों के अन्तर में उपजी अथवा व्याप्त आस्था-निष्ठा एवं विश्वास को बनाये रखने के लिए ये मंदिर ही आधार बन सकते हैं*** । और *इसी पक्ष* की तुष्टि हेतु इन मंदिरों-आश्रमों के निर्माण के मध्य बाबा जी महाराज विभिन्न प्रकार की चमत्कारी लीलाएँ भी दर्शाते रहे ताकि इन **सत्व-तत्व** पूर्ण मंदिरों के प्रति परिकरों की निष्ठा, आस्था एवं विश्वास अक्षुण्ण बना रहे ।

बजरंगगढ़, काकड़ीघाट, एवं कैंची के मंदिरों के सम्बन्ध में बाबा जी द्वारा सृजित ऐसी अलौकिक लीलाओं का विवरण पूर्व में दिया जा चुका है । ऋषिकेष, पौड़ी एवं हनुमानचट्टी के मंदिरों के निर्माण अथवा मूर्ति-स्थापन के मध्य **निर्गुण** में प्रविष्ट बाबा जी द्वारा सृजित मनोहारी लीलाओं के विवरण तृतीय सर्ग में दिये जा रहे हैं । इस पुष्पाञ्जलि में वृन्दावन, लखनऊ, शिमला, कानपुर एवं दिल्ली के मंदिरों से सम्बन्धित अलौकिक तथ्य दिये जा रहे हैं । इनमें से हर मंदिर की अपनी अपनी कथा है तथा हर मंदिर बाबा महाराज के स्वयँ की अलौकिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण भी ।

इन मंदिरों में हर दर्शनार्थी को **बिना माँगे, बिना खरीदे** हनुमान जी का प्रसाद दिये जाने की जो व्यवस्था महाराज जी कायम कर गये, उसके पीछे उनका एक ही उद्देश्य था कि हनुमान जी का यह **भोग प्रसाद** पाकर प्राप्त-कर्ता का येन-केन-प्रकारेण उत्थान हो — सांसारिक भी और आत्मिक भी । अब (उनकी महासमाधि के बाद भी) सीमित जन और सीमित साधन-शक्ति से ही इन मंदिरों-आश्रमों में जो नित्य प्रति दर्शनार्थियों को प्रसाद वितरण होता है, आश्रम में प्रवास हेतु आई जनता को भोजन-प्रसाद मिलता है, एवं विशेष अवसरों (स्थापना-दिवस, गुरुपूर्णिमा, हनुमान जयन्ती, राम-नौमी, शरतकालीन पूजा आदि) में वृहद् रूप में भण्डारे आयोजित होते हैं, वह सब बाबा जी महाराज की शाश्वत

मंशा-शक्ति का ही प्रताप है । कैंचीधाम में तो टाइम-बेटाइम पहुँचे लोगों को भी ऐसा भोजन-प्रसाद पवाने की व्यवस्था है । आज के दिन तो केवल वृन्दावन, कैंची, शिमला तथा लखनऊ के मंदिरों में ही वर्ष भर के उत्सवों में कुल मिलाकर दो लाख से भी अधिक भक्तगण तथा जनता को भण्डारा-प्रसाद पवाया जाता है । महाराज जी का कथन भी तो यही था कि ***खिलाओ, खूब खिलाओ और घर के लिए भी बाँध कर दो !!***

और ऐसे दर्शनार्थियों, आश्रम-प्रवासियों एवं भण्डारों में भोग-प्रसाद पाने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है प्रतिवर्ष !! (१९९३)

महाराज

श्री वृन्दावन हनुमान मंदिर एवं आश्रम

वर्ष १९४४ में प्रथम बार ही श्री माँ ने जब बाबा जी महाराज के नैनीताल में एक भक्त, श्री श्रीराम साह जी के घर में दर्शन किये तभी महाराज जी ने श्री माँ को अपने पास बुलाकर धीरे से कहा था — **तेरे लिए वृन्दावन में कुटी बनाऊँगा** !! (अपने *इस कथन* के साथ ही, मानो, महाराज जी ने तभी ही अपनी लीलाओं से सम्बन्धित भविष्य के अनेक घटनाक्रमों में अपने और श्री माँ के **एकीकृत महायोग** को *अनावृत* कर दिया !! *इस तथ्य* की पुष्टि बाबा महाराज की *कथित* **महासमाधि** के उपरान्त के सभी घटनाक्रमों से, जिनका सूक्ष्म वर्णन तृतीय सर्ग में हुआ है, स्पष्ट रूप से हो जाती है, यद्यपि *महासमाधि* के पूर्व *यह तथ्य* **गौण** ही रहा ।) तब हाल ही में विवाह-सूत्र में बँधी श्री माँ भी बाबा जी की इस **रहस्यमयी वाणी** को न समझ सकी थीं । परन्तु त्रिकालदर्शी बाबा जी को तो भविष्य के सभी घटनाक्रमों का पूर्ण ज्ञान था ही, और फिर उनका सिद्ध कथन कैसे अकारथ होता । अस्तु, पाँचवें दशक में ही वृन्दावन में परिक्रमा मार्ग में श्री ठाकुर हनुमान जी का मंदिर एवं आश्रम क्षेत्र अपना वर्तमान स्वरूप लेने लगा, और वृन्दावन में श्री माँ-महाराज जी की (अभी लघु) **कुटी** ही नहीं वरन एक विशाल क्षेत्र में **बाबा नीब करौरी आश्रम** एवं **श्री ठाकुर हनुमान मंदिर** तथा श्री वृन्दावनेश्वरी के भी मंदिर बन गये । (आठवें दशक में ही श्री माँ-महाराज जी की उक्त लघु कुटी को श्री केहर सिंह जी द्वारा एक भव्य एवं विस्तृत-सी कुटी का रूप दे दिया गया जहाँ

श्री माँ दिनभर के विभिन्न प्रकार के श्रम के उपरान्त कुछ एकान्त में विश्राम ले सकें — दिन में भी और रात्रि में भी। इस प्रकार बाबा जी का माँ हेतु कुटी बनाने का *उक्त* कथन महाराज जी की ही इच्छा-शक्ति से साकारता प्राप्त कर गया ।)

परिक्रमा मार्ग में स्थित उस ऊबड़-खाबड़ जनहीन बीहड़ क्षेत्र को, जहाँ केवल करील-गोखरू की झाड़ियों एवं काँटों का साम्राज्य था, तथा जहाँ सूरज ढले जान-माल भी सुरक्षित न रह पाते थे, महाराज जी ने अपनी पावन पद-रज से पवित्र कर **सु-भूमि** बना डाला । भूमि की स्थिति ऐसी थी कि जब श्री माँ ने प्रथम बार उसे देखा तो सहसा उनके मुँह से निकल गया, **"यह कहाँ जमीन ले ली महाराज ? इस सुनसान बीहड़ में कौन आयेगा हनुमान जी के दर्शन करने ?"** तब श्री मुख से यही शब्द निकले थे, ***"देखना, एक दिन यहाँ नगर बस जायेगा ।"***

और **मनसा-सिद्ध** महाराज जी का उक्त कथन आज इतना सार्थक रूप ले चुका है कि आश्रम क्षेत्र के पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, सभी क्षेत्रों में मंदिरों, आश्रमों, आवासीय भवनों, धर्मशालाओं की बाढ़-सी आ गई है । कंकरीली-पथरीली धूल भरी सड़क भी पक्की हो गयी मंदिर बनते ही । स्वयँ आश्रम ही इस **मिनी-नगर** के मध्य में आ चुका है !!

आश्रम के दक्षिण की ओर जो हनुमान मंदिर श्री जैपुरिया द्वारा बनवाया गया, तथा उसमें जो हनुमान-मूर्ति स्थापित है, वह अपने में ही वृन्दावन-धाम का एक अनुपम श्रृंगार बन गई है, जिसकी वस्त्रालंकारों से सुसज्जित अनुपम सुन्दरता देखते बनती है । यह मूर्ति जब प्रतिष्ठापन हेतु वृन्दावन आश्रम पहुँची तो प्रबन्धकों और भक्तों ने इसे खण्डित पाया । बहुत उदासी छा गई आश्रम में कि खण्डित मूर्ति का प्रतिष्ठापन तो हो नहीं सकता, और कि दूसरी मूर्ति न मालूम कब उपलब्ध होगी । अन्तर्यामी-त्रिकालदर्शी बाबा जी सारी स्थिति देख रहे थे । तभी तत्काल कानपुर पहुँचकर कुछ परिकरों के साथ रातों रात चलकर वृन्दावन आश्रम पहुँच गये । अनजान बने बाबा जी महाराज ने लोगों से वस्तुस्थिति पूछ-जान कर कहा, **"कहाँ खण्डित है मूर्ति । सब झूठ बोलते हैं । दिखाओ हमें ।"** और जब **क्रेट** में मूर्ति को पुनः महाराज जी के सामने खोला गया तो मूर्ति कहीं से भी खण्डित नहीं पाई गई !! केवल महाराज जी के अलौकिक-दिव्य दृष्टिपात से ही पुनः पूर्ण हो गई !! अब तो

उसके प्रतिष्ठापन हेतु कोई व्यवधान बचा न रहा । आज हजारों की संख्या में भक्तगण तथा वृन्दावन-परिक्रमा करते उस मार्ग से गुजरते लोगों को हनुमान जी दर्शन ही नहीं देते, उनकी मनोवांछा की भी पूर्ति करते हैं ।

बाबा जी का **तत्त्व-पीठ** मंदिर भी आश्रम के ही प्रांगण में बना है जहाँ उनकी मूर्ति का प्रतिष्ठापन वर्ष १६८१ की बसंत-पंचमी को सम्पन्न हुआ और जहाँ निष्ठावान भक्त बाबा जी से अन्तर्मन से प्रार्थना कर अपनी मनोकामनायें पूर्ण करवा लेते हैं । इस *तत्त्व-पीठ* मंदिर का विवरण तथा धाम में घटी कुछ अलौकिक लीलाओं का वर्णन आगे तृतीय खण्ड में प्रस्तुत है ।

महाराज

हनुमान सेतु लखनऊ

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री की संस्तुति न होते हुए भी बाबा जी महाराज ने गोमती के किनारे शाहँशाह कोठी के पार्श्व में (पाँचवें दशक में) देखते देखते एक हनुमान मंदिर खड़ा करवा दिया । (यह मंदिर तो केवल **भूमिका** मात्र थी बाबा जी महाराज की **मंशा-लीला** की जिसके अन्तर्गत युनिवर्सिटी के सामने एक विशाल हनुमान मंदिर बनना था जिसमें हजारों की संख्या में हनुमान भक्त एवं युनिवर्सिटी के छात्र अपनी मनोकामनायें पूर्ण करवा सकें ।) मंदिर के पीछे बाबा जी के लिए एक कुटिया-नुमा कमरे का भी निर्माण हो गया ।

कुछ काल बाद गोमती में भीषण बाढ़ आ गई । तब उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आग्रह हुआ कि चूँकि मंदिर के कारण बाढ़ के पानी से उस पार सरकारी भवनों को क्षति पहुँचने का अंदेशा हो गया है, इसलिए मंदिर हटा लिया जाये (जिस हेतु सरकार ने २५,०००) रु० की रकम तथा युनिवर्सिटी के सामने एक बड़े क्षेत्र को नये मंदिर के लिए दे देने की भी पेशकश की ।) परन्तु बाबा जी तो जानते थे कि नया मंदिर कैसे बनेगा और कौन बनायेगा । अस्तु, उन्होंने कहला दिया कि **मंदिर नहीं हटेगा — गोमती चाहे तो ले जाये !!** साथ में भक्तों से महाराज जी ने कह दिया कि **हनुमान जी को बाढ़ से कुछ न होगा ।**

गोमती में पुनः २-३ बार उसी प्रकार की भीषण बाढ़ आई । शहर के उस पार के कई क्षेत्र बाढ़ में डूबे रहे । यद्यपि गोमती इस बाढ़ में बाबा जी की कुटिया तो *ले गई* पर हनुमान जी और मंदिर अपनी जगह खड़े रहे और आज भी *यथावत् खड़े हैं* !! पुराने भक्त इस मंदिर में, जिसमें पहुँचने हेतु कोई निश्चित एवं अच्छा मार्ग भी नहीं है, पूर्व की भाँति आज भी आते हैं । (१९६३)

इसी बीच बम्बई की एक निर्माण कम्पनी ने गोमती के ऊपर पुराने जीर्ण-शीर्ण पुल (मंकी ब्रिज) से कुछ हटकर एक नया पुल (वर्तमान हनुमान सेतु) बनाना प्रारम्भ कर दिया था जिसका मुख्य ठेका बम्बई के श्री एस० बी० जोशी को मिला था । परन्तु बीच में कम्पनी मालिक का पुत्र भीषण रूप से रोगग्रस्त हो गया । तभी उसे स्वप्न हुआ कि, **उ० प्र० सरकार द्वारा नये हनुमान मंदिर हेतु प्रदत्त भूमि पर मंदिर बनवा दे ।** तब बाबा जी से आज्ञा प्राप्त कर उसने सहर्ष सरकार द्वारा दी गई २५०००) रु० की धनराशि स्वयँ गृहीत कर तथा उसमें स्वयँ की भी पूँजी लगाकर अपने आर्किटेक्टों द्वारा बनाये गये अद्वितीय आकार के हनुमान मंदिर का निर्माण करवा दिया जिसमें आज वर्ष भर में लाखों की संख्या में दर्शनार्थी आते हैं। बाबा जी महाराज का नाम अपने में समाहित किये यह मंदिर भी पाश्चात्य देशों में स्वतः ही प्रख्यात हो चला है जहाँ सैकड़ों विदेशी भी दर्शनार्थ आ चुके हैं, आ रहे हैं । मंदिर बनते बनते ठेकेदार का लड़का भी पूर्णतः रोगमुक्त हो गया ।

महाराज

पनकी हनुमान मंदिर

कानपुर के पनकी मंदिर में हनुमान जी के प्रतिष्ठापन हेतु बाबा जी महाराज की **मंशा** थी कि इतना वृहद् भण्डारा हो कि जिसमें हजारों-हजारों की संख्या में जनता **प्रसाद** पाये । परन्तु संयोजकों द्वारा केवल सीमित वर्ग एवं संख्या के लिए ही व्यवस्था हो पाई । साथ में **हनुमान जी का भण्डारा प्रसाद** बनाने के लिए भी केवल **डालडा** का ही प्रबन्ध हो पाया था (जबकि महाराज जी के समस्त ऐसे कार्यों में केवल शुद्ध घी का प्रयोग होता रहा— चाहे वह नीब करौरी में एक माह का यज्ञ हो, चाहे हनुमान मंदिरों-आश्रमों में नित्य का भोजन प्रसाद या भण्डारा-

प्रसाद अथवा लड्डू आदि का भोग अर्पित होता हो, और चाहे कोई भी अन्य अनुष्ठान सम्पन्न होता हो।)

और तब कानपुर (पनकी) में भी महाराज जी की इस इच्छा को कौन अवरुद्ध कर सकता था । अस्तु, प्रथम तो **डालडा** ही **देशी घी** में परिवर्तित हो गया !! संयोजक देखते ही रह गये । और फिर संयोजित सामग्री में स्वतः इतनी अधिक वृद्धि होती गई कि बिना बुलाये (!) ही हर वर्ग, हर वर्ण, हर जाति की हजारों-हजारों की संख्या में जनता न केवल प्रतिष्ठापन दिवस में हनुमान जी का प्रसाद पाने टूट पडी वरन आगे के कुछ दिनों तक भी यह सिलसिला जारी ही रहा !! (सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में बची रही !!) लगता था मानों महाराज जी धकेल धकेल कर जनता को भेजते जा रहे हैं पनकी को **अपना** प्रसाद पवाने !! प्रबन्धकों-व्यवस्थापकों का भण्डारा न होकर यह बाबा जी महाराज की **मंशा-शक्ति** द्वारा संचालित भण्डारा हो गया ।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह रही कि प्रतिष्ठा के दिन महाराज जी इलाहाबाद में ही दादा के घर एक कमरे में (साढे तीन-चार घंटे) बन्द रहे — घोर निद्रा (?) में निमग्न !! वहीं से ही रहस्यपूर्ण रूप से संचालन होता रहा क्या ? क्योंकि पनकी में उपस्थित प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार बाबा जी महाराज स्वरूप में भी तथा अन्य रूपों में भी मंदिर के आस-पास ही घूम घूम कर प्रबन्ध संचालित कर रहे थे तथा कई भक्तों से उनकी बातचीत भी हुई, यद्यपि हम सब उस काल दादा के घर उन्हें कमरे में सोते (!) हुए देखते रहे !! (और उनके जागने (!) पर मैंने खिड़की की दरार से स्पष्ट देखा कि बाबा जी ने कम्बल से मुँह बाहर निकाला और उसी समय कमरे में प्रवेश करतीं श्री माँ के हाथ में **कुछ** रख दिया — क्या पनकी हनुमान जी के प्रतिष्ठापन का प्रसाद ?)

महाराज

जौनापुर में हनुमान मंदिर

महाराज जी ने अपने दिल्ली के भक्तों की इच्छा-पूर्ति हेतु एक हनुमान मंदिर वहाँ भी स्थापित करने की **मंशा** बना ली । परन्तु इस हेतु जो स्थान (जौनापुर गाँव) उन्होंने चयन किया वह तब **बसी** हुई दिल्ली से

कई कि० मी० दूर एक ऐसी भूमि थी जो चट्टानों से भरी पड़ी थी तथा आस पास के कृषि फार्म वालों द्वारा **त्यक्त** मानी गई थी क्योंकि वहाँ पानी मिल पाना एक स्वप्न था। परन्तु एकादशरुद्रवतार बाबा जी के लिए कोई भी प्राकृतिक अथवा अन्य अवरोध अवरोध नहीं रह सका कभी भी । आदेश हुआ कि १५०-१६० फीट गहराई तक बोरिंग करो (जबकि आसपास ही अन्य लोगों द्वारा इस प्रकार के प्रयास कई बार विफल हो चुके थे ।) और तब उसमें से जो जल प्राप्त हुआ उसने मंदिर निर्माण एवं मंदिर परिसर की आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं की वरन आसपास की तृषावंत जनता को भी, जिसे जल हेतु बहुत दूर जाना पड़ता था, तृप्त कर दिया ।

यहाँ **शेरांवाली** के अपने पंजाबी भक्तों की संतुष्टि हेतु महाराज जी ने देवी जी की मूर्ति का भी प्रतिष्ठापन करवा दिया ।

महाराज

शिमला में राम-हनुमान मंदिर
(संकट मोचन हनुमान मंदिर)

अपने शिमला प्रवास के मध्य महाराज जी **तारा देवी**, (शिमला से ७ कि०मी० दूर) नामक स्थान में भी जाते रहते थे। स्थान की रमणीयता देख हनुमान जी (बाबा जी) मगन हो गये और वहाँ भी रमना चाहा। परन्तु जब तत्कालीन उप-राज्यपाल (स्व०) राजा साहेब भद्री को महाराज जी ने वह स्थान ऊपर सड़क से दिखाया तो वे अचकचा गये कि ऐसे छोटे एवं जंगलों से भरे स्थान में (जहाँ पहुँचने को केवल ऊबड़-खाबड़ पगडंडी थी) मंदिर कैसे बनेगा, और कि जनता भी इतनी दूर दर्शन हेतु कैसे आ पायेगी ? परन्तु महाराज जी की **मंशा-शक्ति** ने सब कुछ संभव कर दिया और बाबा जी के भक्त, श्री भगवान सहाय जी के राज्यकाल में मंदिर निर्माण का कार्य पूरा हो जाने पर हनुमान जी अपने स्वामी श्री सीता-राम जी तथा अपने अन्य स्वरूप, शंकर भगवान के साथ वहाँ यथा समय विराज गये। अब तो २००-२५० फीट नीचे मंदिर तक जाने को मोटर मार्ग भी बन चुका है, तथा आवासीय भवन, स्कूल आदि भी बन गये हैं। वहाँ अब महाप्रभु का विग्रह भी स्थापित करने की योजना बन चुकी है जिस हेतु मंदिर का शिलान्यास हो चुका है तथा जिस हेतु मूर्ति का निर्माण

श्रीमती गिरिजा देवी, रानी साहेबा (भद्री) द्वारा कुछ वर्ष पूर्व ही करवा दिया गया था।

श्री राम नौमी के महापर्व को यहाँ २०-२५ हजार से ऊपर जनता राम-हनुमान भण्डारे का भोग प्रसाद पाती है और अब तो हर रविवार को भी ऐसे भण्डारे आयोजित होने लगे हैं ।

महाराज

अन्डमान में हनुमान मंदिर

वर्ष १६७१ में अन्डमान-निकोबार द्वीप समूह के ले० गवर्नर श्री महाबीर सिंह एवं उनके मुख्य सचिव, श्री सुन्दर लाल भार्गव बाबा जी महाराज के दर्शनों को आये थे । बाबा जी तो *जहाँ मन चाहे वहीं* अपने को (हनुमान जी को) स्थापित करने को तत्पर हो उठते थे । उन्होंने बातों बातों में इन दोनों को प्रेरित कर अन्डमान में भी हनुमान जी को स्थापित करने का प्रबन्ध कर दिया, और शीघ्र ही वहाँ **पोर्ट ब्लेयर** में एक छोटा सा हनुमान मंदिर स्थापित हो गया जिसकी व्यवस्था के लिये एक छोटा सा ट्रस्ट मण्डल भी बन गया ।

परन्तु बाबा जी भला इतने से ही कैसे संतुष्ट होते । वर्ष १६६४ में बाबा जी की भक्त श्रीमती (ज्ञानो) कोहली के पति श्री आर० कोहली वहाँ जब आई० जी० होकर गये तो उन्होंने बाबा जी की इच्छा-शक्ति से ट्रस्ट मण्डल को प्रेरित कर इस छोटे हनुमान मंदिर के विस्तार की योजना स्वीकृत करवा दी । साथ में बाबा जी का एक बड़ा चित्रराज भी मंदिर में स्थापित कर दिया । बाबा जी का खेल — श्री कोहली की *ऐसी* जगह नियुक्ति और उनके माध्यम से ट्रस्ट मण्डल को प्रेरित किया जाना !! अब हनुमान जी शीघ्र ही एक बड़े और भव्य मंदिर में आसीन हो जायेंगे ।

और कोई आश्चर्य नहीं कि बाबा जी स्वयँ भी वहाँ भी मूर्ति रूप आसन ग्रहण कर लेंगे शीघ्र ही — ऐसी भी योजना बन चुकी है ।

महाराज

श्री राम दूत हनुमान

पवन तनय बल पवन समाना, बुधि विवेक विज्ञान निधाना।
कवन सो काज कठिन जग माहीं, जो नहिं होइ तात तुम पाहीं।।

षष्टम पुष्पाञ्जलि

गजेन्द्र मोक्ष

जो सुमिरे तुमको उर माहीं । ताकी विपति नष्ट है जाहीं ।।

भगवान के **गजेन्द्र-मोक्ष** की लीला किशोरावस्था में पढ़ी थी । बाद में कई बार भागवत सप्ताह के मध्य भी सुनी । सारांश में यह कथा तो इतनी ही है कि ग्राह ने जल-क्रीड़ा करते गजराज का पैर अपने विकराल मुँह में दाब लिया और खींच ले गया उसे गहरे जल में । शक्तिशाली गजेन्द्र ने भी अपना पूरा बल लगा दिया अपने को ग्राह के चंगुल से मुक्त करने के लिए । परन्तु जब नाक-कान समेत अगम जल में डूबने लगा तो मृत्यु-भय से आर्त होकर पुकार उठा प्रभु को — सूँड़ उठाये प्रभु की स्तुति करता । प्रभु भी बहुत दूर द्वारिका में इस आर्त की पुकार को सुन नंगे पाँव ही दौड़ पड़े भवन से बाहर, और द्रुतगामी गरुड़ पर संवार हो आ पहुँचे तुरन्त गजराज की मुक्ति हेतु । चक्रधार से ग्राह का मुँह काट छुड़ा दिया गजराज को । प्रभु के प्रति ***सच्चे हृदय से समर्पण*** की *इस पुकार* से भगवान के आसन को इस प्रकार हिला देने के कारण भगवान की इस विशाल सृष्टि में एक प्रकार से नगण्य-सा गजराज **गजेन्द्र** बन गया, जिसकी यह **पुकार** ही अब **गजेन्द्र-मोक्ष** का नाम लिये एक महान स्तुति बन गई है — सब प्रकार की मुक्ति हेतु ।

परन्तु कथा का सारगर्भित तथ्य तो था — ***जब* लगि गज *अपनो* बल बरत्यो, नेक सर्‌यो नहिं काम । *निर्बल* है बलराम पुकार्‌यो** (सब तरफ की आशा छोड़), **आये *आधे नाम* ।**

क्या ऐसा कर भगवान ने अपने ही **विरद** — कि, **अन्तर से सब प्रकार की आशा *छोड़* अनन्य भाव से मुझे पुकारने पर मैं भक्त की आर्तता का हरण कर लेता हूँ** — का निर्वाह किया ?

अथवा, **ऐसा कर गजराज की *केवल* प्राण रक्षा की ?**

अथवा, **गजेन्द्र की आर्त पुकार में *निहित आस्था-निष्ठा एवं विश्वास की* रक्षा की ?**

वस्तुतः ये तीनों ही तथ्य *गजेन्द्र मोक्ष* की इस क्रिया में समाहित हैं ।

द्रौपदी ने भी जब तक पाण्डवों के बल-पौरुष की आशा की थी, और फिर **लाज** की रक्षा हेतु स्वयँ भी चेष्टा की, कुछ न हो पाया । परन्तु उसके आर्त-असहाय होकर अपने दोनों हाथ ऊपर उठा प्रभु को पुकारने पर श्यामसुन्दर स्वयँ ही **वसन रूप** प्रगट हो गये — द्रौपदी की **लाज** उघरने न दी ।

और प्रह्लाद ने तो जीवन-रक्षा की भी याचना नहीं की — केवल **हरिनाम** का ही भरोसा किया — प्रभु **नृसिंह** बन गये !!

बाबा जी महाराज की विभिन्न कल्याणमयी लीलाओं पर मनन करने पर पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भक्तों की प्राण-रक्षा तथा उनके विश्वास, उनकी आस्था-निष्ठा की रक्षा हेतु **संकटमोचन एकादशरुद्रावतार** बाबा जी महाराज भी *सदा यही* करते रहे — प्रत्यक्ष में भी, परोक्ष में भी — अपितु, इससे भी एक कदम आगे — ***बिना आर्त पुकार के भी*** — *भाँय-कुभाँय* स्मरण-मात्र से उन्हें पुकार भर देने पर ही (***जो सुमिरे तुमको उर माहीं, ताकी विपति नष्ट है जाहीं*** को चरितार्थ करते हुए) — यहाँ तक कि, जो उनके भक्त नहीं हैं, परन्तु जिन्होंने केवल आर्त होकर (उन्हें तो नहीं, पर) भगवान को पुकारा हो, *उसको निराश होकर* **कोसा** हो — उनके साथ भी यही किया । इस हेतु मूल में तो **विरद** भी सदा एक ही रहा — **दया, केवल दया** — जिसके फलस्वरूप अनेक गजेन्द्र, अनेक द्रौपदी, अनेक प्रह्लाद बन गये — पर साथ में प्राण, आस्था, निष्ठा एवं विश्वास की भी स्वतः रक्षा होती रही ।

इन श्रेणियों के सभी **आर्त-असहायों** की सच्ची पुकार पर उन्हें व्याधियों, आपदाओं से मुक्ति दिलाने, अथवा उनकी आस्था-निष्ठा एवं विश्वास की रक्षा करने के लिए बाबा जी महाराज या तो स्वयँ प्रगट हो जाते, या किसी अन्य माध्यम का प्रयोग कर देते । यही पुकार ही महाराज जी के लिए **गजेन्द्र की पुकार** बन जाती थी — ***आज भी बन जाती है।*** ऐसी अहैतुकी दया-कृपा की अनेक लीलायें हैं ।

महाराज

क्ले-स्क्वायर (लखनऊ) के श्री जमुना दत्त पाण्डेय जी बाबा जी महाराज के निष्ठावान भक्तों में से थे । स्वभाव के सरल पाण्डे जी को एक दिन सन्ध्या समय अपने समकक्षी-हम उम्र वृद्ध जनों के साथ टहलते

हुए एक अफवाह सुनने को मिली कि बाबा जी महाराज एक जघन्य (?) अपराध के भागी होने के कारण बरेली जेल में बन्द हैं !! अपने एक विश्वसनीय साथी के मुँह से यह सब सुनकर आप अत्यन्त विकल, विक्षुब्ध मानसिक अवस्था में घर पहुँचे । बार-बार इस घटना का स्मरण हो आने से चित्त में उत्पन्न बेचैनी के कारण आप न तो ठीक ढंग से सन्ध्याकालीन पूजा-अर्चना ही कर पाये और न सुचित्त हो भोजन-प्रसाद ही पा सके । कारण पूछे जाने पर अपनी अस्वस्थता बता दी, परन्तु घर में किसी से भी असली रहस्य नहीं बताया कि आज उन्होंने अपने परम पूज्य इष्ट-सम बाबा जी के लिए कैसी अनहोनी सुनी है ।

रात को भी बिस्तरे पर करवटें बदलते रहे, हृदय में इस अत्यन्त गहन-गंभीर चोट के कारण । जहाँ एक ओर इस अनहोनी पर सहसा विश्वास न ला पा रहे थे (बाबा जी के प्रति निष्ठा-भक्ति के कारण) वहीं अपने विश्वसनीय मित्र द्वारा सुनाई गई इस घटना ने मानो इनके बुद्धि-विवेक को झकझोर कर रख दिया था । लाख प्रयास करने पर भी, तर्क-वितर्क करने पर भी रंच मात्र चैन न मिल पाया । और चैन नहीं मन में तो नींद कहाँ आँखों में ? उठकर बैठ गये जाप करने, पर कोई विश्राम न मिल पाया । अन्त में मन में यह विकल्प ले लिया कि ***अगर यह सब सत्य नहीं है, झूठा है तो भोर होने के पूर्व ही बाबा जी स्वयँ आकर दर्शन दे देंगे, अन्यथा नहीं*** ।

पहले इसी हेतु पुनः जाप करने लगे, पर चित्त न जमा तो **गजेन्द्र-मोक्ष** स्तुति लेकर बैठ गये । सुबह ब्राह्मबेला तक न मालूम कितने पाठ कर डाले **गजेन्द्र-मोक्ष** के । बाबा जी के न आने पर हताशा भी घेरे जा रही थी । परन्तु तभी भोर होने के लगभग दरवाजे पर दस्तक पड़ी बाबा जी की आवाज के साथ — **"जम्ना, जम्ना** !!" (पूर्व में जब भी आते थे तो इनकी बहू, शान्ता का नाम लेकर पुकारते थे, और इस बार जम्ना!!) उछलकर दरवाजा खोल बाहर आये। तब तक दूसरे दरवाजे से निकलकर परिवार के कुछ सदस्य प्रणाम कर चुके थे । बाबा जी को देख, सदा गम्भीर रहने वाले पाण्डे जी विफर कर बाबा जी के चरणों में ऐसे लोट गये जैसा पूर्व में कभी नहीं किया । अपने भावपूर्ण अश्रुओं से महाराज जी के चरण भिगो दिये, और महाराज जी के बार बार **उठ-उठ** कहने पर भी २-३ मिनट ऐसे ही पड़े रहे चरणों में ।

गजेन्द्र को मृत्यु-सम महान आपदा से मुक्ति जो मिल गई थी !!

और तभी साथ में आये श्री उमा दत्त शुक्ला बोले कि — *महाराज जी तो कानपुर जा रहे थे। नवाबगंज पहुँचते पहुँचते कहने लगे* कि,**"गाड़ी लौटाओ । चलो तुम्हें जम्ना के घर शान्ता के भजन सुनवायेंगे ।"**

अपने भक्त की आस्था-निष्ठा-विश्वास पर चोट न सह सके महाप्रभु। अपने इस गजेन्द्र की पुकार सुनकर उसे व्यथा से मुक्ति दिलाने दौड़ पड़े अन्य रूप का बहाना लेकर ।

और फिर अधिक न रुके वहाँ — भजन भी नहीं सुने शान्ता जी के। चाय पी-पिलाकर पुनः चल दिये कानपुर को । *केवल बाद* में ही पाण्डे जी ने प्रभु की *इस दया में निहित तथ्य का रहस्योद्‌घाटन* किया अपने परिवारी जनों से ।

महाराज

बाबाजी महाराज एक दिन एकाएक भीमताल (नैनीताल) में एक भक्त, श्री देवी दत्त जोशी के घर पहुँच गये । थोड़ी देर में वहाँ कई अन्य भक्त भी एकत्र हो गये । कुछ इधर-उधर की बातें करने के बाद सहसा बाबा जी ने दो-तीन भक्तों से कुछ दूर पर बने एक पुराने शिव मंदिर के पीछे एक खण्डहर हो चुके भवन की ओर भेजते हुए कहा ***"जाओ, वहाँ एक आदमी और एक माई कमरे में बन्द हैं, उन्हें ले आओ ।"*** भक्त लोग आज्ञानुसार चले गये और वहाँ बन्द कमरे का दरवाजा खटखटाया पर कोई न बोला तो लौट आये । तब तक बाबाजी दूसरे भक्त के घर पहुँच चुके थे । वहीं सब बातें बाबा जी को बताई गईं । तब बाबाजी ने कुछ और भक्तों को भेजा कि, ***"जाओ, उन्हें पकड़कर ले आओ ।"*** लोगों ने वहाँ जाकर जोर जोर से दरवाजा पीटा और चिल्लाये। तब एक अधेड़ व्यक्ति ने खिड़की खोलकर टूटी-फूटी हिन्दी में पूछा "क्या है ? क्यों परेशान कर रहे हो ?" इन लोगों ने कहा, "तुम्हें बाबा नीम करौली जी बुला रहे हैं।" बुड्ढे ने साफतौर पर चलने को मना कर दिया। तब इन लोगों ने उसे पहले तो समझाया और फिर धमकाया कि दरवाजा नहीं खोलोगे तो इसे तोड़कर हम तुम्हें जबरदस्ती ले जायेंगे । तब मजबूर होकर उन्होंने दरवाजा खोल दिया, और इन दोनों स्त्री-पुरुष को भक्त लोग घेरकर ले चले । महाराज जी के पास पहुँचने पर पहले तो इन

दोनों को उन्होंने बहुत डाँटा और कहा, **"क्या तुम समझते हो कि तुम भूखे रहकर भगवान को डरा सकते हो ? अपने प्रारब्ध के दण्ड भोगना नहीं चाहते ? पर क्या भगवान अपने भक्तों को ऐसे ही आसानी से मरने देंगे ? लो, प्रसाद पाओ ।"** और पूर्व से ही उनके लिए मँगाई गई पूरी, सब्जी, मिठाई उनके सामने रखवा दी । पहले तो वे अपनी जिद में अड़े रहे परन्तु बाबा जी के बहुत समझाने पर उन्होंने भोजन कर लिया । अन्य लोगों के लिए यह सब नाटक-सा लगता रहा रहस्य भरा ।

वास्तव में हुआ यूँ कि दक्षिण भारत का यह वैष्णव दम्पति श्री बद्रीनाथ दर्शन हेतु आया था । धनी परिवार के इन लोगों ने सब कुछ छोड़कर शेष जीवन भजन-पूजन-यात्रा में बिताने का विचार कर लिया था। परन्तु बद्रीनाथ से लौटते वक्त चोर-बदमाशों ने उनका सब कुछ — धन, जेवर, कपड़े — लूट लिया था । पास में बचे द्रव्य से वे किसी तरह रानीखेत होते हुए भीमताल तक पहुँच सके थे । अपनी भक्तिपूर्ण यात्रा का यह फल देखकर उन्होंने आमरण अनशन का संकल्प ले अपने को उस निर्जन स्थान में कोठरी में बन्द कर लिया था । भूखे-प्यासे वे तीन दिन तक भगवान की इस निरंकुशता को *कोसते* रहे । भगवान के प्रति उस वैष्णव दम्पति का यह रोष और उनकी आस्था-विश्वास पर यह चोट महाप्रभु न सह सके और उनके ***विश्वास*** की रक्षा हेतु भीमताल पहुँच गये।

भोजनोपरान्त उनके कुछ सुचित्त हो जाने पर महाराज जी ने उन्हें उनके गन्तव्य तक का यात्रा-भाड़ा आदि देना चाहा । पहले तो वे यह दान लेने को सहमत न हुए पर, जब बाबा जी ने उन्हें अपना पता देकर कहा कि, **"घर पहुँचने पर भेज देना"**, तो वे उसे लेकर अपने घर चले गये।

महाराज

श्री केहर सिंह जी की पत्नी को संग्रहणी हो गई और वे मरणान्तक रूप से अस्वस्थ हो चली थीं। पेट में कुछ भी न रह पाता था। शरीर सिकुड़ कर केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया । कोई भी इलाज कारगर साबित नहीं हो रहा था । केहर सिंह जी दु:खी हो उठे कि अब मेरे इन चार छोटे-छोटे बच्चों को कौन संभालेगा ? तभी श्री आर० पी० वैश्य द्वारा (जो दौरे पर नैनीताल जा रहे थे) केहर सिंह जी ने अपनी पत्नी के स्वास्थ्य के बारे में सूचना महाराज जी तक पहुँचा दी । केवल

इतनी-सी पुकार थी इस **गजेन्द्र** की अपने भगवान के प्रति और बाबाजी ने भी तब केवल इतना भर ही कहा, **"इसमें कहने की क्या बात है ? केहर सिंह हमारा भक्त है ।"**

और अन्ततोगत्वा उनकी पत्नी का शरीर *शान्त* हो गया । लखनऊ में उनके बारे में आगे कुछ सोचा जा रहा होगा तभी कैंचीधाम में उपस्थित बाबा जी महाराज श्रीमती कमला सोनी से सुबह दस बजे बोल उठे,— **"केहर सिंह की बहू (पत्नी) मर गई है । वह बहुत दुःखी है पर हम ऐसा नहीं होने देंगे । केहर सिंह हमारा भक्त है ।"**

और इधर लखनऊ में अपनी लीला पर पर्दा डालने के लिए बाबा जी ने सिंह साहब की लड़की, कुसुम को प्रेरित कर *बायोकेमिक* दवाओं का एक मिश्रण श्रीमती सिंह के मुँह में डलवा दिया जो जड़वत महिला के मुँह के अन्दर न जा सका । परन्तु महाराज जी की लीला तो अपना काम कर ही रही थी, और ४०-४५ मिनट मृत रहने के बाद श्रीमती सिंह पुनः *जी* उठीं, तथा उसके बाद साढ़े पाँच वर्ष और रहीं इस संसार में !! उनका इलाज करने वाले डाक्टर को जब सिंह साहब ने धन्यवाद दिया तो उन्होंने कहा, **"मिस्टर सिंह, इसमें मेरा कोई हाथ नहीं था, यह तो केवल भगवद् कृपा से ही बच गई हैं ।"**

(बाबा जी की उनसे की गई उक्त वार्ता श्रीमती सोनी ने बहुत बाद में लखनऊ आकर स्वयँ केहर सिंह जी को सुनाई।)

इससे भी आश्चर्यपूर्ण घटना तब घटी जब उसी दिन साढ़े तीन बजे शाम केहर सिंह जी को श्री एस० के० चौधरी का गौतम पल्ली (लखनऊ) से फोन मिला कि बाबा जी मेरे घर पधारे हैं और आपको याद कर रहे हैं । केहर सिंह जी के वहाँ पहुँचने पर न तो बाबा जी ने उनकी पत्नी के बारे में कुछ पूछा और न इन्होंने ही उस रोज सुबह हुई घटना का जिक्र किया । आधे घंटे के भीतर दो-दो रसगुल्ले एवं समोसा-चाय पाकर बाबा जी चले गये एक तरफ, और ***अब तू जा*** सुनकर सिंह साहब भी घर आ गये ।

उस दिन लखनऊ में बाबा जी ने किसी अन्य भक्त को दर्शन नहीं दिये — ***वे तो सुबह से ही कैंची धाम में ही बराबर विराजमान रहे थे*** !!

महाराज

सिपाहीधारा (नैनीताल) निवासी श्री रमेश चन्द्र पाण्डे जी की कन्या, शांता तब १५-१६ वर्ष की आयु की होंगी । मकान के आगे खेलता उनका भाई पप्पू एकाएक मूर्छित हो गया और थोड़ी ही देर में उसके हाथ पाँव ऐंठ गये, पुतलियाँ उलट गईं, शरीर ठंडा पड़ गया, श्वास-प्रच्छ्वास बन्द हो गया । रोना-धोना मच गया । मृत-प्राय बालक को घर वाले रोते हुए प्रांगण से घर के भीतर उठा ले गये । पुनः सचेत-सजीव करने के सभी उपाय व्यर्थ साबित हुए । इतने में शान्ता जी आ गईं और जब उन्होंने यह हाल देखा तो माँ की गोद से पप्पू को छीनकर पूजा घर में ले जाने लगीं। तभी सबने एतराज किया कि *ऐसी* हालत में (तथाकथित मृत अवस्था में) पूजा घर में क्यों ले जा रही है पर वे न मानी और पप्पू को महाराज जी के चित्र के आगे रख तीन बार जोर से चीखीं — **महाराज ! महाराज !! महाराज !!!** बस इतना ही — न तो यह कहा कि मेरे भाई को बचाओ और न उन्हें कोसा (कि आपके रहते यह अन्धेर ?) परन्तु कुछ ही क्षणों में पप्पू के हाथ-पाँव सीधे होने लगे, पुतलियाँ भी सीधी हो गईं, नब्ज वापिस आ गई, शरीर में ताप संचारित होने लगा । सन्ध्या तक बहुत कुछ ठीक हो गया पप्पू !!

दूसरे दिन बाबा जी महाराज के दर्शन करने जब शान्ता जी अपनी माँ के साथ बजरंगगढ़ गईं तो महाराज जी ने केवल इतना भर कहा, **"कल तूने हमें तीन बार जोर से पुकारा था !!"**

महाराज

इलाहाबाद की घटना है। अन्य भक्तों के साथ मुझे भी महाराज जी विन्ध्यवासिनी माँ के दर्शनों को ले गये थे। एक तो माँ के दर्शन, वह भी महाराज जी के साथ । परम आनन्द की प्राप्ति हुई।

कुछ अरसे बाद मेरे माता-पिता भी इलाहाबाद आ गये। उन्हें प्रेरित कर मैं उन्हें भी विन्ध्यवासिनी दर्शन को ले चली। वहाँ मेरे पिताजी गंगा जी में तैरने के लिये जल में उतर गये। पर युवावस्था की बात और थी। कुछ दूर तैर कर शायद वे अपना संतुलन खो बैठे और डूबने-से लगे। हम किनारे पर खड़े देखते रहे। देखते-देखते लगा वे अपने हाथ पानी में मार कर संतुलन ठीक करना चाह रहे हैं। पर धीरे-धीरे वे जल में नीचे जाने लगे। हम बहुत घबरा गये। थोड़ी ही देर में वे गंगा जी में गले तक डूब गये। तब मैं घबरा कर पुकार उठी **'महाराज'**। तभी एकाएक एक व्यक्ति

मये कपड़ों के गंगा जी में कूद गया और पिताजी का हाथ पकड़ किसी तरह उन्हें किनारे खींच लाया। वे बदहवास हो चुके थे घबराहट और थकान से। हम उनके उपचार में लग गये।

तभी मुझे ख्याल आया कि उस व्यक्ति के लिये सूखे कपड़े दे दूँ कि वह ठंड से बच सके। पर पलटने पर वह व्यक्ति दिखा ही नहीं बहुत ढूंढने पर भी।

बहुत अरसे बाद कैंची में महाराज जी को पूरी कथा बताकर पूछा, "महाराज, वह व्यक्ति कौन होगा ?" महाराज जी ने केवल इतना कहा, "तूने किसको पुकारा था ?"

इतना ही कहकर महाराज जी ने स्पष्ट कर दिया कि वह व्यक्ति कौन था !! (शकुन्तला साह)

महाराज

हम कई महिलायें उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा हेतु हरिद्वार पहुँच गई थीं और जैसा हम करती आ रही थीं — कैंची धाम में, वृन्दावन में तथा अन्य धामों में — हम मुँह अंधेरे ही स्नान को निकल पड़ी थीं। उस दिन समय का भी कुछ अनुमान नहीं रहा। *हर की पौड़ी* पहुँचने पर देखा कि एकदम वीरान है। बिजली की रोशनी जहाँ तक पहुँच रही थी वहाँ तक तो उजाला था — बाकी चारों ओर घुप अंधेरा। नहाते नहाते अंधेरे में मैं कुछ आगे बढ़ गई तो अपना सन्तुलन खो बैठी और जल के वेग से मेरे पाँव उठ गये — मैं प्रवाह के साथ बह चली। जब मैं अपने को रोक पाने में असमर्थ हो गई तो चिल्लाई, **"अरे ! मैं बह गई।"** यह सुनकर साथ में आई अध्यापिका मुझे बचाने गंगा जी में कूद गई। पर एक तो जल-प्रवाह का वेग और ऊपर से मेरे भारी-भरकम शरीर का वजन— कहाँ झेल पाती वह दुबली-पतली महिला। उधर बदहवासी में मैंने उसे जकड़ लिया तो वह भी मेरे साथ बह चली। कुछ देर बाद मैं इतना पानी पी चुकी थी कि अचेत हो गई। चेतना लौटने पर पाया कि मैं पौड़ी से दूर पहिले पुल के पास प्लेटफार्म पर पड़ी हूँ। धीरे-धीरे मैं कुछ अधिक चैतन्य और स्वस्थ हुई।

तब साथ की महिलाओं ने बताया कि हमको डूबते देख लीला भाई (अब स्वर्गीया) रोते हुए प्लेटफार्म पर बहाव की तरफ दौड़ती हुई चिल्लाती रहीं — ***महाराज ! हरिप्रिया डूब रही है, बचाओ।*** तभी सहसा कम्बल

ओढ़े एक आदमी वहाँ प्रगट हो गया और उसने अपना कम्बल फेंक पानी में छलाँग लगा दी तथा थोड़ी देर में हम दोनों को किनारे खींच लाया। उसी ने मेरे पेट से बहुत सारा पानी निकाल दिया। परन्तु *तब* हममें से किसी को भी यह ध्यान न रहा कि वह व्यक्ति कौन था। अपना काम कर वह *बिना* कुछ बोले चला भी गया।

इस लीला का स्पष्टीकरण महाराज जी ने स्वयँ किया, हमारे कैंची लौटकर उन्हें प्रणाम करते ही — नाराजी की मुद्रा में केवल इतना भर कह कर — **"चली जाती हैं आधी रात को ही स्नान करने। फिर हमें बचाना पड़ता है !!"** (हरिप्रिया, नैनीताल)

महाराज

श्री ओंकार सिंह (तब) एस० एस० पी० के पद पर कानपुर में तैनात थे और श्री किशनचन्द्र, आई० सी० एस० वहाँ के कलैक्टर थे। कानपुर में गंगा जी में भीषण बाढ़ आई हुई थी। दोनों अफसरान अपने मातहतों के साथ एक बड़ी नाव में बैठकर बाढ़ का मुआइना करने निकल पड़े। तभी बीच धार में पहुँचकर पता चला कि नाव में तो छेद हो चुका है और पानी भरने लगा है। सबके प्रयास के बाद भी नाव से पानी उलीचना असंभव हो गया। गंगा जी का आर-पार जान पाना असंभव था। मृत्यु निश्चित रूप से सामने आ चुकी थी। तभी ओंकार सिंह चिल्ला उठे, पागलों की तरह — **गये, महाराज !** और तभी नाव के डूबते डूबते न मालूम *कहाँ से* एक बहुत बड़े तने वाला, जड़ सहित तथा अपनी शाखा-प्रशाखा लिए एक पेड़ डूबती नाव से *इस तरह* आकर लग लिया कि न तो शाखाओं ने नाव को उलटा और न जड़-तने ने नाव को धक्का ही दिया !! आनन-फानन दोनों अफसर तथा मातहत, नाविक, आदि नाव से कूदकर पेड़ की शाखों को पकड़ते उस पर चढ़ गये और तने पर अपनी अपनी जगह सुनिश्चित कर बैठ गये। देखते देखते नाव पानी में **गड़प** हो गई।

अब दूसरी आश्चर्य जनक घटना यह हुई कि तेज हवा, ऊँची लहरों एवं जल के भीषण वेग के साथ यह पेड़ कभी उन्नाव की तरफ जाये तो कभी कानपुर की तरफ। परन्तु ऊँची लहरों तथा हवा के कारण न तो पेड़ कभी डगमगाया, न करवट ली इसने, और न उलटा !! पर धीरे-धीरे पानी के वेग के साथ बड़ी देर बाद एक-डेढ़ किलोमीटर बहकर

कानपुर की तरफ बालू में किनारे पर आकर अटक-सा गया । इसके पूर्व कि प्रवाह इसे पुनः ढकेल ले जाता, सबके सब किनारे पर कूद गये।

यह घटना श्री किशन चन्द्र ने, जो बाबा जी महाराज को कतई नहीं मानते थे, स्वयँ मुझे लखनऊ में सुनाई । (केहर सिंह)

महाराज

इन्हीं ओंकार सिंह जी की महाराज जी ने इनके **गये महाराज** चिल्लाने पर एक बार और भिन्न परिस्थितियों में रक्षा की । आप श्री हरीराम जोशी के साथ बरेली से लखनऊ लौट रहे थे अपनी कार में । रोजा (शाहजहानपुर) से कुछ पूर्व पूरी तरह धू-धू कर जलता हुआ एक पेड़ इनकी कार के आगे सड़क पर पलट गया । गति-प्राप्त कार उस जलते पेड़ के अंक में समाने वाली ही थी कि चिल्ला उठे श्री ओंकार सिंह — **गये, महाराज** ! कार जलते पेड़ की शाखा में उलझ कर रुक गई ।

परन्तु इतने बड़े हादसे के बावजूद न तो ये दोनों आग से झुलसे और न इन्हें कोई खरोंच आदि ही आई !! उससे भी बड़ी बात यह हुई कि कार की पेट्रोल टंकी में भी आग नहीं लगी ।

क्षतिग्रस्त कार के पुनरोद्धार में भी केवल १२००/- रु० खर्च करने पड़े !! (केहर सिंह)

महाराज

हेमदा का बड़ा पुत्र, रब्बू *तब* जमशेदपुर में विजय मशीनरी (उषा सेल्स) में सेल्स-ब्रान्च में था । सेल्स के सिलसिले में वह राँची गया था । अपने काम के बाद एक साझे की टैक्सी से वह जमशेदपुर वापिस आ रहा था । चाईबासा से काफी पहिले टैक्सी का ब्रेक फेल हो गया और उस पहाड़ी ढाल वाली सड़क पर टैक्सी बिना ब्रेक-क्लच कंट्रोल के नीचे को दौड़ पड़ी — तेज, और तेज । स्थिति समझकर २१-२२ वर्ष का रब्बू जोर से चिल्ला उठा, **महाराज !** उसका इस तरह चिल्लाना था कि एक चौड़े मोड़ पर टैक्सी *एकाएक* घूमकर चक्कर लगाने लगी जब कि सरदार ड्राइवर उसे केवल मोड़ पर स्टीयरिंग घुमाकर नीचे जाती सड़क पर लाना चाहता था — नीचे खड्ड में *गिरने से बचाने* मात्र के लिये । इस तरह तीन-चार चक्कर लगाने के बाद टैक्सी स्वयँ ऊँचाई की ओर मुँह करके रुक गई ।

तभी सरदार जी बोल उठे, ***"आज कौन भाग्यवान बैठा है मेरी टैक्सी में कि आई मौत टल गई ।"***

महाराज जी की कृपानुभूति करता रब्बू दूसरी सवारी लेकर जमशेदपुर पहुँच गया सकुशल — दूसरा जन्म लिये । (मुकुन्दा)

महाराज

कैनेडियन महिला, सुनन्दा मार्कस बाबा जी महाराज की बड़ी भक्त है । यूँ तो उसका पति, देवर, श्वसुर आदि भी बाबा जी के भक्त हैं, पर सुनन्दा का विशेष ही तौर पर महाराज जी से लगाव रहा । परन्तु एक भारतीय साधू पर इस कदर समर्पित होने के कारण उसकी माँ (एक अमेरिकन महिला) उससे तो चिढ़ने ही लगी थी, उससे भी अधिक बाबा महाराज से चिढ़ गई कि उसकी लड़की पर कैसा जादू कर दिया है इस भारतीय साधू ने । अपने रोष में वह बाबा जी महाराज को गालियाँ भी देती रही । सब कुछ जानते हुये भी त्रिकालदर्शी बाबा जी उसके इस व्यवहार के प्रति सदा ही निरपेक्ष रहे । (**याद तो करती है मेरी, गाली देकर ही सही, कुढ़ कर ही सही** ।)

इसी दौरान सुनन्दा की माँ विदेश यात्रा पर निकलीं। अन्य स्थानों में होते हुये वे डेनमार्क आ पहुँचीं। इधर उनकी थैली भी सिकुड़ चुकी थी। और कुछ अर्थाभाव उन्हें सताने लगा था। साथ में वे बीमार रहने लगी थीं और हालत बिगड़ते-बिगड़ते एक रात वे अपने होटल के कमरे में अचेतावस्था में जाने लगीं। उनमें इतनी भी शक्ति नहीं रही कि उठकर होटल मैनेजर से इस विषय में सहायता के लिये भी कह सकें। उन्हें परदेश में इस एकान्त कमरे में अपनी मृत्यु साफ साफ दिखाई देने लगी। इस असहायावस्था में रोते हुये वे प्रलाप करने लगीं, **"ओ सुनन्दा के बाबा! कहाँ हो तुम ? मेरी सहायता क्यों नहीं करते"**, आदि आदि। तभी कुछ देर बाद बन्द दरवाजे से ही डाक्टर के वेष में एक **हब्शी** आ पहुँचा उनके पास। उसने पहले इन्हें इन्जेक्शन दवा आदि सब दी जिससे इन्हें बहुत आराम हो गया और ये सो गईं । इन्हें यह भी होश नहीं रहा *तब* कि उस डाक्टर से पूछें कि — तुम्हें किसने भेजा ? और तुम्हारी फीस कितनी है? तथा, तुम मेरे बन्द कमरे में कैसे घुस आये ? आदि। (बाबा जी ऐसी लीलायें करते वक्त मन-बुद्धि को अपने पास कैद भी तो कर लेते थे)

सुबह सूर्योदय के पूर्व ही वही व्यक्ति पुनः आ गया और इनसे बोला, ***"मेरी कार बाहर खड़ी है आप चलिये, आप को हवाई अड्डे तक छोड़ दूँ । आपका जहाज कुछ देर बाद न्यूयार्क को रवाना हो जायेगा । आपका टिकट बन चुका है ।"*** और ऐसा कहते उसने मुख्तसिर रूप से इनका सामान पैक किया और इन्हें अपनी कार में बैठा कर ले चला । ये फिर भूल गईं पूछना कि, ***"तुम्हें कैसे मालूम कि मैं न्यूयार्क जाना चाहती हूँ"***, और कि, ***"होटल का हिसाब कैसे हुआ, किसने किया ?"***

हवाई अड्डे पर इन्हें जहाज में बिठाने के पूर्व इनका टिकट इन्हें देकर वह डाक्टर कार में बैठा और चला गया — हालैण्ड से न्यूयार्क तक के लम्बे सफर के हवाई किराये के हिसाब किताब के बारे में *बिना कुछ बात किये* !!

बाबा जी की इस लीला का वर्णन मुझे सुनन्दा ने स्वयँ कैंची धाम में सुनाया । (केहर सिंह)

महाराज

बजरंगगढ़ में भक्तों के बीच बैठे महाराज जी सहसा अपने हाथ फैलाते हुये (*ऊपर से गिरती किसी चीज को पकड़ने की मुद्रा में*) बोल उठे, **"ले, बच गया ।"** महाराज जी के इस विचित्र से लगने वाले आचरण पर एकत्रित भक्त समाज हँसने लगा — बिना कुछ समझे । महाराज जी भी हँसने लगे । (पर कौन समझ पाया है कभी भी महाराज जी की ऐसी लीलाओं में निहित तथ्य और सत्य ।)

तब तीसरे दिन कानपुर से आई एक कृतज्ञ महिला ने महाराज जी को प्रणाम करते हुये कहा, "*महाराज, मेरा पाँच वर्ष का बच्चा छत से गिर गया था । मैं तब चीख उठी,* **महाराज** *और तभी मकान के नीचे से गुजरते हुये एक आदमी ने ऐसे (अपने हाथ उसी तरह फैलाये हुये जैसे महाराज जी ने फैलाये थे) हाथ फैलाकर मेरे बच्चे को अपनी गोद में थाम लिया !! बच गया महाराज जी आपकी कृपा से। वरना .....* "

भक्तों की समझ में तब आ पाया महाराज जी के हाथ फैलाने का रहस्य । (पूरनदा)

महाराज

इन प्रसंगों के विरोधाभास में अपना एक अनुभव श्री सुशीतल बनर्जी ने (जो भारत के प्रधानमंत्री के सचिव हुआ करते थे) इस प्रकार सुनाया —

मेरे पिताजी बाबा जी के अनन्य भक्त थे । तब बाबा जी नैनीताल हमारे घर पधारे थे । एकाएक वे बड़ी जोर से सिसकियाँ लेने लगे और कम्बल से अपना मुँह छिपा लिया । काफी देर रोने के बाद वे उठ खड़े हुए और जाने लगे । पिताजी ने रोका भी, पर वे न माने । तब मैं भी उनके साथ लग लिया । बाबा जी सीधे कैलाखान होते हुए पैदल मार्ग से निकल पड़े, और सीधे सेनेटोरियम पहुँच कर बड़ी तेजी से *एक कमरे की ओर बढ़ उसमें घुस गये* । मैंने देखा कि वहाँ एक मरीज अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा था । बाबा जी को देखते ही वह अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला, — **"महाराज, मैं बड़ी देर से आपको ही याद कर रहा था दर्शनों के लिए । आप आ गये ।"** उखड़ती साँसों से इतना कहते उसने बाबा जी के ही समक्ष प्राण त्याग दिये ।

उक्त भक्त की पुकार में बाबा जी के दर्शन हेतु जो आर्तता थी, उसने बाबा जी का आसन हिला दिया । बाबा जी की *इस दया-मूर्ति* के दर्शन कर मेरा अन्तर भर आया । (सुशीतल बनर्जी)

महाराज

ऐसी ही आर्त पुकार को सुन बाबा जी ने लखनऊ पहुँचकर श्री संघ (तब प्राचार्य, बिड़ला विद्या मंदिर, नैनीताल) को तथा श्री हब्बा जी को भी उनके अन्तिम क्षणों में दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया ।

महाराज

वर्ष १९५० की बात है । ग्रीष्म काल था । बाबा जी महाराज एकाएक नैनीताल से चल दिये । हम भक्त भी साथ लग लिये । हल्द्वानी से लखनऊ वाली ट्रेन में हम सब महाराज जी के साथ बैठ गये । कहाँ जाना है, किसी को पता न था । नौ बजे के करीब किच्छा स्टेशन पहुँचने पर बाबा जी उतर पड़े गाड़ी से । हम सब भी उतर गये । तब किच्छा में रोशनी का कोई प्रबन्ध न था और आबादी भी न्यून ही थी । अंधेरे में ही हम सब एक चाय की दुकान के सामने एक पेड़ के नीचे बैठ गये । तब मुझे महाराज जी ने किच्छा के थानेदार को बुला लाने को कहा । थाना करीब एक

कि०मी० दूर एक निर्जन स्थान पर था । अंधकार, उस पर जंगल का रास्ता । मैं किसी तरह एक फर्लांग चल पाया था कि महाराज जी पीछे से एक ट्रक में आ गये अन्य भक्तों के साथ । मुझे भी बिठा लिया गया ट्रक में । थाने के सामने ट्रक रोककर एक वृक्ष के नीचे हम सब बैठ गये । उस समय रात के ग्यारह बज चुके थे । पेड़ के पास कई अनजान आकृतियों को देखकर पहरे का संतरी सशंकित होकर पास आकर पूछने लगा तो महाराज जी ने कह दिया, **"हम डाकू हैं ।"** पहरेदार डर गया । तब एक भक्त ने उसे थानेदार को बुला लाने को कहा, पर वहाँ थानेदार होता तो आता । संतरी ने भी उसकी अनुपस्थिति के बारे में कुछ नहीं बताया और भीतर जाकर थानेदार की पत्नी से डरते हुये सब बातें बता दी कि डाकू आये हैं । उत्सुक स्त्री तब चहारदीवारी से झाँकने लगी । सभी ने आश्चर्य से देखा कि बाहर को देखते ही **महाराज!** कहती वह स्त्री दौड़ती आई और महाराज जी के चरणों में लोट गई । संतरी मुँह बाये देखता ही रह गया। महिला ने महाराज जी से घर चलने का आग्रह किया तो महाराज जी थाने के क्वार्टर के बरामदे में बैठ गये, कहते हुये कि, **"तेरा पति घर में नहीं है, हम अन्दर नहीं आयेंगे ।"** बरामदे में ही चाय आई और फिर भोग आदि भी । तब महाराज जी ने महिला को भीतर जाकर *किवाड़ बन्द कर* सो जाने की आज्ञा दी ।

पूर्व में सबने देखा था कि एक पुलिस कर्मी महिला से बहुत घुलमिल कर निःसंकोच बातें कर रहा है, परिवार के सदस्य की तरह । पर्वतीय सरल स्वभाव की वह महिला उसके आचरण को समझ नहीं पाई थी । थानेदार को सर्किल इन्स्पेक्टर पहिले ही डाकुओं को पकड़ने के *बहाने* वहाँ से हटा चुका था । उसका थानेदार की अत्यन्त सुन्दर स्त्री के लिये कुछ ***दूसरा*** ही इरादा था, जिसमें थानेदार के मातहत और वह पुलिस कर्मी भी शामिल थे । परन्तु महाराज जी के आ जाने एवं वहीं जम जाने से उन सबका कलेजा बैठ चुका था ।

सुबह चार बजे महाराज जी उठकर चल दिये । वहाँ से कुछ दूर पर मोटर साइकिल में आता थानेदार, बादाम सिंह भी दिखाई दे गया । उसे रोककर महाराज जी ने दुष्टों के षड़यंत्र के बारे में सब बता दिया । (कि किस तरह उसकी स्त्री का अपहरण होने वाला था) और उसे आज्ञा दी कि इस विषय में *बिना शोर किये* अपनी पत्नी को नैनीताल उसके

सास-ससुर के पास भेज दे । फिर महाराज जी और हम सब पुनः हल्द्वानी (नैनीताल) आ गये । (पूरनदा)

(क्या अपनी स्थिति से अनभिज्ञ *इस* द्रौपदी ने महाराज जी को पुकारा भी था कि उसकी *लाज* रखने प्रभु स्वयँ दौड़ पड़े ? – लेखक)

महाराज

लखनऊ के एक मुसलमान भक्त के बरेली में रहने वाले सम्बन्धी ने एक फकीर से धन प्राप्ति हेतु याचना कर डाली । फकीर ने भी मौज में आकर उसे अरबी-फारसी में एक मन्त्र बता दिया और कहा कि चालीस दिन इसे जपना और तब एक आकृति प्रगट होगी जो तुम्हारा मनोरथ पूरा कर देगी । पर इन चालीस दिनों के जप के मध्य उस व्यक्ति का मन पलट गया, और जब आकृति सचमुच प्रगट हो गई तो उसने ईश्वर दर्शन की याचना कर डाली । इस पर वह निम्न स्तर की आकृति (जिन्न) रुष्ट हो गई और उसे तरह तरह से सताने लगी । उसका खाना, पीना, सोना, चैन से कार्य करना सब हराम हो गया — यहाँ तक कि सोते सोते उसकी खाट भी पलट जाती । वह व्यक्ति दिन पर दिन सूखता चला गया । वह फकीर भी, जिसने वह मंत्र दिया था, उसके लिये कुछ न कर सका । टोने, टोटके आदि भी सब बेकार हो गये उस जिन्न के आगे । उलटे वह जिन्न और भी अधिक उग्र हो उठा ।

तब किसी ने उसे ***बाबा नीम करौली*** जी के पास जाकर फरियाद करने को कहा । मरता क्या न करता । वह मुसलमान याचक इस हिन्दू बाबा को खोजता खोजता आ ही गया उनके पासं और अपना दुखड़ा गाकर रोने लगा बुरी तरह, और बाबा जी से मुक्ति की प्रार्थना करने लगा। बाबा जी भला अपने को कैसे ***प्रगट*** होने देते सबके समक्ष ? सो बोले, **"तुमसे झूठ कह दिया किसी ने । हम कुछ नहीं जानते । हाँ, *यह कम्बल जो हमको एक साधू ने दिया है, तुम ओढ़े रहो* । शायद तुम्हारी तकलीफ दूर हो जाये ।"** और ऐसा कह अपना कम्बल उतार कर उसे दे दिया ।

बस क्या था । कम्बल ओढ़ते ही जिन्न गायब !! और उसको ऐसी शान्ति मिल गई मानों मीलों जेठ की दुपहरी में तपती बालू के ऊपर नंगे पाँव चलने के बाद पीपल की नम छांव हासिल हो गई हो । पर बाद में जब उस व्यक्ति को पता चला कि *यह कम्बल* तो बाबा जी महाराज का

ही था तो वह तन-मन से उनका मुरीद हो गया, और जब-तब आकर उनके चरणों में वह कम्बल रखकर ***बैटरी चार्ज*** (अपने भाव में कम्बल की शक्ति को पुनः जागरूक कर) लेता !! (स्मृति सुधा से)

महाराज

अलौकिक उपचार-लीलायें

जापै कृपा दृष्टि तुम करहू । रोग शोक दुख दारिद हरहू ।।

बाबा जी द्वारा अपनी अलौकिकता-पूर्ण लीलाओं तथा अपनी शक्ति के द्वारा अपने भक्तों-आश्रितों को असाध्य रोग-व्याधियों से मुक्त करना उनकी ***गजेन्द्र मोक्ष*** **लीलाओं का ही एक पक्ष था** । ऐसी लीलाओं का कोई पारावार न था — कभी भी, कहीं भी पुकारे जाने पर — बिना पुकारे गये भी — बाबा जी महाराज प्रत्यक्ष-अप्रत्क्ष रूप से अपने इन भक्त आश्रितों को कठिनतम रोग व्याधियों से उबारते रहते थे। *आज* भी तो यही लीलायें कर रहे हैं जिनमें से कुछ का विवरण यत्र-तत्र यहाँ तथा ***तृतीय सर्ग*** में सुलभ है । इन पर मनन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये लीलायें भी उनकी दया का ही प्रतिबिम्ब हैं और यही ***दया*** ही उनकी इन मोक्ष-लीलाओं का मुख्य आधार है जिसके लिये, जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, इन ***गजेन्द्रों*** को किसी भी शर्त या अनुबन्ध में बंधना आवश्यक न था ।

महाराज

श्री केहर सिंह जी की जीभ के नीचे माँस का एक बड़ा लोथड़ा उभर आया जो उन्हें खाने-पीने में कष्ट देता रहा । डाक्टरों ने परीक्षण के बाद निदान किया कि यह *कैन्सरस ग्रोथ* है । केहर सिंह जी बहुत दुखी हो गये कि — कैन्सर का कोई इलाज नहीं है, बच्चे छोटे हैं, मेरे बाद इनका क्या होगा, बाबा जी भी पता नहीं कहाँ हैं, उन्हीं से कुछ कहता — आदि ।

तभी कुछ ही अर्से बाद महाराज जी आ पहुँचे लखनऊ। और उस दिन जब शाहंशाह कोठी के पास (गोमती किनारे) मेहरोत्रा जी एवं प्रेमलाल जी के साथ बाबा जी मिले तो पहले तो उन्होंने सूरज बाबू से कहा कि, **"मेरे लिए पानी ले आ।"** फिर प्रेमलाल जी से कहा— **"दाँत खोदने को एक सींक ले आ।"** जब दोनों विदा हो गये तो केहर सिंह जी

को पास खींचकर कहा, **"अब बता, क्या कहना चाहता है ।"** विह्वल होकर चौधरी साहेब ने अपनी दशा कह अपना दुखड़ा रोया । तभी बाबा जी ने उन्हें अपने सीने से चिपटा लिया और अपनी दाहिनी हथेली से उनके सिर को कई बार जोर से मल दिया, फिर चेहरे पर भी हाथ फेर दिया — और फिर छोड़ दिया, पर कहा कुछ नहीं ।

कुछ ही दिनों में वह *कैन्सरस ग्रोथ* कहाँ गई — पता न चला !! डाक्टरों के लिये भी यह एक अजूबा ही बना रहा ।

महाराज

करीब चालीस वर्ष पूर्व — मेरी पत्नी बहुत बीमार हो गई । बचने की कोई उम्मीद नहीं रह गई थी । मेरे पास एक ही आसरा रह गया था — महाराज जी का निरन्तर स्मरण । पत्नी के लिए दवा लेने गया तो रास्ते में किसी से पता चला कि महाराज जी बरेली आये हैं। मैंने दवाखाने में डाक्टर का नुस्खा दिया और कहा कि घर भिजवा देना दवायें। खुद मैं डाक्टर भण्डारी के घर भाग लिया, पर वहाँ महाराज जी नहीं मिले। आठ बजे रात तक एक पेड़ के नीचे बैठा उन्हीं की याद करता रहा। तब एक व्यक्ति से पता चला कि बाबा जी कमिश्नर, लाल साहेब के घर पर हैं। मैं भी रिक्शा से वहीं पहुँच गया। परन्तु चपरासी ने भीतर नहीं जाने दिया। मैं बाहर ही महाराज जी को *दीनता से* पुकारता रहा अन्तर में और तभी महाराज जी बाहर निकल आये मेरी आर्त पुकार सुनकर और कहा, **"रिक्शा ला, तेरे घर चलते हैं ।"** लाल साहब ने लाख कहा पर महाराज जी उनकी कार में नहीं बैठे । रिक्शे में ही हम घर आ गये। घर पहुँचकर महाराज जी सीधे मेरी पत्नी के कमरे में पहुँचे और उनके पलंग के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गये । तभी उन्होंने अपने चरण उठाकर पलँग पर रख दिये । पत्नी ने प्रयास कर किसी तरह अपना सिर उठाकर चरणों में माथा छुवा दिया और इसके साथ ही उनकी रही-सही नब्ज भी छूट गई !! मेरे पिता और बेटे हाहाकार कर रो उठे पर बाबा जी चिल्लाकर बोले, **"नहीं, मरी नहीं है — आनन्द में है।"** और ऐसा कह पत्नी के गाल पर चपत मारी । आधे घंटे के भीतर नब्ज वापिस आ गई !!

तब साढ़े दस बजे रात बाबा जी ने **हिमालया** कम्बल माँगा। श्री दयानारायन खत्री जी की दुकान से कम्बल आ गया जिसे बाबा जी ने

खुद ओढ़ लिया और *अपना ओढ़ा हुआ कम्बल* पत्नी के ऊपर डालकर चले गये।

बाबा जी दूसरे दिन फिर आये और पत्नी की नब्ज उनके चरण छूते ही फिर छूट गई !! तब महाराज जी बोले, **"माई हमें बहुत परेशान करती है । हमें बैठना पड़ जाता है ।"**

इसके बाद तो पत्नी बिना इलाज-पानी के ही पूर्णतः स्वस्थ हो गईं। (प्यारेलाल गुप्ता – बरेली – १९६१)

महाराज

उक्त घटना के कुछ वर्ष बाद पत्नी पुनः बीमार पड़ गईं । सारा मुँह फला गया । गले तक फफोले पड़ गये न दवा भीतर जा सके न कुछ भोजन-पानी । किसी दवा, इन्जेक्शन का कोई असर नहीं हो पाया । तब घबराकर मैं सीधे कैंचीधाम को भागा । सारी व्यथा बाबा जी से कही । उस समय महाराज किसी भक्त द्वारा लाई एक कचौड़ी दाँत से काट रहे थे । वही कचौड़ी देकर मुझसे बोले, **"जा, लेजा, माई को खिला देना।"** मैंने अर्ज की, "महाराज, पानी तक तो उनके मुँह में जा नहीं रहा है । यह कचौड़ी कैसे खा पायेंगीं वे ?" तब महाराज जी ने पुनः जोर देकर कहा, **जा । ले जा, खा लेगी । सब ठीक हो जायेगा ।**

लाचार होकर उस कचौड़ी को लेकर मैं बरेली लौट आया और उसे पत्नी को दे दिया । पत्नी ने पहले उस कचौड़ी को भरी आँखों से माथे पर लगाया, और फिर मैं आश्चर्य से देखता रह गया कि धीरे-धीरे उन्होंने पूरी कचौड़ी खा डाली !!

और, जैसा महाराज जी के श्री-मुख से निकला था, वही हुआ । शीघ्र ही सब ठीक हो गया !! (प्यारेलाल गुप्ता – बरेली)

महाराज

वर्ष १९५१ में मैं अपनी पत्नी, कमला जी के साथ बैठा चाय पी रहा था । तब हम फॉरेस्ट क्वार्टर्स (हल्द्वानी) में रह रहे थे । पत्नी का स्वास्थ्य एक-दो माह से ढीला पड़ता जा रहा था । चाय पीते पीते मैंने देखा कि उनकी ठोड़ी धीरे धीरे टेढ़ी होती जा रही है तथा बायाँ नेत्र

खुला का खुला रह गया है । देखते देखते चेहरा विकृत हो चला, होंठ एक ओर को भिंच गये । स्पष्ट था कि उन्हें पक्षाघात (लकवे) का दौरा पड़ गया था। अपनी आर्थिक दयनीयता को ध्यान में रखते हुए मैं सोचता रह गया कि क्या करूँ । महाराज जी को स्मरण करने के सिवा मेरे पास और कोई चारा न था — वही करता रहा । उस पर राजकीय कार्यवश बाहर भी जाना पड़ गया । लौटकर पाया कि दशा और गम्भीर हो चली है — आँख की पुतली में सफेदी आ गई है धुएँ सदृश, और चेहरे पर धूमिलता । डाक्टर के पास ले गया तो देखते ही उसने फतवा दे दिया कि, **"मर्ज ला-इलाज है ।"** दिल्ली-लखनऊ ले जाने तथा अत्यन्त पौष्टिक आहार की सलाह दे दी जो मेरी आर्थिक स्थिति के बाहर की बात थी । रात को निराश लेटे हम महाराज जी का स्मरण करते रहे — न मालूम कब निद्रा ने आकर हमें अपने अंक में समेट लिया ।

पर चार बजे सुबह पत्नी कमला उठते ही बोलीं, **"अरे ! महाराज जी के नहाने के लिए गरम पानी करना है ।"** (हम दोनों रात भर स्वप्न में महाराज जी के ही साथ थे, और) उनकी बात सुनकर मैं भी हड़बड़ा कर उठा तो पाया कि प्रभु तो हैं नहीं । पर रात्रि भर सरकार के साथ रहने का ही प्रभाव होगा कि (उसी प्रकार) चाय पीते-पीते उनकी *खुली आँख झपकने लगी* !! ठोड़ी धीरे धीरे अपने स्थान पर आने लगी !! एक ही चीज रह गई अब — पुतली में सफेदी तथा होंठों का टेढ़ापन एवं चेहरे की धूमिलता । डाक्टर से कहा तो उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ — बोला, **"यह तो केवल *उनकी दया कृपा* का फल है ।"** मैंने पुतली की सफेदी हेतु दवा माँगी तो उसने कहा कि, "इसका एक ही इलाज है — पुतली पर काला टैटू करवा लो।" एकाएक मैंने उससे *प्रभु का स्मरण* कर एट्रोपिन की शीशी माँग ली। उसने हँसकर वह भी दे दी, कहते हुए — इससे क्या होगा । घर आकर मैंने उनकी आँख में एट्रोपिन डाल दी । *दो-तीन घंटे में आँख की सफेद धुंध भी गायब हो गई* !! (कोई डाक्टरों से पूछे — क्या एट्रोपिन इलाज है इस मर्ज का ?)

परन्तु चेहरा अभी भी श्री-हीन था और मुँह भी टेढ़ा ही था । दस बारह दिन के उपरान्त महाप्रभु प्रातः काल हमारे घर पधारे । उसी समय कमला जी बाहर नल से पानी भरने निकलीं । प्रभु को देखा तो प्रणाम करने झुकी ही थीं कि उन्होंने उनके *चेहरे पर हाथ फेरते* हुए पूछा, **"बहू,**

क्या हो गया था तुझे ?" बस इतने में ही बाकी उपचार हो गया । सम्पूर्ण मुखमण्डल में पुनः कान्ति आ गई !! होंठ अपनी जगह पुनः स्थित हो गये !! (पूरन चन्द्र जोशी – पूरनदा)

महाराज

प्रभु के हनुमानगढ़ प्रवास के समय की बात है । मेरा स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था । शरीर में जगह-जगह हड्डियाँ दिखने लगी थीं । कमजोरी अत्यधिक हो उठी थी । खाना पचता न था — उल्टी आने को हो जाती भोजन के समय ।

मैं महाराज जी के ही साथ था बजरंगगढ़ में । एक दिन सुबह उठकर मुझे (सिपाहीधारा) पाण्डे जी के घर ले गये । वहाँ कहा, **"मेरे लिये लस्सी बनाओ ।"** लस्सी बनकर आई तो एक-दो चुस्की लेकर गिलास मुझे देते हुए कहा, **"पूरन, इसे तू पी ले ।"** इच्छा न होते हुए भी मैंने वह मीठी लस्सी उतनी सुबह की ठंड में पी ली । पुनः दूसरे भक्त के घर जा पहुँचे । वहाँ आज्ञा हुई, **"नमकीन लस्सी बनाओ ।"** वह भी आ गई और पूर्व की भाँति कुछ पीकर गिलास मुझे दे दिया । अब और भी अरुचि के साथ मैंने वह गिलास भी खाली कर दिया । प्रभू तब पुनः हनुमानगढ़ की ओर चल दिये । सिपाहीधारा से सड़क तक की चढ़ाई और फिर गढ़ की तलहटी तक कुछ सड़क की यात्रा । तब बोले, **"पूरन, लोटे में पानी लाओ, शौच जाऊँगा ।"** उधर लस्सी पीकर मैं स्वयँ बेहाल था । किसी तरह लोटा-पानी का प्रबन्ध कर उनके पास जाने लगा तो उदर पीड़ा से बेहाल मैं स्वयँ ही सड़क के किनारे शौच के लिए बैठ गया। देखा कि पेट से तर्जनी उँगली से भी मोटा एक हाथ का केंचुआ निकल आया !! उसके साथ ही न केवल पेट में वरन मन-मानस में भी परम शांति अनुभव करता जब मैं पुनः लोटा भर कर महाराज जी के पास पहुँचा तो वे मुझे देखते हँस रहे थे । स्वयँ शौच नहीं गये । उसके बाद मेरा स्वास्थ्य स्वतः संभलने लगा । परन्तु समझ में नहीं आया कि यह सब मीठी-नमकीन लस्सी का प्रभाव था या महाप्रभु द्वारा उस लस्सी को ***अपना प्रसाद*** बना देना था । (पूरनदा)

महाराज

श्री केहर सिंह जी के पावों में वरम आ गया था — खाल के नीचे पानी भर गया था । मोटे-मोटे, थुलथुले हो चुके थे पाँव । शायद डाइबिटीज का असर था । बहुत कुछ इलाज-पानी हुआ पर मर्ज ठीक न हो पाया । बहुत परेशान और दुःखी हो गये वे ।

तभी बाबा जी आ गये लखनऊ । (लखनऊ पहुँचते ही महाराज जी फोन से सूचित करवा देते थे उनको कि — ***मैं आ गया हूँ, तू आजा।*** और ये भी सब काम छोड़ कर पहुँच जाते थे बाबा जी के श्री चरणों में ।) अबकी इनके पहुँचते ही महाराज जी ने इनके पैरों की तरफ इशारा कर कहा, **"दिखा, दिखा ।"** (इन्होंने तो कुछ नहीं कहा था अपनी बीमारी के बारे में बाबा जी से !!) बाबा जी तखत पर झुके और अपनी तर्जनी इनके पाँव में गड़ा दी और फिर हाथ उठा लिया । जहाँ उँगली गड़ी थी वहाँ आधा इंच के करीब गड्ढा बन गया । बात आई गई हो गई ।

परन्तु दो-तीन दिन के भीतर ही केहर सिंह जी के पाँव एकदम साधारण अवस्था को प्राप्त हो गये — पाँवों की सूजन एवं खाल के नीचे भरा हुआ पानी भी न मालूम कहाँ गया !!

महाराज

वृन्दावन आश्रम में बाहर प्रांगण में बैठे होतृदत्त शर्मा जी इमाम-जस्ते में कुछ दवायें कूट रहे थे । तभी पता नहीं किस ध्यान में डूब गये कि काफी ऊपर उठा हुआ मूसल इमाम जस्ते को पकड़ी हुई उँगली पर जोर से पड़ गया । उँगली पिचककर फट गई और उसमें से खून का फव्वारा निकलने लगा । कुटी में आराम करते बाबा जी को कहीं घटना का पता न लग जाये — इस भय से अपार पीड़ा सहते हुए इन्होंने वही तर्जनी पास की मिट्टी-बालू में घुसेड़ दी और यथावत कुटाई करते रहे पर ***वहाँ*** कैसे छिप पाती यह बात ? तुरन्त ही महाराज जी दरवाजा खोल कुटी से निकल पड़े और पास आकर इनका हाथ पकड़कर खींचते हुए बोले, **"दिखा, क्या हुआ ?"** पर जब उँगली मिट्टी-बालू से बाहर आई तो एक दम साबुत-ठीक थी — दर्द भी न मालूम कहाँ चला गया !! (दिनेश दीक्षित)

महाराज

टीटाघर पेपर मिल्स से सम्बन्धित लखनऊ का एक माथुर परिवार महाराज जी का भक्त हो चला था । कागज का थोक व्यापार करते थे घर के मुखिया । महाराज जी लखनऊ प्रवास के मध्य माथुर जी के आग्रह से दोपहर का प्रसाद उन्हीं के घर पा लेते थे अक्सर ।

माथुर साहब की तीन कन्यायें थीं । बड़ी की दोनों आँखें पूर्ण रूपेण भेंगी थीं । काफी उम्र हो चुकी थी पर आँखों के कारण अविवाहित रह गई । माथुर साहब की दौलत भी इस हेतु कुछ काम न आ सकी । दूसरी कन्या गूँगी भी थी और बहरी भी । केवल घर के कामकाज के सिवा अन्य किसी काम की न थी। तीसरी कन्या सुन्दर भी थी, तेज भी । अपने मन का विवाह करना चाहती थी पर बड़ी की शादी न हो पाने के कारण उसकी भी गाड़ी अटकी थी । सहज ही में माथुर दम्पति इस कारण अत्यन्त दुःखी था।

गूँगी-बहरी लड़की, स्वाभाविक था, बुद्धि की भी कुन्द थी । महाराज जी ने माथुर साहब से कई बार कहा कि इसे आर्ट कालेज में भरती करा दे । पहले तो माथुर साहब ही *इस विचित्र राय* से कतराते रहे पर फिर बार बार महाराज जी के कहने पर आर्ट कालेज (लखनऊ) ले भी गये तो प्रधानाचार्य ने, स्वाभाविक था, ऐसी गूँगी-बहरी, कुन्द दिमाग लड़की को भरती करने से इन्कार कर दिया । उस लड़की को तो बुद्धिहीन होने के कारण ***गूँगे-बहरे स्कूल*** वाले भी नहीं स्वीकार कर रहे थे। बाबा जी के कहने पर माथुर साहब लड़की को फिर ले गये आर्ट कालेज । फिर से इन्कार हो गया । इसके बाद एक बार और इन्कार हो गया । परन्तु महाराज जी अड़े रहे अपनी ही राय पर और जब माथुर साहब *अबकी* ले गये उस लड़की को आर्ट कालेज तो (महाराज जी का चमत्कार) प्रधानाचार्य ने उसे स्वीकार कर लिया !! और पुनः महाराज जी का प्रताप — लड़की पेंटिग में इतनी दक्ष हो गई कि पाँचवें वर्ष की अन्तिम परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हो गई !! साथ में सुनने भी लगी और कुछ कुछ अस्पष्ट रूप से बुदबुदा कर अपनी बात भी कहने लग गई !!

इधर इस बीच बाबा जी ने एक दिन बड़ी को अपने पास बुलाया और उसकी दोनों आँखों को अपने हाथ के दो अंगूठों से मलकर न मालूम क्या किया कि उसकी पुतलियाँ इसी क्रिया से सीधी हो गईं !! फिर क्या

था, लडकी अन्यथा सुन्दर तो थी ही । शीघ्र उसका विवाह एक सजातीय से, जो एयर फोर्स में स्क्वाड्रन लीडर था, हो गया !!

उधर उस बीच वाली लड़की को भी राजस्थान में नियुक्त एयर फोर्स के एक बडे अफसर ने, जो विधुर था, अंगीकार कर लिया !! तीसरी का रास्ता तो स्वतः ही खुल गया । (केहर सिंह)

महाराज

केहर सिंह जी के सबसे छोटे लड़के, आनन्द की (जब वह १३-१४ वर्ष का रहा होगा) आँख में चश्मे के ऊपर अखरोट आकर इस तेजी से लगा कि चश्मे का काँच टूटकर बुरी तरह कई टुकडों में उसकी आँख में धँस गया । घटना २ जनवरी, १९५८ की है जब लड़का अपनी बहन, कुसुम के साथ अखरोट की गेंद बनाकर टेनिस खेल रहा था । रक्त की धार बह चली । कुसुम ने घबराकर अपने पिता को फोन से सूचित किया कि आनन्द की आँख फूट गई । वे भागे आये । मेडिकल कालेज में आँख से कुछ बड़े काँच के टुकड़े निकाल लिये गये पर तब भी २५-३० छोटे टुकड़े पुतली तथा अन्य भागों में ऐसे घुसे थे कि उन्हें निकाल पाना संभव ही न था । लड़के की एक आँख पैदाइशी खराब थी, अब दूसरी भी एक प्रकार से जा चुकी थी । डा० मेहरा तथा अन्य सभी ने राय दी कि एक बार लड़के को सीतापुर ले जाकर आपरेशन करायें । दरअसल उनकी राय केवल सान्त्वना के लिये थी । एक दिन लड़के ने अपनी बहिन से कहा, "*दीदी, तुम ससुराल चली जाओगी तो मुझे भी ले जाना । मैं तुम्हारा सब काम कर दिया करूँगा । तुम मुझे रोटी खिला देना ।*" संध्या को कुसुम से यह बात सुनकर केहर सिंह जी टूट-से गये । इस मार्मिक बात की रात को पलंग पर लेटे याद आने पर वे बिलखकर रो उठे कि, **"भगवान मेरे पापों की सजा इस लड़के को क्यों दे रहे हो ?"** इतने में फोन की घंटी बज उठी। इन्होंने उसे बेमन से जो उठाया तो महाराज जी की आवाज आई, **"केहर सिंह ?"** "जी महाराज !" **"क्या कर रहा है ?"** "कुछ नहीं महाराज !" **"नहीं, तू रो रहा है । तेरे लड़के की आँख फूट गई ? उसे सीतापुर मत ले जाना । वे लड़के की आँख फोड़ देंगे। अलीगढ़ मोहन लाल के पास ले जा।"** और टेलीफोन बन्द हो गया। (तब पूरनदा महाराज जी के ही साथ थे बरेली में बैंक मैनेजर मेहरोत्रा के घर।

उन्होंने बताया कि टेलीफोन करने के पूर्व बाबा जी ने कम्बल से मुँह ढक लिया था और फिर चिल्लाकर कहा था, **"केहर सिंह रो रहा है । उसके लड़के की आँख फूट गई है ।"** परन्तु केहर सिंह जी ने तो *तब* बाबा जी को याद भी नहीं किया था !!)

टेलीफोन मिलने के बाद चौधरी साहब के मन-मानस मे एक आशा की किरण-सी फूट गई ! क्या अब भी गुंजाइश है आँख ठीक हो जाने की? अतः दूसरे दिन उन्होंने अपने सहकर्मी शर्मा जी से, जो उस समय शिक्षा विभाग के सचिव थे, डा० मोहन लाल को अपने लड़के के लिए अस्पताल में प्राइवेट वार्ड में एक कमरा बुक करा देने का आग्रह किया । बाबा जी की लीला तो चल रही थी । शर्मा जी ने तत्काल डा० मोहन लाल को ट्रंककाल बुक करा दिया । बहुत प्रयास करने के बाद मिल पाने वाला ट्रंककाल पहली ही बार डायल करने में मिल गया !! उधर फोन भी डा० मोहन लाल ने ही उठाया !! जब शर्मा जी ने उनसे सब बात कही तो मोहन लाल जी कुछ रोष में बोले, **"कैसे लापरवाह हैं तुम्हारे ये केहर सिंह ? अभी तक लड़के को नहीं लाये जिसके लिये *तीन दिन* से कमरा बुक किया पड़ा है !!"** केहर सिंह जी सुनकर अवाक रह गये कि किसने करा दी होगी कमरे की तीन दिन पूर्व ही बुकिंग ? बाबा जी के सिवा कौन हो सकता है !!

तब दूसरे दिन इन्होंने तैयारियाँ करके अपनी पत्नी तथा भतीजे के साथ लड़के को अलीगढ़ भेज दिया और अलीगढ़ पहुँचने पर स्टेशन में जिस व्यक्ति ने इन लोगों को रिसीव किया वे स्वयं डा० मोहन लाल थे जो इन्हें अपनी गाड़ी में बिठाकर पहले अपने घर ले गये, इन्हें स्नानादि से निवृत्त करा भरपेट नाश्ता कराया और तब अस्पताल ले गये !! (कौन प्रेरित कर रहा था अलीगढ़ के मशहूर, *व्यस्त* डा० मोहन लाल को कि अपने मरीज को स्वयँ स्टेशन से घर ले जाकर, खातिर तवाजो कर अस्पताल ले जायें !!)

एक हफ्ते तक लड़के की आँख पर सात अन्य विशेषज्ञों द्वारा रिसर्च होता रहा। अन्त में छः डाक्टरों ने आपरेशन के विरुद्ध परामर्श दिया पर एक डाक्टर, शुक्लां जी ने आपरेशन कर डालने की हिम्मत कर दी — कि इस पार या उस पार — लड़के की आँख तो वैसे भी जा चुकी थी । परन्तु आपरेशन करने पर केवल कुछ ही काँच के टुकड़े निकल

पाये — २०-२२ बारीक टुकड़े तब भी बने रहे आँख के भीतर जो अब आँख का हिस्सा बन चुके थे । उन्हें निकालने का एक ही तरीका था — आँख को ही निकाल दिया जाये । लड़के की आँख में पट्टी बाँधकर घर भेज दिया गया । शर्मा जी को फोन में सूचित कर दिया गया — ***सौरी*** के साथ ।

जब आँख की पट्टी खुली तो लड़के को दिखाई तो देने लगा कुछ कुछ, पर हर चीज की २०-२२ आकृतियाँ ही नजर आती थीं । वह न किसी चीज को और न किसी व्यक्ति को ठीक से पहचान सकता था । आँख में धँसे ये २०-२२ काँच के टुकड़े आँख के ही २०-२२ लेन्स बन चुके थे !! केहर सिंह हताश होकर लड़के को एक और बाबा के पास ले गये अपने परिवार के सदस्यों की राय पर (जो सब के सब उन्हीं बाबा के तो परम भक्त थे परन्तु महाराज जी से *विरोध* रखते थे ।) उन संत बाबा ने राय दी कि, **"बच्चा, चाँद की किरणों में बड़े गुण हैं, बड़ी शक्ति है । लड़के से कहो कि रोज चाँद की तरफ देर तक देखा करे ।"** यह भी किया गया । पर लड़का २०-२२ चाँद, २०-२२ उँगलियाँ और २०-२२ आकृतियाँ देखता रहा । केहर सिंह जी मन मारकर बैठ गये ।

और तब एक दिन (माह फरवरी में) आफिस जाते वक्त उनके टेलीफोन की घंटी बज उठी। उधर से बाबा जी बोल रहे थे, **"केहर सिंह! क्या कर रहा है ? यहाँ आजा लल्लू दादा (श्री देव कामता दीक्षित) के घर । मैं वहीं हूँ ।"** और लल्लू दादा के घर का पता भी बता दिया । घर से निकलते वक्त लड़का दिख गया । ***प्रभु प्रेरित*** लड़के को भी गाड़ी में बिठा लिया । लल्लू दादा के घर पहुँचे, महाराज जी को प्रणाम किया (पर लड़के ने नहीं किया — हाथ तक न जोड़े — खड़ा रहा केवल ।)

और तभी बाबाजी ने खींच लिया लड़के को अपने पास । ***उसका हाथ पकड़ा और उसकी हथेली को अपनी तर्जनी (उँगली) से दबाकर छोड़ दिया*** !! और तब केहर सिंह जी से कहा, **"अब तू जा । अपना काम कर ।"** मन ही मन केहर सिंह जो को रोष व्याप गया कि इतनी दूर बुलाया और मिनटों में रुखसत कर दिया । बुलाया ही क्यों था तब ? वे लखनऊ लौट आये । बात आई गई हो गई ।

तब ६-७ दिन बाद एक दिन उन्होंने बड़े विस्मय से देखा कि लड़का एक किताब लिये बड़े गौर से उसे देख रहा है !! पूछने पर कि

क्या कर रहे हो ? लड़के ने कहा, **"पढ़ रहा हूँ"**, और किताब से पढ़कर उन्हें भी सुना दिया !!

कहाँ गई वे २०-२२ आकृतियाँ जब कि *आज के दिन भी* काँच के वे २०-२२ टुकड़े लड़के की आँख में ज्यों के त्यों बने हैं ? डा० मेहरा और डा० मोहन लाल दोनों ने ही *यह अचम्भा* सुनकर पुनः लड़के की आँख का परीक्षण किया और काँच के टुकड़ों को यथावत पाया वहाँ। डा० मेहरा ने तो लड़के की आँख का पूरा इतिहास लिखकर अन्त में कह दिया कि,**"यह तो केवल दैवी कृपा है । इसमें मेडिकल साइंस का कोई हाथ नहीं ।"**

और डा० मोहन लाल ने शर्मा जी से कहा, ***"कौन हैं ये नीब करौरी बाबा ? मैंने तो कभी देखा नहीं उन्हें । पर मेरे पास वे जब-तब आँखों के मरीजों को भेजते रहते हैं !!"***

लड़के ने बाद में अपने एम० ए० तक की पढ़ाई सदा ऊँची श्रेणी लाकर पूरी की !!

महाराज

महाराज जी के भगत श्री ओंकार सिंह जी के पुत्र, युधिष्ठिर सिंह के साथ बाबा महाराज उसी की गाड़ी में भूमियाधार आये थे । रात्रिशयन के बाद सुबह मुँह अंधेरे ही युधिष्ठिर और उमादत्त शुक्ल मंदिर से बाहर आ गये कि अंधेरे अंधेरे में ही शौचादि से निपट लें । कुछ दूर पर एक पहाड़ी नाले के पास युधिष्ठिर ने शौच के बाद एक चट्टान पर से अपना कोट जैसे ही उठाना चाहा कि उन्हें एक काले नाग (कोब्रा) ने डस लिया। युधिष्ठिर चिल्लाते हुए मंदिर की तरफ भागे कि, **"साँप ने काट लिया"**, पर आधे मार्ग में ही अचेत होकर गिर पड़े । कुछ ही देर में उनका सारा शरीर विष के प्रभाव से काला पड़ गया और उन्हें अन्य लोग मंदिर के पास ले आये । वे सब प्रकार से **मृत** हो चुके थे ।

उधर बाबा जी चिल्लाते रहे कि, **"युधिष्ठिर मर गया है । इसके बाप को खबर भेज दो ।"** कुछ देर बाद उन्होंने ब्रह्मचारी बाबा को डाँट लगाई कि, **"देखते क्या हो । इसे खूब तेज चाय पिलाओ ।"** ऐसा ही करने का प्रयास किया गया पर **मृत** (?) को कैसे पिलाई जाती चाय ? तब बाबा जी स्वयँ आये, युधिष्ठिर को डाँट कर कहा, **"उठ, चाय पी"**, और अपने ही हाथों से उसे उठाकर, बैठाकर चाय पिला दी । उसके बाद

उसको आज्ञा दी कि, **"उठो गाड़ी पर बैठो । हमें रानीखेत ले जाओ ।"** सभी आश्चर्यचकित हो यह तमाशा देखते रहे । बाबा जी स्वयँ उसके बगल में बैठ गये और युधिष्ठिर गाड़ी चलाने लगे !! भवाली पार हो गई । उधर बाबा जी **और तेज, और तेज** कहते रहे तथा जब भी युधिष्ठिर विष के नशे में झूमने-सोने लगते तभी महाराज जी उनको अपने पाँवों की ठोकर से सचेत कर देते कहते हुए कि, **"सोता क्यों है ?"** कैंची भी निकल गई, गरमपानी, खैरना आदि पार हो गये इसी प्रकार, और फिर पुल पार रानीखेत रोड पर गाड़ी दौड़ चली । रानीखेत पहुँचकर हुक्म दिया कि, **"वापिस चलो ।"** लौटती कुछ देर कैंची में रुके — उतर कर अन्यत्र चले गये । तब तक युधिष्ठिर यथेष्ट रूप से सचेत हो चुके थे । उन्हें भूख भी लग आई । तभी देखा कि गाड़ी की पिछली सीट पर ढेर सारे सेव रखे हैं !! भरपेट सेव खाये और फिर बाबा जी के आने पर *पूर्णचेतना* में भूमियाधार लौट आये । विष का पूरा इलाज हो गया !!

एक सर्प दंश से मृत प्राय व्यक्ति द्वारा पहाड़ी सड़कों के उतार-चढ़ाव एवं मोड़ों में गाड़ी चलाये जाने की कल्पना पाठक स्वयँ कर सकते हैं । (ब्रह्मचारी बाबा के अनुसार इस घटना के बाद महाराज जी तीन दिन अधिकतर कुटी में बन्द रहे — उनका सारा शरीर काला बना रहा तीनों दिन !!)

महाराज

श्री जीवन चन्द्र गुरुरानी (हल्द्वानी) वृन्दावन आश्रम के प्रांगण में बाबा जी के समक्ष बैठे आँसू बहा रहे थे । घटना फरवरी – १९७३ की है। उनकी विदाई थी आश्रम से उस रोज । उन्हें तत्काल हल्द्वानी वापिस जाने का आदेश हो चुका था । सुबह का समय था । तभी बाबा जी ने उनकी तरफ एक फूल फेंक दिया जो उनकी गोद में गिर गया । उन्होंने उसे उठा, माथे पर लगा अपनी जेब में संभाल लिया । रात्रि को ये हल्द्वानी का टिकट कटा कर गाड़ी में बैठ लिये अपने साथी टंडन जी के साथ ।

परन्तु बरेली पहुँचकर वे वहीं उतर गये **(प्रभु प्रेरणावश)** और सीधे अपने बहनोई, डा० भण्डारी के घर जा पहुँचे । वहाँ पहुँचने पर इन्हें पता चला कि श्री सर्वदमन सिंह रघुवंशी जी की माता जी अत्यन्त उग्र रक्तचाप के कारण असाधारण रूप से अस्वस्थ हुई अस्पताल में पड़ी हैं । ये उन्हें

देखने तत्काल अस्पताल पहुँच गये । भक्त माता महाराज जी की ही याद में डूबी अपना कष्ट सह रही थीं । तभी, पुनः (***प्रभु प्रेरित हो***) जीवन जी ने अपनी जेब से वह फूल निकाल कर माता जी को देते हुए कहा, **"महाराज जी ने आपके लिये यह फूल भेजा है ।"** सुनकर वे तो विभोर हो आँसू बहाने लगीं तथा उस फूल को लेकर उन्होंने बड़ी श्रद्धा-आस्था से अपने माथे पर लगा लिया ।

कहना न होगा, यही फूल उनका सही उपचार बन गया और वे स्वस्थ हो गईं ।

त्रिकालदर्शी बाबाजी ने रघुवंशी जी की माता जी की अस्वस्थता देखी, उनके द्वारा अपना स्मरण देखा और वृन्दावन में बैठे बैठे जीवन जी को माध्यम बना (पहले बरेली में उतार कर और फिर वह फूल उनसे माता जी को उक्त वचनों के साथ दिलवाकर) पूरा इलाज कर दिया उनका !!

महाराज

वर्ष १९७२ की बात है । अलीगढ़ में विशम्भर जी मरणान्तक रूप से बीमार हो गये । जीवन की आशा छूट चुकी थी । डाक्टर जबाब दे चुके थे । तभी अत्यन्त हताशावस्था में उनके पिता जी ने अपने पोते, मुन्ना को एक पपीता देकर कहा, "*बेटा, अब एक ही आस रह गई है । तुम पपीता लेकर वृन्दावन जाओ और बाबा से कह देना सब कुछ । उनकी जो मर्जी होगी वही होगा ।*" रोता हुआ मुन्ना वृन्दावन आश्रम पहुँचा तो वहाँ महाराज जी नहीं थे । वह बहुत दुःखी हो गया इसे **भावी** समझ । पर तभी बाबा जी आ गये जीप में । आते ही मुन्ना से बोले, **"अब क्यों रोता है । जा, बच गया तेरा बाप ।"**

केवल पिता की आर्त पुकार (*परम विश्वास के साथ*) ही गजेन्द्र की पुकार बन गई विशम्भर जी को जीवनदान देने के लिए ।

महाराज

मेरे सीने में गुठलीनुमा एक दाना हो गया जो बहुत पीड़ा करने लगा था । महिला अस्पताल (नैनीताल) की डाक्टर चौरसिया ने सलाह दी कि समय पर आपरेशन कराकर गुठली निकलवा लो वरना और बड़ी तथा

सख्त हो जाने पर कैन्सर का खतरा हो जायेगा । मैं और मेरे घर के लोग, स्वाभाविक था, घबरा गय । सभी ने आपरेशन करवा लेने की सलाह के साथ जोर भी दिया । परन्तु इस विषय में हम सदा की भाँति बाबा जी महाराज से सलाह लेने कैंचीधाम पहुँचे और उन्हें पूरी बात बताई । महाराज जी ने हमारी बात सुनी और जोर देकर आपरेशन के लिए मना कर दिया और फिर कहा कि, **"जा, प्रसाद पाकर गंगाजल पी ले ।"** मैंने बाबा जी महाराज के कहने के अनुसार भरपूर प्रसाद पाया और श्री माँ से लेकर गंगाजल पी लिया । फिर मैं नैनीताल लौट आई । महान आश्चर्य के साथ मैंने पाया कि गुठली धीरे धीरे, मेरे अनजाने में ही, स्वतः गायब हो गई !! बाबा जी की असीम अनुकम्पा से मैं आपरेशन आदि की उस कठिन यातना से एवं भीषण रोग के भोग से मुक्ति पा गई — *केवल* महाराज जी के आश्रम का प्रसाद एवं गंगाजल पान से । ***मैं आज के दिन भी महाराज जी के आश्रम के प्रसाद के एक एक कण को अमृत से भी अधिक महत्व देकर प्राप्त करती हूँ*** । (पुष्पा साह – नैनीताल)

महाराज

महाराज जी के आश्रम के प्रसाद की धन्वन्तरि की औषधियों से भी अधिक महत्ता की अपने जीवन में घटित एक और घटना —

मेरे बड़े लड़के को जॉन्डिस (पीलिया रोग) हो गई थी । बहुत इलाज पानी के बाद भी ***मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की*** वाली बात हो गई । लड़के की यह दशा देखकर हम सब बहुत उदास एवं दुःखी रहने लगे । तब एक दिन मैं लड़के को उठाकर कैंचीधाम ले आई और महाराज जी के चरणों में उसे रख उनसे सब हाल कहे । महाराज जी ने भी कह दिया, **"घबरा मत, ठीक हो जोयगा ।"** तभी धाम के एक सेवक भक्त से उन्होंने कहा, **"इसे (मुझे) प्रसाद दो ।"** और नियमानुसार मेरे लिये चार पूरी और आलू का प्रसाद आ गया । मैंने आव देखा न ताव — उन पूरियों और आलू की सब्जी को अपने लड़के को महाराज जी के ही सामने खिलाना प्रारम्भ कर दिया। कई दिन से केवल उबला खाना खाकर उबियाये उस बालक ने भी पूरियाँ-सब्जी गपागप खानी शुरू कर दीं। महाराज जी ने देखा तो चिल्लाकर बोले, **"क्या कर रही है यह ? लड़का मर जायेगा ।"** मैंने भी सहज भाव से उत्तर दे दिया कि, "*आपका प्रसाद*

पाकर भी यह मर जाता है तो मर जाये ।" बाबा मना करते रहे और मैं लड़के को पूरी-आलू खिलाती गई। वह भी आनन्द से खाता गया।

कहाँ धन्वन्तरि की औषधियाँ और कहाँ पीलिया रोग में पूरी-आलू का ***भोग*** !! पर अन्तर इतना ही था कि वह पूरी-आलू महाराज जी का ***प्रसाद*** था और महाराज जी के इस ***प्रसाद*** ने ही मेरे लड़के को कुछ ही दिनों में पूर्ण रूपेण स्वस्थ कर दिया !! (पुष्पा साह)

महाराज

अलौकिक उपचार की अन्य गाथाएँ

महाराज जी द्वारा ऐसी ही विचित्र लीला-क्रीड़ाओं द्वारा रोगों के उपचारों की अनेक गाथायें हैं । (**स्मृति-सुधा** में दिये गये विभिन्न भक्तों के अपने अनुभवों के अनुसार) — जहाँ देवकामता दीक्षित जी (लल्लूदादा) के चाचा जी को लगभग अन्धे हो जाने पर तथा डाक्टरों द्वारा इस अन्धेपन को ला-इलाज घोषित किये जाने के बाद भी महाराज भी ने उन्हें *केवल* कान्धारी अनार का रस पिलवाकर ठीक कर दिया, तो वहीं आम खिलवा कर अथवा अपने ***भोग*** की रोटी ही खिलाकर कठिनतम एवं असाध्य रोगों से वे भक्तों को मुक्त करते रहते थे । श्री पदमपत सिंघानियाँ को केवल सेव खिलवाकर ब्लड कैंसर से मुक्ति दिला दी । वर्ष १९५५ में श्री नित्यानन्द पाण्डे (*तब* भवाली सेनेटोरियम में कार्यरत) की चौबीसों घंटे रहने वाली परम दुःखदायी *आधा शीसी* (सिरदर्द) पाण्डे जी के महाराज जी के श्री चरणों में मस्तक रखने तथा उनसे आशीर्वाद रूप **हरिःओऽम** सुनने पर ही हमेशा के लिए दूर हो गई । इलाहाबाद में तो एक भक्त विशेष का *जन्म-जात मिर्गी* का रोग उसी के घर केवल विद्यमान रहकर ही सदा के लिये दूर कर दिया ।

गीता शर्मा की माँ की असह्य पीड़ा स्वयँ ग्रहण कर (उसे अपने में भस्म कर) उन्हें रोगमुक्त कर दिया, और सूबेदार मेजर जगदेव सिंह के महीनों बहते कान को स्वयँ झेलकर उनके कान का बहना बन्द कर दिया। श्री केहर सिंह जी की डाइबिटीज एवं भीषण रूप प्राप्त डाइरिया स्वयँ झेलकर उन्हें रोगमुक्त कर दिया ।

कुँअर प्रबल प्रताप सिंह जी के मरणांतक स्थिति प्राप्त लड़के को केवल गंगाजल के छीटे मारकर ही चंगा कर दिया जब कि सभी डाक्टरी उपाय फेल हो चुके थे । कहाँ तक गिनाई जा सकती हैं अलौकिक उपचार की ये गाथायें ।

महाराज

अकाल मृत्यु से रक्षा
एवं महामृत्यु के प्रति साधारणतः उदासीन

हमारी प्रार्थनाओं में अधिकतर ***अकालमृत्यु*** से रक्षा की कामना की गई है — यथा,

१) **अकाल मृत्यु हरणं, सर्वव्याधि विनाशनम् ।**

२) **अकाल मृत्योर्परिणक्षणार्थम् । वन्दे महाकाल महासुरेशं ।।**

३) **अनायासे न मरणं बिना दैन्ये न जीवनम् ।**

देहि में कृपया शंभो, तव भक्ति अचँचला ।।

परन्तु साथ में **संहारकर्ता** महारुद्र से *चिर आयुष्य* के लिये भी प्रार्थना की गई है —

मानो महान्तमुत मानो ....

मानस्तो के तनये मान आयुषिमानो गोषुमानो अश्वेषुरीरिषः

मानोवीरान् रुद्र भामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सद मित्वा हवामहे ।

(हमें अपना ही बालक समझ *चिर आयुष्य* प्रदान करो — आदि) और भी कि — **त्र्यंम्बकं जजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्** — आदि)

जैसा कि उनकी **ऐसी** विभिन्न लीलाओं से स्पष्ट है — रुद्रावतार महाराज जी अनेकों की अकालमृत्यु से (एवं **तथाकथित** अकालमृत्यु से भी) उक्त लीलाओं के माध्यम से रक्षा करते रहे हैं । यद्यपि **महाकाल** के मार्ग में वे साधारणतः अवरोध उत्पन्न नहीं करते थे **जीवनदान-लीला** कर परन्तु ऐसी अनेक रक्षा-लीलाओं के विभिन्न पहलुओं पर गहनता से मनन करने पर यह निर्णय लेना कठिन हो जाता है कि उन्होंने *कहाँ* अकालमृत्यु से रक्षा की और *किन* मामलों में **महामृत्यु** से — फिर भी, विरोधाभास रूप,

किन्हीं अन्य विशिष्ट अवस्थाओं में उन्होंने अपने ही अनन्य भक्तों को शान्ति से **जाने** दिया । (बिड़ला कालेज के प्राचार्य श्री संघ, श्री तुलाराम साह जी, हब्बा जी, इंजीनियर माई के पति आदि जिनमें प्रमुख हैं ।)

और पुनः समुचित उपचार के अभाव में *तीसरी स्टेज* का टी० बी० तथा *कैंसर* जैसे महाकाल-रूप रोगों से मुक्ति *सच्चे अर्थ* में तो स्वतः **महामृत्यु** से रक्षा है — इसमें कोई सन्देह नहीं — ये ही जीवन-दान के पुष्ट दृष्टान्त हैं ।

महाराज जी ने इस सम्बन्ध में व्याप्त भ्रम का निवारण, लगता है, स्वयँ ही अपनी दो (ज्ञात) लीलाओं के माध्यम से कर दिया (यद्यपि ये घटनायें उनकी **तथाकथित** *महासमाधि के उपरान्त* की ही हैं) — यथा,

(१) श्री आर० के० जोशी (रब्बू) की पत्नी रेखा का वर्ष १६७५ में मेरठ में एक मेजर आपरेशन हुआ था । आपरेशन टेबुल पर पड़ी मृत-प्राय रेखा को अपनी अर्धचेतना में प्रतीत हुआ कि वह अन्तरिक्ष की ओर उड़ी जा रही है । इस यात्रा में उसने एक के बाद एक, कुछ कुछ अन्तराल से तीन चार धमाके सुने और तब एक अन्ध-क्षेत्र में पहुँच गई । तभी उसने ***महाराज जी की-सी*** आवाज में सुना, **"इसे क्यों लाये ? वापिस ले जाओ इसे !!"** और फिर कुछ देर बाद उसके मृत-प्राय शरीर में पुनः स्पन्दन होने लगा!! डाक्टरों ने पसीना पोंछ मुक्ति की साँस ली । पूर्ण चेतना आने पर रेखा ने अपना यह विचित्र अनुभव हम सबको *स्पष्ट* शब्द-चित्रण द्वारा *बिना* किसी प्रकार से भ्रमित हुए सुनाया, और श्री माँ के कुछ ही दिनों बाद मेरठ आगमन पर उन्हें भी सुनाया ।

महाराज.

(२) केहर सिंह जी का स्वास्थ्य एकाएक बिगड़ गया कैंची में । पूर्व से ही दिल के मरीज, उनको अर्धनिद्रा में ही हार्ट अटैक की अवस्था आ गई। उसी चेतनाहीनता में उन्होंने पाया कि कुछ विचित्र आकृति एवं वेषभूषा वाले लोग उन्हें पकड़कर उठाये लिये जा रहे हैं, और तब एक विशेष तेजोमय क्षेत्र में पहुँचकर पाया कि सामने ही महाराज जी बैठे हैं !! इन्हें देखते ही बाबा जी पहले तो अत्यन्त प्रसन्न दिखे और फिर चिल्ला उठे, **"इसे क्यों लाये ?"** वे लोग बोले, **"महाराज, इसका समय पूरा हो गया है ।"** तब बाबा जी और भी जोर से बोले, **"क्या होता है समय ? केहर**

सिंह मेरे हुक्म से यहाँ आयेगा । ले जाओ इसे वापिस ।" और कुछ देर बाद पसीने में तर केहर सिंह जी चैतन्यावस्था में आने लगे !!

(स्पष्टीकरण हेतु केहर सिंह जी ने १६ वर्ष के अन्तराल के बाद ही कैंची पुनः आना वर्ष १६८२ से ही प्रारम्भ किया था ।)

महाराज

सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में बाबा जी द्वारा आती हुई मृत्यु से (अकाल हो, चाहे महा) रक्षा के कई दृष्टान्त प्राप्त हैं — कुछ को तो इसी पुष्पाञ्जलि में दिया जा रहा है । और कुछ का वर्णन अन्य प्रसंगों के साथ किया गया है ।

महाराज

महामृत्यु के बाद भी ***जीवनदान*** दिये जाने का सबसे पुष्ट एवं सर्वविदित दृष्टांत श्री बद्री विशाल (शिकोहाबाद) स्वयँ हैं जिन्हें बद्रीनाथ में जन्म के बाद ही **मृत** हो जाने पर भी महाराज जी ने अपनी अलौकिक शक्ति से पुनर्जीवन प्रदान कर दिया !! बद्रीनाथ में घटित इसी लीला के फलस्वरूप इस पुनर्जीवित बालक का नाम ही बद्रीविशाल पड़ गया ।

महाराज

मैनपुरी के वकील श्री रामरतन वर्मा महाराज जी के परम भक्तों में से थे । उनकी पुत्री शान्ती जब विवाह योग्य हुई तो महाराज जी ने स्वयँ (वर्मा जी को बताकर और उन पर जोर डालकर) शान्ती जी का विवाह वीरेन्द्र वर्मा जी से करवा दिया। शान्ती जी **मंगली** थीं और मंगली लड़के से ही उनका विवाह होना था शास्त्रोक्त विधा के अनुसार। परन्तु वीरेन्द्र वर्मा स्वयँ **मंगली** न थे !! होतव्यता ऐसी कि उनके घर वालों ने न तो शान्ती जी की जन्मपत्री माँगी और न वीरेन्द्र जी की ही भेजी,वरना शायद वह विवाह ही दोनों पक्ष न करते। बाद में जन्मपत्री मिलाने पर ज्ञात हुआ कि इन कठिन ग्रहों की स्थिति के कारण विवाह के चौथे वर्ष वीरेन्द्र जी का जीवन-सूर्य *जल* में डूब जाने के कारण ***अस्त*** हो जाने की प्रबल संभावना है !! अस्तु, वीरेन्द्र जी को किसी जलाशय अथवा नदी में स्नान नहीं करने दिया जाता था। परन्तु भय तो भय, वह भी मृत्यु का। किसी भी

घटना अथवा दुर्घटना के कारण, जिसमें जल की ही मुख्य भूमिका होती, ऐसा हो सकता था । अतः दोनों पक्षधारी सदा चिन्तित रहते थे ।

परन्तु यह विवाह भी तो महाराज जी ने ही तय किया था !! क्या त्रिकालदर्शी बाबा जी इन सब बातों से अनभिज्ञ थे ऐसा करते समय ?

कुछ काल बाद बाबा जी आये और वीरेन्द्र जी तथा उनके बुआ के लड़के आदि को लेकर नदी में स्नान हेतु उठा ले गये । पहले तो वीरेन्द्र जी किनारे ही खड़े रहे । बाद में बाबा जी का आश्वासन पाकर किनारे ही थोड़े से जल में स्नान करने लगे । तभी बाबा जी ने पीछे से आकर इन्हें धक्का दे दिया गहरे जल में !! ये तैरना तो जानते न थे — बह चले । सभी हा-हाकार कर उठे । तब बाबा जी स्वयँ कूद पड़े नदी में और काफी दूर जाकर खूब पानी पिये मृत-प्राय वीरेन्द्र जी को नदी से बाहर खींच लाये तथा उनके पेट से पानी निकाल कर उन्हें पुनः सचेत कर स्वस्थ कर दिया । पुनः उन्हें माँ-बाप तथा पत्नी शान्ती के पास लाकर बोले, **"लो, इसका जल-संकट समाप्त हो गया हमेशा के लिये । अब इसे कुछ न होगा ।"**

वीरेन्द्र जी आज सपरिवार मैनपुरी में रिटायर्ड जीवन सर्वसुख भोगते व्यतीत कर रहे हैं । (१६६२)

महाराज

बचपन में यही शान्ती एक असाध्य रोग से ग्रस्त हो चली थी । तब (तीसरे चौथे दशक में) ऐसे रोगों के उपचार हेतु न तो उपयुक्त विशेषज्ञ थे और न इलाज ही यथोचित हो पाता था । फिर भी वर्मा जी ने मैनपुरी जैसी जगह में भी इलाज-पानी में कोई कसर न रख छोड़ी थी अपनी एक मात्र सन्तान शान्ती के आरोग्य लाभ हेतु। घर में शीशी-बोतलों की भरमार हो चली थी, परन्तु शान्ती अस्वस्थ होती चली गई।

तब एक दिन महाराज जी आ पहुँचे और आते ही शान्ती के कमरे में जाकर बिगड़ गये कि, **"मेरी लड़की को मार डाला ।"** साथ में कमरे में जितनी शीशी-बोतलें थीं उन्हें भी पटक दिया । मँहगी दवाओं की यह दुर्गत देख शान्ती की माँ आश्चर्यान्वित होने के साथ दुखी भी हो गईं । तब बाबा जी ने अपने कम्बल से करेंसी नोटों की भरमार बिखेरते हुए और भी अधिक रोष में कहा, **"ले, कितना खर्च हुआ तेरा इसके इलाज में ?**

ले ले !!" शान्ती की माँ यह सब लीला देखकर और भी त्रस्त हो गईं भय से । तभी बाबा जी के आगमन की सूचना पाकर वर्मा जी भी आ गये कोर्ट से और यह सब देख सुनकर विनीत हो महाराज जी से क्षमा माँगने लगे। तब महान आश्चर्य से सबने देखा कि सारे करेंसी नोट गायब हो गये !! पूछने पर महाराज जी बोले, **"हनुमान बैंक से आये थे, हनुमान बैंक में वापिस चले गये !!"**

परन्तु इस लीला के बाद ही शान्ती ने शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही काल के भीतर स्वतः पूर्णतया स्वस्थ हो गई !!

महाराज

झाँसी के पास एक गाँव में एक गरीब वृद्धा के घर बाबा जी अक्सर पहुँच जाते थे। जाति की अहीरिन उस वृद्धा के घर की *प्रेम की रोटी* बाबा जी अवश्य पा लेते थे। उसका एक ही लड़का था—(पति नहीं था)—उसी की कमाई से माँ-बेटा पेट भरते थे। वह लड़का भी एक दिन काल-कवलित हो गया। परन्तु उस गरीब वृद्धा के बेटे का शव उठाने वाला भी कोई न मिला—सभी कतरा गये कि उन्हें दाह-क्रिया का खर्च न उठाना पड़ जाये कहीं। तीन दिन हो चुके थे, शव आँगन में ही पड़ा रह गया (परन्तु महान आश्चर्य कि उसमें बाबा जी के प्रताप से *कुछ भी खराबी* न आ पाई !!) बुढ़िया हताश हो आँसू बहाती रही। उसने बाबा जी को याद भी किया कि नहीं, ज्ञात नहीं। परन्तु करुणा-वरुणालय पहुँच गये उसके पास और आते ही बोले,**"माई, हमारी रोटी ला?"** तब बुढ़िया सिसक कर बोली, "कहाँ से लाऊँ रोटी ? रोटी कमाने वाला तो वो पड़ा है आँगन में मरा हुआ।" बाबा जी तत्काल बोल उठे, **"मरा कहाँ है ?"** और लड़के के शव के पास जाकर बोले, **"उठ ! उठता क्यों नहीं है ? पड़ा क्यों है ?"**

और लड़का बाबा जी की अमृत वाणी कानों में पड़ते ही उठ बैठा !! (हरिराम जोशी जी द्वारा केहर सिंह जी को सुनाई गाथा ।)

महाराज

श्रीमती श्यामा के पति श्री दिवाकर पंत जी मरणांतक स्थिति में पहुँच चुके थे अपनी लम्बी बीमारी झेलते हुए । जीवन की आशा छोड़ चुके थे डाक्टर भी और घर वाले भी । वैसे भी अल्मोड़ा में ऐसी बीमारी के

विशेषज्ञ थे ही नहीं । जवान श्यामा के जीवन की सबसे कठिन घड़ी थी यह । ऐसे में वह केवल महाराज जी का स्मरण कर सकती थी और उसने वही किया कातर-आर्त होकर । तभी उसके कान में महाराज जी की वाणी सुनाई दी, **"इसे कोरोमिन पिला दे ।"** श्यामा ने आव देखा न ताव, कोरोमिन की शीशी ढूँढ (मात्रा आदि के *बिना* ज्ञान के ही) उसे पूरी उड़ेल दी दिवाकर जी के मुँह में !! कोरोमिन का मुँह में जाना था कि थोड़ी ही देर में मृत-प्राय पंत जी बिस्तरे में बहुत बेचेन हो उठे — लगा उनकी हालत और भी खराब हो गई है और अब तो मृत्यु निश्चित है । अपनी करनी देख श्यामा तो वैसे ही अधमरी हो चुकी थी, उस पर घर वालों ने उसे बुरा-भला कह कर और भी त्रस्त कर दिया ।

परन्तु कुछ देर बाद ही दिवाकर जी के ***ठंडे पड़ गये शरीर*** में ताप आने लगा, हृदय की गति ठीक हो गई और नब्ज सुचारु रूप से चलने लगी । उन्हें अब बेहोशी की नहीं, शान्ति-प्रद नींद आ गई ।

सुबह डाक्टर आया तो उसने पूरे हाल जान कर यही कहा, **"दवा बिल्कुल ठीक थी, उसी की आवश्यकता भी थी और *उसी* ने इनकी प्राणरक्षा कर दी !!"** श्यामा के सुहाग की रक्षा ही नहीं कर दी बाबा जी ने, उसके ऊपर आता कलंक भी धो दिया !!

महाराज

इन्हीं श्यामा जी के पति के सिर में एक बार ऐसा एक्जेमा (मलपस) हो गया जो किसी भी इलाज से ठीक न हो पाया । कष्ट के मारे दिवाकर पंत जी विकल हो उठे — न दिन को चैन न रात को नींद । पागलों की-सी स्थिति हो चली। तभी एक रात श्यामा जी ने स्वप्न देखा कि बाबा जी आ गये और बोले, **"इसके सिर में मिट्टी का तेल लगा दे !!"** पगली श्यामा ने अपने गुरू के ब्रह्मवाक्य के अनुसार दूसरे दिन रात को पंत जी के सिर में मिट्टी के तेल से तर एक रुई का फाहा रख दिया । बस क्या था, फाहा रखते ही पंत जी विकल हो उठे और श्यामा जी से न मालूम क्या क्या कह डाला ।

परन्तु गुरुवाक्य के प्रति समर्पित श्यामा जी ने पुनः दूसरी रात भी ऐसा ही कर डाला और कहनी-न कहनी सब सुन ली । यही काम उन्होंने तीसरे और चौथे दिन भी कर डाला और तब पंत जी को शांति की नींद

आने लगी। पाँचवें दिन स्नान करते वक्त उन्हें मालूम हुआ कि एक्जेमा के घावों के स्थान पर पपड़ी जम चुकी है !! और धीरे-धीरे वह पपड़ी भी लोप हो गई । पंत जी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गये । (श्यामा पंत द्वारा वर्णित)

महाराज

अलौकिक यथार्थ के संकलन-कर्ता राजदा की पत्नी, कमला जी वर्षों पूर्व आतों की बीमारी से पीड़ित हो गईं थीं जिसके कारण उनके फेफड़े भी बुरी तरह प्रभावित हो चुके थे। हड्डी का ढाँचा ही कमला जी की पहिचान रह गई थी । बाबा महाराज ने तब उन्हें अपने अमोघ आशीर्वाद (प्रणाम करने पर ***आयुष्मान भव*** से) — रोगमुक्त कर दिया था, और वे शीघ्र ही स्वस्थ हो गईं ।

आठवें दशक से वे कैंचीधाम में अथक सेवा में समर्पित हो गईं । परन्तु एक बार बिगड़ चुकी आँतों ने उन्हें पुनः दबोच लिया, और इस बार उन्हें भीषण रूप के *जलोदर* रोग ने थाम लिया । उनकी ऐसी मरणासन्न अवस्था में उन्हें कैंचीधाम से मेरठ विदा करते वक्त सभी का एक ही भाव था — उनकी अंतिम विदाई का । किन्तु श्री माँ-महाराज अपनी इस अनन्य सेविका को ऐसे क्योंकर छोड़ देते ? और बाबा जी की अमोघ वाणी *आयुष्मान भव* (लम्बी आयु हो) कैसे अकारथ जा पाता ? मेरठ पहुँचकर उनका इलाज तो हुआ, परन्तु वह माँ-महाराज की कृपा का लौकिक रूप ही था। और कुछ काल बाद कमला जी यथोचित शक्ति-सामर्थ्य *न होने* पर भी पुनः उपस्थित हो गईं कैंचीधाम में सेवा हेतु — केवल *माँ-महाराज प्रदत्त* आत्मबल का संबल लेकर ।

कुछ वर्ष ऐसे ही बीत गये परन्तु १९९२ (अक्टूबर) में धाम में ही रात के समय उन्होंने रक्त वमन करना प्रारम्भ कर दिया जो सुबह तक होता रहा । सभी से, (यहाँ तक कि राजदा से भी) वे इस तथ्य को छिपाती रहीं कि जानने पर माँ को कष्ट होगा । परन्तु माँ से कब कोई कुछ छिपा सका है । सुबह ही वे कमला जी के पास पहुँच गईं और उन्हीं के सामने भारी मात्रा में पुनः रक्त वमन हो गया । तब श्री माँ की आज्ञा से हम उन्हें रैमजे अस्पताल (नैनीताल) ले गये जहाँ भी केवल सूक्ष्म-रूप का उपलब्ध उपचार ही किया जा सका । कई माह से ऐनेमिक (रक्तहीन)

चल रहीं कमला जी अब तक बार बार रक्त वमन के कारण चेतनाहीन हो चली थीं।

तब उनके पुत्र दिवाकर पाण्डे तथा भाई प्रमोद पंत के आ जाने के बाद ही माँ ने आज्ञा दी कि कमला जी को मेरठ ले जाकर उपचार कराओ, यद्यपि तब तक कमला जी की हालत ऐसी हो चली थी कि न तो उनकी आँतें-फेफड़े, न अवयव तथा स्नायु ही टैक्सी में रास्ते के झटके सह सकते थे। (यही होता कि और भी रक्त वमन होता और इति-श्री भी हो सकती थी।) परन्तु डाक्टरों की राय के विरुद्ध भी माँ ने कह दिया, **"कुछ नहीं होगा कमला को — ठीक हो जायेगी — केवल पैसे खर्च होंगे ।"**

यही हुआ । कमला जी मेरठ पहुँच गईं, और उनके जीवन की आशा के प्रति सशंकित डाक्टरों के विविध प्रकार के उपचारों के बाद कमला जी ने धीरे धीरे पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लिया और गुरु पूर्णिमा (१९९३) को वे पुनः श्री माँ-महाराज के श्री चरणों में सेवा हेतु उपस्थित हो गईं कैंची धाम में !! बाबा महाराज का अमोघ आशीष **आयुष्मान भव** श्री माँ के रक्षाञ्चल तले सक्रिय है !! (१९९६) — (मुकुन्दा)

महाराज

देवी ऑइल मिल्स (हल्द्वानी) में भक्तों से घिरे महाराज जी बैठे थे। इतने में पैंट, कमीज, घड़ी पहिने ३०-३५ वर्ष का एक युवक दरवाजे पर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। बाबा जी ने उससे पूछा, **"क्या है ?"** उसने कहा, "*महाराज ! मेरा भाई बहुत बीमार है । मरने को है । वह आपके दर्शन करना चाहता है मरने से पहले ।*" (उस भाई का अथवा इस युवक का बाबा जी के साथ *कभी कोई संपर्क नहीं हुआ था* पूर्व में।) महाराज जी ने तब कह दिया, **"उसे मरने दो, उसका समय पूरा हो गया है ।"** युवक यह सुनकर चला गया पर दूसरे ही दिन पुनः आ गया महाराज जी के पास। कातर होकर बोला, "*महाराज ! मेरे भाई ने कहा कि उसकी अन्तिम इच्छा पूरी कर दें आप दर्शन देकर ।*" और फिर रोकर बोला, "*मैं एक मामूली मास्टर हूँ उसका इलाज नहीं करा पाया ।*"

तब करुणानिधान बाबा जी बोले, **"अच्छा, हम आ जायेंगे, तुम जाओ ।"** लगा कि महाराज जी ने ऐसा कह कर उसे बहला दिया है । उसके घर का पता तक तो न पूछा था !! परन्तु (आर्त्त की दर्शन हेतु

उत्कट इच्छा की पूर्ति हेतु) दूसरे ही दिन वे कुछ भक्तों के साथ लम्बे-लम्बे डग भरते कालाढूंगी रोड पर चल निकले । काफी दूर (तब की) उस कंकरीली-पथरीली सड़क पर चलते चलते बाबा जी एकाएक रुक गये झाड़ियों के पीछे एक मकान के पास । और तभी वहाँ से निकल कर वही युवक दौड़ता हुआ आया, महाराज जी को प्रणाम किया और उन्हें भाई के पास ले चला । बाबा जी को देखते ही वह बीमार युवक अत्यन्त प्रसन्न हो उठा और अश्रुपूरित हो बोला, "अब मैं शान्ति से मर लूँगा, महाराज ।" **"हाँ, अब शांति से मर जाना"**, कहकर महाराज जी बाहर आ गये । (लड़के को तीसरी स्टेज का टी० बी० था, और उन दिनों न तो इतनी बढ़ी हुई इस बीमारी हेतु कोई पक्का इलाज था और न उस टाइम की हल्द्वानी में यह सब संभव ही था । भवाली सेनेटोरियम में ही ऐसे बीमार मरते रहते थे ।)

बाहर आकर वह युवक भी महाराज जी को कुछ दूर तक पहुँचाने आया । रास्ते में तीन-चार गधे चर रहे थे। महाराज जी ने कहा, **"इनके मालिक को बुलाओ ।"** जब वह आ गया तो युवक से पूछा बाबा जी ने, **"तेरे पास बीस रुपये हैं ?"** उसके पास कहाँ से होते ? पर साथ के भक्तों ने जुगाड़ बैठा दिया । बाबा जी ने वे २०)रु० गधों के मालिक को देकर उससे कहा, **"इन बाबू जी के घर रोज *सात दिन तक* गधी का दूध पहुँचा देना । पहुँचा देगा ?"** वह तो (*उस समय के*) २० रु० देखकर ही मोहित हो चुका था, बोला, "हाँ सरकार ।" फिर उस युवक से कहा, **"अपने भाई को मत बताना कि गधी का दूध है। कह देना दवा है। सात दिन में ठीक हो जायेगा । मरेगा नहीं !! बड़ा आदमी बनेगा !!"** और बाबा जी हम सबके साथ आगे को चल दिये ।

भक्तों ने बाद में महाराज जी की *कथनी का पीछा* किया । पता चला कि मृत्यु का ग्रास बनता वह बीमार युवक बिलकुल स्वस्थ हो चुका था !! (पूरनदा)

(क्या जीवन-दान का यह खेल *केवल* अकाल मृत्यु से रक्षा की लीला थी ? पुनः, क्या यह जीवन-दान बाबा जी के दर्शन एवं उनकी मौज का प्रतिफल था जिस पर ***परदा*** डालने को गधी का दूध माध्यम बना दिया बाबा जी ने ?)

महाराज

श्री सिद्धी माँ की माता जी (जिन्हें पर्वतीय भाषा में हम सभी भक्त *इजा* कहकर सम्बोधित करते थे) एक बार असाध्य रूप से बीमार पड़ गईं। डाक्टरों को कैंसर की शंका हो चली थी । अनेक प्रकार के इलाज करने पर भी उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया । भूख-प्यास शेष हो चली थी, शरीर सूख गया था, शक्ति-हीनता चरम सीमा पर थी । श्री माँ को उनके बारे में सभी सूचनायें मिलती रहती थीं पर तब वे वृन्दावन में *महाराज जी की सेवा में थीं*, इजा के पास नहीं गईं । तब महाराज जी ने इजा को वृन्दावन बुलवा भेजा जबकि वहाँ ऐसी कठिन बीमारियों के लिए कोई व्यवस्था उपलब्ध न थी !! उनकी हालत इस कदर गिर चुकी थी कि उन्हें उठने-बैठने-चलने में सहारे की आवश्यकता पड़ती थी । परन्तु महाराज जी के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित इजा ने वृन्दावन जाना स्वीकार कर लिया इस स्थिति में भी, और दो व्यक्तियों का सहारा लेकर आ गईं श्री चरणों के प्रश्रय में ।

और फिर जैसे ही वे आश्रम पहुँचीं तो बाबा जी ने इजा को अपनी कुटी में बुला लिया और *उसी समय* आई हुई अपनी भोग की थाली से *अपने ही हाथ से* एक रोटी के ऊपर कुछ दाल-सब्जी रख कर उन्हें देते हुए कहा, **"अभी खा ले ।"** बड़े ही संकोच के साथ इजा तब महाराज जी के समक्ष बैठकर रोटी खा पाईं। बस क्या था — ***धन्वन्तरि*** की उस भोग-प्रसाद रूपी ***महौषधि*** पाकर ही उन्हें दिनों दिन स्वास्थ्य लाभ होता चला गया !! जिसे कैन्सर कहा जा रहा था, वह कहाँ गया, पता न चला !!

और जिस इजा को अर्से से सहारा देकर उठाना-बैठाना पड़ता था, वही इजा कुछ ही दिनों बाद नन्द गाँव, बरसाना, गोकुल, गोवर्धन आदि सभी मुख्य बृज तीर्थों की यात्रा *अकेले* ही कर आईं !! नब्बे से ऊपर की आयु पाकर ही उनका शरीर शान्त हुआ वर्ष १९९२ में ।

महाराज

रामपुर के एक भक्त पुलिस इन्सपेक्टर की पुत्री टाइफाइड के बिगड़ जाने से मरणासन्न हो गई । उन दिनों टाइफाइड जैसी बीमारी में खाना बिल्कुल बन्द कर दिया जाता था जिसके कारण लड़की और भी अधिक कमजोर हो मरणासन्न हो चली थी । रामपुर से महाराज जी के लिए नैनीताल को पत्र आया कि लड़की अपनी मृत्यु से पूर्व उनके दर्शन

करना चाहती है। (*परन्तु इस पत्र के पहुँचने के पूर्व ही महाराज जी ने कह दिया था कि उन्हें रामपुर जाना है* !!) रामपुर उस लड़की के घर पहुँचने पर सीधे उसके कमरे में पहुँचते ही बाबा जी चिल्लाकर बोले, **"मेरी लड़की को भूखा मार दिया। मैं भी भूखा हूँ। मेरे लिये खाना बनाओ ।"** और प्रसाद बनने पर स्वयँ पाते हुए उन्होंने अपनी थाली से लड़की को एक चपाती देते हुए कहा, **"ले, बिस्तर से उठ और चपाती खा ।"** लड़की किसी तरह बिस्तर से उठी और बैठकर उसने चपाती का कुछ हिस्सा खाया । फिर महाराज जी ने उससे कहा, **"तू उठ, कुर्सी में बैठ । *मैं थक गया हूँ* । बिस्तर में मैं लेटूँगा ।"** भक्त लड़की किसी तरह उठी और कुर्सी में बैठ गई और बाबा जी उसके बिस्तर में *एक घंटा* लेटे रहे। फिर उठकर चले गये ।

लड़की *इतने-से* उपचार के बाद ही कुछ ही दिनों में पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गई !! (बाबा जी उसकी चारपाई में लेटकर उसकी समस्त व्याधि जो समेट कर चल दिये थे !!)

(परन्तु क्या ये भी केवल अकाल मृत्यु से रक्षा-लीलायें हैं ?)

महाराज

इसी प्रकार बाबा जी महाराज न मालूम कितने ज्ञात-अज्ञात भक्तों को असाध्य रोगों से मुक्ति दिलाते रहते थे । परन्तु उनकी इन क्रियाओं में *जो कुछ भी होता वह केवल महाराज जी की ही शक्ति से — बाकी केवल लीला-कौतुक होता । यही सब* ***महासमाधि*** *उपरान्त भी हो रहा है,* जिसके कुछ दृष्टान्त पूर्व में यत्र-तत्र एवं तृतीय सर्ग में दिये गये हैं ।

महाराज

सप्तम पुष्पाञ्जलि

श्री सद्गुरु रूप में बाबा जी महाराज

जय जय जय गुरुदेव तुम्हारी । बार बार जाऊँ बलिहारी ।।

इसके पूर्व कि श्री सद्गुरु-रूप में बाबा जी महाराज की आराधना हो, प्रबल इच्छा जाग उठी है कि गुरु-महिमा का भी कुछ गुण गान कर लूँ।

श्री ***सद्गुरु-तत्व*** की महत्ता पर बहुत कुछ कहा गया है और जो भी कहा गया है वह मात्र कल्पना के आधार पर नहीं, केवल ***काव्य-रचना*** स्वरूप ही नहीं, वरन जनम जनम के संचित अनुभूत ज्ञान के आधार पर ही कहा गया, जिनका **सार** है —

'न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः । न गुरोरधिकं ज्ञानं, तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।'

कितनी अनुभूत-जन्य उक्ति है यह । गुरु के समक्ष तत्व, तप, ज्ञान सभी तो नगण्य हैं — तुच्छ, सारहीन हो जाते हैं । मूल में तो गुरु ही स्वयँ **वांछित तत्व** है । उस पर निष्ठा तथा उसकी एवं उसके आश्रमों की निष्काम-निष्ठापूर्ण सेवा ही **तप** है, तथा गुरु में *अडिग* आस्था-भाव ही **ज्ञान** है । आध्यात्म-पथ के पथिक के लिये केवल उक्त भाव तथा उसके अनुरूप आचरण ही पर्याप्त है मनोरथ सिद्धि हेतु — बाकी काम श्री सद्गुरु भगवान के हैं कि कब, कैसे ऐसे पथिक को वांछित मंजिल तक पहुँचाये ।

इन्हीं अनुभवों के आधार पर ही पुनः कहा गया —

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुदेवो महेश्वरः ।
गुरुः *साक्षात्* परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।'

गुरु ही परब्रह्म परमात्मा के तीन क्रियाशील विशिष्ट स्वरूपों — यथा, **ब्रह्मा** रूप में अध्यात्म भाव, भक्ति भाव, ज्ञान आदि का ***सृजन करता*** है, **विष्णु** रूप में इन **आध्यात्मिक भावों** का *पोषण* कर उन्हें परिपक्व अवस्था प्राप्त कराता है, तथा **शिव** रूप में *अध्यात्म मार्ग के शत्रुओं* (काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकारादि) का ***संहार*** करता है, और चूँकि ये तीनों कर्म — (सृजन, पालन तथा संहार की तीनों क्रियायें) ब्रह्मा, विष्णु

तथा महेश की तरह अलग अलग स्वरूपों में नहीं, वरन एक ही शरीर, एक ही स्वरूप धारण कर **सर्व समर्थ *सद्गुरु*** रूप में करता है, इसलिए वह **परब्रह्म** रूप है (जिसे ही **परमगुरु** भी कहा जाता है ।) साथ में ये सब कार्य स-शरीर ***प्रत्यक्ष*** रूप में करने के कारण उसे ***साक्षात्*** (प्रगट रूप) की भी संज्ञा दे दी अनुभूति-प्राप्त ऋषियों ने ।

ऐसे **सर्वसमर्थ** गुरु को ही **श्री सद्गुरु देव भगवान** कहा गया है । ऐसे सद्गुरु भगवान के पार्थिव स्वरूप के **अन्तर्ध्यान** हो जाने पर भी उसका **गुरुतत्व** शाश्वत होने के कारण चिरकाल तक अपने **मूल स्वरूप** में ही उक्त कार्य करता रहता है और उसके **साक्षात्** स्वरूप की भी निरंतरता अक्षुण्ण बनी रहती है। श्री सद्गुरु भगवान के इस **तत्व** की निरन्तर प्राप्ति हेतु केवल अनन्य भाव से उनका स्मरण-चिन्तन, उन पर निष्ठा एवं आस्था भर की आवश्यकता है । यह तथ्य उन प्रेमी भक्तों एवं अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए भी सत्य है जिन्होंने ऐसे **सद्गुरु** के साक्षात्-स्वरूप के दर्शन अथवा सत्संग लाभ न किया हो परन्तु उनके **परमतत्व** की प्राप्ति की आकांक्षा रखते हों अपने *निर्मल* हृदय में ।

श्री सद्गुरु को **भगवद्-स्वरूप** मानकर उन पर निष्ठा-आस्था के ज्वलंत उदाहरण हैं ***एकलव्य*** व ***महात्मा कबीर*** । अपने अन्तर में द्रोणाचार्य को गुरु मानकर एकलव्य ने उन्हीं पर निष्ठा-आस्था रख एवं उनकी **मूर्ति** से ही आज्ञा प्राप्त कर धनुर्विद्या में अर्जुन से भी अधिक प्रवीणता प्राप्त कर ली — (अन्तर में बिना ऐसा उद्देश्य रखे ही) और कबीर ने तो गुरु रामानन्द को अपना **आराध्य** मानकर अध्यात्म की उच्चतम स्थिति पा ली और *अमर* हो गये । अन्ततोगत्वा गुरु रामानन्द को उन्हें अपने सर्वोच्च शिष्य के रूप में स्वीकार करना पड़ा ।

श्री सद्गुरु तो स्वयँ में साकार-निराकार ब्रह्म से भी बड़े हैं । **साकार** ब्रह्म **राम** से बाल्मीकि ऋषि ने उनके ही मुँह पर कह दिया — **तुम तें अधिक गुरहिं जिय जानी । सकल भाँय सेयहिं सनमानी ।।**

तुलसी ने भी केवल एक चौपाई में ही सब कुछ कह डाला **सद्गुरु देव** की एक विशिष्टता पर — **अष्ट सिद्धि नव निधि** के सहज रूप में दाता हनुमान जी को भी बाँध दिया यह कहकर —

जय जय जय हनुमान गोसाईं । कृपा करहु गुरुदेव की नाईं !!

हनुमान जी को तो क्या संकोच कुछ भी दे डालने में । उन्हें तो प्रसन्न भर कर देने की देर है और वे हमें दे डालते हैं **अष्ट सिद्धि-नव निधि** — अब चाहे उसे प्राप्त कर हम अहंकारी बन जायें अथवा मदान्ध होकर अन्य प्रकार से भी मार्ग-भ्रष्ट होकर (फलस्वरूप) अपना *प्राप्त परमार्थ* ही बिगाड़ डालें । परन्तु यदि हनुमान जी की कृपा ***गुरुदेव की नाईं*** तक ही सीमित रहे तो *उतना ही* प्राप्त होगा — चाहे इहलोकार्थ, चाहे पर-लोकार्थ— जितना हमारे लिये समुचित रूप से हितकर होगा — धन्वन्तरि द्वारा **निदान** के उपरान्त प्रदत्त औषधि की ***मात्रा*** एवं ***अनुपान*** की भाँति।

परन्तु यदि परमार्थ मार्गी के अवचेतन मानस में दबी कोई **प्रबल कामना** उसके अध्यात्म-पथ में अवरोध बन उसे विचलित करने लगे तो सद्‌गुरु भगवान भी उसकी ऐसी कामना की पूर्ति हेतु उसे सुख, सम्पत्ति, संतान, यशादि सांसारिक उपलब्धियों से संतृप्त-संतुष्ट कर उसे पुनः आत्मोन्नति की ओर प्रवृत्त कर देते हैं — ***बशर्ते*** गुरु-कृपा से *इस* समृद्धि को *भोगते हुए भी* वह कृपापात्र उनकी इस कृपा में *निहित* **मूल-भूत सार** के प्रति सचेत रहकर अपने सद्‌गुरु भगवान की मूर्ति को अपने अन्तर में *निरन्तर* सँजोये रहे । अन्यथा, पुनः जनम जनम की बात हो जायेगी — **स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई ।** पूर्व जन्म से अवचेतन मस्तिष्क में दबी इच्छा की तुष्टि हेतु संत श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को महावतार ने स्वर्ण भवन में एक रात्रि की अवधि भर के लिए सुखभोग करा दिया था परन्तु लाहिड़ी महाशय ने अपने सद्‌गुरु की *इस कृपा के सच्चे अर्थ* को समझ भविष्य में *ऐसी* किसी भी कामना से अपने को सदा दूर रखा और *स्वयँ भी* सद्‌गुरु बन गये !!

अवढर दानी बाबा जी के **दरबार** में भी ऐसी ही समृद्धि मुक्त भाव से वितरित होती रहती थी — और घर घर जाकर भी !! परन्तु इस कृपा-प्रसाद को प्राप्त कर **संयत** रहना प्राप्तकर्ता की स्वेच्छा पर ही निर्भर रहता । फिर भी अपने **विरद — जिसका हाथ पकड़ लेता हूँ उसे छोड़ता नहीं** — की रक्षा हेतु स्वामी **चेटक-प्रयोग** भी करते रहते हैं **भटके** हुओं पर — उन्हें पुनः लीक पर लाने के लिए ।

जहाँ प्रचलित पारम्परिक नीति-रीति के अनुसार शिष्य गुरु-आश्रमों में जाकर गुरु एवं आश्रमों की सेवा-साधना में रत होकर, गुरु द्वारा मार्ग दर्शन प्राप्त कर तथा उनके उपदेशों-प्रवचनों में निहित यम-नियम एवं अन्य

उपदेशों का पालन करते हुए अपने **इष्ट** की प्राप्ति में रत रहते थे / रहते हैं, वहीं सद्गुरु रूप में बाबा जी महाराज की ऐसी गुरु-शिष्य परम्पराओं से नितान्त भिन्न अपनी ही निराली पद्धति रही जिसके निर्वाह हेतु भी वे अपनी ही शैली अपनाते रहे । उन्होंने न तो शिष्य बनाये और न आश्रमों में तथाकथित शिष्यों का जत्था ही इकट्ठा किया । गुरु-रूप में अपने को किसी के ऊपर थोपने की भी चेष्टा नहीं की । चेला बना लिये जाने की प्रार्थना पर कह देते, **"मैंई काऊ कौ चेला नाऊं — तोय कैसे बनाय लेऊं ?"** भला भगवान का शिष्य-चेला बना ही कौन ? **जगद्गुरु** कहलाने पर भी कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश केवल *सखा-भाव* से दिया और अर्जुन ने भी केवल *कृष्ण-भक्त* बनकर ही उपदेश ग्रहण किया । इसीलिये स्वयं भी कहते रहते थे बाबा जी, **"हम शिष्य नहीं, भगत बनाते हैं ।"** पर किसके भगत ? अपने ? कदापि नहीं । केवल भगत — आत्मिक उन्नति हेतु आध्यात्मिक भगत — व्यक्ति-विशेष स्वेच्छा से जिस पर भी निष्ठा रखता हो, उसीका । साथ में यह भी कहते रहते थे कि, **"मैं कुछ नहीं करता — केवल हृदय परिवर्तन करता हूँ ।"** सत्य तो यह है कि बाबा जी महाराज का चेला या शिष्य बन ही नहीं पाता था कोई । सभी या तो *भक्त* बन जाते या *प्रेमी* या *शरणागत* । अतः भक्तों अथवा तथाकथित शिष्यों द्वारा भी जहाँ महाराज जी की सद्गुरु रूप में पूजा-अर्चना होती भी थी तो साथ में इस क्रिया के मध्य *प्रिया-प्रियतम* अथवा *सखा-भाव* ही प्रधान रूप में विद्यमान रहता था (जो आज भी यथावत है ।)

बाबा जी महाराज ने गुरु बनकर किसी से कोई साधना भी नहीं कराई — केवल किसी किसी को ही मन तथा शरीर-साधना हेतु मार्ग-दर्शन भर कर दिया जिसका पालन भी उसी की स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाता था । न कोई उपदेश-प्रवचन ही दिये-किये और न किसी को यम-नियम से ही बाँधा । इसके विपरीत यम-नियमों में कालान्तर में प्रविष्ट भ्रान्ति-पूर्ण रूढ़ता में बँधे अपने अन्धविश्वासी परिकरों को इन रूढ़िवादी बन्धनों से, जिनके कारण उनका मानसिक विकास, उनका भक्ति-मार्ग अवरुद्ध था — मुक्त कर दिया ।

आश्रमों में तो अधिकांश दर्शनार्थियों के लिए **आओ, (प्रसाद) पाओ और जाओ** का ही नियम था । गुरु या व्यास-रूप में उपदेश-प्रवचनादि को उन्होंने कभी महत्व नहीं दिया । क्या गीता, रामायण, भागवत आदि में

यथेष्ट ज्ञान नहीं है ? कर्मयोग, ज्ञानयोग, आदि में क्या हमारे ग्रन्थ अपूर्ण अधूरे हैं ? क्या सदा सदा से धर्मगुरु, संत-महात्मा आश्रमों में, धार्मिक उत्सव-मेलों में उपदेश-प्रवचन, गीता-रामायण-भागवत आदि पर मीमांसायें नहीं करते रहे हैं ? परन्तु भूखी-प्यासी, अन्तर से अपूर्ण, संसार में लिप्त, मोह-बद्ध, अनेक कामनाओं से भरी, प्रारब्ध जन्य कर्मों के वशीभूत जनता पर इन उपदशों-प्रवचनों आदि का क्या प्रभाव रहा है ? सुना, क्षणिक भावावेश भी आया और फिर डूब गये अपनी उसी **दुनिया** में, और यदि कुछ करने को प्रवृत भी हुए तो निर्वाह न हो सका ***ऐसा करो - ऐसा न करो*** का। सबसे अधिक तो बलवती सांसारिक मनेच्छा आड़े आ जाती है सन्मार्ग में ।

अस्तु, बाबा जी महाराज अन्य सामान्य गुरुओं की तरह दिये जाने वाले इस प्रकार के उपदेशों-प्रवचनों से दूर ही रहे । हाँ, सुबह से शाम तक, देर रात तक अपनी **अनर्गल-सी** लगने वाली वार्ताओं में ही वे सब कुछ कह डालते थे — अनहद वाणी — गीता, रामायण, भागवत, वेदोपनिषदों, पुराणों, श्रुतियों,स्मृतियों आदि में समाहित **सारतत्व** !! और अधिकतर दृष्टान्त रूप में व्यावहारिक जगत में मर्यादा सहित निर्वाह हेतु मार्ग दर्शन, जिसकी ही अधिकांश जनता को परमावश्यकता रहती है ।

उपदेश-प्रवचन देने की अपेक्षा अपने सद्गुरु रूप में महाराज जी ने अपनी लीलाओं द्वारा गुमराह लोगों का हृदय-परिवर्तन कर उन्हें सन्मार्ग पर लाना अधिक श्रेयस्कर समझा ।

एक युवक था नैनीताल में (**ईश्वर** का पर्यायवाची नाम लिये ।) बहुत पीता था, नालियों में भी पड़ा मिलता था । इस विषय में उसकी काफी ख्याति (!) हो चुकी थी । उसकी माँ इस कारण बहुत दुःखी रहती थी कि वह बाबा जी के पास कभी नहीं आता ।

एक दिन (प्रभु प्रेरणा से ही) बहुत सुबह उसका एक मित्र उसे बरबस कैंची धाम ले आया । उसने बेमन से बाबा जी के दर्शन किये । पर जब वह चला गया तो महाराज जी ने सबसे कहना प्रारम्भ कर दिया, **"आज सुबह .... मेरे पास आया था और मेरे गोड़ (पैर) में सौ रुपये का नोट रख गया । तेरी सौं ।"** जिसने सुना आश्चर्य में आ गया कि अगर १०) रु० भी हो .... के पास तो वह पीयेगा कि महाराज जी के

चरणों में रखेगा ? और वह भी (छठे दशक के) १००) रु० ? उसकी माँ भी सुनकर, बिना विश्वास के, बाबा जी की इस लीला पर आश्चर्य करती रह गई ।

परन्तु महाराज जी की यह बात एक मुँह से दूसरे मुँह तक जाते उस युवक तक भी जा पहुँची और जो कोई मिलता, वही उससे यही बात कहता । अब तो वह सकते की हालत में आ गया बाबा जी के अपने प्रति इस भाव को समझ । छोड़ी तो नहीं, पर एकदम कम कर दी । परन्तु अन्तर में वह महाप्रभु के प्रति स्वतः समर्पित हो गया ।

यद्यपि वह युवक फिर भी महाराज जी के पास उनकी शरीरावस्था में नहीं आया, परन्तु उनकी महासमाधि के बाद वह कैंचीधाम का बिजली का सारा काम तथा उत्सवों में वहाँ बिजली की सजावट बिना शुल्क-पारिश्रमिक आदि के मृत्यु-पर्यन्त करता रहा — महाप्रभु के प्रति अपनी श्रद्धा, अपनी निष्ठा एवं प्रेम की अभिव्यक्ति रूप में !!

महाराज

बाबा जी के दर्शनों के प्रारम्भिक दिनों में श्री माँ कुछ अन्य भक्त माइयों के साथ नैनीताल में उन दिनों आये हुए एक प्रसिद्ध वेदान्ताचार्य जी के प्रवचनों को सुनने जाया करती थीं। उनके वेदान्त के ऊपर प्रवचनों में श्री माँ भी बहुत कुछ रुचि लेने लगी थीं । महाराज जी इस तथ्य से अवगत थे ही । परन्तु वे तो श्री माँ तथा अन्य भक्त माताओं को वेदान्त का असली रूप बताना चाहते थे । अस्तु, एक दिन महाराज जी ने माँ से कहा कि, **"आज उसका लोटा-जूता उठा लाना ।"** बहुत साधारण-सी बात थी । फिर भी उपहास में-सी कही इस बात से कुछ माइयों के मन में महाराज जी के प्रति तर्क भी उठ गया ।

महाराज जी की लीला ! और होनी भी ऐसी हुई कि जब वेदान्ती जी का प्रवचन पूरा हुआ और वे जाने लगे तो उनको अपना जूता मिला ही नहीं !! और जब बहुत खोजने पर भी न मिला तो वेदान्ती जी को अप्रत्याशित रूप का क्रोध व्याप गया। अभी अभी तो वे संसार की निःस्सारता पर तथा सांसारिक वस्तुओं पर मनुष्य के मोह पर प्रवचन दे रहे थे और अभी अभी अपना जूता खो जाने पर इतना क्रोध करने लगे हैं ! यही सोचती सभी माताएँ घर को चली गईं (कि थोथा ज्ञान अपनी

जगह है और वास्तविक ज्ञान वही है जिसे अपने आचरण में ढाल लिया जाये।) अगले दिन से उन्होंने प्रवचन सुनने को जाना बन्द कर दिया। बाबा जी का अपना प्रवचन तो इतना ही था — **उसका जूता-लोटा उठा लाना** !!

(**साधु-धर्म** में प्रविष्ट, पर **लीक** से च्युत हुए व्यक्तियों को भी बाबा जी इसी तरह अपनी लीलाओं द्वारा जागरूक करते रहे थे जिनके दो-एक दृष्टांत आगे दिये गये हैं ।)

महाराज

परन्तु इन सब लीला-क्रीड़ाओं के **मूल** में भी उनका मुख्य उद्देश्य केवल **सीमित** रूप में **सीख** देना अथवा मार्गदर्शन करना भर होता था — न कि गुरु-रूप में उपदेश देना, और न कभी इन सीखों को अनिवार्य रूप से मानने के लिए उन्होंने कभी किसी को बाध्य ही किया । भक्त की स्वेच्छा ही सर्वोपरि रहती । बाबा जी महाराज का तो यही भाव रहता कि—

धीरे धीरे रे मना, धीरे सबकुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ।।

और **मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्** मानने वाले ही इन **सीखों** का भरपूर फल प्राप्त करते रहे/कर रहे हैं ।

महाराज

यद्यपि बाबा जी महाराज स्वयँ कर्मकाण्ड के प्रपंचों से परे थे, फिर भी संस्कारबद्ध जनता एवं भक्त-समाज की पारम्परिक रुचियों के अनुकूल एवं उनकी तुष्टि हेतु पूजा, अर्चना, यज्ञादि भी आश्रमों में करवाते रहते थे और यदा-कदा रामायण-कथा अथवा भागवत-कथा आदि का भी आयोजन करवाते रहते थे । इस सम्बन्ध में बाबा जी का कथन कि, **"कर्मकाण्ड-पद्धति के समकक्ष घर-घर में होता नित्य पूजा-पाठ एक ऐसा सबल माध्यम है जिसके कारण ही, चाहे न्यून मात्रा में ही सही, घर परिवार के सदस्य येन-केन भगवान की सत्ता के प्रति आस्था बनाये रहते हैं । यदि इतना भर भी कर्मकाण्ड न हो तो न केवल घर-गृहस्थी की मर्यादा नष्ट हो जायेगी, वरन भगवान को पूरी तरह भूलकर मनुष्य भय-विहीन हो असीमित अनाचार में रत हो जायेगा"**, (जैसा कि आजकल तथाकथित नवीन एवं पाश्चात्य सभ्यता में रंगे-डूबे घरों में दृष्टिगत होता है ।)

वस्तुतः, जो **वह** हमें दे रहा है, उसी को **उसे** ही विभिन्न प्रकार से (यथा — पूजा, अर्चना, अर्ध्य, भोगार्पण, आभूषणादि अर्पण, धूप-दीप-आरती, यज्ञ-हवनादि के माध्यम से) **उसी की** स्तुतियों के साथ अर्पण करना ही कर्मकाण्ड है । यद्यपि **उसी की** प्रदत्त वस्तुओं को ऐसी क्रियाओं द्वारा **पुनः उसी** को अर्पण करना एक प्रकार का पाखंड-सा प्रतीत होता है बाह्य दृष्टि से, परन्तु यही अर्पण जब रूढ़ता-विहीन भाव से होता है, तो उसे **वह** भी पूर्ण रूपेण स्वीकार कर लेता है । महाराज जी के शब्दों में — ***भगवान भाव खाता है*** । योग वाशिष्ठ के अनुसार भी —

एव मेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एव बुध्यातु देवेश विधेया ब्रह्म वित्त मैः ।।

गुरुपूर्णिमा के अवसर पर

अर्थात, यह परा पूजा (कर्मकाण्ड) जिज्ञासु अथवा आर्त तथा नित्य नैमित्तिक कर्मों में रत भक्तों को सदैव ही एक-निष्ठ भाव से करनी चाहिए सार्थक फल-प्राप्तार्थ ।

यद्यपि बाबा जी महाराज अपने को गुरु-रूप में मान्यता दिये जाने को **नकारते** रहे, फिर भी उनके भक्तों ने, आश्रितों-चरणाश्रितों ने (चाहे वे अन्यथा अपने अन्तर में, मन-मानस में बाबा जी को किसी भी अन्य भाव से, अन्य रूप में — यथा, भगवद् स्वरूप, हनुमदावतार, राम-कृष्ण-शिवरूप, प्रणव स्वरूप, प्रियतम, आदि से भजते हों) उनकी पूजा-अर्चना, प्रार्थना-आरती, आदि उनको सदा सद्‌गुरु रूप में ही मानकर की — और आज भी यही करते हैं ।

और महाप्रभु भी इन भक्तों के प्रति अपने मातृ, पितृ, सखा, बन्धु, आदि भावों के साथ साथ अपने गुरु-स्वरूप का भी निर्वाह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में करते रहे — सूक्त रूप में उन्हें ज्ञान प्रदान कर, उनका योग-क्षेम वहन कर, उनकी सांसारिक समस्याओं का समाधान कर, अथवा दृष्टांत-युक्त कथाओं-लीलाओं के माध्यम से मार्गदर्शन कर या फिर जिज्ञासुओं की जटिल समस्याओं, उलझनों-शंकाओं आदि का निवारण कर। अपने भक्तों की इच्छा पूर्ति हेतु श्री गुरु पूर्णिमा के अवसर पर बाबा जी महाराज **गुरु-रूप** में अपना पूजन करने का अवसर भी उन्हें प्रदान कर देते थे।

महाराज

पूर्व में कहा जा चुका है अपने गुरु-रूप के निर्वाह हेतु बाबा जी महाराज की अपनी ही विधा, अपनी ही पद्धति, अपनी ही शैली थी । उनकी इस शैली की सबसे अधिक विचित्रता यह रही कि जहाँ परम्परागत गुरु-शिष्य पद्धति में गुरु और शिष्यों के बीच एक अप्रत्यक्ष-सी दूरी रहती है (गुरु का स्थान ऊँचा होने के कारण), वहीं श्री सद्‌गुरु बाबा जी महाराज के साथ इस **दूरी** का आभास होता ही न था शिष्य-भक्तों को। बाबा जी के साथ इन भक्त-शिष्यों का या तो *युगल-प्रेमी* का-सा भाव रहता था या श्री कृष्ण और अर्जुन के बीच का-सा *सखा-भाव* । ऐसा *प्रणय* अथवा *सख्य* महाप्रभु की ओर से ही प्रेरित हो भक्तों में भी प्रतिबिम्बित हो जाता था । अन्तरंगता की कोई *मिति* न होती । जिसे चाहते अपने हृदय से लगा लेते, वक्ष में समेट लेते — निःसंकोच । कोई दुराव नहीं, कोई छिपाव नहीं । केवल — **हम भक्तन के भक्त हमारे** का भाव ।

सशरीर सद्‌गुरु बाबा जी महाराज का गुरु-शिष्य सम्बन्ध एक **खेलवाड़** सा प्रतीत होता था । पूरी छूट थी भक्तों को अपने को *खोल* देने की । उनसे बहस कर लो, जिद कर लो, उनसे रूठ जाओ, मान कर लो, अपना क्रोध भी प्रदर्शित कर लो — यहाँ तक कि उनके प्रति अपनी शंकाये भी उन्हीं के मुँह पर कह डालो !! *वहाँ* से भी यही लीला चलती— कभी मान, कभी रोष, और कभी अनर्गल-सी लगने वाली (बच्चों की तरह) बहस, कभी (कृतिम) क्रोध, कभी हास-परिहास — कोई सीमा न थी ऐसी लीलाओं की । फलस्वरूप जो परम्परागत दूरी होती है गुरु-शिष्य के मध्य, उसका स्वतः ही तिरोहण हो जाता ।

बाबा महाराज के भक्तों का *मान* दिखाने की बात पर एक भक्त का संस्मरण याद हो आया । नैनीताल में बजरंगगढ़ की बात है । एक विशेष अवसर पर अपने घर चलने का आग्रह बाबा जी द्वारा टाल-सा देने पर भक्त के० के० साह, जिन्हें उनके प्रति सहज स्नेह के वशीभूत बाबा जी *किलास* (कैलाश) कहकर सम्बोधित करते थे, बाबा जी से अत्यन्त क्षुब्ध-से हो गये और संकल्प ले बैठे कि, "अब जब तक **फक्कड़** (अर्थात बाबा जी) स्वयं नहीं आयेंगे, मैं भी उनके पास न जाऊँगा।"

परन्तु अन्तर में तो अनन्य प्रेम था (है) ही के० के० साह को बाबा जी के प्रति । फिर भी अपने प्रेम भरे आग्रह की अवहेलना ने उनके अन्तर के अहं को उकसा दिया, किन्तु भीतर ही भीतर वे बाबा जी के दर्शनों को भी तड़पते रहे साथ साथ । कई दिन बीत गये ऐसे ही । उधर अन्तर्यामी ने भी भक्त के अन्तर की टीस महसूस कर ली और अपने भक्तों द्वारा संदेश भी भिजवा दिया *किलास* को कि, **"कल हम शहर आयेंगे । जिसे हमारा दर्शन करना हो कर ले ।"** पर फिर भी के० के० मन ही मन अपनी बात पर अड़े ही रहे कि जब तक बाबा जी महाराज स्वयँ मेरे पास नहीं आयेंगे, मैं भी नहीं जाऊँगा उनके दर्शन को ।

उस दिन बाबा जी शहर में कई घरों में घूमते रहे, आस-पास के घरों में भी । फिर भी के० के० जानते हुए भी अपने घर से बाहर न निकले दिल की धुकधुकी को दबाये । किन्तु अपने प्रियजन प्रेमी के प्रेम भरे **मान** ने अन्ततोगत्वा बाबा जी को भी हिला दिया और वे स्वयँ के० के० साह के मकान के नीचे सड़क पर आकर जोर से पुकार उठे — **किलास, किलास ! लो हम आ गये !!**

जिस *किलास* शब्द को श्री मुख से सुनने के लिये के० के० कई दिन से तड़प रहे थे, आज उसे सुनकर, तथा बाबा जी की अपने प्रति ममत्व की पराकाष्ठा की ऐसी अभिव्यक्ति *समझ* कर उनके अन्तर का इतने दिनों से अवरुद्ध प्रेम-प्रवाह फूटकर बह निकला आँखों से और वे धड़ाधड़ सीढ़ियों से सड़क पर उतर कर बच्चे की तरह फफक कर रोते हुए बाबा जी के श्री चरणों में लिपट गये । **मान-मनौवल** लीला पूरी हो गई ऐसे ।

महाराज

(परन्तु यही एक अकेला अवसर न था जब बाबा जी ने अपने भक्तों, अपने चरणाश्रितों के *मान* के समक्ष अपने स्वयँ की *भगवत्ता* एवं **सत्ता** आदि को *गौण* न कर लिया हो, *शून्य* न कर लिया हो । *परम-प्रेम के पाले* पड़ कर महाप्रभु सदा ही ऐसे भक्त के समक्ष अपने को ऐसे ही *भूल* जाते रहे अपनी *अभिरुचियों* का भी *होम* करते हुए।)

बाबा जी शहर (नैनीताल) में जब-तब जाते रहते थे । मैं सदा साथ रहता था उनके । यहाँ तक कि किसी भक्त के घर के भीतर भी उन्हीं के साथ ही रहता था (बाबा जी स्वयँ भी मुझे साथ ले लेते थे इन अवसरों में भी।) उस दिन वे नैनीताल में जी० आई० कालेज के प्रिंसिपल के घर गये, पर मुझसे कह दिया, **"पूरन, तुम बाहर ही रहो ।"** इस पर मेरे *अहं* को चोट-सी लग गई और मैं अनमना होकर मैदान के पार छोर में एक बेंच पर बैठ गया *भरा* हुआ ।

थोड़ी देर मैंने वहीं से बाबा जी की आवाज सुनी, **"पूरन कहाँ है, पूरन कहाँ है ?"** पर मैं अनजान बना बैठा ही रहा अपनी जगह । बाबा जी बाहर आ चुके थे और मुझे देख भी चुके थे । उन्होंने हाथ से इशारा कर मुझे आने का संकेत भी दिया पर मैंने देखकर भी मुँह फेर लिया !! बाबा जी के साथ परिवार के सदस्य बातें कर रहे थे । मैंने थोड़ा-सा उधर को देखा तो बाबा जी ने फिर इशारा किया आने को, पर मैंने पुनः मुँह फेर लिया और बैठा ही रहा अपनी जगह। तब बाबा जी लोगों से बातें करते करते मेरी तरफ आने लगे, पर फिर भी मैं *अनजान* बना रहा । तब पास आकर बाबा जी ने **अपने कम्बल** से दो आम निकाल मुझे देते हुए *धीरे* से कहा, **"आम बड़े मीठे हैं, खाले ।"** मेरा सारा *रोष* धुल गया इस भक्त-वत्सल लीला पर । (पूरनदा)

अपना मान टले टल जाये, भक्त का मान न टलते देखा ।

महाराज

परन्तु यह सब कैसे-क्योंकर संभव हो पाता था ? जहाँ साधना-क्षेत्र में *अन्तिम* चरण (*साधना का सुफल*) **गुरु-पद** अथवा **प्रभु-पद** प्रेम हुआ करता है, जिसकी प्राप्ति हेतु ही सारी क्रियायें, सारे योग किये जाते हैं — वहीं महाराज जी की पद्धति में कथित साधना ***प्रेम*** के स्तर से प्रारम्भ होती

रही !! पहले ***प्रेम*** फिर अन्य क्रियायें जो स्वतः ही शिष्य-भक्त के *बिना प्रयास* के ही संचालित होने लगती थीं !! (आज भी तो यही कर रहे हैं महाप्रभु अपनी निर्गुण लीलाओं के माध्यम से !!) यद्यपि इस पद्धति में रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति अथवा कुण्डलिनी-जागृति, आदि सभी स्वतः ही **गौण** हो जाते हैं — उनका कोई महत्व नहीं रह जाता **प्रेम** की *तुलना* में — तथापि ये स्थितियाँ भी (शिष्य-भक्त के *बिना* जाने ही उसके) *अपेक्षा रहित* विशुद्ध प्रेम — *केवल प्रेम* — के फलस्वरूप और साथ में महाप्रभु की **मौज** की तरंग के प्रतिफल-रूप में स्वतः प्राप्त हो जाती थीं। (आज भी यह **सत्य** यथावत है ।)

और भक्तों के अन्तर में *इस* **प्रेम** के *सृजन हेतु* भी महाप्रभु की अपनी ही *क्रिया-शैली* थी। अपने अलौकिक मनमोहिनी लीलाओं में डुबो-डुबो कर, सराबोर कर, भक्तों को अपने ही में सब प्रकार से केन्द्रित कर यही भान करा देते कि, **"मैं ही राम हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ, हनुमान हूँ, शिव हूँ, आदि शक्ति-रूप हूँ — मैं ही सबकुछ हूँ !!"** (*अनत कहाँ जाओगे उन्हें ढूँढने, उन्हें पाने* ?) इस स्थिति में अपने को पाकर किसी का भी महाप्रभु के श्री चरणों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाना *स्वाभाविक* हो जाता ।

परन्तु यह **प्रेम** भी महाप्रभु की ही **देन** होता। इस **सत्य** की सरकार स्वयँ ही अपने श्रीमुख से पुष्टि करते रहते थे। वर्ष १९७० (जनवरी) में एक दिन मेरी पत्नी से पूछ बैठे, **"तू हमसे प्रेम (प्रेम) मानती है?"**पत्नी ने अपनी सहज स्वाभाविकता से अपने अन्तर की बात कह दी,**हाँ महाराज।** तब प्रभु पुनः पूछ उठे,**"क्यों मानती है हमसे प्रेम ?"** पत्नी क्या उत्तर दे इस गहन प्रश्न का ? सोच में ही चुप रह गई कारण ढूँढते। परन्तु महाप्रभु कब मानने वाले थे इस चुप्पी को ? उन्हें तो **सत्य** को उजागर करना था। सो पीछे पड़ गये — **"बता क्यों मानती है ? बता। बता।"** जब पत्नी किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुप ही रहीं उनका श्यामल, दन्तविहीन मुखारविन्द निहारतीं तो स्वयँ बोल उठे, **"क्योंकि हम तुमसे प्रेम मानते हैं !!"**

अतः इस **प्रेम-प्रक्रिया** में जो कुछ भी होता वह मात्र महाप्रभु का ही हमारे प्रति उनके स्वयँ के **अपेक्षारहित** प्रेम का ही *परावर्तन* होता । अपनी इस प्रेम-तलैया में ही डुबो डुबोकर वे शिष्य-भक्तों की समस्त साधना, उनके सारे योग स्वयँ पूर्ण करा देते । महाराज जी की इस प्रेम-क्रीड़ा ने आध्यात्मिक मार्ग के भक्तों को ही नहीं, वरन् सांसारिकता में डूबे

शरणांगतों को भी इतने वेग से आत्मक्षेत्र में (प्रविष्ट करा) प्रगतिशील बना दिया कि वे *अपने अनजाने ही* एक कोने से दूसरे कोने में तथा एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर पहुँच जाते। जिस स्थिति की प्राप्ति हेतु यम-नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान-धारणा आदि की लकीर पीटते न मालूम कितने जन्मों की तपस्या, योग-साधना आदि की अनिवार्यता होती है, वही आध्यात्मिक स्थिति महाराज जी अपने भक्तों के अन्तर में इस *ढाई अक्षर* वाले **प्रेम** का बीजारोपण कर, उसका भरपूर सिंचन कर तथा उसे फल-फूल वाले वृक्ष का रूप-स्वरूप प्रदान कर भक्तों को नितान्त अल्पकाल में ही प्राप्त करा देते थे—उनके **अनजाने** ही !! (*परन्तु इस वृक्ष को हरा-भरा, फल-फूल युक्त रखे रहना तो प्राप्तकर्ता की स्वेच्छा पर ही निर्भर होता*।) उनकी यह प्रेम क्रीड़ा आज भी यथावत चल रही है — और भी व्यापक रूप में — नये-नये भक्तों को भी अपनी प्रेम तलैया में डुबोकर।

महाराज

परन्तु इस क्रिया में भी उन्होंने किसी को भी अपने सांसारिक दायित्वों से भागकर केवल भगवद्भजन हेतु विरागी जीवन बिताने को न तो कहा, न प्रेरित ही किया। अपितु, उस ओर ही सबको सचेत करते रहे, सदा यही **सीख** देकर कि इन दायित्वों को **उसके** निरन्तर स्मरण के साथ (राम राम कहते) *मर्यादित आचरण* के साथ निभायें ।

और न किसी को **स्वधर्म** छोड़कर अन्य मार्ग अपनाने हेतु प्रेरित ही किया। ईसाई आये तो ईसा की ओर उनकी लगन को दृढ़ किया, मुसलमान आये तो अल्लाह-मोहम्मद की ओर और सिख आये तो गुरुनानक और ग्रन्थ साहब के गुन गाये उनके समक्ष। **सीख** दी तो यही कि मानव मानव में भेद न करो, सबको परमात्मा की संतान मानो, गरीब-अपाहिजों की मदद करो, आर्त की सेवा करो, भूखे को भोजन दो—**सबकी सेवा ही आत्मज्ञान है । मदात्मा सर्वभूतात्मा** *के इसी* सिद्धान्त को महाप्रभु स्वयँ ही अपनाये हुए थे। उनकी लीलाओं से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि हम उनकी सेवा में नहीं वरन *वे ही* हम सबकी, अपने भक्तों-आश्रितों की सेवा में रत रहे सदा। और सच तो यह है कि स्वयँ-सिद्ध बाबा जी महाराज की, जो **जाहि न चाहिय कबहुँ कछु** के पूर्णावतार थे,सेवा ही क्या हो सकती थी अथवा कौन *यह सेवा कर ही सकता था* — **बिना निरपेक्ष**

पूर्ण त्याग के—और बिना उन्हें जाने । *महाराज जी तो किसी के भी द्वारा की गई* ***अन्य*** *की सेवा को* ***अपनी*** *ही सेवा मानते रहे—मानते हैं ।*

यद्यपि कभी कभी विनोद में गुरु एवं शिष्यों के मिथ्याचरण के उदाहरण देकर गुरु और शिष्य-दोनों को ही *ऐसे* आचरणों के प्रति सावधान भी करते रहते थे, तथापि साथ ही **अपने निजी** गुरु के प्रति उनके निष्ठावान भक्तों को अत्यन्त मान-सम्मान देते रहते थे। इलाहाबाद के एक गुरु-निष्ठ की बातें सुनाकर कहते थे (१६६८) कि, **"उसके घर पिछले ४०-५० वर्षों से गुरु द्वारा प्रज्वलित धूनी अब भी जलती रहती है।"** स्वयँ उसके घर जाकर उसके द्वारा अपने गुरु को अर्पित भोग को स-सम्मान स्वीकार किया ।

इलाहाबाद में ही एक जिज्ञासु, श्री वाटल से उनके गुरु के बारे में खोद खोद कर प्रश्न पूछते पूछते महाराज जी ने उन्हीं के मुँह से कहलवा लिया कि अपने (दिवंगत) गुरु की आज्ञा से उनके आश्रम की सेवा हेतु जो द्रव्य वह भेजा करते थे, उसे अब, अन्य गुरु-भाइयों द्वारा आश्रम में अव्यवस्था उत्पन्न कर दिये जाने पर उन्होंने बन्द कर दिया है, परन्तु इसके कारण उनके मन में अर्न्तद्वन्द भी था और अशान्ति भी । तब महाराज जी ने केवल *इतना* भर कहा, **"तुम्हें इन सब बातों से क्या लेना-देना । तुम अपने गुरु की आज्ञा मानते रहो । बाकी काम-परिणाम अपने गुरु पर छोड़ दो ।"** (मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम् ।) महाराज जी से अपने अन्तर्द्वन्द का *ऐसा* निराकरण प्राप्त कर वे पूर्णरूपेण संतुष्ट हो गये ।

यहाँ एक तो **गुरु-तत्व** के ***अमरत्व*** एवं उसकी ***निरन्तरता*** की ओर प्रभु का इशारा था, और दूसरा था गुरु-आज्ञा का अन्त तक निष्ठा-पूर्ण पालन का निर्देश — बिना परिणाम की ओर ध्यान दिये, *बिना स्वार्थ के*— गुरु के अन्तर्ध्यान होने पर भी ।

महाराज

इसी प्रकार शिरडी साई बाबा, श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री रमण महर्षि आदि अवतारी विभूतियों के आश्रमों के प्रति उनके शिष्यों-अनुयायियों की निष्ठा-आस्था के भी उदाहरण देकर अपने परिकरों में गुरु-भक्ति गुरु-सेवा एवं गुरु-आश्रमों के प्रति निष्ठा जागृत करते रहते थे और स्वयँ भी इन आश्रमों में जाकर ऐसे गुरु-भक्तों का उत्साह बढ़ाते रहते थे ।

ऋषिकेष के श्री शिवानन्द आश्रम में जब भी वे गये, वहाँ बाबा जी महाराज की सूक्त वाणी में निहित **सीखों** से आश्रमवासियों के मन में अपने श्री गुरु के प्रति जागृत ज्योति और भी अधिक ज्योतिर्मय हो गयी ।

वृन्दावन आश्रम में श्री कात्यायिनी मंदिर में अपने श्री सद्गुरु की वार्षिक पूजा हेतु राजस्थान के पुराने राज-परिवारों के कई सदस्य — पुरुष एवं महिलायें — वर्ष १९७३ में एकत्र हुए थे । उनमें न्यायमूर्ति श्री नागेन्द्र सिंह जी भी (जो बाद में अन्तर्राष्ट्रीय मुख्य न्यायालय – हेग, यूरोप में न्यायमूर्ति नियुक्त हो गये थे) शामिल थे । सभी के आग्रह से श्री नागेन्द्र जी बाबा जी महाराज को लिवाने वृन्दावन आश्रम आये । जब वे बाबा जी को लेकर कात्यायिनी मंदिर आने लगे तो महाराज जी ने उनसे देव कामता दीक्षित जी को भी बुला लेने को कहा, और तब सब मंदिर आ गये। वहाँ सभी ने बाबा जी महाराज को *दण्डवत* प्रणाम किया और उन्हें एक उच्चासन पर आसीन कर दिया । तब सभी (तब के) राजाओं, रानियों, राजकुमारियों ने महाराज जी का पूजन किया, अर्चना की और आरती उतारी, **भेंट** अर्पण की ।

बाहर बैठे दीक्षित जी ने शंख-घंटावादन आदि सुने और समझ गये कि महाप्रभु का आरती पूजन हो रहा है पर साथ में उन्होंने महिलाओं की सिसकियाँ भी सुनीं और यही समझा कि भाव-विह्वल हो सब रो रही होंगी।

लौटते समय दीक्षित जी ने उनसे अपना कौतूहल कि महिलायें क्यों रो रही थीं, व्यक्त किया तो बाबा जी बोले, **"वे इसलिए रो रही थीं कि अर्पित भेंट *अब उतनी न थी* जितनी कि (पूर्व में) हुआ करती थी!!"** (क्योंकि अब राज्याधिकार छिन चुके थे।) और भी कि, **"इनके खानदानी गुरु एक बंगाली साधु थे जो ४०० वर्ष पूर्व हुआ करते थे परन्तु आज भी उनकी पारम्परिक *गुरु-निष्ठा पूर्ववत बनी हुई है* ।"**

गुरु-निष्ठा का ऐसा अपूर्व आचरण और गुरु के प्रति *ऐसा* भाव (वह भी समृद्ध रजवाड़ों के मध्य) जानकर, तथा यह भी जानकर कि *आज* वे *वही* भावार्पण *बाबा जी को* कर रहे हैं, दीक्षित जी गद्गद हो उठे ।

इसी संदर्भ में महाराज जी लल्लू दादा (दीक्षित जी) से यह कहते रहे *अनेकों बार* (यहाँ तक कि दीक्षित जी को लगा कि क्या *इसके सिवा* बाबा जी के पास अन्य बात कहने को नहीं है) कि, ***'धर्म के कार्यों में***

सहयोग अवश्य करते रहना चाहिए। यदि कोई न कर सके तो तटस्थ हो जाये परन्तु अड़ंगा नहीं लगाना चाहिए, विरोध नहीं करना चाहिए। ऐसा करना (अड़ंगा लगाना) महापाप है जिसकी क्षमा नहीं है।' बाबा जी द्वारा बार बार कही *इस वाणी* का महत्व दीक्षित जी अब भली भाँति समझ गये हैं ।

महाराज

गुरु-निष्ठा की एक और अभूतपूर्व गाथा *श्री केहर सिंह* जी ने सुनाई । श्री तुलसीपत राम अंग्रेजों के समय मैनपुरी के कलेक्टर थे । बड़े गुरु-निष्ठ । *तब* उनके गुरु उन्हीं के निवास स्थान पर रह रहे थे । सभी प्रकार से उनकी सेवा हो रही थी । परन्तु एक दिन किसी नौकर द्वारा उनका अपमान-सा हो गया । गुरु जी को चेले की परीक्षा का अवसर मिल गया और लाठी लेकर सीधे कलेक्टर साहब की अदालत पहुँच तुलसीपत जी पर प्रहार करने लगे । तुलसीपत जी तुरन्त उनके चरणों में (कोर्ट में ही) गिर गये — उनका हाथ सहलाते बोल उठे, **"प्रभू, हाथों को कष्ट तो नहीं हुआ ?"** गुरु का आचरण देख कोर्ट में खड़े सिपाही गुरु जी को पकड़ने दौड़ पड़े तो तुलसीपत जी ने उन्हें **खबरदार** कहकर रोक दिया । आदरपूर्वक पुनः घर ले आये । मामला कमिश्नर तक गया और उसने आज्ञा दे दी कि गुरु जी को पकड़कर उन पर कोर्ट की मान-हानि का मुकदमा चलाया जाये । इस पर तुलसीपत जी ने कह दिया, **"मेरा इस्तीफा ले लो, पर मैं गुरु जी पर मुकद्दमा नहीं चलाऊँगा ।"** गर्वनर तक बात पहुँची । उसने भी मुकद्दमे की आज्ञा दे दी पर तुलसीपत जी अपनी बात पर अड़े रहे । अन्ततोगत्वा सभी को चुप रहना पड़ गया ।

महाराज

केवल सूक्त-रूप में, गिने शब्दों में अध्यात्म पर कठिन से कठिन, गहन से गहन जिज्ञासाओं एवं शंकाओं का निराकरण करने में महाप्रभु अपना सानी नहीं रखते थे। साथ में (अपने को **छिपाने** हेतु) हँसते हुए कहते भी जाते, **"हम कुछ नहीं जानते, हमसे मत पूछो।"** परन्तु उत्तर पाने वाला पूर्णरूपेण संतुष्ट हो जाता । (स्व०) किशन लाल साह (रामगढ़) द्वारा एक दिन पूछे जाने पर कि**"सांसारिक *जंजाल* से कब मुक्ति मिलती**

है ?" बोले, **"जब मोह खत्म हो जाता है।" "मोह *कैसे* खत्म होता है ?" "उसकी कृपा से ।" "उसकी *कृपा* कैसे होती है ?" "उसका स्मरण करने से — *भाँय-कुभाँय*** !!"

एक अन्य अवसर पर, बाबा जी के पास वर्षों से आने के बाद भी अपनी कुछ भी (आध्यात्मिक) प्रगति न होती देख किशन लाल बड़े उद्वेलित होते हुए बोले, **"महाराज ! *हम* तो यों ही मर जायेंगे"**, — (बिना कुछ प्राप्ति के ही) तो आप संदर्भ को मोड़ देते हुए तपाक से बोल उठे, **"तू भी मर जायेगा, मैं भी मर जाऊँगा और** (दूर खड़े शिव सिंह को इंगित कर) **वो भी मर जायेगा । कोई *नई* बात कहो ।"** (*मृत्यु तो एक अनादि सत्य है ।*)

और भी कि, **"तेरे हाथ में *कुछ* है तो हमको भी बता ।"** (अर्थात मनुष्य के नियंत्रण में कुछ भी नहीं है — सब कुछ केवल **उसी** की इच्छा से होता है ।) इसीलिए प्रार्थना रूप भक्तों से कहलाते रहते, **"दीन बन्धु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ ।"**

और ऐसे ही मृत्यु का प्रसंग उठने पर **सीख** देते कि, **"यह तो मृत्युलोक है, जो आया है वह एक न एक दिन जायेगा ही । *कौन, कब* चला जायेगा — किसी को नहीं मालूम । इसलिए *गुरु, भगवान और* मृत्यु को सदा याद रखना चाहिए ।"** (वस्तुतः बाबा जी की इस उक्ति में *मृत्यु* शब्द केवल *अपनी ही* मृत्यु की स्मृति रखना न होकर *संसार* की क्षण-भंगुरता को ही इंगित करता है — चाहे *संसार* विभिन्न पारिवारिक सम्बन्ध का हो और चाहे समाज, अर्थ अथवा वैभव आदि से जुड़ा हो — सार में, **स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई** । और कि, इस क्षण-भंगुरता की सतत स्मृति केवल गुरु-पद स्मरण एवं नाम-जप से ही संभव है ।)

किशन लाल ने बाबा महाराज की इस गूढ़ उक्ति को हृदयंगम कर जीवन पर्यन्त यही किया ।

महाराज

दृष्टान्त युक्त सीखों द्वारा अथवा अपनी लीलाओं के माध्यम से बाबा जी महाराज अपने परिकरों का मार्गदर्शन करते रहते थे । एक दिन दरबार में अपने एक भक्त की बात सुनाने लगे । (संदर्भ था एक वृद्धा माँ द्वारा अपनी बहू-बेटे की शिकायत !!)

हमारा एक भगत था, रिटायर हो गया था। पत्नी थी नहीं। उधर तेज स्वभाव की बहू आ गई थी। सो उसने लड़के को भी खिलाफ कर दिया अपने बाप के। अब बुड्ढा एक कमरे में अलग रहकर खुद पकाने-खाने लगा, पर दुःखी रहता था। हमसे अपनी सब कह देता था। महीनों बाद हम फिर गये उसके पास तो देखा बड़ा खुश है बुड्ढा। हमने पूछा तो बोला, "**महाराज** ! हमने सोचा कि बेटा-बहू तो अपने ही हैं। हमें ही इनकी-सी करनी चाहिए। सो एक दिन हमने एक साड़ी लाकर बहू को दे दी। कहा — बहू, पेन्सन के पैसे बचे थे, मैं क्या करता इनसे। सो तुम्हारे लिये यही ले आया। सो बाबा, शाम को बहू दरवाजे पर आई बोली — लाइये बाबूजी, सब्जी मैं काट दिया करूंगी। हमने भी उसे सब्जी की टोकरी-चाकू दे दिये। एक दो महीने बाद हमने एक साड़ी लाकर और दे दी। अब तो हमारी चाय भी भीतर से आने लगी और फिर बहू हमारा खाना भी पकाने लगी। लड़का भी कमरे में आकर बातें करने लगा। फिर एक दिन बोला — दो-दो जगह खाना बनाकर क्या फायदा। आप हमारे ही साथ खा लिया कीजिए। सो महाराज, अब हम बहुत सुखी हैं। *पर हम भीतर ज्यादा आते-जाते नहीं। जो मिलता है, खा लेते हैं कमरे में ही।*"

इसके बाद महाराज जी ने मतलब-भरी मुस्कराहट के साथ दरबार में उपस्थित कुछ बुड्ढे-बुढ़ियों की तरफ देखा और कहा, **"बुड्ढा बहुत चल्लाक (चालाक) निकला।"** सास-ससुर को लड़के-बहू के साथ कैसे रहना चाहिए, इशारे से बता दिया। परन्तु तभी उपस्थित युवक युवतियों की तरफ देखकर यह भी कह दिया, **"बुड्ढे बिना तनखा के चौकीदार होते हैं घर के।"** और भी कि, **"घर में बुड्ढों के होने से मर्यादा बनी रहती है।"**

और यदा-कदा बुड्ढों को **नौन-मौन-कौन रहना चहिए** भी कहते रहे — (जो मिले संतोष से खायें, लड़के-बहू की गृहस्थी में हस्तक्षेप न करें, और अधिकतर सबसे दूर कोने में पड़े रहें।)

महाराज

अमेरिकन जिज्ञासु डा० रिचर्ड एलपर्ट (जिसे महाराज जी ने **रामदास** बना दिया था) के माध्यम से महाराज जी ने सभी को सीख दी थी कि जब तक कोई **कामिनी-कांचन** से लिप्सा रखता है तब तक उसे

कोई भी (आध्यात्मिक) उपलब्धि नहीं हो सकती, न उसका **संसार** ही बन सकता है।

परन्तु डालरों में डूबे और फलस्वरूप सहज ही अन्य वासनाओं में लिप्त इस अमेरिकन को, आध्यात्मिक जिज्ञासु होते हुए भी, यह **सीख** कहाँ आ सकती थी समझ में। फिर भी महाराज जी ने उसे यों ही नहीं छोड़ दिया (उसे अपने पूर्वकालिक विदेशी चरणाश्रितों के आत्मिक उत्थान का दायित्व जो सौंपना था।) उन्होंने लीला रची और उसे बनारस भेज दिया जिज्ञासा तुष्टि (?) हेतु !!

और बनारस पहुँच, सब कुछ भूल, रामदास अपने *सहज* आचरण के अनुकूल पूरी तरह कामिनी-कांचन के भोग-जाल में फँस गया। पर जब कुछ काल बाद एक दिन (प्रभु प्रेरित) उसने अपने इस वर्तमान जीवन की समीक्षा की तो सहसा उसे बाबा जी महाराज की **सीख** *कामिनी-काँचन से दूर रहो* के अर्थ समझ में आ गये !! और उस ओर से वितृष्णा-वश वह पुनः महाराज जी के पास आ गया। (**मिरेकिल ऑफ लव** में रामदास)

महाराज

वर्ष १९७३, जून माह की १६ तारीख। कैंची में **राम-कुटी** भरी हुई थी भक्तों से। मैं पहुँचा तो दरवाजे पर ही खड़ा रहना पड़ा। बाबा जी बन्द लिफाफों में **कुछ** बाँट रहे थे उपस्थित भक्तों को। उन दिनों अमेरिकन भक्तों द्वारा बाबा जी महाराज की फोटो-छबियाँ जब-तब बाँटी जाती थीं। स्वाभाविक था कि मैंने सोचा कि ये भी फोटो-छबियाँ होंगी। कमरे के दूसरे कोने में खड़े मेरे छोटे पुत्र, तप्पन को भी एक लिफाफा दे दिया बाबा जी ने जिसे उसने तत्काल खोल कर देख लिया। तभी बाबा जी ने उससे कहा, **"अपने बाप को मत बताना** (इसमें क्या है), **बतायेगा ?"** तप्पन ने कहा, "हाँ, बताऊँगा।" **"कैसा लड़का है? हम कह रहे हैं मत बताना। कहता है बताऊँगा। बोल, बतायेगा ?"** "हाँ, बताऊँगा।" अब तो जनता भी तप्पन का मुँह देखने लगी कि वाकई में कैसा ढीठ लड़का है। और इधर मैं सोच रहा था कि अगर मुझे तप्पन फोटो-छबि के बारे में बता भी देगा तो क्या गुनाह करेगा ? पर तभी बाबा जी पुनः अधिक तेज आवाज में बोल उठे, **"मत बताना। *इसमें सर्प है*। बतायेगा ?"** तप्पन फिर बोल उठा, "हाँ, बताऊँगा।" इस पर बाबा जी

बहुत प्रसन्न हो बोले, **"अपने बाप से कुछ नहीं छिपायेगा ।"** तब तक मेरी जिज्ञासा ने दूसरा मोड़ ले लिया कि आखिर है क्या लिफाफे में ? भीड़ को आज्ञा हुई, **"अब जाओ ।"** लड़का बाहर आया तो मैंने उससे कहा, "*दिखा तो क्या है ?*" उसने लिफाफा मेरी तरफ बढ़ा दिया । लिफाफे के भीतर ५१ ***सर्प*** थे !! ५१) रुपये !!

(आज यही सर्प ही तो सारे जगत को डसे हैं – मुकुन्दा)

महाराज

मेरे पति सरकारी दौरे पर इलाहाबाद से बाहर थे । ईसाइयों का वाई० एम० सी० ए० में बड़े दिन का त्यौहार था । मेरे मझले लड़के पन्नू (भारत भूषण तब केवल १३-१४ वर्ष की उम्र-प्राप्त) को उन्होंने बाँसुरी वादन के लिये आमन्त्रित किया था । मैंने बहुत मना किया रात में ५-६ मील दूर जाने को कि — आधी रात को लौटोगे सुनसान जाड़े की रात में — मैं अकेली हूँ — कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगी — आदि । पर वह जिद में अड़ा रहा । रोष में उसके सामने चाभी फेंक बोली — "ताला लगाकर दे जाना मुझे दादा के घर ।" और चली गई महाराज जी के पास। जाड़े की शाम के साढ़े सात बज चुके थे।

कुछ देर बाद पन्नू जी तैयार होकर वहीं आ गये और महाराज जी को प्रणाम कर चाभी मुझे देने लगे तो मैंने महाराज जी से (इस आशा से कि वे खुद मना कर देंगे पन्नू को) शिकायत की कि, "महाराज ! ये यहाँ हैं नहीं और यह ५-६ मील दूर इतनी रात को जा रहा है ईसाइयों के बीच बाँसुरी बजाने । सुनसान रास्ते में कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगी अकेले ? इसे मना कर दीजिए" — आदि आदि । तब महाराज जी ने पन्नू से ही पूछा, **"कहाँ जा रहे हो ?"** उसने बताया तो बोले, **"जाओ, जल्दी आना। तुम्हारी माँ को चिन्ता होगी ।"** अब तक डरा हुआ पन्नू अति प्रसन्नता से महाराज जी को प्रणाम कर भाग लिया । महाराज जी की इस लीला को सभी उपस्थित लोग देखते रह गये । बाबा जी के इस अप्रत्याशित आचरण से मैं भी हतप्रभ हो गई । तभी महाराज जी ने कुछ झुककर मुझसे कहा, ***"ये क्या कम है कि बता कर जा रहा है ?"*** इस पर वहाँ उपस्थित कुछ रिश्तेदारान हँस दिये । तब महाराज जी उनकी तरफ देखकर कुछ रोष से बोले, **"हँस क्या रहे हो ? *इसके* तो बताकर**

जायेंगे पर *तुम्हारे* बाहर से ताला मारकर सिनेमा देखने चले जायेंगे। तुम सोते रह जाओगे !!"

कालान्तर में हुआ भी ऐसा ही। नई पीढ़ी के नवयुवकों की मानसिकता का ऐसा व्यावहारिक ज्ञान केवल बाबा जी महाराज को ही हो सकता था। दादा से कहा भी था, **"दादा, जवानी पर किसी का जोर नहीं। इनसे ज्यादा न बोलना — तुमको भी मारेंगे और मुझको भी !!"**

और भी कि **"अक्कल और उमर की भेंट नहीं होती कभी।"**

उस दिन चिन्तित-सी मैं रात ९ : ४५ पर घर पहुँची तो पाया कि पन्नू भी पहुँच गया थोड़ी देर में। उसका बाँसुरी वादन अन्य कलाकारों के देर में पहुँचने के कारण *पहले ही* हो गया और महाराज की *उक्त लीला से प्रभावित हो* वह अन्य आइटम देखने का विचार त्याग शीघ्र घर वापिस आ गया !! महाराज जी ने पन्नू की बात भी रख ली और मुझे भी शाँति दिलवा दी। (रमा जोशी)

महाराज

सिपाहीधारा (नैनीताल) की कु० शान्ता पाण्डे ने बड़े आग्रह से महाराज जी से अपने घर प्रसाद पाने के लिये कहा तो वे **कल** आने को राजी हो गये। साथ में कह दिया कि, **"हमारे साथ ८-१० भगत भी आयेंगे।"** दूसरे दिन सब तैयारी कर जब शान्ता जी उन्हें बुलाने बजरंगगढ़ गईं तो बाबा जी ने डांडी भी मँगवा ली उनसे। फिर देर हुई तो डाँडी भी वापिस करवा दी कहकर कि, **"हम पैदल ही चलेंगे।"** और फिर देर होते होते रात होने को आई तो कह दिया, **"अब हम नहीं आयेंगे। तू जा।"** रुआँसी हुई शांता जी किसी तरह अंधेरे में ही घर आ गईं तो घर पहुँचकर अभावग्रस्त गृहस्थी को किसी तरह चलाते पिता से भी इस बरबादी पर उन्हें बुरा-भला सुनना पड़ गया। मन ही मन रुदन करती शान्ता जी ने प्रण कर लिया कि अब *इन्हीं* पूरियों को बाबा जी को खिलाऊँगी और तब तक मैं भी कुछ न खाऊँगी।

दो दिन बीत गये। न बाबा जी आये और न इन्होंने कुछ खाया। तीसरे दिन जब माँ के समझाने-बुझाने पर ये उन्हीं पूरियों को लेकर बाबा जी के पास पहुँचीं तो उन्होंने तटस्थ भाव से कहा, **"क्या लाई है, रख दे, स्नान के बाद खाऊँगा।"** और जब स्नान के बाद पुनः

कहा, **"क्या लाई है दे"**, तो ये फूट पड़ीं कहते हुए कि, "हाँ कहकर भी आप नहीं आये । मुझे भी भूखा रखा ।" बाबा जी बोले, **"हम तो आये थे और तूने हमें पूरियाँ भी खिलाई थीं । खिलाई थीं कि नहीं — बोल ?"** तब शान्ता जी अपने उस रात के स्वप्न की याद कर बोलीं, "*वह तो स्वप्न में खिलाई थीं* ।"

तब बाबा जी ने गम्भीर होकर अत्यन्त सारगर्भित सूक्त वाणी में कहा, (वह स्वप्न था तो) **"क्या जो अब हो रहा है वह स्वप्न नहीं है ?"** और फिर बासी पूरियाँ खाने लगे ।

इस लीला से बाबा जी ने उपस्थित भक्त मण्डली को समझा दिया कि संसार में होती सभी क्रियायें स्वप्न-सम ही हैं । **मोह निशा सब सोवनिहारा ।**

महाराज

वर्ष १९६९ में मैं सुल्तानपुर गया था आडिट कार्य से । वहाँ दफ्तर वालों ने कुछ दूर जंगल में आसन जमाये एक मौनी साधू की बड़ी तारीफ की । उत्सुकतावश मैं भी उनके दर्शनों को गया । उनकी रहनी और आचरण देख प्रभावित भी हुआ । इलाहाबाद लौटा तो पाया कि महाराज पधारे हैं । तुरन्त दादा के घर जाकर उनके समक्ष नत मस्तक हुआ । कुछ देर बाद याद आई तो महाराज जी से उन मौनी बाबा के बारे में (प्रशंसात्मक शब्दों में) कहने लगा —

"महाराज, वे एक निर्जन जंगल में एक पेड़ के नीचे बिना छप्पर-छाँह के आज पूरे ९ वर्ष से रह रहे हैं — जाड़ा-गरमी-बरसात भर। मौन रहते हैं । बड़े बड़े समृद्ध धनी उनके दर्शन को आते हैं पर वे किसी का भी कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं । साल में केवल एक धोती से गुजारा करते हैं — उसी को खुद सी-सी कर पहनते हैं । केवल एक बार प्रसाद पाते हैं दिन भर में । यह धोती और प्रसाद भी केवल अपने घर वालों द्वारा लाया गया स्वीकार करते है ।" आदि आदि ।

महाराज जी बड़े नाटकीय ढंग से तखत से झुके मेरी बातें सुनते रहे और मेरे प्रभावित मन-मानस में उठते भावों को पढ़ते हुए-से आँखें घुमा-घुमा कर, बीच बीच में आश्चर्यान्वित होते-से **"अच्छा ! अच्छा !"** कहते रहे । अन्त में मुझसे उसी तरह पूछा, **"क्या धोती-भोजन *केवल अपने ही***

घर का ही ग्रहण करता है?" "हाँ महाराज!" सुनकर तत्काल सीधे होकर बैठ गये और कम्बल संभालते हुए बोले, **"तब कहाँ से साधू हो गया वह। अभी तो अपने ही घर का सब कुछ पाता है। *सारे विश्व* को *अपना* समझे बिना कोई भी साधू नहीं हो सकता !!"**

सुनकर मुझे **संतत्व** के प्रति एक *सच्चा* दृष्टिकोण प्राप्त हो गया। मनन करने पर पाया कि *केवल* महाराज जी की ही यह सामर्थ्य है कि वे किसी का भी कैसा ही अर्पण स्वीकार कर उसे **अपने योग बल** से भस्म कर लें !! और उनकी इस स्वीकृति में जाति, वर्ण, धर्म अथवा देश-काल के प्रति कोई भेद-भाव न था। कहते भी तो थे — **"सारा विश्व मेरा ही है।"** (मुकुन्दा)

महाराज

और एक दिन, इसी प्रकार की लीलाओं के मध्य इलाहाबाद में दादा के घर दर्शनों के लिये आई हुई डाक्टर राय की पत्नी से आप (जानते बूझते) पूछ बैठे, **"तू पूजा भी करती है ?"** उसने स्वाभाविक तौर पर कह दिया, "हाँ, बाबा !" सीधा-सा उत्तर था। कोई नई बात न थी। बहुतों के घर होता है पूजा-पाठ। परन्तु महाराज जी को तो कोई और ही **खेल** खेलना था भक्तों को *कुछ* समझाने के लिये। सो पुनः पूछ बैठे, **"किसकी पूजा करती है ?"** "कृष्ण भगवान की, बाबा।" **"कैसे हैं तेरे भगवान ? लाकर हमें दिखायेगी ?"** (दादा के घर उपस्थित सभी लोग शायद मेरी तरह सोचते रह गये — उसके ही घर जाकर भी तो देख सकते थे बाबा जी।)

और वह संभ्रान्त महिला दूसरे ही दिन निःसंकोच अपने कृष्ण-कन्हैया की बड़ी-सी मूर्ति ले आई एक शुभ्र-वस्त्र में लपेट कर !! मूर्ति को हाथों में लेकर महाराज जी ने बड़े ध्यान से देखकर उसकी बड़ी प्रसंशा की। सभी मन्त्र-मुग्ध इस लीला को देख रहे थे पर किसी की समझ में यह नाटक उतर नहीं पा रहा था। सभी इसे महज एक खिलवाड़ समझ रहे थे उस महिला को प्रसन्न करने हेतु।

पर अब असली लीला प्रारम्भ हुई। पूछा, **"तू अपने भगवान को स्नान कराती है ?"** "नहीं बाबा, बस पोंछ कर श्रृंगार करती हूँ, पुष्प चढ़ाती हूँ, भोग लगाकर आरती-प्रार्थना करती हूँ।" **"क्या भोग लगाती**

है ?" "बाबा, जो कुछ घर में बनता है — सब्जी, रोटी, दाल, चावल, हलुवा, मिष्टी — वही अर्पन (अर्पण) कर देती हूँ ।" **"पहले भगवान को भोग लगाती है या पती (पति) को ?"** "बाबा, ये तो सुबह ही काम पर चले जाते हैं । पहले उन्हें नाश्ता करा देती हूँ । फिर नहा धोकर, प्रसाद बनाकर भगवान को भोग लगाती हूँ ।" इस पर बाबा जी कुछ इधर उधर भक्तों तथा उपस्थित महिलाओं पर दृष्टिपात करते हुए बोले, **"वाह ! ये तो बड़ी अच्छी बात है । पति की सेवा पहले करनी चाहिए । तब फिर भगवान की ।"**

इतनी भूमिका तैयार कर महाराज जी इस लीला के असली और अन्तिम मोड़ पर आ गये । कुछ झुककर बोले —

"बता, तेरा भगवान तेरे अर्पण किये गये भोग को खाता है ?" महिला इस प्रश्न के लिये तैयार न थी । वह असमंजस में पड़ गई कि क्या उत्तर दूँ । सारा उपस्थित भक्त समाज अब बड़ी उत्सुकता से यह लीला देखने लगा था । तभी वह महिला बोली, "ये तो, बाबा, मैं नहीं जानती । मैं तो *इसी भाव* से भोग अर्पन करती हूँ कि कन्हैया खाता होगा ।" तब बाबा जी एकदम सीधे होकर बैठ गये और गम्भीर स्वर में *जोर देकर बोले*, **"हाँ, खाता है । *भगवान भाव खाता है । तभी प्रसाद बनता है* ।"**

और लीला समाप्त । परन्तु इतनी लीला केवल यह बताने के लिये हुई कि — **प्रेम-भाव** — *केवल* **प्रेम-भाव** से ही अर्पित कोई सेवा भगवान को स्वीकार्य है, और कि मंदिरों में, भोजन के पूर्व घरों में *भावपूर्ण अर्पित* भोग ही **प्रसाद** बनता है — भगवान की **जूठन** । *भावहीन* भोग का अर्पण केवल कर्मकाण्ड की रूखी विधा बनकर रह जाता है । (मुकुन्दा)

महाराज

प्रसाद के प्रति महाप्रभु के स्वयँ के बड़े उत्कृष्ट भाव थे — विशेषकर आश्रमों में भोग लगने के उपरान्त वितरित प्रसाद के प्रति । एक रात कैंचीधाम में श्री माँ के साथ टहलते हुए उन्हें प्रांगण में प्रसाद की एक पूरी पड़ी मिल गई । उसे देखकर वे बहुत दुःखी हो गये कि प्रसाद का इस तरह अपमान-दुरूपयोग किया गया है । पूरी को तुरन्त उठाकर भाव-विह्वल हो स्वयँ खाने लगे और माँ को भी देते हुए बोले, **"प्रसाद है**

यह, धर्म की चीज है, धर्म के लिये दिये गये धन से बनी है । कैसी बर्बादी करने लगे हैं लोग धर्म की चीज की ।" (मुकुन्दा)

महाराज

वर्ष १६७५ की **कल्याण** की किसी प्रति में मैंने पढ़ा था —

'छोटा कौन है ?'

'जो किसी को अपने से बड़ा न माने ।'

'बड़ा कौन है ?'

'जो किसी को अपने से छोटा न समझे ।'

'इस छोटे-बड़ेपन से *सर्वथा* मुक्त कौन है ?'

'जिसकी दृष्टि में अपने लिये तथा औरों के लिये छोटा-बड़ापन रह ही न गया हो ।'

बाबा जी महाराज वर्षों पूर्व ही *इसी तथ्य* को अपने एक हास्यास्पद-सा, अनर्गल-सा लगने वाला (कई दिन तक लगातार और फिर कभी कभी चलने वाला) प्रलाप **नान्-नान्, ठुल-ठुल** द्वारा अपने परिकरों को समझाते रहे। (कुमाऊँनी भाषा में ***नान्*** का अर्थ है ***छोटा*** और ***ठुल*** का अर्थ ***बड़ा***।) यही **नान्-ठुल** ही अन्तर के अहंकार का **मूल** है, क्रोध-ईर्ष्या-द्वेष-मद-मनःस्ताप, हीन भावना, आपसी वैमनस्य आदि का श्रोत है — समाज का **कैन्सर** — धर्माश्रम के लिये भी, गृहस्थाश्रम के लिये भी। (मुकुन्दा).

महाराज

और इसी प्रकार की अनेक छोटी छोटी बातें करते, लीलाएं करते महाप्रभु जीवन की सार्थकता पर प्रकृति और परमेश्वर के रहस्यों पर, ज्ञान योग-कर्मयोग पर, गृहस्थ धर्म पर, वेदोपनिषदों-गीता-रामायण-भागवदादि में निहित मूलतत्व पर गूढ़तम सीखें अपनी रहस्यमय वाणी एवं उक्तियों द्वारा देते रहते थे — बिना उन्हें थोथे शब्द-जाल में बँधे उपदेशों-प्रवचनों का रूप दिये। ये केवल हिन्दुओं के लिये ही नहीं, वरन समस्त मनुष्य जाति के लिये, सभी वर्णों के लिये समान रूप से उपयुक्त होते थे। इस प्रकार की लीलाओं का कोई अन्त न था जो प्रतिदिन, प्रतिपल होती रहती थीं। उन्हें जानने-समझने के लिए केवल **सचेत** रहने की आवश्यकता होती थी।

महाराज

सद्‌गुरु रूप में बाबा जी महाराज अत्यन्त आतुर भक्त अथवा जिज्ञासु को मंत्र-दान भी दे देते थे जाप हेतु । (मुझे भी दिया श्री राम नवमी—१९७३ को वृन्दावन में ।) परन्तु इस मंत्रदान के लिये न तो किसी विशेष व्यवस्था अथवा विधि-विधान की अनिवार्यता होती थी और न किसी पर्व, लग्न अथवा समय (यथा — ब्राह्म बेला, प्रातः, सायं आदि) — न किसी गुरु-दक्षिणा की, और न अपने प्रति गुरु-भाव की ही !! केवल मन्त्र प्राप्तकर्ता का कल्याण ही सर्वोपरि रहता था ऐसे मन्त्रदान की क्रिया में । बाबा जी महाराज का मंत्रों के बारे में एक *महा-कथन* यह भी था, जैसा कि उन्होंने माँ से कहा था — **"समय न मिले, सावकाश न हो, तो भी *चलते फिरते* भी मंत्र जपते रहना चाहिए ।"**

और कभी कभी ये मन्त्र किसी व्यक्ति विशेष को अथवा (उसके माध्यम से) किसी अन्य के कल्याणार्थ भी उसके स्वप्न में या अर्धचेतन अवस्था में प्रगट होकर दे देते थे बाबा जी । ऐसे मन्त्रदान का एक अनुभव श्रीमती गिरिजा देवी, रानी साहेबा (भद्री) ने मुझे कैंची धाम में सुनाया । (यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि *तब* (१९५५) रानी साहेबा स्वयँ में श्री आनन्दमयी माँ की अनुगामिनी, भक्त एवं शिष्या थीं यद्यपि राजा साहेब, श्री बजरंग बहादुर जी के बाबा महाराज का भक्त होने के कारण वे बाबा जी को भी बहुत मानती थीं ।)

जनवरी १९५५ की बात है । मेरे पति, राजा साहेब जो उस समय लेफ्टिनेन्ट गर्वनर के पद पर शिमला में थे, ४ जनवरी को भीषण रूप से बीमार पड़ गये — बहुत तेज ज्वर हो गया उन्हें । डाक्टरी इलाज बेअसर हो रहा था । शिमला में तब एक सप्ताह से बर्फ गिर रही थी — बेहद ठंड थी । उधर पं० नेहरू ने भी उन्हें कुछ गम्भीर परामर्श हेतु दिल्ली आने को कह दिया । हम दोनों चिन्ताग्रस्त थे कि कैसे क्या होगा। राजा साहेब जिद बाँधे थे कि ऐसे में ही दिल्ली जायेंगे !!

५ जनवरी की रात वे तेज बुखार में बेहोश-से पड़े थे । हमारा शयन कक्ष बहुत बड़ा था और दोनों की पलंगों के बीच एक मेज पर टेबुल लैंप, कापी (पैड) और कलम रखे थे । बाहर निकलने को एक बहुत बड़ा दरवाजा था जिसके आधे भाग में मोटा शीशा लगा था । दरवाजा *भीतर से बन्द था* ।

तब आधी रात के लगभग अपनी अर्धसुप्तावस्था में मैंने देखा कि एक **छाया** उस बन्द दरवाजे के भीतर प्रवेश कर रही है और धीरे धीरे मेरे पलंग के पास आ गई । तभी मुझे सुनाई दिया कि वह छाया कोई मंत्र-सा कह रही है जिसे सात बार दुहराया गया । मैं स्वप्न की-सी अवस्था में, अर्धचेतना में लेटे-लेटे ही सब सुन रही थी। छाया ने स्पष्ट शब्दों में कहा, **"भूलना मत, एक माला सुबह, एक माला शाम को अवश्य जपना, तेरा पती (पति) ठीक हो जायेगा ।"**

परन्तु मुझे अर्धचेतना में लेटे देख शायद उस छाया को विश्वास नहीं हुआ कि मुझे यह सब याद रहेगा । तब उसने मुझे उठाकर बैठा दिया । मैं पुनः लेट गयी । छाया ने मुझे पीठ के सहारे फिर उठा कर बैठा दिया पर मैं फिर से लेट गई । अबकी छाया ने मुझे तीसरी बार उठाकर बैठा दिया तथा दो मन्त्र कहे, और पास के टेबुल से मुझे कलम और कापी देते हुए कहा कि लिख लो । किंकर्तव्यविमूढ़तावश मैंने लाचार होकर कलम और पैड लिया और छाया की आज्ञानुसार मन्त्र लिख लिये और पुनः रजाई ओढ़कर लेट गई छाया की ओर देखती । छाया धीरे धीरे बन्द दरवाजे तक पहुँची, मुड़कर मुस्कराते हुए मेरी तरफ देखा और दरवाजे के पार जाकर अन्तर्ध्यान हो गई !! मैंने शीशों के पार से छनती हल्की रोशनी में *स्पष्ट रूप* से देखा कि मुस्कराती हुई छाया-रूप में स्वयँ *बाबा जी महाराज* थे जो अक्सर भद्री तथा शिमला आकर राजा साहेब को दर्शन देते रहते थे !! मैं पुनः घोर निद्रा में डूब गई *बिना* किसी मानसिक हलचल के !!

सुबह उठकर मैंने पाया कि मेरी कापी में दो मन्त्र लिखे हैं । धीरे धीरे मुझे बीती रात की घटना याद हो आई । परन्तु अर्ध-चेतना में लिखे इन मन्त्रों की शुद्धता पर मुझे शंका हो आई । अतः कुछ समय बाद मैंने ये दोनों मन्त्र माँ आनन्दमयी के दर्शन होने पर उन्हें दिखाये तो उन्होंने इनकी शुद्धता की पुष्टि कर दी ।

मन्त्र तो मैंने बाद ही में ग्रहण किये थे, परन्तु महाराज जी की उस प्रकार से उपस्थिति-मात्र के ही फलस्वरूप राजा साहेब दूसरे दिन से ही अप्रत्याशित रूप से स्वस्थ होने लगे !! उसके बाद तो हम दिल्ली भी गये !! (रानी गिरिजा देवी ।)

(बाबा महाराज की *सद्‌गुरु रूप* में की गई लीलाएं यत्र-तत्र एवं दशम पुष्पाञ्जलि में भी उपलब्ध हैं । महासमाधि के बाद भी स्वप्न में मंत्र-दान की गाथायें तृतीय सर्ग में दी गई हैं ।)

महाराज

श्री सद्‌गुरु वचनों की अवज्ञा

(*दुष्परिणाम एवं रक्षा भी*)

बाबा जी महाराज की साधारण रूप से भी दिये गये आदेशों की अवज्ञा के कठिन (और कभी कभी घातक भी) परिणाम हो जाते थे । ऐसे अवज्ञा-परिणामों के कई दृष्टान्त हैं, जिनमें कुछ नीचे दिये जा रहे हैं –

श्रीमती बसन्ती साह (नैनीताल — जो भक्त समाज में दादी-अम्मा के नाम से जानी जाती हैं) महाराज जी की आज्ञा प्राप्त कर अन्य माइयों के साथ गंगोत्री-यमनोत्री यात्रा को गई थीं । जाते वक्त महाराज जी ने सख्त हिदायत कर दी थी, बार बार, कि यमनोत्री मंदिर में रात को न सोना — नीचे हनुमानचट्‌टी में उतर आना । परन्तु इनकी एक नेता माई ने इन लोगों को समझाया कि दो बजे रात वहाँ घंटे-घड़ियालों के साथ दिव्य-वाद्‌य-संगीत एवं **नाद** भी सुनाई देता है — इसलिए हम रात को यहीं रुक जायें । (लेकिन इन्हें यह न मालूम था कि उस **नाद** को सहन कर पाने की शक्ति हर किसी में नहीं होती जिसके कारण ब्रह्मरेन्द्र फट जाने से मृत्यु भी हो जाती है, और कि रात्रि को वहाँ शेर भी आता है।) अस्तु, महाराज जी की आज्ञा न मानकर नाद सुनने के लोभ में दादी-अम्मा तथा अन्य माइयाँ उस नेता-माई के साथ रात को मंदिर में ही रुक गईं । हजारों फीट की ऊँचाई की उस विकट ठंड में ये सब मोटे कम्बल ओढ़कर अपने को मुँह तक ढाँक कर लेट गईं उस दिव्य ध्वनि को सुन पाने की आशा में ।

तभी एक *साधु बाबा* उस ठंड में भी केवल एक चादर ओढ़े (!!) वहाँ आ गये यह कहते हुए कि, **"तुम्हें देख कर मुझमें भी साहस आ गया यहाँ रात बिताने का । वरना यहाँ रात को कोई नहीं रह पाता ।"**

आधी रात बीतने पर इन्हें सचमुच संगीतमय गाजे-बाजे भी सुनाई देने लगे और घंटे-घड़ियाल भी। परन्तु साथ में शेर की गुर्राहट के साथ बार बार पूँछ पटकने की आवाज भी !! सुनकर इन सबको अत्यन्त भय व्याप गया मन में, और उस मानसिक अवस्था में **नाद** सुन पाने का कोई प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। *राम राम* कर रात बिता ये सुबह लौट चलीं। साधू महाराज का कहीं पता न था !!

और लौटते वक्त भी उनकी बस गैरसैंण नामक स्थान में एक खड्ड वाले मोड़ पर एक दूसरी बस से पूरी रफ्तार में ऐसी टकराई कि इनके बस की तेल-टंकी फट गई (पर आग न लगने पाई !!) कुछ को इस टक्कर के कारण चोटें भी आई। किसी तरह ये पुनः कैंची धाम पहुँच गईं।

और वहाँ पहुँचने पर महाराज जी को प्रणाम करते ही पहिला *आशीर्वाद* जो मिला, वह था बाबा जी की गालियों का अम्बार, "........**मेरी आज्ञा नहीं मानी। यमनोत्री में ही सब मर जाते।**" और कि, "**अगर मैं बस के आगे न खड़ा हो जाता** (उसे रोकने को) **तो तुम सब खड्ड में गिर कर मर जाते।**"

दयानिधान की आज्ञा का उल्लंघन का *केवल* इतना सा दण्ड !! **दण्डोपि कोमलो यस्य।**

महाराज

रवीन्द्र कुमार जोशी (रब्बू) की मेरठ में शादी तय हुई थी। तब महाराज जी इलाहाबाद में ही थे। चूँकि रब्बू के पिता, हेमदा रेलवे में इन्सपेक्टर थे (तथा उनके लिये रेल का डिब्बा रिजर्व करा लेना कठिन न था) महाराज जी ने दो-तीन बार इन दोनों से कहा, "***गाड़ी से जाओ।***" पर ये दोनों ही बस द्वारा मेरठ जाने पर कटिबद्ध रहे। उसके बाद महाराज जी भी अन्यत्र चले गये थे। जाते वक्त भी कह गये थे, "***दो बजे तक चले जाना।***"

परन्तु ६ मार्च १६७० (महाशिवरात्रि) के दिन *३.३० बजे बाद ही बारात* प्रस्थान कर पाई। आधे मार्ग के बाद ड्राइवर ने लखनऊ पहुँचने की जल्दी में गाड़ी की रफ्तार ७०-८० किमी० प्रति घण्टा कर दी। सूर्यास्त होने जा रहा था कि रायबरेली के करीब मुन्शीगन्ज (दरियापुर) के

पास एक पूरे मोड़ पर ड्राइवर ने बस की *गति नियन्त्रित किये बिना ही* स्टीयरिंग पूरा घुमा दिया। फलस्वरूप, बस ने पहिले दाईं ओर पलटा खाया फिर वेग के कारण सीधी खड़ी हुई और फिर बाईं ओर पलट कर लेटी हुई कुछ दूर तक घिसटती चली गई, पर आगे एक खड्ड के पूर्व ही *एकाएक* रुक गई !! बस में ३७ प्राणियों में १२ तो बच्चे ही थे ६ से १५ वर्ष की आयु के, ११-१२ बुजुर्ग तथा बाकी युवा ।

बस के साथ हम पहिले इधर पलटे, फिर उधर । अचानक ही क्षणों में सब कुछ हो गया। नियति के इस अप्रत्याशित क्रूर प्रहार से सब सन्न रह गये । सामने विंडस्क्रीन का शीशा तोड़ सब एक एक कर बाहर निकले । भीतर रखा सामान निकाला गया । बच्चों में एक-दो सयानों को ही कुछ चोट आई हल्की-सी, पर दो युवक — पूरनदा का लड़का सागर तथा रब्बू के मामा, प्रभास को गहरी चोटें आ गईं । बस गिरने की भीषणता इसी से आँकी जा सकती है कि बाकी टूट-फूट के साथ दो मोटे स्टील के बक्से **पिच्ची** हो गये थे । परन्तु महाप्रभु की कृपा से, जहाँ ५-६ बच्चे या सयाने काल-कवलित हो सकते थे, वहाँ केवल चोटें ही आईं कुछ को। साथ में बहू के जेवरों तथा कपड़ों के बक्सों को आँच तक न आई !!

सामान एक जगह एकत्र करते करते हमें आसपास के लठैत गाँव वालों ने घेर लिया । रात बहुत दूर न थी । इलाका आज भी अपने आराजक तत्वों के कारण मशहूर है । अपनी इस लाचार स्थिति में हमारे पास महाप्रभु को सहायतार्थ याद करने के सिवा और कोई चारा न था, और तभी बाबा जी का *रक्षा-कवच* चल पड़ा हमें उबारने । एक जीप आकर उलटी हुई बस तथा भीड़ से अवरुद्ध मार्ग में रुक गई और उसमें से उतरे मेरे मामा जी के पुत्र, डा० ए० डी० पंत तथा डा० गोवर्धन शर्मा (जो लखनऊ जा रहे थे यूनिवर्सिटी में साक्षात्कार-परीक्षा लेने, पर जिन्हें देर हो गई थी घर से निकलते निकलते — डेढ़ बजे के स्थान पर साढ़े चार बजे ही निकल पाये !!) उन्होंने जब हमें देखा तो उनके आश्चर्य के साथ कुछ पूछने के पूर्व ही मैंने उनसे कहा, "आप शीघ्र रायबरेली पहुँच कर पहले एक पुलिस दस्ता यहाँ भिजवा दीजिए, और फिर किसी तरह लखनऊ तक जाने हेतु एक बस । सागर और प्रभास को साथ ले जाकर इन्हें लखनऊ में अस्पताल में भर्ती करा दीजिए ।" वे दोनों चारों तरफ का

वातावरण देखकर वस्तुस्थिति से अवगत होते ही बिना अधिक विलम्ब के रायबरेली चले गये सागर और प्रभास को लेकर। अंधकार बढ़ने लगा था। परन्तु ३५-४० मिनट के भीतर ही एक पुलिस की गाड़ी बन्दूकधारियों के साथ आ पहुँची !! देखकर गाँव वाले खिसक लिये। महाप्रभु की *पहली* कृपा गजेन्द्र-मुक्ति हेतु। पुनः १५-२० मिनट बाद एक बस भी आ पहुँची। हम लखनऊ पहुँच गये साढ़े नौ बजे अपनी पूर्व की निर्धारित धर्मशाला में।

इधर उसी रात डेढ़ बजे रायबरेली के स्टेशन मास्टर ने प्रयाग स्टेशन को टेलीफोन से इस दुर्घटना की खबर भेज दी, और प्रयाग वालों ने स्टेशन कम्पाउंड में स्थित हेमदा के बंगले में रब्बू की माँ को भी सूचित कर दिया। घर में कुहराम मच गया — सभी के *लाड़ले* एवं *सुहाग* बारात में गये थे। तब भाभी सुबह तड़के ही बहुत सारी मात्रा में प्रसाद लेकर श्री सिद्धी माँ के पास उनके प्रवास पर जा पहुँची और रोकर उनसे सब हाल बताया। माँ ने आश्वासन दिया उन्हें कई प्रकार से कि, **"रब्बू की माँ, चिन्ता न करो। *महाराज जी सब कुछ ठीक करेंगे*।"**

और उनके इस आश्वासन की पुष्टि हेतु ही तुरन्त ही नीचे से आवाज आई एक फकीर की भिक्षा हेतु। पहिले तो माँ ने कुछ द्रव्य भेज दिया ऊपर से ही डलवाकर, पर शीघ्र ही उनके मस्तिष्क में बाबा जी के शब्द कौंध गये — **"हनुमान जी गदा लेकर अपने ही रूप में थोड़े ही आयेंगे तुम्हारे पास ? वे या तो (दुरवेष में) भिखारी बनकर आयेंगे या कोढ़ी बनकर।"** और तब माँ ने भाभी द्वारा लाया प्रसाद ढेर मात्रा में उस फकीर की सेवा में भिजवा दिया। तभी बड़ी ऊँची आवाज में फकीर का अशीर्वाद आया नीचे से, **"जिसका यह प्रसाद है उसका बाल बांका नहीं होगा।"**

और दूसरे ही दिन महाराज जी भी भाभी को संबल देने पहुँच गये। बोले, **"हम देखकर आये हैं। सब ठीक है। अब वे गाड़ी से जायेंगे।"**

हम दूसरे दिन *रेलगाड़ी से ही* मेरठ गये। स्टेशन स्टाफ के सौजन्य से मुसाफिरों से लदी गाड़ी में हमें एक पूरा डिब्बा आराम से सोते हुये जाने को मिल गया। **गाड़ी से जाओ** कहा था बाबा जी ने। आज्ञा की अवहेलना का फल मिल चुका था।

और तब लौटे भी हम *ट्रेन से ही* । रब्बू और उसकी बहू को स्टेशन से लिवाने बाबा जी ने अपनी जीप भेज दी थी । तब रब्बू और मैं उनके श्री चरणों में लिपट इस रक्षा-लीला से विभोर हुये खूब रोये । (मुकुन्दा)

कितना कोमल दण्ड था आज्ञा उल्लंघन का यह ?

महाराज

परन्तु साथ ही इसके विरोधाभास रूप में — कैंची निवासी भैरव दत्त तिवारी को वर्ष १९७४ में (अपनी महासमाधि के बाद) महाराज जी ने *स्वप्न में* आदेश देकर चेतावनी दी थी कि, **"देख, पार्थिव पूजन कर लेना अब की । भूलना मत ।"** पार्थिव पूजन (शिवार्चन) अब श्रावण मास में ही संभव हो सकता था परन्तु महाराज जी के इस साधारण-से लगने वाले आदेश को भैरव दत्त जी ने महत्व नहीं दिया । फिर भी उन्हें अपनी दी गई चेतावनी की याद दिलाने को बाबा जी ने अगली १९७४ की आषाढ़ की बरसात में *ऊपर से नीचे तक श्वेत वस्त्रों में* प्रगट होकर पार्श्व में बहती उत्तरवाहिनी गंगा के किनारे इन्हें दर्शन दे दिये थे अर्ध-रात्रि के समय । तिवारी जी तब गंगा जी में आई बाढ़ से प्रभावित अपने खेत में खड़े थे निरीक्षण करते। परन्तु ये *तब भी* न चेत पाये, यद्यपि दूसरे दिन सुबह इन्होंने बाबा जी के दर्शन की बात मंदिर में आकर माँ को भी सुनाई । किन्तु बाबा जी द्वारा निर्देशित शिवार्चन किये *बिना* ही ये पिठौरागढ़ चले गये तथा वहाँ एक साधारण सी बीमारी के कारण इनका शरीर *शान्त* हो गया ।

(बाबा जी महाराज की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष में कही कोई भी बात अनर्गल-हास्यापद-साधारण लगने पर भी कभी भी साधारण न होती थी — न भूत के लिये न वर्तमान के लिये और न भविष्य के लिये ही ।)

महाराज

लीला माई (अब दिवंगत) के पति, भक्त चन्द्र लाल साह जी (इंजीनियर) मरणासन्न रूप से बीमार थे । महाराज जी कुछ भक्तों को लेकर उन्हें दर्शन देने गये । वहाँ पहुँचकर सीधे पूजाघर में जाकर बैठ गये । सदा की भाँति लीला माँ उनके लिये भोग-प्रसाद ले आईं बनाकर ।

पर महाराज जी ने उनसे कहा, **"जा, पहिले नीचे जाकर बच्चों को प्रसाद पवा । हम फिर पायेंगे ।"** परन्तु लीला माई (यह सोचकर कि महाराज जी का आगमन सुनकर पास पड़ोस के बच्चे जमा हो गये होंगे प्रसाद के लोभ में) उनसे जिद करने लगीं कि, "नहीं महाराज, पहिले आप पाइये । बच्चों को फिर खिला दूंगी ।" महाराज जी ने तब कुछ *तेज* होकर कहा, **"आज्ञा नहीं मानती ? पहले बच्चों को खिला ।"** पर लीला माँ नहीं मानी और जबरदस्ती बाबा जी को *सदा की भाँति* अपने हाथ से खिलाने लगीं । (बाबा जी को वे बाल-रूप में ही भजती थीं ।)

उसके बाद जब नीचे गईं देखने कि कितने बच्चे हैं तो पाया कि *सारा* कमरा विभिन्न *उम्र* तथा *अनेक प्रकार* के बच्चों से भरा था !! घबराकर वे ऊपर आईं उनके लिये प्रसाद लेने, पर जब पुनः नीचे गईं तो पाया कि *वहाँ अब एक भी बच्चा न था* !! तब बाबा जी **"अब कुछ नहीं हो सकता"**, कहते चले गये । कुछ ही काल बाद इंजीनियर साहब का शरीर भी *शांत* हो गया ।

कमरे में बच्चों की जमात का सृजन करना, फिर बच्चों का पुनः लोप हो जाना — केवल महाराज जी की ही लीला थी — अपनी अनन्य भक्त लीला माँ के संकट के परिहारार्थ । किन्तु *सदा* बाबा जी महाराज की आज्ञाओं का तन-मन-धन-प्राण से पालन करने वाली लीला माई उस दिन चूक गईं । परिणाम विषम रहा ।

महाराज

इसी प्रकार रानी साहेबा (भद्री) को महाराज जी ने स्वप्न में मंत्र देकर कहा था कि एक माला *सुबह*, एक माला *शाम* अवश्य जपना — तेरा पति ठीक हो जायेगा । परन्तु जब दूसरी बार राजा साहेब बीमार पड़े तो रानी साहेबा के कथनानुसार, (मेरे इस विषय में उनसे प्रश्न पूछने पर) वे नर्सिंग होम में व्यस्त रहने से थकान एवं कुछ आलस्य के कारण *शाम की माला* नहीं जपती थीं । कुछ काल बाद राजा साहेब का शरीर शांत हो गया । (मुकुन्दा)

महाराज

श्री त्रिलोकी नाथ ब्रज लाला (मथुरा) ने **स्मृति-सुधा** में बाबा जी महाराज की आज्ञा की अवहेलना के दुष्परिणाम की अपने ही परिवार में

घटित एक गाथा वर्णन की है। बाबा जी ने उनके पिता, श्री गंगा प्रसाद जी शास्त्री को निषेधाज्ञा दी थी हनुमान जी के प्रति अनुष्ठान करने की कि, **"इससे तुम्हें तकलीफ होगी।"**

परन्तु तब भी गंगा प्रसाद जी ने हनुमद्-अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही दिनों बाद वे ऐसी दुर्घटना के शिकार हो गये कि उनके कूल्हे की हड्डी टूट गई — फलस्वरूप, वे चलने फिरने में भी लाचार हो गये। उनकी मृत्यु भी इसी असहायावस्था में हुई। कहते रहते थे, **"बाबा जी की बात मान ली होती तो यह दुःख न होता।"**

महाराज

गुरु-वचनों की अवहेलना पर बाबा जी द्वारा **सीख** की एक और लीला —

इलाहाबाद में श्री केहर सिंह जी को बाबा जी ने *अगले* दिन सुबह सात बजे दादा के घर बुलाया था कि *संगम* चलेंगे। चौधरी साहब को अपने नित्य कर्मों को निबटाने में १०-१२ मिनट का विलम्ब हो गया। विलम्ब की तो कोई ऐसी महत्ता न थी परन्तु केहर सिंह जी ने *साथ में* यह भी सोच डाला कि ***बाबा जी ही कौन ऐसे वक्त के पाबन्द हैं*** — स्वयँ भी तो वादा करके आते नहीं। (चौधरी साहब को ऐसे अपने निजी २-३ अनुभव पूर्व में हो चुके थे)

परन्तु गुरु स्वयँ जो करते हैं उसके आधार पर शिष्य या शरणांगत को भी वैसा ही करना, या उस आधार पर वैसा ही स्वतंत्र आचरण सर्वथा वर्जित है —

जो *असि हिसिसा* करइं नर, *जड़-विवेक अभिमान*।
परइं कल्प भरि नरक महुँ, *जीव* कि *ईस* समान।।

अस्तु, महाराज जी ने, लगता है, चौधरी साहब के ऐसे विचारों को मिटा देने हेतु कुछ **सीख** देने की सोच ली थी। सो वे एक अन्य भक्त की कार में सवार हो दादा को साथ लिये संगम की ओर सात बजने के तुरन्त बाद चल दिये। जब केहर सिंह जी सात बजकर बारह मिनट में दादा के घर पहुँचे तो उक्त समाचार पाकर तुरन्त अपनी कार में बाबा जी का पीछा करते फोर्ट रोड पर दौड़ पड़े। पर उनकी कार और बाबा जी की

कार के बीच हमेशा कुछ न कुछ फासला बना ही रहा !! कभी २० गज तो कभी ५ गज और कभी २ ही गज । एक बार तो एक बंगले के फाटक से बाबा जी की कार निकली तो उसी क्षण केहर सिंह जी की कार भी फाटक में घुसने को हो गई, और बाबा जी एवं केहर सिंह जी का आमना-सामना भी हो गया — बाबा जी हँस रहे थे उनकी तरफ देखकर !! इसी तरह बाबा जी उन्हें इलाहाबाद की विभिन्न सड़कों में अपना पीछा कराते दौड़ाते रहे तथा बीच बीच में पीछे के शीशे से इनकी तरफ देख देख कर हँसते भी रहे । इस तरह ७.१५ बजे सुबह से ३.३० बजे दोपहर बाद तक यह दौड़ चलती रही !!

और फिर अपने घर की सड़क के चौराहे पर पहुँचते पहुँचते (३.३० बजे) केहर सिंह जी यह सोचकर कि बाबा जी इन ८ घंटों के बीच मेरे कारण भूखे ही हैं (और साथ में *लीला का तथ्य समझ* कर भी) पीछा करना छोड़ कर अपने घर चले गये, क्योंकि इस **शिक्षा-अवधि** के बीच उधर तो बाबा जी, दादा और उनका ड्राइवर और इधर चौधरी साहब और उनका ड्राइवर भी *भूखे-प्यासे* रहे उस १३ मई, सन १९५६ की तपती धूप में — *पूरे सवा आठ घंटे* !! परन्तु *सबक* तो पूरा पढ़ाना ही था बाबा जी ने ।

दूसरी सुबह दर्शन होने पर न तो बाबा जी ने इस विषय में कुछ कहा, और न केहर सिंह जी ने ही । परन्तु दादा ने केहर सिंह जी को बताया कि महाराज जी हँस हँस कर कह रहे थे कि, **"सात बजे बुलाया था, नहीं आया । अब देखो, कैसे दौड़ रहा है पीछे-पीछे ?"**

महाराज

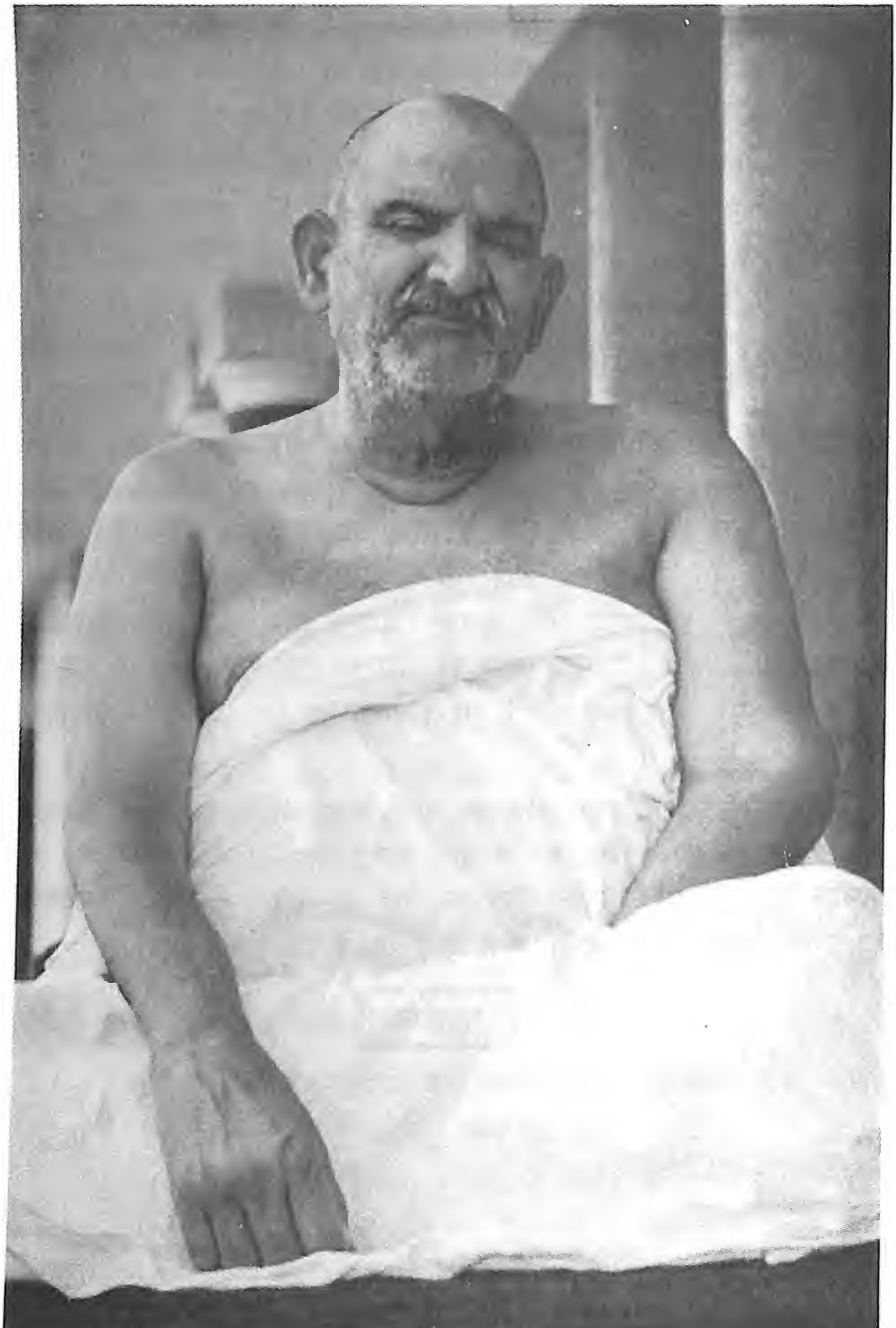

करुणामूर्त्ति

अष्टम पुष्पाञ्जलि

दया के अवतार बाबा जी महाराज

(*दया हेतु असिव रूप भी*)

दुष्टउ शरन आन जब परई । पूरन इच्छा उनकी करई ।।

दादा, हम क्या करें, हमें दया आ जाती है — दादा मुखर्जी से बातें करते, अपने ही *दया-करुणा* पूर्ण स्वभाव के समक्ष *स्वयँ लाचार* बाबा जी महाराज के ये हृदयोद्गार फूट पड़े ।

परमपिता **परमेश्वर** भी तो इसी भाँति जन-जन एवं दीनों के प्रति अपने दया करुणा पूर्ण स्वभाव के आगे **लाचार** ही रहा है, लाचार रहेगा । तभी तो वह **दया-निधान**, **करुणा-सागर**, **दीनबन्धु**, **दीनानाथ** आदि विशेषणों से सम्बोधित होता रहा है ।

बाबा जी के निकट सम्पर्क में आये हर व्यक्ति को एक अनुभूति तो होती ही थी कि उनके पास जन जन के लिये **दया ही दया** थी। **दया** थी तो **क्षमा** भी थी। दया ही तो क्षमा की जननी है। इसी कारण बड़े से बड़े जघन्य अपराध भी बाबा जी के लिये क्षम्य हो जाते थे। कर्मों के दण्ड या तो वे प्रकृति के नियम—**जो जस करहिं सो तस फल चाखा** के अधीन छोड़ देते थे या अधिकतर *दयावश* अपराधी को कोमल से कोमल दण्ड देकर उसके अपराध का प्रायश्चित करा देते थे (हृदय-परिवर्तन हेतु।) *अपने स्वयँ के प्रति* किसी भी अपराध को तो वे अपराध मानते ही न थे, परन्तु एक अपराध उनके द्वारा भी क्षम्य न था—***वह था भक्त के प्रति किया गया अपराध***—**जो भक्तन सों बैर करत है,सो बैरी निज मेरो।** ऐसे अपराधी **दरबार** से ***निष्कासित*** भी कर दिये जाते थे परन्तु **हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर** के भी विपरीत उन्हें **छोड़ते** न थे—सदा परोक्ष रूप में उनका भी **पीछा** करते रहते थे। उनकी याद कर उनके अनजाने ही उनका योग-क्षेम भी वहन किये रहते, रक्षा करते रहते थे उनकी—**जिसका हाथ मैं पकड़ लेता हूँ,उसे मैं कभी नहीं छोड़ता**—यही *विरद* था उनका, जिसका निर्वाह वे अपने **निर्गुण-प्रवेश** के उपरान्त भी कर रहे हैं ।

अपराधकर्ताओं को भी अपना दिव्य भगवद्तत्व-युक्त **प्रसाद** पवाकर सरकार उनके हृदय में परिवर्तन लाकर उनकी अपराध प्रवृत्ति में न्यूनता

लाते रहते थे । पूछे जाने पर कि ऐसे लोगों को भी इतना अधिक प्रसाद आप क्यों देते रहते हैं—**लो, और लो, और लो** कहकर—उन्हें सम्मान-सा देकर—हँसते-हुये उत्तर देते कि, **"अगर हम इन्हें प्रसाद देकर खुश न करें तो ये मेरे पास फिर फिर कैसे आयेंगे?"**(*और राम नाम कैसे लेंगे ?*)

इस त्रिगुणात्मक सृष्टि में सत्व, रज एवं तम के एक *निश्चित* अनुपातिक मिश्रण को लेकर हर मनुष्य उत्पन्न होता है जो उसके मूल-स्वभाव, मूल-प्रवृत्ति, चरित्र एवं व्यक्तित्व का कारण/परिचायक होता है। अनगिनत संख्या के ऐसे भिन्न-भिन्न *मिश्रण* संसार में अरबों की संख्या में उत्पन्न मनुष्यों में *उतने ही* भिन्न प्रकार के स्वभाव एवं गुणों के **मूल** बन जाते हैं और हर व्यक्ति में विद्यमान सत (दैवी गुण) एवं असत (काम,क्रोध, मद, लोभ, अहंकारादि) की मात्राओं के भी । मनुष्य कृत सत और असत कर्म मूलतः इन्हीं जन्म-जात वृत्तियों तथा प्रारब्ध-वश उत्पन्न परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं । सामाजिक एवं नैतिक अपराध भी इन्हीं वृत्तियों एवं प्रारब्ध-जन्य परिस्थितियों से जुड़े होते हैं जिनके आगे **मन** की दुर्बलताओं के कारण ही मनुष्य ***लाचार*** हो जाता है पूरी तरह ।

त्रिकालदर्शी बाबा जी महाराज के लिये **मनुष्य की यही लाचारी** उनकी दया एवं क्षमा का *कारण* बन जाती थी। सर्वज्ञ बाबा जी जानते थे, और कई बार कह भी चुके थे कि, **"सब बने बनाये आते हैं ।"** अस्तु, काल-कर्म-स्वभाव-गुण से घिरे व्यक्ति विशेष को देखते ही (यहाँ तक कि उसके परोक्ष में भी) मानो, वे उसके प्रारब्ध एवं कर्म, उसके भूत, भविष्य तथा वर्तमान का लेखा-जोखा, उसके अवचेतन मस्तिष्क में दबी **चाह**, छुपी भावना सभी पढ़ डालते और उसी के अनुरूप उसके साथ करुणा-दया-क्षमा अथवा कृपा की लीला कर देते ।

इसीलिये बाह्य आचरण का *अथवा वेषभूषा का* भी बाबा जी महाराज के लिये कोई महत्व नहीं रहा कभी भी । न तो अपनी **स्तुति** ही उन्हें प्रभावित कर पाती और न **निन्दा** ही । परन्तु यदि स्तुति **दैन्य** लिये हो तो फिर दया की वर्षा हो ही जाती और निन्दा करने वाला व्यक्ति भी **रोष** का नहीं वरन दुगुनी दया का पात्र बन जाता !! उसकी उक्त परिभाषित **लाचारी** ही दया-क्षमा का कारण बन जाती तब !!

अधिकांश संख्या में बाह्य रूप से महाराज जी को **त्वमेव माता च पिता त्वमेव** कहने वालों को भी (जिनमें *मैं स्वयँ* भी प्रमुख रहा) महाराज

जी **हौहुँ कहावत सब कहत, राम *सहत उपहास*** के अनुसार स्वीकार कर लेते थे । प्रभु जानते थे (और स्वयँ भी कई अवसरों पर श्री माँ से कह चुके थे) कि, **"सभी मेरे पास केवल अपने ही लिये (स्वार्थ पूर्ति हेतु) आते हैं, मेरे लिये (भक्ति, ज्ञान, परमार्थ, आदि के लिये) नहीं आते ।"** परन्तु फिर भी घट-घट की जानने वाले दयानिधान बाबा जी ऐसे याचकों के भी अन्तरमन की **चाह** जानकर उनके सारे कर्मजन्य अपराधों को क्षमा कर उनकी इच्छा पूरी करते रहते थे — किसी को उसके अन्तर की **चाह** जानकर **संत** बना दिया, किसी को **महंत** बना दिया, किसी को **गुरु**, किसी को **धनी** बना दिया, किसी को **संतान** दे दी, किसी को **वैभव**, किसी को **यश** — और भी न मालूम क्या क्या, कितना-कितना दे दिया । और कभी कभी तो अपनी दया की लहर में अपने अक्षय भंडार से किसी को वह भी दे दिया जो उसके प्रारब्ध में, उसके कर्मों के अनुरूप था ही नहीं !! यहाँ तक कि (पात्र-कुपात्र में बिना भेद किये) अपने इस मुक्त-दान के कारण उत्पन्न **भस्मासुरों** पर भी अपनी दया-क्षमा की वर्षा करते रहे !! दया की ऐसी लीलायें आज भी यथावत हैं !!

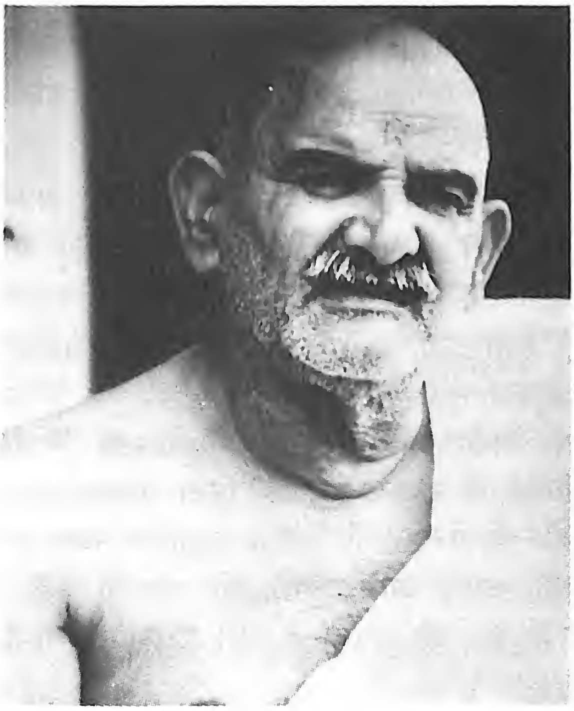

नीलकंठ बाबा जी

असिव रूप धारण कर जिस प्रकार आशुतोष **शंकर** भगवान ने देव-समाज द्वारा तिरस्कृत, निष्कासित, अधोगति प्राप्त भूत-प्रेत पिशाचों को **अपना** कर **अपनी बारात** में सम्मिलित कर सम्मानित किया, उसी प्रकार करुणानिधान एकादश-रुद्रावतार बाबा जी महाराज भी इस **असिव** रूप की, मानो, पुनरावृत्ति करते हुये इस कलिकाल के ऐसे भूत-प्रेत-पिशाचों के प्रतिरूप (काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकारादि में गर्दन

तक डूबे) जघन्यतम सामाजिक एवं नैतिक अपराधों के कर्ताओं को अपने सम्मुख पाने पर अपने श्री चरणों में प्रश्रय देते रहे । अपनी मूल प्रकृति एवं प्रवृत्तियों तथा प्रारब्ध के वशीभूत एवं मनेच्छाओं की प्रबलता के सन्मुख **निरीह** ऐसे (सामाजिक एवं नैतिक) दुष्कर्मियों के प्रति महाप्रभु के पास केवल करुणा- दया-क्षमा थी, और थी उनके **येन केन प्रकारेण** कल्याण की भावना । इसी ही उद्देश्य से, शंकर भगवान की ही भाँति, अपने इन **लाचार** भक्तों-शरणागतों के *दुष्कर्मों* की ही **हलाहल** पीते रहे महाप्रभु भी जीवन पर्यन्त !!

अस्तु, दीन-दयाल, दीन-बन्धु, दीनानाथ, दीन-अनुरागी बाबा जी के पास **दीन** (मनसा, वाचा, कर्मणा याचक) तो आते ही थे प्रश्रय पाने, **हीन** (कामनाओं की पूर्ति हेतु जघन्यतम कर्मों के कर्ता) भी बहुल संख्या में आ जाते थे इस हेतु, और इन्हें भी महाप्रभु अपनी दया-करुणा के वशीभूत हो अपना लेते थे — कि, ***अनत कहाँ ठौर पायेंगे ये*** !!

और **ऐसों** को भी दयानिधान ने अपने श्री चरणों में *केवल* प्रश्रय ही नहीं दिया वरन् ऐसा कर उनकी *असत* प्रवृत्तियों में न्यूनता ला दी और साथ में, उन्हें अपने **दरबार** में सम्मिलित कर मान-सम्मान देते हुये उनमें *धर्मार्थ-परमार्थ* कर्म करने की प्रवृत्ति भी उजागर कर दी ताकि *उनके खातों* में भी कुछ तो *जमा* हो जाये भविष्य के लिये — **येन केन विधि दीन्हें, दान दिये कल्यान ।**

परन्तु इस सबके प्रतिकार-स्वरूप बाबा जी महाराज को **अपने लिये** *किसी से भी किसी भी प्रकार कोई अपेक्षा कभी भी नहीं रही — यहाँ तक कि अपने प्रति कृतज्ञता अथवा आदर-सम्मान* की भी नहीं ।

जन जन के प्रति अपनी *इसी* दया, इसी करुणा के कारण महाप्रभु *अनेक* रूप धारण कर उनके अनुरूप भूमिकायें अपनाते रहे — माँ, पिता, भाई, बन्धु, सखा, गुरु, अन्नदाता, आदि आदि बनकर — जिसके निर्वाह हेतु उन्हें *उचित-अनुचित* की सीमायें भी तोड़नी पड़ीं— बिना मान-अपमान, आक्षेपों, लांछनों, अथवा अपवादों की परवाह किये — बाजीगर बन कर चमत्कारी लीलायें भी करनी पड़ीं, अपनी **अभिरुचियाँ**, भी त्यागनी पड़ीं । कहाँ तक ऐसे रूपों, ऐसी लीलाओं को, जो अनन्त हैं, पल पल होती रहती थीं, अंकित किया जा सकता है ।

महाराज

येन केन विधि दीन्हें, दान दिये कल्यान तथा **अपने लिये कोई अपेक्षा कभी भी नहीं रही** के संदर्भ में अपनी एक अनुभूति याद आ गई । सरकारी ड्यूटी में फरवरी से मई १९७३ तक आगरा में रहते हर शनिवार तथा छुट्टियों में मैं महाप्रभु के श्री चरणों में आ लगता वृन्दावन आश्रम में। मैं देखता रहता कि **अष्ट सिद्धि-नव निधि के दाता** बाबा जी महाराज स्वयँ कुछ समृद्ध जनों से कभी चीनी लाने/भेजने को कहते, कभी गेहूँ-आटा तो कभी लकड़ी-चावल आदि । एक दिन उनकी इस बात से मन में बड़ा उद्वेलन हो उठा — शंकाओं के साथ — कि यह सब क्या लीला है ? क्यों *स्वयँ-सिद्ध* बाबा जी — जिनकी कृपा लीलाओं से न मालूम कितने भूखे-प्यासों का भरण-पोषण हो रहा है — ऐसा आचरण कर रहे हैं ?

रात को इसी विचार में नींद उचट गई, और फिर नहीं आ पाई बड़ी देर तक । मन में तर्क-कुतर्क-शंकायें उठती रहीं । शायद **उधर** भी मेरे इन *असत* विचारों ने टक्कर ले ली । तभी मैं स्वयँ बोलने लगा अपने से ही (*बाबा जी की ओर से* — उन्हीं से प्रेरित होकर) — **"तू तो बावला है । समझता नहीं । मैं किसी का एक *तिनका* भी नहीं लेता । मैं तो इनसे वही देने को कहता हूँ जो इनके *भोग* का नहीं है — जो या तो अस्पतालों में जायेगा, या अदालतों में, या स्वयँ नष्ट हो जायेगा और *आगे* भी नष्ट करेगा । इनसे *वही* लेकर मैं इन्हीं का तो *कोष* बढ़ा रहा हूँ — इन्हीं के कल्याण के लिए उसे ही जन-जन में वितरित कर ।"**

मन को परम शान्ति मिल गई । नींद आ गई । और वैसे भी तो हम सदा देखते भी आये हैं कि एक अंश सेवा का भी फल सौ गुना-हजार गुना कर लौटाते रहे बाबा जी महाराज । (मुकुन्दा)

महाराज

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कि महाराज जी की समस्त लीलायें उनकी जन जन के प्रति दया-क्षमा का ही निरूपण करती हैं । अपनी इस दया-क्षमा को रूप-स्वरूप देने के लिये कोई भी विधान, कोई भी नियम, कोई भी आचार संहिता, आदि उनके आड़े नहीं आ सकती थी ।

श्री धाम कैंची में गायत्री महायज्ञ के आयोजन के अन्तिम दिन अनेक गाँवों से हजारों की संख्या में ग्रामीण जनता — बाल-वृद्ध, युवक-युवती, — भण्डारा-प्रसाद पाने के लिये आश्रम के प्रांगण में सुबह से ही

एकत्र होने लगे थे । परन्तु कर्मकाण्डियों द्वारा विधाओं की पूर्ति में अत्यंत विलम्ब के कारण दोपहर बाद तक भी भण्डारा प्रारम्भ न हो सका । अपनी कुटी में बैठे बाबा जी जान गये कि गरीब जनता, जिसके लिये यह कर्मकाण्ड *अरबी-फारसी* के मानिन्द था — भूख से व्याकुल हो चली है । प्रबन्धकों को बुलाकर पूछा — **क्या देर है भण्डारे में** ? तो उत्तर मिला, "महाराज, अभी पूर्णाहुति नहीं हुई ।" बिगड़ गये बुरी तरह दयानिधान और डांट कर बोले, **"क्या होती है पूर्णाहुति जब इतनी आत्मायें भूखी बैठी हैं? पूजा का भोग निकालकर खिलाओ इन सबको ।"** ऐसा ही किया गया ।

इनमें से कितनों ने अन्तर में पुकारा होगा, "*महाराज, बड़ी भूख लगी है — प्रसाद पवाइये* !!"

महाराज

इलाहाबाद में महाराज जी के पास दो व्यक्ति आये जिनमें एक ने वकीली काला कोट पहिन रखा था, दूसरे ने सादे कपड़े । बाबा जी ने उन्हें अपने सामने पाकर काला कोट पहिने व्यक्ति से कहा, **"तू तो वकील नहीं है ।"** उसने हामी भर दी और फिर दूसरे से कहा, **"वकील तो तू है। क्यों आये हो ?"** तब वकील बोला, "बाबा, इसको कत्ल के केस में फाँस दिया गया है और पुलिस इसका पीछा कर रही है ।" इस पर बाबा जी ने काले कोट वाले से पूछा, **"क्या तूने कत्ल नहीं किया ?"** उसने सूक्ष्म-सा उत्तर दिया, "नहीं बाबा ।" महाराज जी ने अबकी जरा तेज आवाज में पूछा, **"क्या तेरा हाथ नहीं था कत्ल में ?"** उसने सिर हिला कर हामी भर दी । बाबा जी आर्त हो बोले, **"वह व्यक्ति तो बहुत सीधा था । क्यों मरवाया उसे तूने ?"** "बाबा, वह मेरी राह का रोड़ा बन गया था ।" तब महाराज जी और भी द्रवित होकर बोले, **"उसके बच्चे अभी छोटे हैं । कैसे परवरिश होगी उनकी ?"**

अन्ततोगत्वा इस सार्वजनिक स्वीकारोक्ति के बाद महाराज जी ने उस व्यक्ति से सबके सामने *रोते हुये कान पकड़वाकर* वचन ले किया कि आइन्दा वह ऐसा नहीं करेगा — और मृतक के बच्चों की परवरिश में सहायता करेगा — इतना भर कोमल दण्ड !!

परन्तु कानून के शिकंजे से मुक्ति ? बाबा जी ने वकील से पूछा, **"किसकी अदालत में है मुकद्दमा ?"** एक मुसलमान जज का नाम

जानने पर बोले, **"जाओ, सब ठीक हो जायेगा ।"** दोनों प्रणाम कर चले गये । (**अलौकिक यथार्थ** से अनूदित)

(शरणागत को कैसे तज सकते थे बाबा जी ? परन्तु यहाँ इस लीला में एक तो बाबा जी ने उनके छद्मवेश का पर्दा सबके सामने फाश कर दिया, फिर उस व्यक्ति द्वारा किये गये अपराध को उसी के मुँह से स्वीकार करवा लिया सबके सामने — उसे उसका अपराध-बोध करवाते, जिसके कारण वह ग्लानि से अत्यंत लज्जित हो गया, और अन्त में, सब उपस्थित जनता को भी स्पष्ट रूप से बता दिया — **मैं सब कुछ जानता हूँ, जान लेता हूँ, मुझसे कुछ नहीं छिपा है, और न कोई कुछ छिपा सकता है ।** कहते भी रहते थे, — *मैं सबकी एक एक सांस गिनता हूँ — मुझे बावला मत बनाओ* — लेखक ।)

महाराज

वृन्दावन आश्रम में निर्माण कार्य चल रहा था। एक कर्मचारी ने, जो निर्माण हेतु आये सीमेंट, लोहा, ईंट आदि की देख रेख करता था, महाराज जी की अनुपस्थिति में कुछ सीमेंट की बोरियाँ बेच दीं। त्रिकालदर्शी से क्या छिपा रहता। बाबा जी पुनः आश्रम पहुँचे तो अपनी **लीला** कर उस कर्मचारी से सब कुछ उगलवा लिया। पर उसकी (चोरी करने की) मनोवृत्ति भी तो ठीक करनी थी बाबा जी ने। सो उससे पूछा, **"कितने में बेची सीमेंट ?"** "ढाई सौ रुपये में, महाराज जी।" और तब उसे फौरन ढाई सौ रुपये *और* देकर आश्रम से निष्कासित कर दिया महाराज जी ने ।

कालान्तर में वह कर्मचारी इतना अधिक परेशान हो गया रोटी-पानी के लिये दर-दर ठोकरें खाकर कि पुनः बाबा जी महाराज के श्री चरणों में आ गिरा कि, **"त्राहिमाम् ! क्षमा करो दीनानाथ।"** दयानिधान ने तब उसका तबादला लखनऊ वाले मंदिर में कर उसकी रोजी-रोटी का प्रबन्ध कर दिया ।

महाराज

भूमियाधार मंदिर बन रहा था — केवल महाराज जी की कुटी बन पाई थी । तभी बाबा जी के पास रिपोर्ट पहुँची कि पास के एक हरिजन ने दो टिन की चादरें तथा चन्द बोरी सीमेंट चुरा कर बेच दिया है । बाबा

जी ने उसे बुलाया और पूछा, **"क्या तूने टिन और सीमेंट चुराया ?"** उसने भी अपने सरल भाव से चोरी स्वीकार करते हुये कह दिया, "हाँ, महाराज।" **"क्यों की तुमने टिन और सीमेंट की चोरी ?"** "महाराज, मेरे पास अपने भूखे बच्चों को खिलाने को कुछ नहीं था।" सुनकर करुणानिधान द्रवित हो उठे । तुरन्त प्रबन्धकर्ता ब्रह्मचारी बाबा को बुलाकर आदेश दिया कि, **"इसे एक बोरी आटा और पचास रुपये अभी दे दो !!"** करुणानिधान को *दया* आई तो *क्षमा* भी स्वतः आगे आ गई। (केहर सिंह)

महाराज

इसी प्रकार बजरंगगढ़ में एक कर्मचारी ने कुछ चाँदी के बर्तन एवं आभूषण चुरा लिये । तत्कालीन प्रबन्धकर्ता ने तल्लीताल (नैनीताल) थाने में रिपोर्ट लिखा दी । कर्मचारी पकड़ा गया और उस के पास से माल भी बरामद हो गया । वह थाने में भी बन्द कर दिया गया ।

उसने बाबा जी महाराज को पुकारा भी कि नहीं, ज्ञात नहीं पर तभी मामला आगे बढ़ने से पूर्व ही महाराज जी बजरंगगढ़ पहुँच गये और तथ्यों का (जानते हुये भी) पता लगाकर प्रबन्धकर्ता को बहुत फटकार लगाई कि उसने थाने में क्यों रिपोर्ट की । साथ में आज्ञा दी कि जाकर एफ० आई० आर० वापिस लो और कर्मचारी को थाने से छुड़ाकर लाओ ।

और जब वह आ गया तो उसे *न केवल* वे बर्तन और आभूषण दे दिये *वरन* उनके मूल्य के समान रुपये *और* भी देकर विदा कर दिया !! (केहर सिंह)

महाराज

ऐसी दया-क्षमा के अनगिनत दृष्टांत हैं। वैसे भी जितने भी शरणांगत-आश्रित बाबा जी महाराज के पास आये, आते रहे, सभी ही तो *कुछ न कुछ* छोटे-बड़े, न्यून-जघन्य अपराधों के कर्ता तो होते ही थे (जिन में मैं *स्वयँ भी* प्रमुख ही था) — और (मूलगत प्रवृत्तियों एवं स्वभावश-प्रारब्धवश तथा परिस्थितियों के प्रभाव में) *पुनः पुनः वैसे ही* गुनाह कर बैठते थे । *तब भी* सभी ही महाराज जी के दया-क्षमा के पात्र हो जाते । बाबा जी का तो एक ही भाव होता — **मेरा नाम ले रहा है — मेरे पास आया है — कैसे छोड़ दूँ ?**

इसी भाव का कैसा खुला निरूपण है रामचरित मानस में —

रहति न प्रभु चित चूक किये की ।
करत सुरति सय बार हिये की ।।
जेहि अघ बधेउ व्याध इमि बाली ।
फिर सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली ।।
सोइ करतूति विभीषण केरी ।
सपनेहुं सो न राम हिय हेरी ।।

परन्तु साथ में महाराज जी द्वारा ऐसी दया-क्षमा *विभीषण-सदृश शरणांगतावस्था* में ही सुलभ होती थी — अन्यथा कर्म दण्ड तो मिलते ही थे — चाहे जिस रूप में मिलें । और महाप्रभु भी यदा-कदा **चेटक** दिखाने में नहीं चूकते थे ।

महाराज

चेटक (चेतक) दिखाने की एक लीला याद आ गई । कौतुकी बाबा जी तो जहाँ मन आया घूमते रहते थे और अपनी लीलाओं से जनता को **लीक** पर लाते रहते थे, विशेष कर साधु-वृत्ति ग्रहण कर चुके लोगों को। एक दिन ऐसे ही एक साधू-महात्मा के आश्रम में जा पहुँचे । पहले तो स्वयँ ही उसके आश्रम का चक्कर लगा कर देख लिया कि साधू जी ने क्या क्या समृद्धि इकट्ठा कर रखी है । उसके बाद साधु बाबा से मिले, उससे सब कुछ पूछा — कितनी गायें हैं, कितनी आमदनी है, कितना दूध होता है — आदि । वह भी निश्चिन्त होकर अपनी तारीफ में सब बताता गया । तब बाबा जी ने कहा, **"हमें भी एक गिलास दूध पिला दे ।"** बस क्या था — साधू बाबा एकदम मुकर गये — "कहाँ है दूध बाबा, यहाँ तो कुछ भी नहीं है ।" बाबा जी ने पुनः विनती की कि दूध पिला दे, परन्तु वह **अपने में ही मगन** साधू मना करता गया । बाबा जी भी उठकर चल दिये।

परन्तु वह व्यक्ति तो साधू बन ही चुका था और उसे सन्मार्ग पर भी लाना ही था । सो, न मालूम बाबा जी ने क्या माया फेरी कि वह साधू कुछ दिनों बाद महाराज जी को ढूँढते उनके चरणों में आ गिरा — *त्राहिमाम्* कहते । उसके आश्रम की गायों ने *दूध देना ही बन्द* कर दिया था !! तब बाबा जी ने उसे साधु-धर्म समझाते हुए कहा कि, **"आश्रम में जो**

भी आये, उसे कुछ न कुछ प्रसाद दो और केवल *लेना* न सीखो । यदि कोई कुछ मांगे और तुम्हारे पास हो तो इन्कार मत करो ।"

प्रसंगवश — यही धर्म सदगृहस्थ के लिये भी बाबा जी बतलाते रहते थे । इस संदर्भ में (संतुष्ट जीवन-यापन हेतु **सीख** देने को) मेरे घर जब भी आते एक दोहा आते-जाते अवश्य सुना जाते —

साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।

उषा जी से उक्त लीला गाथा सुनकर मुझे श्री सत्यनारायण जी के कथा-माहात्म्य का वह प्रसंग भी स्मरण हो आया जहाँ वणिक पुत्र से सत्यदेव के कुछ माँगने पर उसने कह दिया था कि, **"नाव में केवल लता-पत्रादिक हैं ।"** और सत्य देव की माया से उसका सारा धन सचमुच लता-पत्र में बदल गया था । क्षमा मांगने पर ही उसे पुनः वह धन प्राप्त हो पाया था । (मुकुन्दा)

महाराज

लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति लगी तो श्रीराम को शंका हो आई कि विभीषण को लंका-राज हेतु दिया गया वचन लक्ष्मण के बिना कैसे पूरा होगा – सो बोल उठे –

"तात को सोच न मात को सोच, सोच नहीं कछु राज गये को।.... (आदि पर) सोच विभीषण बाँह गहे को।।"

बाबा जी भी अपनी उक्ति (कि) **'जिसका हाथ मैं पकड़ लेता हूँ उसे कभी नहीं छोड़ता'** की पुष्टि हेतु श्रीराम का उक्त कथन स्वयं पर भी लागू करते हुए यदा-कदा सुना देते थे। (शकुन्तला साह)

महाराज

भूल करना मनुष्य का स्वभाव है । पर की हुई भूल को मान लेना और इस तरह आचरण रखना कि जिससे वह भूल फिर न होने पाये आत्मिक प्रगति है तथा क्षमा-प्राप्ति का साधन भी ।

बेहद्दी मैदान में
रहा कबीरा सोय ।

हम कोई चमत्कार नहीं करते । जब हमारा हृदय किसी बात पर डोल जाता है तो प्रकृति खुद सब अपने आप कर देती है ।

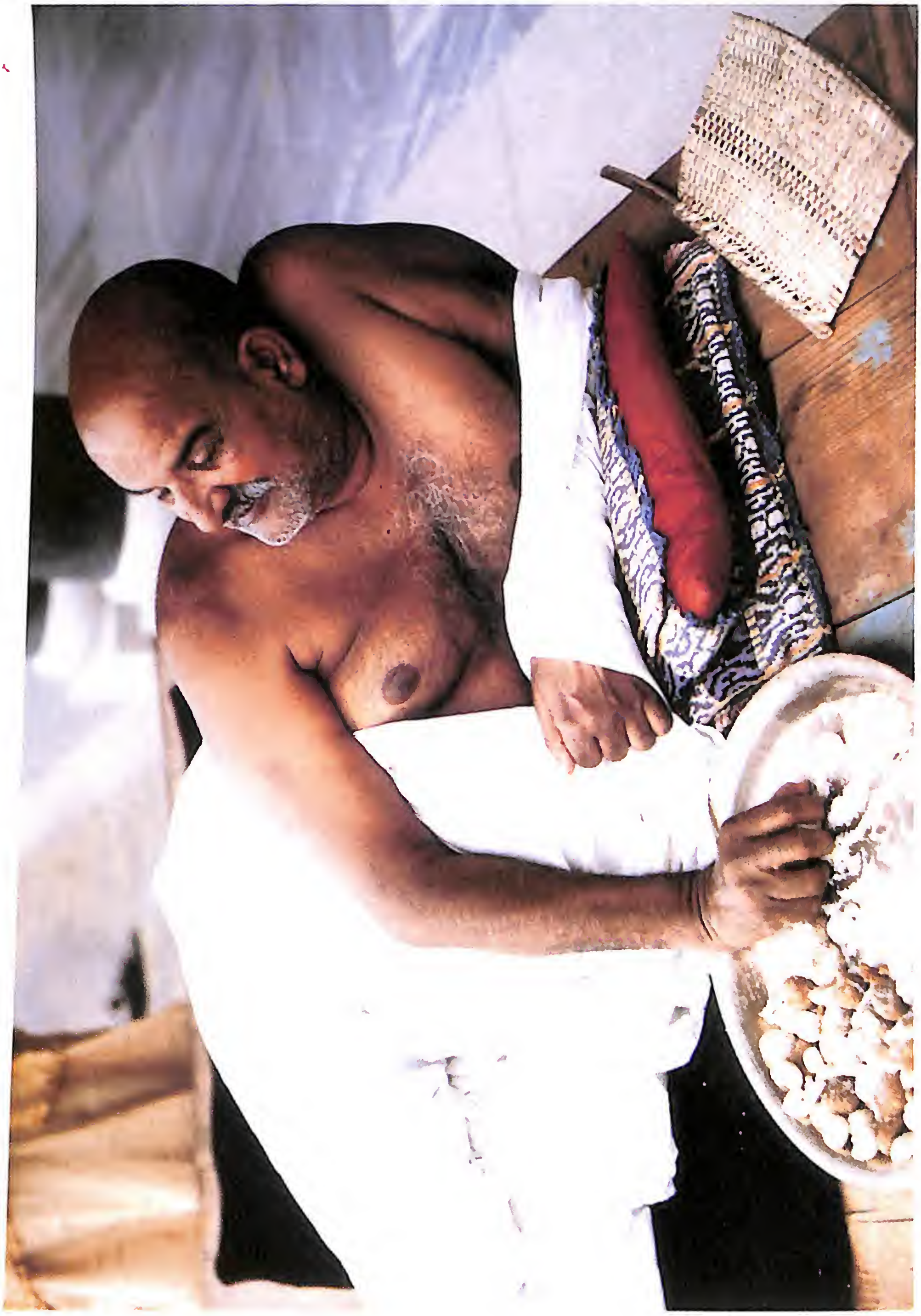

लो और लो

नवम पुष्पाञ्जलि
बाबा जी महाराज और 'प्रकृति'

"पूरन, हमारा सारा काम प्रकृति करती है ।" (एक दिन महाराज जी भक्त पूरन से अपना यह रहस्य प्रगट कर बैठे ।)

कोई तत्व, कोई वस्तु, (जड़ अथवा चेतन) किसी अन्य का **सारा** (एवं सुचारु रूप से मनोनुकूल) काम तभी करता/करती है जब कि **मालिक** का उस तत्व अथवा उस वस्तु पर पूर्ण **नियंत्रण** हो (और साथ में उस तत्व अथवा वस्तु की उपयोगिता का मालिक को समुचित **ज्ञान** हो।)

यहाँ **प्रकृति** पर इस प्रकार के अपने भी नियंत्रण का रहस्योद्घाटन महाप्रभु ने अपनी ***तरंग*** में कर डाला । परन्तु ***प्रकृति*** तो परम-पिता परमात्मा की अपनी ***कृति*** है — निराकार ब्रह्म की साकार प्रतिमा है — उससे भिन्न नहीं। निर्गुण ब्रह्म प्रकृति के माध्यम से ही सगुण रूप धारण कर अपने अस्तित्व, अपने स्वरूप की पहिचान कराता है। प्रकृति के माध्यम से ही **एकोहं बहु श्यामः** सम्भव हुआ । चल-अचल, जड़-चेतन — सभी उस निराकार की साकार अभिव्यक्तियाँ हैं और **उसी** के नियंत्रण में, **उसी** की **शक्ति** से, **उसी** की इच्छानुसार नियम-बद्ध प्रकृति की समस्त सृजन, पालन एवं संहार की क्रियायें स्वतः चलती रहती हैं । सारी सृष्टि ही त्रिगुणात्मक (सात्विकी-राजसी-तामसी) प्रकृति की देन है तथा **मालिक** के ही नियंत्रण में क्रियाशील है ।

और जब *ऐसी प्रकृति* के तत्व किसी **शरीरधारी** का भी **सारा काम** उस शरीरधारी की इच्छानुसार करने लगें तो स्पष्ट है कि ऐसे शरीरधारी में भी वही **ईश्वरीय शक्ति** और **सत्ता** विद्यमान है । **बेहद्दी मैदान** में विचरण करने वाले बाबा जी महाराज का, मानो, प्रकृति स्वयँ पीछा करती रहती थी—उनकी सेवा हेतु। जब जहाँ चाहा, जो कुछ चाहा, जितना चाहा वह स्वतः उपलब्ध हो जाता उन्हें अपनी लीलाओं के सृजन हेतु—केवल उनके विचार मात्र से—जंगल में मंगल करना हो, न्यून सामग्री से विशाल जन समूह को तुष्ट करना हो, जल को घी की जगह प्रयोग करना हो, पानी को पेट्रोल में परिणित करना हो, वर्षा का प्रकोप थामना हो, ग्रीष्म का ताप हरना हो, शीत की लहरों को नियन्त्रित करना हो, क्षेत्र विशेष की प्राकृतिक कोप से रक्षा करनी हो, किसी भी वस्तु की कहीं भी संरचना

करनी हो, कहीं भी कैसा ही भोज्य पदार्थ—फल आदि उपलब्ध करना हो, गंगाजल को दूध में परिणित करना हो—कहाँ तक गिनाई जा सकती हैं दैवी शक्ति की ऐसी अभिव्यक्तियाँ ।

परन्तु फिर भी बाबा जी महाराज ने इस शक्ति, इस सत्ता का कभी भी **अपने लिये** प्रयोग नहीं किया । इसका जब भी, जो भी, जितना भी उपयोग किया वह केवल जन-कल्याणार्थ ही—या तो जन जन के दैहिक-दैविक-भौतिक तापों के निराकरणार्थ या फिर जनता में टूटती-फिसलती आध्यात्मिक भावना को सम्बल देने हेतु—**धर्म संस्थापनार्थाय**—अथवा भक्तों में आस्था, निष्ठा, आत्म विश्वास के पुनर्जागरण हेतु ही । स्वयँ तो न कभी क्षुधा की चिन्ता की, न तृष्णा की, न आराम-विराम की और न विश्राम की—प्रतिपल केवल एक ही भाव में निमग्न, एक ही कार्य में रत कि जन जन की आत्म-तृप्ति कैसे हो । यही था वह ***हमारा सारा काम*** बाबा जी महाराज के उक्त उद्घोष में निहित !!

और इसी संदर्भ में बाबा जी ने स्वयँ अपने श्री मुख से यह भी कहा था—**"पूरन, हम कोई *चमत्कार नहीं करते* । *जब* हमारा हृदय किसी बात पर *डोल* जाता है तो *प्रकृति खुद सब कुछ अपने आप कर देती है* !!"**

बाबा जी महाराज में विद्यमान यह अलौकिक ईश्वरीय सत्ता तथा प्रकृति के विभिन्न तत्वों—अग्नि, जल, आकाश, वायु, धरा (एवं अन्य त्रिगुणात्मक भौतिक तत्वों)—को अपनी इच्छानुसार सृजनात्मक रूप से **भक्त हित, जन हिताय** उपयोग करने की शक्ति उनकी विभिन्न लीला-क्रीड़ाओं में स्वतः स्पष्ट हो उठती हैं । अपने **कम्बल** से, अपने **कर कमलों** से अथवा केवल अपने **विचार मात्र** से वे कुछ भी, कहीं भी, किसी भी मात्रा में सृजित कर लेते थे । विचार मात्र से ही वे इस हेतु किसी अन्य को भी माध्यम बना कर अपनी सृजनात्मक लीला कर लेते थे । केवल सचेत रह कर ही इन लीलाओं का आनन्द लिया जा सकता था—पल्ले तो फिर भी विशेष कुछ पड़ता ही न था ।

ऐसी सृजनात्मक लीलाओं तथा प्रकृति पर नियंत्रण की कुछ गाथाएँ केवल दृष्टांत-रूप में यहाँ वर्णन की जा रही हैं ।

महाराज

अग्नि-आकाश-वायु-जल-तत्वों पर नियंत्रण

बजरंगगढ़ (नैनीताल) में भण्डारे के समय घोर वर्षा पर नियंत्रण की गाथा (केवल **पवन तनय बल पवन समाना** कह देने पर ही) पूर्व में कही जा चुकी है ।

बजरी की कच्ची-धंसती पहाड़ी पर तीन-तीन मंदिर तथा अनेक भवन खड़े करवा देने की भी चर्चा पूर्व में हो चुकी है ।

पानी के कनिस्टर को तथा **डालडा** को घी में परिणित कर देने का भी प्रसंग बजरंगगढ़ एवं पनकी के भण्डारे की कथा में पूर्व में ही वर्णन किया जा चुका है ।

विभिन्न मंदिरों-आश्रमों के निर्माण के मध्य घटित ऐसी ही सृजनात्मक लीलाओं का विवरण भी पूर्व में दिया जा चुका है। महा-समाधि के बाद भी कोटमन्या हनुमान मंदिर के निर्माण के समय वर्षा के प्रकोप को नियंत्रण करने की गाथा कही जा चुकी है ।

महाराज

कैंची मंदिर एवं आश्रम के निर्माण काल में अपने प्रवास के मध्य बाबा जी आश्रम क्षेत्र की एक ऊँची-सी शिला पर विराजमान हो जाते थे और भक्त लोग शिला के नीचे समतल भूमि पर बैठ जाते । शिला से लग कर **अतीस** नाम के एक पहाड़ी वृक्ष का सूखा-सा ठूँठ (तना) खड़ा था बिना हरियाली के । इस वृक्ष की आयु वैसे ही बहुत कम होती है और यह वृक्ष-विशेष (तब) अपनी भी आयु पूरी कर चुका था । लोगों ने, इस भय से कि कभी यह ठूँठ तेज हवा के झोंकों के कारण किसी के ऊपर गिर न पड़े, बाबा जी से कहा कि इसको कटवा दिया जाय । तो बाबा जी बोल उठे, **"नहीं, इसकी जड़ में जल चढ़ाओ । यह *फिर* हरा हो जायेगा ।"**

लोग यही सोचते रहे कि वर्ष भर तो इतनी वर्षा हो जाती है इसके ऊपर पर यह हरा-भरा तो न हो पाया । परन्तु श्री माँ ने महाराज जी की ***उक्ति का मर्म*** समझ, पूर्णानन्द तिवारी जी की सहायता से उस ठूँठ को गंगाजल से स्नान कराया और उसका आरती-पूजन भी किया ।

कुछ ही दिनों में वृक्ष की शाखायें फूटने लगीं, हरे पत्ते आने लगे !! और बढ़ते बढ़ते वृक्ष शाखा प्रशाखाओं, हरे पत्तों से भरपूर हो गया !! आज

(१९६४) यह वृक्ष *अपने जीवन-दाता* के उस शिला-आसन के ऊपर छत्र-रूप में लहराता रहता है — ***अपनी कृतज्ञता*** व्यक्त करते। (प्रसंगवश — इस वृक्ष की पत्तियों में श्री माँ कई भक्तों को राम-नाम के भी दर्शन करा चुकी हैं !!)

शिला आसन एवं अतीस वृक्ष

जड़ प्रकृति, लगता है, मनुष्य से कहीं अधिक कृतज्ञ होती है। (मुकुन्दा)

महाराज

बजरंगगढ़ (नैनीताल) में महाराज जी अपने भक्तों के साथ बैठे थे मनोरा के जंगल में । एकाएक घास में आग लग गई जो फैलती-बढ़ती चली गई । महाराज जी अपने विनोद में जोर जोर से कहने लगे, **"जंगल में आग लग गई है । अब पूरन की नौकरी गई ।"** (पूरनदा तब जंगलात विभाग में कार्यरत थे ।) परन्तु भक्त पर इस बात का कोई प्रभाव न पड़ा (यद्यपि पहाड़ी जंगलों में लगी ऐसी आग फैलती जाती है कई दिनों तक।)

वे जानते थे कि महाराज जी हैं तो कोई क्या बिगाड़ लेगा । (**तुम रक्षक काहू को डरना** ।) अस्तु, उन्होंने भी महाराज जी का मन में स्मरण कर एक पत्थर उठाया और आग की तरफ फैंक कर कहा, **"आग ! बुझ जा** ।" और कुछ ही क्षणों में आग स्वतः ठंडी पड़ गई !!

क्या पूरन दा के पत्थर फेंकने पर बुझी वह आग ?

महाराज

बाबा जी के कहने पर श्री जगदीश पाण्डे, (सम्प्रति—१९९२-बिड़ला कालेज, नैनीताल में अध्यापक) को श्री केहर सिंह जी ने अपने फार्म में खेती की देखभाल हेतु नियुक्त कर लिया था। फार्म में गन्ना लहलहा रहा था और चारों ओर अगल-बगल के खेतों में भी। दूसरे फार्मों से केहर सिंह जी के खेतों को अलग करती मेड़ पर पाण्डे जी टहल रहे थे ड्यूटी करते। एकाएक बगल के गन्ने के खेत में आग लग गई और देखते देखते बढ़ चली। हवा का रुख भी उस आग लगे खेत से केहर सिंह जी के खेत की तरफ ही था। जाहिर था कि उस डेढ़-दो फीट चौड़ी मेड़ के पार आ जाने में आग को कितनी देर लगेगी । पाण्डे जी घबराये कि — अभी एक माह ही तो नौकरी के हुये हैं और ***बाबा जी के भक्त केहर सिंह जी*** का गन्ना जल-भुन जायेगा — हजारों का नुकसान करता। तभी महाराज जी को स्मरण करते इन्होंने झुककर मेंड़ से कुछ मिट्टी उठाई और बगल के अग्नि से बरबाद होते खेत की तरफ फेंक दी ।

एकाएक हवा का रुख बदल गया — हवा केहर सिंह जी के खेत से विदा हो ***उल्टी*** ओर चल पड़ी !!

महाराज

(स्व०) श्री ओंकार सिंह, डी० आई० जी० कुछ माली नुकसान पूर्व में उठा चुके थे। बहराइच के अपने फार्म में उन्होंने बड़ी आंशा से मक्का बोई थी कि कुछ क्षति-पूर्ति हो जाये। मक्का कट कर सूखने को खलिहानों में पड़ी थी जिसका वे गोरखपुर से आकर निरीक्षण कर रहे थे । तभी एकाएक बादल घिर आये और बूँदा-बाँदी भी शुरू हो गई । ओंकार सिंह जी हताश हो गये कि अब मक्का काली पड़ जायेगी — जानवरों के काम की भी न रहेगी । वर्षा का प्रकोप बढ़ता देख वे एकाएक खड़े हो गये

और मक्के की तरफ (समेट कर फेंकने की मुद्रा में) हाथ हिलाते रोषपूर्ण शब्दों में जोर से बोल उठे, **"ले जा, ले जा, इस साले को भी ले जा ।"** उनका यह रोष बाबा जी के प्रति ही था जिन्हें वे ऐसे कठिन अवसरों पर *सदा* याद करते थे ।

रोष व्यक्त करते ही उनके खलिहान में तो वर्षा बिल्कुल बन्द हो गई (और मक्का बच गई) यद्यपि आस-पास के क्षेत्रों में होती रही । मानो उनके खलिहान के ऊपर बाबा जी ने एक ***अदृश्य छतरी*** तान दी हो !! अपने मित्र श्री केहर सिंह जी को ओंकार जी ने यह लीला अश्रुप्लावित होकर सुनाई ।

बहुत बाद में श्री केहर सिंह जी ने जब बाबा जी से कहा कि, "महाराज, आपने ओंकार सिंह की मक्का बचा दी", तो वे बोले, **"हम क्या करते ?"** (और फिर स्वयँ खड़े होकर ओंकार सिंह जी की तरह हाथ हिलाते बोले,) **"वह गुस्से में बोला — ले जा, ले जा, इस साले को भी लेजा ।"** (बाबा जी ने *कब* और *कैसे* देखा ओंकार सिंह जी को *यह* सब करते ?)

महाराज

वर्ष १९७३ में श्री होतृदत्त शर्मा (अहलादपुर, अलीगढ़) की कन्या का विवाह था । जेठ की गर्मी थी धधकती । शर्मा जी को चिन्ता थी कि इस तपते मौसम में वर-पक्ष के लोगों की खातिर-खुशामद ठीक से हो भी पायेगी कि नहीं। गाँव में बिजली की समस्या और भी जटिल थी। होतृदत्त जी महाराज जी के अनन्य भक्तों में हैं । १५ जून के भण्डारे में वे इस विवाह के पूर्व कैंची में महाराज जी के दर्शनों को आये तो महाराज जी ने स्वयँ इस चर्चा को छेड़ते हुये आश्वासन दिया कि, **"*हम* मौसम बदल देंगे। ओढ़ने-बिछाने का ठीक प्रबन्ध कर लेना । बहुत ठंड पड़ेगी ।"** इस गर्मी में ऐसा आश्वासन केवल मानसिक चिन्ता के हरण-सदृश ही प्रतीत हुआ (यद्यपि शर्मा जी को महाराज जी पर भरोसा भी रहता रहा है सब परिस्थितियों से निबट जाने की क्षमता का ।)

और बारात के पहुँचने के पूर्व से ही पुरवाई के साथ कुछ वर्षा भी हो गई । रात को इतनी ठंड बढ़ गई मानों अगहन-पूस की रात हो !! परन्तु बारात बिदा होने के बाद पुनः ***वही*** जेठ की तपन !!

(प्रसंगवश — इस कन्या के विवाह के पूर्व होतृदत्त जी वृन्दावन आश्रम में थे । एक दिन बाबा जी इन पर एकाएक रुष्ट (!) हो बोले, **"पंडत, तुम्हारा मन नहीं लग रहा है । तुम जाओ अपने गाँव । (वृन्दावनेश्वरी मंदिर की ईंट-सरिया-सीमेन्ट का) हिसाब मुकुन्दा को दे दो ।"** पंडित जी ने लाख कहा कि ऐसी बात नहीं है । पर बाबा जी नहीं माने । मैं तब आगरा से आया था आश्रम । आखिर शर्मा जी उदास हो मुझे चार्ज देकर गाँव चले गये । मैं भी क्या करता ? दो दिन बाद मैं भी आगरा आडिट ड्यूटी में चला गया । पर यह सब तो बाबा जी का कल्याणकारी नाटक था । जब शर्मा जी गाँव पहुँचे तो उसी के तुरन्त बाद उनके भावी समधी कन्या को देखने आ गये और पुष्पा का विवाह तय कर चले गये !! जब मैं पुनः आश्रम पहुँचा तो पाया कि शर्मा जी वहाँ हाजिर हैं — अति प्रसन्न। उन्होंने ही मुझे बाबा जी की यह लीला सुनाई। (मुकुन्दा ।)

महाराज

बहुत अर्से से दर्शन नहीं हुये थे मुझे महाराज जी के, और सूरज बाबू को भी — बेचैन हो उठे थे हम दोनों । अतः मेरी कार में हम दोनों चल दिये कानपुर बाबा जी के दर्शनों को परन्तु आलमबाग से कुछ ही आगे पहुँचे थे कि एकाएक बवन्डर-युक्त भीषण आँधी आ गई — सामने कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था धूल के कारण । कार किनारे कर एक पेड़ के नीचे खड़ी कर दी गई पर डर लग रहा था कि इस बवंडर में कहीं पेड़ ही न उखड़ जाये । अस्तु राय हुई कि लखनऊ लौट चला जाये — आँधी का वेग पीछे से ही पड़ेगा । लौट कर कुछ आगे बढ़े तो आँधी का कहीं नाम भी न था !!

हम सूरज बाबू के घर (ऊपर) पहुँचे ही थे कि दो मिनट के भीतर ही नीचे से आवाज आई, **"सूरज !"** ***"अरे ! बाबा जी आ गये'*** — कहते हम दोनों नीचे को दौड़े । सीढ़ी के मोड़ वाले चबूतरे पर ही प्रणाम किया — ऊपर लाये बाबा जी को । अपनी कथा सुनाई — बाबा जी हँसते रहे।

साथ के लोगों से पूछा, "तुम्हें आँधी कहाँ मिली ?" ***"आँधी ? कैसी आँधी ? हमें तो बराबर साफ मौसम मिला ।"***

१५-२० मिनट लगातार आँधी *हमारे लिये* और केवल कुछ ही मिनट पीछे बाबा जी की कार ! और इनको आँधी का पता नहीं ? सोचता रह गया मैं । तभी समझ में आया कि अगर आँधी *पैदा* न करते बाबा जी तो हम लोग तो पहुँच जाते कानपुर और बाबा जी होते लखनऊ में । पता चला कि बाबा जी हँस रहे थे रास्ते में। *क्या* हमारी दशा पर? (केहर सिंह)

महाराज

नैनीताल (किशनपुर) में श्री शिव दत्त जोशी जी के घर भक्तों से घिरे बाबा जी बैठे थे पूजा घर में। श्री हैड़ियाखान बाबा जी की चर्चा चल पड़ी कि किस तरह सिपाहीधारा (नैनीताल) में उन्होंने *पानी को घी* की तरह प्रयोग कर हवन किया था। हैड़ियाखान बाबा जी पर चर्चा प्रारंभ *होते ही* बाबा जी जान गये थे कि हैड़ियाखान बाबा का यह प्रसंग भी उठेगा, और तभी से वे पास रखे पन्च-पात्र से चम्मच में पानी निकाल निकाल कर पास में रखे दीपक की जलती बत्ती पर बीच-बीच में डालते जा रहे थे और कथा सुनते सुनते साथ में आश्चर्य-सा व्यक्त कर **'अच्छा ! अच्छा !'** कहते जा रहे थे। तभी भक्तों ने देखा कि बत्ती के ऊपर पानी पड़ते ही उसकी ज्योति (लौ) बुझ जाने के बजाये *और भी* उज्ज्वल हो भड़क उठती थी, मानो घी पड़ रहा हो उस पर !! और तभी सब चुप हो गये ।

महाराज

खाद्य पदार्थों में वृद्धि

ऋषिकेश के प्रसिद्ध संत श्री शिवानन्द जी के आश्रम के श्री चिदानन्द जी जब महाराज जी के दर्शनों को कैंची आश्रम पहुँचे तो रात हो चली थी। उनके साथ आये हुये श्री योगेश बहुगुणा ने बाबा जी की सेवा में आठ संतरे भेंट किये। बाबा जी ने वही आठ संतरे चिदानन्द जी के साथ में आये परिकरों में बाँटने प्रारम्भ कर दिये, परन्तु तभी आश्रम में उपस्थित बाबा जी के कुछ भक्तगण एवं कर्मचारी भी जिज्ञासावश वहाँ पहुँच कुटी के दरवाजे पर खड़े हो गये *जिन्हें भी* महाराज जी ने संतरे प्रसाद में दे दिये। योगेश जी आश्चर्यान्वित हुये यह लीला देख सोचते रह गये कि उनके ***आठ संतरे कैसे अट्ठारह*** हो गये उपस्थित सभी अठारह

व्यक्तियों में बँटने हेतु !! (चिदानन्द स्वामी की पुस्तक, **'बाबा नीम करौली — *उत्तर भारत के अद्‌भुत रहस्यमय संत*'** से उद्धृत ।)

महाराज

मुकेश कुमार अग्रवाल, पुत्र श्री भवानी शंकर, ट्रक में आटे के बोरे लेकर अल्मोड़ा में जिला पूर्ति अधिकारी को अनुबन्ध के अनुसार आटे की पूर्ति करने जा रहे थे । महाराज जी का यह भक्त जब कैंची पहुँचा तो दर्शन हेतु वहाँ उतर गया । प्रणाम के बाद बाबा जी ने उससे पूछा, **"कहाँ जा रहा है ।"** "महाराज, पिता जी ने जिला पूर्ति अधिकारी के लिये आटे के बोरे भेजे हैं, वही लिये जा रहा हूँ ।" **"छह बोरी आटा हमें दे जा"**, बाबा जी बोले ।

क्षण भर सोचने के बाद मुकेश जी कह उठे, "अच्छा महाराज ।" और छः बोरी आटा उतर गया ट्रक से कैंची आश्रम में । प्रसाद पाकर मुकेश जी अल्मोड़ा चल दिये । मार्ग में सोचते रहे — चालान में जो संख्या लिखी है बोरों की उसमें तो अब छः कम हो गई । क्या होगा ? पिता जी से क्या कहूँगा ? चलो, महाराज जी ही संभालेंगे ।

अल्मोड़ा पहुँचकर कुछ पस्ती-सी आ गई उन्हें उक्त विचारों के प्रभाव से । अतएव मुनीम को सामान सौंपने की हिदायत देते हुये कहा कि, "रसीद *ठीक* से ले लेना ।" और स्वयं चल दिये कहीं और ।

और जब पुनः मुनीम जी मिले, पूछा — सब ठीक था ? तो मुनीम जी ने "जी, हाँ" कहकर चालान-रसीद बढ़ा दी उनकी ओर । मुकेश जी ने देखा — ***जितनी संख्या बोरों की लिखी थी चालान में, उतनी की ही सप्लाई आफिस की भी रसीद थी*** !!

मुकेश जी के विश्वास की परीक्षा भी हो गई और बाबा जी का कौतुक भी हो गया भक्त के विश्वास की *रक्षा* हेतु । (दिनेश त्रिपाठी)

महाराज

इलाहाबाद में एक शाम (जैसा बाद में ज्ञात हुआ) बाबा जी ने गिरीश जी से कहा कि, **"कल चित्रकूट यात्रा के लिये बहुत सुबह लल्लू दादा और उनके साथ के लोग यहाँ (दादा के घर) आयेंगे। तुम उनके**

नाश्ते के लिये रात को ही जलेबी लाकर रख लेना ।" गिरीश जी के अनुसार — वे कुछ तो *सेवा* में ही रह गये, और फिर काफी रात हो जाने के कारण तथा दुकानों के बन्द हो जाने के कारण भी वे रात को ही जलेबियों का प्रबन्ध न कर सके — सोचा, सुबह तड़के ही ले आऊँगा । (समुचित द्रव्य भी तो शायद न था उनके पास इस हेतु ।)

परन्तु मुँह अंधेरे ही हम दादा के घर पहुँच गये । बाबा जी ने गिरीश जी को बुलाकर पूछा, **"जलेबी लाये ?"** गिरीश जी ने वस्तुस्थिति समझानी चाही पर बीच ही में बाबा जी बुरी तरह बिगड़ गये उन पर । हम *तब* यह खेल समझ नहीं पा रहे थे कि क्या माजरा है । तभी बाबा जी ने अपने तख्त के नीचे इशारा कर उनसे कहा, **"वहाँ देखो ।"**

और *वहाँ* से निकली ***ताजी गरम जलेबियाँ*** !! ढेर मात्रा में !! हमने छक कर पाईं और चित्रकूट को चल दिये । मार्ग में ही गिरीश जी से बाबा जी के उन पर बिगड़ने का रहस्य जान पाया मैं ।

परन्तु उतने तड़के, विकट ठंड के मौसम में (जब कि दुकानें खुली भी न होंगी) उतनी ढेर ताजी-गरम जलेबियाँ बाबा जी के तखत के नीचे आईं कहाँ से ? गिरीश जी के साथ जो कुछ हुआ वह तो नाटक-मात्र था — भला हमें सुबह सुबह रात की ठंडी-बासी जलेबियाँ क्योंकर खिलाते अन्नपूर्णा भण्डार के मालिक ? (देवकामता दीक्षित)

महाराज

कानपुर के दो (तथाकथित) भगत मुझे लखनऊ स्टेशन में मिल गये मेरी कैंची-यात्रा के समय । काठगोदाम में मैंने उन्हें भी अपनी टैक्सी में बिठा लिया । उनके साथ दो झाबे दशहरी आम के भी थे । मैंने सोचा बाबा जी को अर्पण करने ले जा रहे होंगे, मुझे भी मिलेंगे ।

कैंची पहुँचकर बाबा जी को प्रणाम कर तथा रात का भी प्रसाद पाकर हम तीनों पास के फॉरेस्ट रेस्ट हाउस के दो कमरों में रहने चले गये । एक में मैं और दूसरे में वे दोनों । दोनों कमरों के बीच एक दरवाजा था जिससे आरपार की बातें स्पष्ट सुनी जा सकती थीं ।

रात को मैं सोने जा ही रहा था कि उन दोनों की बातों और हँसी से मेरी नींद उचट गई । उनकी बातों से पता चला कि लखनऊ से

दशहरी आम के दो झाबे वे दोनों डाइरेक्टर (मेडिकल), डा० डी० एन० शर्मा के लिये सेवार्थ लाये थे पर लखनऊ स्टेशन ही में उन्हें पता चल गया कि डा० शर्मा नैनीताल से अन्यत्र चले गये हैं । अस्तु, आम खराब चले जाने के भय से अब वे उन आमों को हँस हँस कर स्वयँ पा रहे थे कहते हुए कि ये तो हमारे ही भाग्य के थे । (उन्होंने यह भी ठीक न समझा कि इन आमों को अब बाबा जी को ही अपर्ण कर दें — करते भी कैसे ? बाबा जी तो उन आमों को तत्काल बाँट देते !) परन्तु इस पूरी क्रिया में उन्होंने यह भी *उचित* न समझा कि दो-चार आमों के लिये मुझे भी पूछते । मैं कसमसा कर रह गया इस पर ।

सुबह हम तीनों जब बाबा जी को प्रणाम करने पहुँचे तो उन्हें देखते ही बाबा जी उबल पड़े । गाली देते हुये उन्हें निकाल दिया कि, **"सारे आम खा गये और केहर सिंह को पूछा तक नहीं ।"** और फिर क्षणों बाद मुझे लेकर (तब) नदी के ऊपर बल्लियों वाले पुल पर ले चले और दूसरे छोर पर जाकर बैठ गये । मैं भी घूमकर ज्यों ही उनके पीछे बैठने को हुआ तो देखा कि वहाँ एक बड़ी बाल्टी में पानी में डूबे ३०-४० दशहरी आम पड़े हैं !! बस क्या था — मैंने एक आम की चोपी निकाल उसे बाबा जी की तरफ बढ़ा दिया । उन्होंने उसे १/४ चूसा और मेरी तरफ बढ़ा दिया । तब तक मैंने दूसरा आम तैयार कर उन्हें दे दिया और उनका चूसा आम *स्वयँ* साफ कर लिया । यह क्रिया तब तक चलती रही जब तक सारे आम खत्म न हो गये । मुझे *होश* ही न रहा कि मेरे हाथ जूठे हो चुके हैं और *न* महाराज जी ने ही *इस* तथ्य से वास्ता रखा !! (केहर सिंह)

महाराज

बाबा जी महाराज ऋषिकेष के एक धर्मशाला के कमरे में एकाएक पहुँच गये और वहाँ उपस्थित एक व्यक्ति से बोले, **"अरे ! तुझे तो बड़ी भूख लगी है । कई दिन से तुझे खाना नहीं मिला है । चल मेरे साथ।"** और दूसरे कमरे में उसे ले जाकर गरमागरम भोजन से पूर्ण एक थाली के पास बिठा दिया !! उस भूखे व्यक्ति ने भरपेट प्रसाद पाया । बाबा जी देखते रहे, और जब वह निबट गया तो परम अनुगृहीत होकर उसने महाराज जी के चरण चाँपने प्रारम्भ कर दिये । तभी बाबा जी ने उससे

कहा, **"पुलिस तेरा पीछा कर रही है । जा, यहाँ से भाग जा । पहाड़ों (हिमालय) से होते तिब्बत की ओर निकल जाना ।"**

(बाबा जी को कहाँ से पता मिला कि अमुक धर्मशाला में एक भूखा देश-भक्त बैठा है, और कहाँ से उन्होंने दूसरे कमरे में उसके लिये गरम भोजन की थाली प्रस्तुत कर दी ?)

भूखा व्यक्ति और कोई नहीं, स्वयँ बम्बई के सुप्रसिद्ध स्नायु-विज्ञान विशेषज्ञ, डाक्टर भोंसले थे जो वर्ष १९४२ के स्वतंत्रता आन्दोलन में अंग्रेजी राज के विरुद्ध बीड़ा उठाने के कारण राजद्रोही करार दिये गये थे और पुलिस के चंगुल से बचने हेतु ऋषिकेश की उस धर्मशाला में वेष बदलकर छिपे हुये कई दिनों से भूखे पड़े थे । एक देश-भक्त को उबारने हेतु ही बाबा जी वहाँ पहुँच गये थे और वहाँ उनके लिये भोजन की थाली सृजित कर उन्हें तृप्त भी कर दिया और सुरक्षित भी ।

बीस वर्ष बाद, सन् १९६२ में श्री शिवनारायण टंडन जी के घर उनके भतीजे के उपचार हेतु कानपुर आने पर उन्होंने अपनी गाथा स्वयँ टंडन जी को सुनाई थी और मालूम होने पर कि बाबा जी इस वक्त लखनऊ में विराजमान हैं, उन्होंने लखनऊ जाकर बाबा जी के पुनः दर्शन किये।

वहाँ बाबा जी के चरन चाँपते २० वर्ष पुरानी स्मृति उनके मस्तिष्क में कौंध गई कि तब भी तो महाराज जी की स्नायु-स्थिति ऐसी ही थी !! और वे कहे बिना न रह पाये कि, **"बाबा, आपकी स्नायु स्थिति आज भी पूर्ववत ही है एक युवा की तरह !!"**

महाराज

आश्रम में प्रसाद बँट रहा था । बाबा जी के पास बैठी एक लड़की को भी एक दोने में यह प्रसाद (मिठाई) मिल गया । थोड़ी देर में बाबा जी ने प्रसाद का वह दोना उससे ले लिया और धीरे से अपने कम्बल के भीतर सरका लिया। अभी कई दर्शनार्थी बचे थे तथा और आ रहे थे प्रसाद प्राप्त करने। बाबा जी बार बार कम्बल के भीतर हाथ डालते और आये व्यक्तियों को कम्बल से हाथ निकाल कर प्रसाद दे देते। कुछ देर तो वह लड़की चुप रही फिर उससे रहा नहीं गया कि मेरे एक दोना मिठाई से उतना ही प्रसाद इतने लोगों को कैसे-कहाँ से दिया जा रहा है !! उसने

जिज्ञासावश कम्बल का छोर उठा कर देखा तो ***वहाँ केवल उसका दोना रखा था*** !! तभी महाराज जी कह उठे, **"लो, जादू खतम हो गया ।"**

महाराज

श्री वृन्दावन धाम की बात है । बाबा जी अपनी कुटी के सामने वाले बरामदे में बैठे थे । मैं भी एक गोल खम्भे से टेक लिये बैठा था । इतने में एक समृद्ध महिला दर्शनों को आ गई । साथ में एक टोकरी संतरों का भी लाई थी । संतरे इतने बड़े और सुन्दर थे कि किसी का भी मन उन्हें पाने को ललचा उठे । स्वाभाविक था कि मेरा मन भी डोल गया उनमें । पर मैं आश्वस्त था कि अभी बाबा जी, सदा की भाँति, उन्हें **फेंक-फेंक** कर वितरित करेंगे और मुझे भी कम से कम **एक** संतरा तो मिलेगा ही । परन्तु बाबा जी तो उन संतरों को अपने हाथ से **सहलाते** भर रहे और बाँटे किसी को भी नहीं । और फिर **पूरी** टोकरी उसी महिला को थमा दी !! मैं देखता रह गया कि महिला ने भी उस टोकरी को पुनः उसी प्रकार पूरी तरह कस कर एक कपड़े से बाँध लिया । फिर वह चली भी गई । (शायद बाबा जी महिला की संकुचित वृत्ति पढ़ चुके थे ।)

थोड़ी देर में बाबा जी उठे और अपनी कुटी के आगे रखे तखत-आसन पर बैठ गये । याद नहीं कि मुझे उन्होंने बुलाया था या मैं खुद ही पुनः श्री चरणों में पहुँच गया । पर क्षणों बाद बाबा जी ने अपने कम्बल के भीतर हाथ डाला और वहाँ से **दो** सुन्दर — बड़े सन्तरे निकाल कर मेरे हाथ में रख कर बोले, **"लो"** । (हेमदा)

महाराज

बाबा जी महाराज एलेनगंज (इलाहाबाद में) मेरे घर अपने १३-१४ परिकरों के साथ पधारे एक दिन । आते ही बोले, **"सबको प्रसाद खिलाओ।"** पूजाघर में ही महाराज जी बैठते थे और दरवाजे से लगा (बाहर आँगन की तरफ) रसोईघर था । उनका यह आगमन पूर्व नियोजित न था ।

पत्नी रसोई में प्रसाद बनाने में व्यस्त हो गई और मैं बाबा जी की सेवा में उनके पास बैठ गया । मैं निश्चिन्त था कि सब काम हो ही रहा है। इस बीच ३-४ बार पत्नी ने मुझे (कुमाउँनी भाषा में) **'कुछ सुनने'** को

बुलाया, परन्तु जितनी बार उठ कर उनके पास जाने की मैंने चेष्टा की, बाबा जी **"तुम कहाँ जा रहे हो, बैठो"** कहकर मेरा हाथ पकड़कर बैठा लेते और कुछ वार्ता छेड़ देते । साथ में बाबा जी वहीं से कहते रहे पत्नी से, **'जल्दी करो।'**तभी एक बार दादा, जो वहीं पत्नी के पास खड़े थे (कि प्रसाद तैयार हो जाये तो महाराज जी के पास ले जायें) जोर से बोले, **"ये क्या कर रहे हैं बाबा ? अभी रमा ने हाथ जला लिया था अपना ।"** तब बाबा जी हँस कर बोले, **"अच्छा, अच्छा, बनाने दो ।"** (बाद में पता चला कि बाबा जी की **'जल्दी, जल्दी'** में रमा तवे में रोटी पड़ी समझ कर उसे उलटने के लिये खाली गरम तवे में ही हाथ डालने जा रही थीं कि दादा ने "ये क्या कर रही हो" कहकर उनका हाथ पकड़ बाबा जी से उक्त बात कही थी । साथ में रमा मस्तिष्क में घुमड़ती ***किसी और*** बात से भी, जिसका रहस्य बाद में खुला, बुरी तरह घबरा चुकी थी।)

प्रसाद बनता रहा और सबको बँटता रहा। बाबा जी अपनी थाली से भी खाते खाते दूसरों को भी रोटियाँ देते जा रहे थे, खासकर कन्हैया लाल जी (अब दिवंगत) को । प्रसाद पूरा हुआ । बाबा जी उठकर चले तो अन्य सब भी साथ चले । तभी मैं भी रसोईघर में पहुँचा कि प्रसाद *पाकर* बाबा जी के साथ चलूँ । पत्नी ने रोष से कहा, "कितना बुलाया तुम्हें कि नीचे चक्की से आटा ले आओगे पर तुमने मेरी सुनी ही नहीं । कुल आधा सेर आटा होगा मेरे पास और इतने लोग थे खाने वाले । घबराहट में गरम खाली तवे में ही हाथ देने जा रही थी मैं कि दादा ने हाथ पकड़ लिया । अन्ना-पन्नू (मेरे लड़के) भी स्कूल चले गये थे, नहीं तो उन्हीं से मंगा लेती।"

उस वक्त तो कुछ समझ में नहीं आया । बाबा जी की थाली में से बची एक रोटी में से आधी स्वयँ पाकर और आधी पत्नी के लिये (प्रसाद रूप) छोड़ मैं भाग लिया । परन्तु रात को पूरी लीला के विवेचन के बाद यही समझ पाये हम कि बाबा जी ही हमारी *लाज* बचाने को अपना खेल कर गये — हमारे अनजाने ही आटे में वृद्धि कर !!

महाराज

मेरे घर तो गुप्त रूप से **खेल** हो गया । परन्तु केहर सिंह जी के यहाँ तो स्पष्ट ही कर दिया सब कुछ । उन्हीं से :—

बाबा जी को बड़े आग्रह से मैंने अपने यहाँ प्रसाद पाने के लिये बुलाया । बाबा जी **कल** आने को राजी भी हो गये । मैंने घर आकर व्यवस्था की — महाराज जी तथा उनके साथ के *पंडित* के लिये पूरी-सब्जी तथा अन्य साथ आने वाले संभावित भक्तों के लिये फल-मिठाई ।

दूसरे दिन बाबा जी आ भी गये — सदा की भाँति ७-८ भक्तों को साथ में लिये । दो थालों के लायक पूरी हेतु आटा गुंधा था और उसी अनुपात से सब्जी बनी थी । मेरी श्रीमती जी एक छोटी सी कढ़ाई में (जिसमें एक बार में केवल एक पूरी उतर सकती थी) एक एक कर पूरी उतारने को तत्पर हुईं । नई मुरादाबादी कलई के सेट में से एक थाली, कटोरियाँ और गिलास निकालकर महाराज जी के लिये प्रसाद सजा कर मैं उनके सामने ले आया । उसमें एक ही ताजी पूरी थी । महाराज जी धीरे-धीरे उसे पाने लगे । मैं दूसरी पूरी लेने लपका तो मेरे **अहं** को बढ़ाने के लिये महाराज जी बोले, **"देखो, कैसे दौड़ कर जा रहा है मेरे लिये पूरी लाने ।"** पर तुरन्त ही दूसरी पूरी के आने पर उसी **अहं** पर चोट पड़ गई। भक्तों की तरफ इशारा कर बोले, **"इनको नहीं खिलायेगा ? फिर बुलाया क्यों था ? इनको भी खिला ।"** (बाबा जी सदा ही ***अपने से अधिक अपने भक्तों*** के प्रति आदर भाव की ओर सचेत रहा करते थे ।)

अरे बाप रे ! कहाँ से खिलाऊँ इन्हें ? आटा-सब्जी तो सिर्फ दो ही के लिये तैयार है !! पत्नी से कहा तो, एक तो वे वैसे ही उदासीन थीं महाराज जी के प्रति, ऊपर से इस तत्काल की आज्ञा का पालन उनसे संभव ही न था । सो वे रुष्ट हो कर चली गईं दूसरे कमरे में कि, ***"अब खुद ही संभालो ।"*** घर में आई उनकी एक रिश्तेदार महिला ने भी किनारा कस लिया । अब तो मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया । तभी मेरा एक चपरासी बोल उठा, "सरकार आप बाबा जी को खिलायें । मैं बनाता हूँ ।" कुछ आश्वस्त हो मैं बाबा जी के लिये पूरियाँ ले जाने लगा — सोचा पहले बाबा जी खा लें फिर अन्य लोगों के लिये पूरी सब्जी हेतु तैयारी की जायेगी । मैंने साथ साथ सात-आठ थाली-कटोरी के सेट भी निकाल लिये।

और फिर ***जो कुछ हुआ*** वह केवल बेहोशी के आलम में !! पूरियाँ बनती रहीं, महाराज जी, पंडित और अन्य भक्त पाते रहे — ***न तो अतिरिक्त आटा गूंधा गया और न ही कोई सब्जी बनी*** । सभी तृप्त हो

गये उसी **तैयार** मात्रा के आटे-सब्जी में !! फिर मिठाई-रसगुल्ले बँटे । सबने पाये।

और *जब* बाबा जी चले गये तो *उसी* पूरी सब्जी में चपरासी भी तुष्ट हुआ और ड्राइवर भी !! रसगुल्ले का पात्र भी *भरा* ही मिला !! बाकी परिवार और मैंने भी रोज की तरह अपनी खिचड़ी की जगह पूरी-सब्जी ही पाई !! दो की जगह १६ व्यक्ति *उसी* आटे-सब्जी में तृप्त हो गये !!

अपना कौतुक कर महाराज जी चल दिये अपने चरणाश्रित की *लाज बचा* कर । (केहर सिंह)

महाराज

ऐसे ही उक्त प्रसंग में *अपने भक्तों के प्रति आदर-सम्मान हेतु सचेत* बाबा जी ने श्री आर० पी० वैश्य को भी **सीख** दे दी ।

श्री आर० पी० वैश्य जी के गाजियाबाद में बने उनके मकान के गृह-प्रवेश में बाबा जी ने सम्मिलित होने का वादा किया था । लगन ८ बजे सुबह की थी । वैश्य जी बाबा जी को लिवाने ६ बजे सुबह दिल्ली पहुँच गये । उतनी सुबह भी भक्तगण बाबा जी को घेरे हुये थे । वैश्य जी के **चले चलने** का आग्रह बाबा जी टालते रहे और कभी इस भक्त के घर तो कभी उस भक्त के घर डोलते रहे । वैश्य जी दुखी होते रहे विलम्ब के कारण । अन्त में चार बजे शाम वे बाबा जी से बोले, **"महाराज, इन सब लोगों को भी ले चलें।"** (यह सोचकर कि इन्हीं भक्तों के कारण विलम्ब कर रहे हैं बाबा जी ।)

तब बाबा जी बोल उठे, **"का बरषा जब कृषी सुखाने"** — (यही बात सुबह ही कह देते तो विलम्ब क्यों होता ।) और ऐसा कह वैश्य जी के साथ *अकेले* ही चल दिये गाजियाबाद को ।(उषा बहादुर)

महाराज

एक दिन एक भक्त को, जिसका मंगलवार का व्रत था, आश्रम का भण्डारी दूध देना भूल गया । उस भक्त ने तो कुछ नहीं कहा परन्तु महाराज जी से कौन बात छिप सकती थी ? आधी रात के बाद उसे बुला भेजा अपनी कुटी में और पूछा, **"तूने कुछ खाया पिया कि नहीं ?"** सत्य

बताने पर महाराज जी को कष्ट होगा — यही सोच कर उसने कह दिया, "हाँ, महाराज मैंने दूध पी लिया था ।" परन्तु महाराज जी को (उन्हीं के शब्दों में) कौन *बावला* बना सकता था । उसी वक्त भण्डारी को भी नींद से जगाकर बाबा जी ने बुला भेजा और उसको खूब डांटा । इस पर उसने स्वीकार कर लिया कि वह इन्हें दूध-खीर देना भूल गया था। भण्डारी को विदा कर महाराज जी ने कमरा बन्द कर लिया और भक्त को पास बुलाकर कहा, **"*अब* तो आधी रात से अधिक समय हो गया है, दिन पलट चुका है । खालो अब ।"** और ऐसा कहते कहते कम्बल के नीचे अपनी धोती से गरमागरम पाँच परांठे और दो सब्जियाँ निकाल कर उसे देते हुये कहा, **"यह राम का प्रसाद है, खालो ।"**

और जब वह प्रसाद को लेकर बाहर जाने लगा (कि प्रभू के सामने कैसे खाऊँ ?) तो महाराज जी ने उसे आज्ञा दी कि, **"नहीं, यहीं बैठकर खाओ"** — (ताकि बाहर अन्य लोगों को उनकी यह लीला मालूम न होने पाये।) खाना पूरा होते होते महराज जी ने उसके लिये उसी प्रकार **मंगलवार** का मीठा प्रसाद — *खीर* भी उत्पन्न कर उसे दे दी !! और फिर उसके **पूरन** हो जाने पर अपने ही *पात्र* से उसे पानी भी पिला दिया !! जाते जाते आदेश भी कर दिया कि **"किसी को मत बताना।"** (***महासमाधि*** के बाद ही यह लीला अनावृत हुई ।) (**अलौकिक यथार्थ** से अनूदित ।)

महाराज

वर्ष १६६६ के प्रयाग कुम्भ में गंगा जी के किनारे महाराज जी ने हँसी-विनोद के मध्य ही एक अन्न-क्षेत्र स्थापित करवा दिया — मीलों बसी **कुम्भ नगरी** में एक छोटा-सा क्षेत्र, जिसकी पहिचान केवल हनुमान-आकृति अंकित एक लाल झंडा मात्र थी (न कि महाराज जी का नाम लिये ।) मेले में अन्य अन्न-क्षेत्र विशाल ऐरिया में बड़े-बड़े बैनर लिये स्थित थे ।

बहुत ही धीमी शुरूआत हुई **हमारे बाबा जी** के इस अन्न-क्षेत्र की। परन्तु कुछ ही दिनों में महाराज जी की ऐसी विचित्र लीला चली कि सुबह ८-६ बजे से जो भीड़ बाबा जी महाराज का प्रसाद पाने आती थी, वह देर रात तक बनी ही रहती थी !! हुक्म भी तो था सरकार का कि, **"भरपेट खिलाओ और बाँध कर भी दो !!"**

कहाँ से **सब कुछ** आता था, पता न चल पाता । कभी शुद्ध घी में तरबतर हलवे का भण्डारा तो कभी खीर और कभी आलू-मटर-गोभी मिश्रित खिचड़ी का । दाल-चावल-रोटी तो बनती ही थी । बाबा जी महाराज अक्सर देर रात में आ पहुँचते और धुएँ से भरे रसोईघर में जाते, फिर भण्डार गृह में पहुँच कभी इस बोरे के ऊपर बैठते कभी उसे बोरे के ऊपर **"दाल नहीं है ? चीनी नहीं है ? चावल-आटा नहीं है"** — कहते, और सुबह पता नहीं किस माया के अन्तर्गत दो-तीन ऊँट नजर आते दोनों ओर पीठ पर लदी जिनस के साथ !! पौष मास की पूर्णिमा को प्रारम्भ यह भण्डारा माघ पूर्णिमा तक यथावत चलता रहा । इस पूरे प्रकरण में आद्योपान्त बाबा महाराज की ही मनसा-शक्ति अपना काम कर रही थी *जिसके बल पर ही भूमियाधार* के ब्रह्मचारी बाबा उत्तराखण्ड की कुछ माइयों के साथ इस एक माह के बृहद् भण्डारे हेतु उतनी प्रचुर मात्रा में प्रसाद बना पाये ।

और जब अन्य अन्न-क्षेत्र *बसंत पंचमी* को बंद हो गये तो उन क्षेत्रों के आश्रित भी महाराज जी के अन्न-क्षेत्र पर टूट पड़े !! परन्तु **'आओ, खाओ और बाँध कर भी ले जाओ'** वाले बाबा जी के अन्न-क्षेत्र पर — जहाँ अन्नपूर्णा मैय्या खुलकर नृत्य कर रही थी बाबा जी महाराज की इस लीला के अन्तर्गत — क्या असर पड़ता !! नित्य के भण्डारे खूब चले— खुल कर चले !! **'जिसके रामधनी, उसके क्या कमी ।'**

महाराज

मुद्रा-सृजन

द्रव्य में वृद्धि कर देने की तथा द्रव्य-सृजन की अनेक लीलायें हैं। बटुए में एक हजार मिल जाता किसी को तो किसी को बाबा जी के कम्बल से सैकड़ों रुपये । महासमाधि के बाद भी केहर सिंह जी को अपने बटुए में पहले दो सौ, फिर कुछ देर बाद छः सौ, और पुनः पाँच सौ रूपये और मिल गये !! घटना वृन्दावन आश्रम की है जहाँ वे कुछ चिन्तित हो उठे थे कि अब उनके पास केवल १५०) रुपये बचे हैं । (उनके रुपये हरदोई बैंक में रहते हैं ।)

ऐसे ही टैगोर टाउन (इलाहाबाद) के *तब* धनाभाव से ग्रस्त, और उस विशेष अवसर पर चिन्तित कि — बाबा जी के साथ जा रहा हूँ गाँठ में कुछ भी नहीं है — श्री सुरेश चन्द्र पंत को भी **एक पत्थर** उठा लाने का आदेश पालन करने पर बाबा जी ने पंत जी के उठाये पत्थर के नीचे करेंसी नोट दिलवा दिये ।

श्री धाम कैंची में धर्मशाला की छत पर विराजे महाराज जी के दर्शन को जब श्री नन्द लाल जी हल्द्वानी से मन में कुछ असमंजस लिये — कि आश्रम पर चढ़ी घी की पुरानी देनदारी के लिये भी कहा जाये कि नहीं — पहुँचे, तभी बाबा जी ने अपने कम्बल से ग्यारह सौ के *नये* नोट निकाल उन्हें देते हुये पूछा, **"और कितना बाकी है घी का ?"** "दौ सौ और हैं, महाराज जी ?" और नीचे आश्रम में पहुँचकर नन्द लाल जी को पुनः कम्बल से दो नये नोट *और* निकाल कर दे दिये !! (प्रसंगवश — *तब* श्री नन्द लाल जी बाबा जी के प्रति इतने समर्पित नहीं थे, जितने *अब* हैं ।)

महाराज

बद्रीनाथ यात्रा को जाते एक साधू कैंची ग्राम पहुँचा । महाराज जी के यश की गाथायें सुन वह भी आश्रम चला आया परन्तु वहाँ का वैभव देख वह महाराज जी के प्रति क्षुब्ध हो गया और बोल उठा, "बाबा बनकर संपत्ति संचय करते हो ?" महाराज जी ने, जो उस समय सिगड़ी की आग सेंकने की लीला कर रहे थे, उसे अपने पास बुलाया और उसके कमर में खोंसे हुए कुछ *पुराने* नोटों को निकाल कर कहा, **"तुमने भी तो धन संचय कर रखा है । जाओ, अग्नि से अपने नोट ले लेना बद्रीनाथ में।"** और ऐसा कह नोटों को सिगड़ी में डाल दिया — शीघ्र ही वे भस्म हो गये। अब तो साधू और भी क्रोधित हो गया । तब महाराज जी ने उससे कहा, **"साधू को क्रोध नहीं करना चाहिए। *साधू का धन तो धूनी है* ।"** और पास रखी चिमटी से एक एक कर कई *नये नये* करेंसी नोट निकाल कर साधू को दे दिये !! साधू चकित होकर इस **'साधू का धन धूनी है लीला'** को देखता रह गया और फिर बाबा जी को सच्चे हृदय से नमन करता चला गया ।

महाराज

बद्रीनाथ यात्रा से लौटते वक्त बाबा जी महाराज अपने परिकरों के साथ, जिनमें श्री सिद्धी माँ तथा श्रीमती मुन्नी साह भी थीं, पांडुकेश्वर में विश्राम हेतु रुके । गिरीश जोशी दल के खजाँची थे । उनके कथनानुसार — वे केवल थैली में हाथ डालकर खर्च करते रहते थे । उन्हें हिसाब-किताब से कोई मतलब नहीं रहता था, और न यह जानने की जरूरत समझते थे कि अब कितना बचा है ।

कुछ देर बाद बाबा जी ने गिरीश जी से कहा, **"*अब* केवल पाँच रूपये बचे हैं । कैसे चलेगा आगे का खर्चा ?"** गिरीश जी ने *तब* थैले में देखा तो सचमुच केवल पाँच का एक नोट बचा था उसमें !! पर उन्हें क्या चिन्ता ? बाबा जी जाने ।

तभी बाबा जी ने कहा, **"जा, एक पत्थर उठा ला ।"** पहाड़ों में पत्थरों की क्या कमी, पर महाराज जी की प्रेरणा से उनका हाथ एक *ऐसे* पत्थर पर जा पड़ा जो *आधा* जमीन में धँसा था । अपनी जिद में उसे ही गिरीश जी ने बलपूर्वक उखाड़ कर जो हाथ में लिया तो देखा कि निर्मित गढ़े में कई करेंसी नोट पड़े हैं !! वे हर्ष पूर्वक उन्हें बाबा जी के पास ले आये और बाबा जी महाराज भी **बाल सुलभ**-से हर्ष के साथ बोल उठे, **"लो, बन गया काम । *भगवान* सब इन्तजाम कर देता है ।"**

परन्तु तब बाबा जी के रंग में **अचेत** गिरीश जी महाराज जी की इस सार-गर्भित उक्ति को क्या समझ पाते कि ***यह भगवान*** कौन है ?

महाराज

हल्द्वानी देवी ऑइल मिल्स में बाबा जी भक्तों से घिरे विराजमान थे । इतने में नाटा-सा कृषकाय, काँपती देह लिये एक वृद्ध दरवाजे पर खड़ा हो गया । महाराज जी ने आज्ञा दी, **"इसे यहाँ लाओ"**, और जब वह आया तो उसे अपने तखत में ही अपने बगल में बैठा लिया ।

"कुछ खाने को नहीं है तेरे पास ?" बाबा जी ने पूछा । उसने अपनी कमजोर गर्दन हिला दी । बाबा जी ने उससे फिर पूछा, **"कहाँ है तेरा लोटा ? ला दे ।"** वृद्ध ने अपनी बगल से एक छोटा-सा पीतल का लोटा निकाल दिखाया । महाराज जी ने उस लोटे को अपनी हथेली से उसका मुँह ढकते हुये ले लिया, और पुनः वैसे ही उस वृद्ध को देते हुये कहा, **"इसे ऐसे ही ले जा । दिखाना मत किसी को । घर जाकर**

देखना ।" और फिर कान में भी कुछ कहा । वह वृद्ध आदेशानुसार लोटे का मुँह ढक कर ले गया ।

तीन दिन बाद वह वृद्ध पुनः आ गया महाराज जी को ढूँढते एक अन्य भक्त के घर । अबकी कुछ चमक थी उसके चेहरे पर और पीठ भी कुछ सीधी थी । आते ही वह महाराज जी के चरणों में लिपट गया — गुणगान करने लगा साथ में — **"अरे बाबा ! तू तो भगवान है । तेरे चरणों में तो *लक्ष्मी लोटती* है ।"** कई बार ऐसा कहते वह महाराज जी के चरणों को चाँपता रहा । महाराज जी उसकी तरफ देखते मुस्कराते रहे फिर बोले, **"अब जा ।"** सभी आश्चर्यचकित थे कि आखिर यह सब क्या माया है ? तभी बाबा जी की आज्ञा हो गई, **"कोई मत जाना इसके पीछे ।"** और मुझसे कहा, **"पूरन, इसको बाहर तक पहुँचा दो ।"**

बाहर जाकर महाराज जी की लीलाओं के प्रति सदा निर्विकार मेरा मन भी उत्सुक हो उठा रहस्य जानने को । मैंने बुड्ढे से पूछा, "क्या हुआ था उस रोज ? बताओ ।" पहले तो वह झिझकता रहा — मुस्कुराता भी रहा मौन होकर । पर जब मैंने उससे कहा कि, "हम तो खास आदमी हैं बाबा जी के । तभी तो उन्होंने मुझे ही भेजा है तुम्हारे साथ ।" तब उसने लीला का राज बताया, "घर जाकर जब हमने लोटे के भीतर देखा तो उसमें *दस रुपये* का नोट था !! (*तब* चौथे-पाँचवे दशक में दस रुपये बहुत हुआ करते थे ।) मैंने जी भरकर खर्च किया, खूब खाया-पिया और रुपये खतम कर दिये पर जब दूसरे दिन लोटा उठाया तो उसमें फिर दस का नोट मिल गया !! और कल भी मिला !! बाबा ने कहा था कि — **जब तुझे जरूरत होगी, लोटे से ले लेना ।"** (पूरन चन्द्र जोशी)

महाराज

संतति दान

अनुष्ठानादि (पुत्रेष्टि यज्ञादि) द्वारा अथवा तपस्याओं द्वारा संतान-प्राप्ति के अनेक दृष्टांत हैं हमारी पौराणिक कथाओं में । राम-कथा में ऐसे ही एक यज्ञ के उपरांत राजा दशरथ को चार पुत्रों की प्राप्ति हुई थी । परन्तु एकादशरुद्रावतार बाबा जी महाराज ने न मालूम कितने संतान-हीनों को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में संतति प्राप्त करा दी — ऐसे जप-तप-यज्ञ-

अनुष्ठानादि के *बिना* ही । और आज तो उनके **तत्व पीठों** एवं हनुमान मंदिरों में जाकर ***भक्ति पूर्वक प्रार्थना*** करने पर भी निःसंतान माताओं की गोद पूर्ण हो जाती है ।

उत्पन्न होने पर भी संतान के ***न बच*** पाने पर बाबा जी महाराज के आशीर्वाद से आर्त लोगों को इस अभिशाप से मुक्ति मिलती रही है । शिकोहाबाद के श्री बद्री विशाल स्वयँ ऐसी लीलाओं के सबसे ज्वलंत प्रमाण हैं (जिन्हें मृत हो जाने पर भी बाबा जी ने पुनर्जीवित कर दिया था।)

नीब करौरी में निःसन्तान वैश्य दम्पति की गोद में पुत्र, श्री राम सेवक को लाकर बिठा दिया, केवल एक कुआँ खुदवा देने का बहाना बनाकर ।

महाराज

एक दिन भाव में आकर सुबह के समय ही मैंने सरकार के श्री चरणों में कुछ द्रव्य अर्पण कर दिया प्रसाद वितरण हेतु जिसे दादा को बुलाकर बाबा जी ने उन्हें सौंपते हुये विनोद में कहा — **"लो दादा, *आज* खूब प्रसाद बँटेगा ।"** सुनकर मन में अत्यंत ग्लानि हो उठी कि उतने ***न्यून*** द्रव्य से **खूब प्रसाद** *क्यों* कर बँट पायेगा ।

उस दिन आफिस से जल्दी आकर जो सीधा बाबा जी के पास गया तो फाटक से ही देखा कि लोग दोनों हथेलियों में भरकर प्रसाद ले जा रहे हैं । आत्म-तृप्ति से सराबोर (कि मेरा प्रसाद बँट रहा है) मैं जब भीतर गया तो ८-१० लोग और भी खड़े थे हथेलियों में प्रसाद समेटे, तथा अन्य कुछ और भी पा रहे थे भरपूर प्रसाद । मेरे. अल्प द्रव्य से इतना प्रसाद ? तभी **घट-घट के जाननिहार** बाबा जी ने मुझसे डांट कर कहा, **"खड़े खड़े क्या देख रहे हो ? दादा की मदद क्यों नहीं करते ?"** (प्रसाद बाँटने में ।) दादा के पास मेज के पीछे पहुँचा तो देखा वहाँ दो टोकरों में ढेर-सा प्रसाद रखा है !! अपने होश में आ गया तब मैं ।

अब मुख्य तथ्य इस लीला का यह है कि वहाँ जंगलात विभाग का जो एक अफसर अपनी पत्नी के साथ (जिसकी गोद में २-३ माह का एक बच्चा था) बाबा जी के श्री चरणों में बैठा था, वह निःसंतान था ६-७ वर्ष के विवाहोपरान्त तथा कई प्रकार के उपचारों के बाद भी, और ***पिछले ही***

वर्ष महाराज जी ने उसे ***पुत्र प्राप्ति हेतु आशीर्वाद*** दे दिया था । बाबा जी महाराज के इस अमोघ आशीर्वाद के फलस्वरूप उसे *जब* पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई तो वह अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने इतना ढेर प्रसाद लाया था अर्पण करने। वही प्रसाद मुक्त भाव से *अब* बँट रहा था और सन्ध्या-कालीन दरबार में भी बँटा !! बाबा जी को सब पता था ही । इसीलिए सुबह ही कह बैठे थे — आज खूब प्रसाद बँटेगा !! (मुकुन्दा)

महाराज

श्री मनोहर लाल साह जगाती इलाहाबाद में एक प्रसिद्ध **केटरर** हुआ करते थे । धन-दौलत भी बहुत थी पास में । विशेष बात उनमें यह थी कि केवल जरूरतमन्द की ही नहीं, वरन किसी की भी वे हर तरह मदद करते थे । छोटा-मोटा भण्डारा तो उनके घर नित्य ही होता रहता— विशेषकर माघ माह में और जुलाई में कालेज-युनिवर्सिटी खुलने पर भी, जब उत्तराखण्ड एवं अन्य जिलों के साधनहीन विद्यार्थी प्रवेश हेतु आते। बाबा जी इन्हीं गुणों के कारण उन पर प्रसन्न थे, यद्यपि जगाती जी स्वयँ उनके प्रति पूर्णतः समर्पित न थे ।

परन्तु वे निःसन्तान थे । अपने भाई गोपाल के बच्चों को लेकर ही संतुष्ट थे । एक दिन बाबा जी ने उन्हें एक फल दे दिया यह कह कर कि **"इसे अपनी पत्नी को खिला देना । लड़का हो जायेगा ।"** तब जगाती जी ५८ वर्ष के करीब उम्र प्राप्त कर चुके थे और पत्नी भी ५० वर्ष की हो चुकी थीं । फल तो ले लिया उन्होंने, पर सोचा, "अब संतान लेकर क्या करूँगा इस ढलती उम्र में । गोपाल के बच्चे हैं हीं मुझे संतोष देने को।" और फिर पास बैठे अपने मित्र की तरफ इशारा कर कहा, "इसके भी संतान नहीं है और ये बहुत चाहते हैं बच्चा । इन्हें दे देता हूँ यह सेव।" बाबा जी ने कहा, ***"तू चाहता है तो दे दे ।"*** और उन्होंने वह फल अपने उस **और भी अधिक** उम्र वाले निःसंतान मित्र को दे दिया । (शायद विश्वास की भी कमी ही होगी उनमें ।) परन्तु *वह* तो महाराज जी का **अमोघ** आशीष था !! साल भर के भीतर उस वृद्ध दम्पति को पुत्र प्राप्त हो गया !! किन्तु सवा-डेढ़ वर्ष की आयु पाने के बाद वह पुत्र जाता रहा। अब तो वह मित्र और भी दुखी हो गया कि इससे तो अच्छे निःसंतान थे ।

बाबा जी के पुनः आने पर जगाती जी ने उनसे शिकायत की कि, "वाह, महाराज ! ऐसा फल दिया कि मेरा मित्र और भी दुखी हो गया।" तब बाबा जी ने *केवल इतना कहा,* **"वह फल तो *तेरे लिये था*, तेरे मित्र के लिये नहीं । तूने *अपने मन* से उसे दे दिया । तब उसके पास कैसे रहता ? हम क्या करें इसमें ?"**

महाराज

श्री किशोरी रमणाचार्य (वृन्दावन) ने, जो कैंचीधाम में आज (१९९२) दो दशकों से भी ऊपर भागवद्-सप्ताह में कथा सुनाते हैं, अपनी पुत्र-प्राप्ति की गाथा यों सुनाई ।

पुत्र-प्राप्ति की आशा में एक के बाद एक पाँच कन्यायें आ गईं मेरे घर — परन्तु पुत्र-प्राप्ति का मनोरथ ***मृगमरीचिका*** बन कर रह गया । क्या करता — *प्रारब्ध* में तो *यही* था ।

वर्ष १९७१ में कैंची धाम में मेरी भागवत-कथा पूरी हुई । महाप्रभु की कृपा से भरपूर दक्षिणा एवं विभिन्न वस्तुओं की प्राप्ति हुई — महादानी का दरबार जो था। उन्हें समेटते समय एकाएक भाव उठे (और मैं विह्वल हो गया) कि, "*इस दरबार* से केवल यही सब लेकर मैं क्या करूँगा ? सर्वसमर्थ महाराज जी क्या मुझे यही दान देकर विदा कर देंगे ? ***मनोरथ पूर्ति की असली दक्षिणा*** नहीं देंगे ?" सोचते ही मैंने सब सामान बाँधा और उसे अलीगढ़ के विशम्भर जी द्वारा उठवाकर (महाराज की) **रामकुटी** में जाकर महाराज जी के चरणों में रख दिया । **"क्या है यह सब ?"** पूछा बाबा जी ने । मैं तो भीतर से भरा था — कुछ न बोला पर विशम्भर जी बोले — "महाराज, यह सब इन्हें दक्षिणा में मिला है, आपको समर्पित कर रहे हैं ।" परन्तु अन्तर्यामी से क्या छिप सकता था ? मेरे विह्वल भाव का प्रणाम स्वीकारते बोले — **"जा, जा, ले जा इसे, *हो गई दक्षिणा* — *जा, होगा*।"** विशम्भर जी क्या समझते इस भाषा को ? मैं कृतकृत्य हो गया। कुटी से निकलते निकलते फिर सुना मैंने — **"जा, होगा ।"**

वर्ष १९७२ में वृन्दावन में मुझे आश्रम में बुलाकर कहा, **"शतचण्डी होनी है गोयंका धर्मशाला में । तुम्हें मुख्य आचार्य बन कर सब इन्तजाम करना होगा ।"** मैंने आज्ञा शिरोधार्य की और व्यवस्था के बाद चण्डी अनुष्ठान प्रारम्भ हो गया । दो दिन हो चुके थे। घर की भी फिक्र थी कि

प्रसवकाल समीप है। तीसरे दिन सूचना मिली कि — पत्नी मिशन अस्पताल में भर्ती है तथा उसकी भी और **आनेवाले** की भी जिन्दगी खतरे में है — आपरेशन होगा — आपको दस्तखत करने हैं कागजों में। सुनकर दिल बैठ गया। याद आ गई अपने पिता की बात कि अनुष्ठानों में अधिक न उलझना। कार्यभार अपने सहायक को सौंपकर घर को चला । सोचा, कम से कम महाराज जी को तो बता दूँ कि *ऐसा है*, और घर जा रहा हूँ । सूखा, मुरझाया, मुर्दनी भरा चेहरा लेकर उनके पास पहुँचा । कुछ लोग और भी बैठे थे उनके पास । मुझे देखते ही बाबा जी उनकी तरफ देख बोले, **"इनको देखो । घर में लल्ला हुआ है और ये रो रहे हैं ।"** दो बार और कहा ऐसा, और *जब* मेरे उथल-पुथल मानस में उनकी वाणी में निहित तथ्य घुसा तो मैं आश्वस्त हुआ कि जच्चा-बच्चा दोनों ठीक हैं, और कि *अबकी* लड़का हुआ है !! प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया तो बोले, **"जाओ, अब लाला का मुँह देखो ।"** उछलते डगों से अस्पताल गया — बाबा जी महाराज के **अमोघ** आशीर्वाद का **स्वरूप** देखा ।

पुनः आकर महाराज जी से कहा, "महाराज, अब तो मैं अशौच में हो गया । अनुष्ठान मेरा सहायक ही करेगा ।" तो डपट कर बोले, **"कैसे पंडित हो ? फलां श्लोक में क्या लिखा है ?"** याद आया कि उसके अनुसार तो कर्मकाण्ड के आचार्य का **वरण** हो जाने के *बाद* किसी भी कारण उसे अशौच नहीं होता — वरण ***इसी के लिए*** ही होता है !! "हाँ, महाराज । उसमें तो ऐसा ही है ।" **"तो जाओ, अनुष्ठान पूरा करो पर भोजन यहीं (आश्रम में) करोगे और सोओगे भी यहीं । शाम को एक बार घर जाकर देख आना अपने लल्ला को ।"**

उसी के बाद बोल उठे, **"नाम क्या रखोगे लाला का ?"** अजीब-सा लगा मुझे उनका यह प्रश्न जब कि दस दिन की शुद्धि के बिना नाम रखने का कोई विचार ही नहीं उठना चाहिये। कहा, तो बोले, **"क्या होती है शुद्धि ? नाम रख दो ।"** मैंने सोचा — बाबा जी कह रहे हैं *जिनकी* कृपा से ही यह प्राप्ति हुई है । बोला, "आप ही बता दें क्या नाम रखें ?" **"मारुति रख दो ।"** फिर अन्य भक्तों की तरफ देख बोले, **"क्यों ? कैसा नाम है ?"** सभी ने एक स्वर में कहा, **"वाह ! बहुत अच्छा नाम है ।"**

और एकादशरुद्रावतार का *यह* प्रसाद, मारुति नँदन आज आपके सामने है ।

और बाबा जी ने तो ***दो बार*** कहा था न **'जा होगा, जा होगा ।'** सो कुछ काल बाद मेरे घर ***यदुनंदन*** भी आ विराजे !! कहाँ *एक* भी नहीं और कहाँ ***दो दो*** !! (किशोरी रमाणाचार्य, वृन्दावन)

महाराज

वर्ष १६६३, जून में एक सरदार जी अपने लड़के के साथ कैंचीधाम आये थे । यूँ ही पूछने पर कि आप कहाँ से आये, बाबा जी को कब से जानते हैं, आदि, तो उन्होंने अपनी कथा यूँ सुनाई :—

मैं वर्ष १६७२ में कैंचीधाम आया बाबा जी के दर्शनों को। बाबा जी बरामदे में तखत पर बैठे हुए थे। बड़ी भीड़ थी। मैं बहुत पीछे खड़ा था। तभी मुझे अपने सामने बुलवाकर बैठा लिया और छूट बोल उठे, ***"लड़का लेने आया है ?" (सर्वत्र सदा घट घट की जानो ।)*** मैंने केवल इतना कहा, "आप तो सब जानते हैं, महाराज ।" मेरे तीन लड़कियाँ हो चुकी थीं और मैं एक लड़का-औलाद के लिये तरस गया था । बाबा जी बोले, **"उसको (अपनी पत्नी को) क्यों नहीं लाया ।"** मैं बोला, "उनकी तबीयत ठीक नहीं है, बाबा" । बोले, **"अब लाना ।"**

उसके बाद मुझे फिर से कुटी में बुला लिया बाबा जी ने । वहाँ कहा, **"लड़का तो हो ही जायेगा, हमने कह दी, पर उसको भी लाना यहाँ।"** बाद में मैं सपत्नीक भी आकर दर्शन कर गया।

बाबा वर्ष १६७३ में अन्तर्ध्यान भी हो गये । परन्तु उनके वचनों पर मेरा विश्वास बना रहा और वर्ष १६७६ में बाबा जी के आशीर्वाद का सुफल *इस* गुरुवचन सिंह के रूप में प्राप्त हो गया मुझे । (सरदार सतनाम सिंह, एडवोकेट, बरेली ।)

महाराज

माध्यम बनाकर लीला सम्पादन

बाबा जी महाराज की सृजनात्मकता का एक रूप यह भी था कि किसी को भी माध्यम बनाकर वे अपनी कल्याणमयी लीलाओं को सम्पन्न

करते रहते थे । ऐसी अनेक लीलायें हैं, और तब (अपने को, अपनी शक्ति, सत्ता को गुप्त रख) उस माध्यम को ही कार्य संपादन के लिये श्रेय देते हुये उसका स्वयँ गुणगान करने लगते सबके समक्ष ।

हरदा बाबा (श्री हरि दत्त कर्नाटक) अमेरिका चले गये थे पर उनका वीसा केवल अल्पकाल के लिये ही था और उन्हें वहाँ अधिक रहना था । इस संदर्भ को लेकर कैंची में उपस्थित रामदास (डा० रिचर्ड एलपर्ट) से बाबा जी बार बार कहते कि हरदा को अमेरिकन **ग्रीन कार्ड** दिलवाना है और उनसे पूछते, **"क्या तुम अमेरिका के प्रेजीडेन्ट को जानते हो ? क्या तुमने उसके साथ चाय पी है ?"** आदि । पर रामदास नकारात्मक उत्तर देकर उक्त विषय में अपनी लाचारी प्रगट करते रहते।

अब प्रारम्भ हुआ महाराज जी की इस लीला का दूसरा अंक । (बार-बार रामदास से उक्त विषय में वार्ता कर महाराज जी ने उसके चेतन-अवचेतन मानस में उक्त प्रश्न तो भर ही दिया था ।) तभी नैनीताल में एक संभ्रान्त अमरीकन वकील, जो रामदास का मित्र था, पर्यटन हेतु आया। रामदास ने उसे कैंची आश्रम एवं बाबा जी के बारे में भी (प्रभुप्रेरित) विस्तार से बताया । जिज्ञासा-वश उसने कैंची तथा बाबा जी के दर्शनों की इच्छा प्रगट की और दोनों कैंची धाम आ गये । वह अमरीकन वकील कैंची आश्रम में आकर तथा बाबा जी के दर्शन पाकर कृतार्थ हो अत्यन्त कृतज्ञता से रामदास से धन्यवाद सहित बोला, "मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ ।" रामदास को कुछ न सूझा पर एकाएक वे बिना किसी आत्मविश्वास के (प्रभुप्रेरित) बोल उठे, "क्या बताऊँ ? बाबा जी हरिदास बाबा नाम के एक व्यक्ति को अमेरिकन ग्रीन कार्ड दिलवाना चाहते हैं । मैं दुःखी हूँ कि इस विषय में महाराज जी की कोई सेवा नहीं कर पा रहा हूँ।" तब वकील तत्काल बोल उठा, "यह कौन बड़ी बात है । मेरा भाई वहाँ प्रेजीडेन्ट के व्हाइट हाउस में राजनीतिक विभाग में बड़ी पोस्ट में है। वह यह सब कर देगा । चिन्ता मत करो । मुझे पूरा विवरण दे दो।"

और हरिदास बाबा को अमेरिका में रहने की इजाजत मिल गई !!
(**मिरैकिल ऑफ लव** से अनूदित)

महाराज

वृन्दावन आश्रम में वर्ष १९७३ की होली का पर्व मनाया जाना था । तब वहाँ मीठे पानी के लिये केवल एक कुआँ था हनुमान मंदिर के पार्श्व में । साथ में जो मीठा पानी अल्प काल के लिये नगर पालिका से उपलब्ध होता था वह एक कुँयें में जमा होकर पम्प से टंकी में चढ़ाकर वितरित होता था परन्तु उसकी मात्रा इतनी कम थी कि उत्सवों में एकत्रित भक्तों के लिये नितान्त अपर्याप्त होती थी । अस्तु, बाबा जी (तब) वृन्दावनेश्वरी देवी मंदिर के निर्माण में रत श्रीराम मिस्त्री से *कई बार* कह चुके थे कि ऊपर वाली टंकी में अपने आदमियों से बाहर के कुएँ से जल भरवा दे, किन्तु वह टालता रहा बाबा जी की बात को । एक दो दिन बाद भक्तगण एकत्र हो जाने को थे आश्रम में ।

उस दिन सुबह के समय बाबा जी बरामदे में तखत के ऊपर बैठे थे और मैं गोल खम्भे के सहारे खड़ा उन्हें निहार रहा था । इतने में श्रीराम मिस्त्री पास से गुजरा तो बाबा जी बोल उठे, **"श्रीराम, हमने तुमसे कितनी बार कही पर तुमने टंकी में पानी नहीं भरवाया ।"** अबकी श्रीराम ने भी उत्तर दे डाला, "महाराज, हम तो भरवा दें पर फिर आपके ही आदमी कहेंगे —।" न तो उसकी बात पूरी हो पाई और न मैं ही (तब) उसकी बात का *पूरा* मतलब समझ पाया था, पर तभी महाराज जी ने मुझसे तत्काल *कहलवा* दिया, "श्रीराम, यहाँ का ***सारा जल गंगाजल है*** ।" बस क्या था, सुनते ही महाराज जी उछल पड़े अपने स्थान पर और अपनी जंघा पर हथेली मारते चहकते हुए बोल उठे, **"लो, बामण (ब्राह्मण) ने ही तुम्हें पस्त कर दिया । पस्त कर दिया ?"** "हाँ महाराज जी", कहकर श्रीराम भी मुस्कुराने लगा । तब महाराज जी पुनः चहकते बोले, **"तो अब भरवाओ पानी ।"** और दोपहर तक बड़ी टंकी पूरी भर गई !! मुझ उत्तराखण्डी ब्राह्मण को ही *माध्यम* बना बाबा जी ने श्रीराम का संकोच दूर कर दिया । (मुकुन्दा)

ये थीं बाबा जी की प्रकृति के तत्वों, मनुष्यों के मन-मानस आदि पर नियंत्रण की दृष्टांत-रूप कुछ गाथायें । जड़ वस्तुओं एवं मनुष्य-निर्मित मशीनरी आदि पर भी उनकी मंशा शक्ति के प्रताप की कुछ गाथायें *दशम पुष्पाञ्जलि* में दी जा रहीं हैं ।

महाराज

मैं कहाँ गया हूँ ?

यहीं तो हूँ !!

मेरा तो सारा विश्व है —

हजारों-लाखों लड़के हैं —

बिना सारे विश्व को अपना समझे

कोई साधू नहीं हो सकता ।

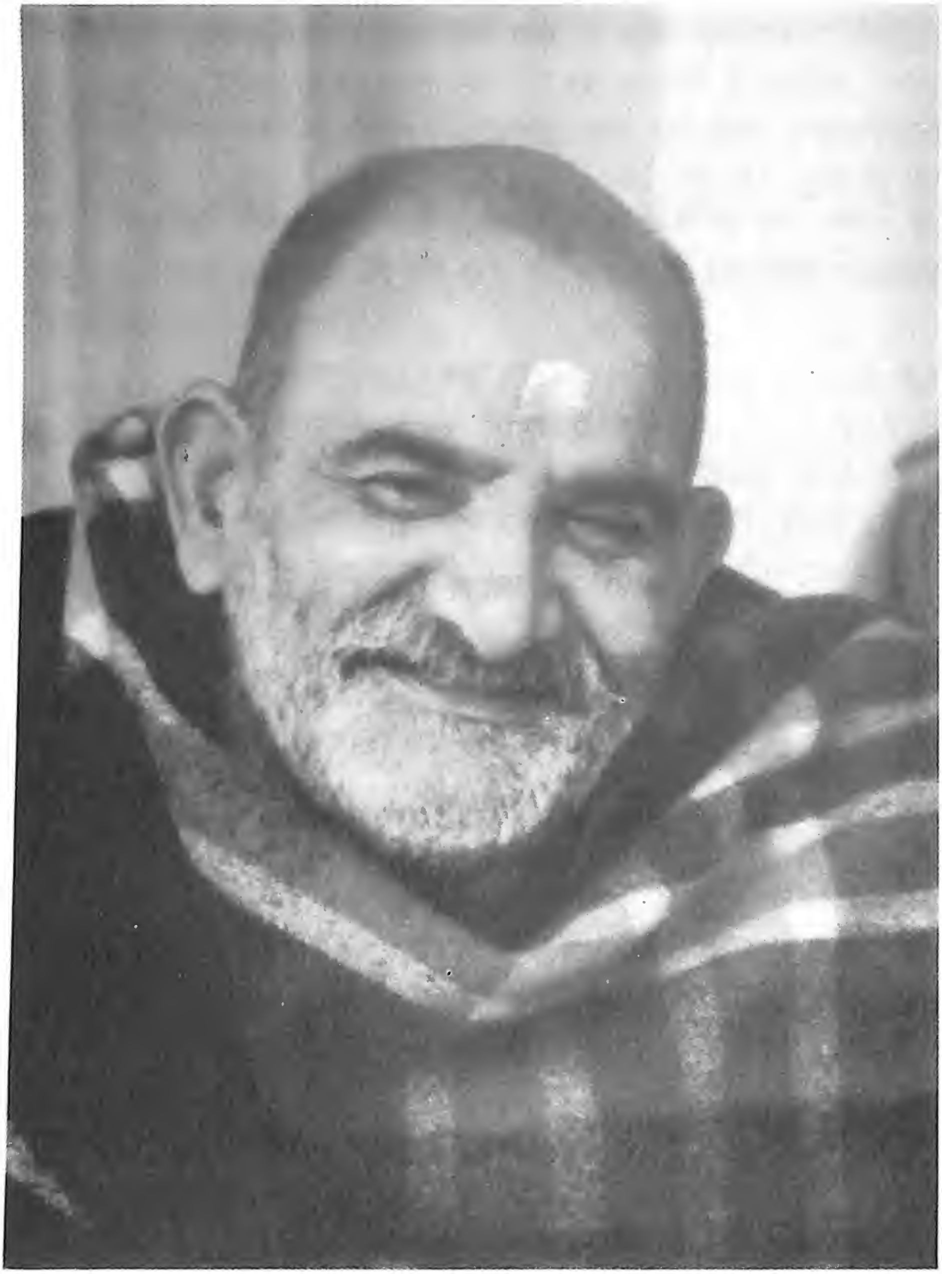

दरबार में

दशम पुष्पाञ्जलि

कुछ और लीला कौतुक

सबही धर्मनि के अनुयायी, तुम्हें मनावें शीश झुकाई ।

परम कौतुकी बाबा जी महाराज की अपने भक्तों के साथ (तथा जनता जनार्दन के साथ भी) मनोहारी लीलायें तो प्रतिपल होती रहती थीं। लगता था — एक वृहद् परिवार के मध्य पितामह अपने अबोध नाती-पोतों के साथ (इन बच्चों की क्षमतानुसार) रहस्यात्मक विनोदपूर्ण खिलवाड़ कर रहे हैं — बिना उनकी समझ में कुछ आये — बिना कुछ पल्ले पड़ते — एक बाजीगर की भाँति अपने चमत्कार दर्शाते । अधिकतर सभी मूक-बधिर की तरह उनकी लीलाओं के या तो पात्र बने रहते या फिर दर्शक । इन प्रतिपल सम्पन्न होती लीलाओं की कोई मिति न थी, कोई सीमा न थी परन्तु जो कुछ भी होता रहता वह केवल खिलवाड़-भर न होकर उनकी दया-करुणा की कल्याणमयी लीलायें ही होतीं ।

और जो कुछ उनके भौतिक शरीर के माध्यम से हुआ विगत में, वही आज भी उनकी **कथित** महासमाधि के बाद, निराकार में प्रविष्टि के बाद भी होता जा रहा है जैसा कि आगे तृतीय-सर्ग में दी गई कुछ दृष्टांत-रूप लीलाओं से स्पष्ट है । **मैं कहाँ गया हूँ ? यहीं तो हूँ !** कह चुके हैं अपनी स्पष्ट वाणी में अनेक भक्तों से विभिन्न अवसरों पर । महाराज जी की ऐसी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, साकार-निराकार-रूप लीलाओं का वर्णन करते करते थक उठती है जिह्वा भी, लेखनी भी — कहाँ तक उलीचा जा सकता है बाबा जी महाराज का लीला-महासागर ? फिर भी *स्तुति* में दृष्टांत-रूप कुछ और लीला-कौतुक यहाँ वर्णन किये जा रहे हैं।

महाराज

महाराज जी ज्ञात-अज्ञात रूप में न मालूम किन किन स्थानों — देश-विदेश में भी प्रगट होकर अपनी कल्याणमयी लीलायें करते रहते थे । कहते भी तो रहते थे कि, **"तुम अपने दो चार लड़कों से ही परेशान रहते हो । तुम करते रहो हाय मेरा मुण्डा, हाय मेरा चुण्डा। मेरा तो सारा विश्व है — हजारों लाखों लड़के हैं । हम नहीं होते परेशान।"**

उक्त कथन के संदर्भ में दृष्टांत रूप में एक लीला एक अमेरिकन महिला, श्रीमती हीथर थॉम्पसन से सम्बन्ध रखती है । लंदन में वे जब एक बस में यात्रा कर रही थीं तो एक बस स्टाप पर एक बूढ़ा भिखारीनुमा व्यक्ति बस में चढ़ गया जिसके बगल में एक लाल-नीला खानेदार बिनावट लिये कम्बल भी दबा था । केवल अपनी *मनोहारी मुस्कान* द्वारा ही, बिना कुछ बोले उस वृद्ध ने, मानो, इस महिला से कुछ खिसक कर अपने बैठने भर की जगह के लिये अनुरोध किया । बूढ़े की आयु और उसकी वह *मधुर मुस्कान* देखकर श्रीमती थॉम्पसन मुग्ध हो उठीं और कुछ खिसककर बूढ़े व्यक्ति को बैठने की जगह दे दी।

सभ्यता की सीमा के भीतर बंधी महिला ने उन वृद्ध की तरफ पुनः देखना उचित न समझा, पर उनकी वह मुस्कान वे भूल न सकीं । तभी एकाएक इनको (न मालूम किस प्रेरणावश) याद हो आया कि अपने मित्रों से वे सदा यही सुनती रहती थीं कि भारत के एक महान संत, (महाराज जी) भी सदा एक कम्बल ओढ़े रहते हैं, और कि उनकी *मुस्कान बहुत मनोहारी होती है* । यह विचार आते ही उन्होंने मुड़कर इस वृद्ध को तुलनात्मक दृष्टि से देखना चाहा पर *तब* वहाँ उस सीट पर कोई भी न था!! ये आश्चर्यान्वित हुई सोचती रह गईं कि वेग से चलती बस से ये वृद्ध महाशय कब-कैसे उतर गये !!

अब इस महिला के अन्तर में यह विश्वास घर कर गया कि हो न हो ये वृद्ध महाशय महाराज जी ही थे, और भारत जाकर महाराज जी के दर्शन कर पाने की इनकी अभिलाषा दिन पर दिन उत्कट होती चली गई। पर इनके पास इतना द्रव्य न था कि वे यह यात्रा कर पातीं । घट घट की जानने वाले महाराज जी ने तभी इनके मित्रों आदि को प्रेरित कर इनके लिये समुचित द्रव्य की व्यवस्था भी सम्पन्न करा दी, और शीघ्र ही इन्हें भी कैंचीधाम में अपने समक्ष उपस्थित करवा लिया । दर्शन के समय इन्होंने पाया कि महाराज जी *वही* कम्बल ओढ़े हैं जो लंदन में बस में उनकी बगल में दबा था — वही लाल-नीला रंग और वही बिनावट !! और पुष्टि-रूप *वही* मुस्कान बिखेर कर महाराज जी ने महिला की तुष्टि भी कर दी कि, **मैं ही तो था तुम्हारे साथ बस में उस दिन !! (अलौकिक यथार्थ** से अनूदित ।)

महाराज

इसी संदर्भ में — (महासमाधि के बाद भी !!)

अमेरिका में ताओस आश्रम के प्रबन्धक, मिस्टर जॉन केन नामक अमरीकन ने भी अपना एक विचित्र अनुभव सुनाया — 'मेरी कार लेकर मेरा एक मित्र जब ताओस — न्यू मैक्सिको (अमरीका) में घूम रहा था तो उसके पास ड्राइविंग-लाइसेन्स न होने के कारण वहाँ की ट्रैफिक पुलिस ने उसे दबोच लिया । अपने को बचाने के लिये उसने पुलिस अफसर से कह दिया कि गाड़ी उसकी नहीं है, उसके दोस्त जॉन केन की है । तब पुलिस अफसर मेरी तलाश में हमारे ताओस आश्रम में पहुँच गया और मेरी शिनाख्त कर उसने मेरे नाम वारंट लिख डाला । परन्तु तभी उसकी दृष्टि ऊपर को उठ गई और उसे दीवार पर टंगी महाराज जी की एक बड़ी फोटो-छबि दिख गई । छबि देखते ही उसने मुझसे तेज आवाज में पूछा, "यह किसका चित्र है ? कौन है यह आदमी और कहाँ है ?" मैंने सीधा-सा उत्तर दे दिया कि, "यह चित्र मेरे गुरु महाराज जी का है जो भारत में रहते हैं ।" तब वह भौंचक्का-सा हो बोला, "यह आदमी तुम्हारा गुरु है ? और भारत में रहता है ? इसकी तो हम कुछ सप्ताह से भारी तलाश में हैं। इसके पास शायद कोई वीसा-पासपोर्ट आदि नहीं है । किन्तु यह कभी इस सड़क पर तो कभी उस चौराहे पर दिखता रहता है — कम्बल ओढ़े, और जैसे ही हम इसके पास इसे पकड़ने जाते हैं तो यह गायब (अदृश्य) हो जाता है ।" तब पुनः कुछ सोच में पड़ने के बाद पुलिस अफसर बोल उठा— "जब ऐसी शक्ति-सामर्थ्य वाला व्यक्ति तुम्हारा गुरु है तो तुम्हें ही पकड़ कर हम क्या कर लेंगे । जाओ, तुम मुक्त हो ।" और ऐसा कहते उसने मेरे नाम जारी वारंट फाड़ डाला !!'

(महासमाधि के बाद इन विदेशियों के साथ खेले गये बाबा जी के *ऐसे खेलों* के कुछ और दृष्टांत तृतीय सर्ग में दिये जा रहे हैं ।)

महाराज

मैनपुरी के भगत श्री राम रतन वर्मा जी का जब वर्ष १९५६ में शरीरान्त हो गया तो उनकी पुत्री, श्रीमती शान्ती अत्यन्त दुःखी हो गई । महाराज जी जब उनके पास गये तो वे रोती हुई बोलीं, "महाराज, मेरा कोई भाई भी तो नहीं है, पिताजी भी गये, अब राखी किसके बाधूंगी ?"

तब महाराज जी बोल उठे, **"मैं तो हूँ। तू मुझे बाँधना राखी। मैं आऊँगा तेरे पास।"**

और अपने इस वचन की पूर्ति हेतु महाराज जी पूरे १७ वर्ष तक शांति जी से राखी बँधवाने मैनपुरी में उनके पास जाते रहे और उपलक्ष में उन्हें रुपये भी देते रहे !! परन्तु तब उनके पति वीरेन्द्र जी को और शांति जी को इस रहस्य का इमकान तक न था कि इन १७ वर्षों में रक्षा बन्धन के पर्व में महाराज जी *राखी के पूर्व भी, राखी के दिन भी और उसके बाद भी ग्यारह वर्ष पर्यन्त (पूरे दिन) कैंचीधाम में ही विराजमान थे* — भक्तों से राखी बँधवाते !!

न मालूम कौन शरीर जाता था बाबा जी का मैनपुरी राखी बँधवाने !!

महाराज

बाबा जी एक बार एक नाई की दुकान में दाढ़ी बनवाने गये। जब दाढ़ी घनी हो उठती तभी उसे बनवाते थे बाबा जी जिसमें साबुन का प्रयोग नहीं होता था।

दाढ़ी बनाते बनाते नाई अपना दुखड़ा रोने लगा — "मेरा एक ही लड़का है। वह भी घर से रूठ कर भाग गया है। बहुत खोज कराई पर उसका कोई अता पता नहीं चल पा रहा है। घर में बहुत उदासी है।" कहते कहते रुआँसा हो चला वह।

किसी के आँसू तो महाप्रभु देख ही नहीं पाते थे। नाई के दु:ख से करुणानिधान भी द्रवित हो गये। बोले, **"आ जायेगा"**। नाई बोला, "सभी लोग, *साधु सन्त भी* तो यही कहते रहते हैं पर अभी तक तो वह नहीं आया।"

नाई के ऐसा कहते ही बाबा जी ने लघु शंका निवृत्ति की अपनी इच्छा कही और सीने से कपड़ा हटा दुकान के बाहर हो गये। तब तक केवल एक तरफ की ही दाढ़ी बनी थी। फिर कुछ देर बाद पुन: आ गये। तथा बाकी दाढ़ी बनवा कर जाते जाते कह गये, **"आ जायेगा।"**

दूसरे ही दिन लड़का घर आ गया !! नाई के पूछने पर कि "कहाँ थे ! कैसे आ गये ?" लड़के ने बताया कि, "कल सुबह जब मैं होटल में बर्तन धो रहा था तो साधू जैसा कोई आदमी, जिसकी *आधी दाढ़ी बनी थी,*

मेरे पास आया और मुझसे कहा कि जल्दी घर जा, तेरी गाड़ी छूटने वाली है । तेरा बाप तुझको बहुत याद कर रहा है । मुझको टिकट के भी पैसे दिये । मैं फौरन चला आया ।"

सुनकर नाई हतप्रभ रह गया । समझ गया कि ये ही बाबा नीब करौरी होंगे जिनके बारे में वह बहुत कुछ सुन चुका था । (क्या नाई पर इस करुणा-दया के साथ साथ बाबा जी ने साधु-सन्तों की वाणी के प्रति भी उसे पुनः आश्वस्त कर दिया !!)

महाराज

लखनऊ में एक ८५ वर्ष का बूढ़ा मुसलमान भक्त आ गया सूरज बाबू के घर । हज भी कर चुका था । उसने बाबा जी से प्रार्थना की कि उसे ठीक से इबादत करना सिखा दें । बाबा जी तत्काल उससे बोल उठे, **"तुम्हें तो ५० साल पहले ही एक मौलवी ने खैराबाद (सीतापुर) में नमाज पढ़ना सिखा दिया था। नहीं सिखाया था?"** बूढ़ा कुछ देर सोचता रहा, और फिर बोला, "हाँ बाबा, आप सही फरमाते हैं। सिखाया तो था।" इस पर बाबा जी बोले, **"तो अब फिर से क्यों पूछते हो ? वही करो जो सिखाया था।"**(पचास वर्ष पूर्व का एक अनजान मुसलमान का इतिहास !!)

महाराज

महाराज जी की लीलायें तो सदा ही अपरम्पार हुआ करती थीं — मन, बुद्धि, वाणी से परे — **'जो नहिं देखा, नहिं सुना, जो मनहूं न समाय !!'** भक्त के भावपूर्ण अर्पण से कभी न अघाने वाले — हनुमान जी की तरह सुबह से रात तक चाहे कितने लड्डू समर्पित करते जाओ ।

लखनऊ, कानपुर, दिल्ली आदि में भक्तों का भी काफिला चलता था उनकी कार के पीछे — ७-८ कारों में लदे-फदे । दिन भर में सुबह से रात तक न मालूम कितने आश्रितों-भक्तों के घरों में जाकर लीलायें करते होते । हर भक्त के घर भरपूर मात्रा में प्रसाद भी पाते ।

लखनऊ में श्री सूरज नारायण मेहरोत्रा के घर से प्रसाद पाकर चले बाबा जी और (कई कारों में भरकर) हम सब भी । प्रेमलाल जी के घर गये । वहाँ प्रसाद पाया । तदुपरान्त गौतम पल्ली गये किसी भक्त के घर, वहाँ भी प्रसाद पाया। फिर श्री आर० सी० सोनी के निवास पर पधारे।

वहाँ भी प्रसाद पाया । दोपहर के करीब अपनी भक्त श्रीमती चिश्ती के घर पहुँचे । वहाँ श्रीमती चिश्ती ने अन्य लोगों के लिये तो हलवाई की दूकान से पूरी सब्जी मंगवाई, पर बाबा जी ने चिश्ती द्वारा अर्पित भोग प्रसाद ही पाया । अब आई बारी महानगर में पूरन चन्द्र पाण्डे जी के घर की । वहाँ भी भोग प्रसाद अर्पित हुआ । मैं तो सोनी साहब के घर से ही **पूरन** हो चुका था — अन्य जगह केवल सरकार के तमाशे देखता रहा । अब पहुँचे श्री शिवापत राम के घर गोलागंज। वहाँ पुनः प्रसाद पाया बाबा जी ने, सभी जगह सब कुछ, भरपूर । भक्तगण भी साथ पाते रहे बहुत कुछ ।

दिन बीत चुका था । अब लौटने की बारी थी पुनः मेहरोत्रा निवास पर । दो-तीन जगह और घूम कर ६ बजे रात आप मेहरोत्रा जी के घर पहुँचे । कहीं चाय कहीं कुछ नमकीन आदि पाते मुझे तो लगा कि अब शायद उलट दूंगा सब कुछ । पर वहाँ भी भक्तों के लिये खिचड़ी-सब्जी के पूरे के पूरे थाल परोसकर पेश हो गये । बाबा जी ने वहाँ भी **पूरा** प्रसाद ग्रहण किया । जब मुझे थाली दिखाई गई तो मैंने अपनी लाचारी प्रगट कर दी । मेहरोत्रा साहब ने मेरी शिकायत कर दी बाबा जी से । उन्होंने मुझे बुलाकर डांट कर कहा, **"खालो, प्रेम से खिला रहा है ।"** मजबूर होकर मैंने सोचा — चलो कुछ *चख* लो । परन्तु मैं भी *पूरा* थाल खा गया !! और इसके साथ ही जो कुछ पेट में हलचल-सी मची थी (न मालूम कैसे) वह भी एकदम शान्त हो गई !!

स्वयँ तो जो कुछ दिनभर पाया, उसे भस्म करते रहे अपने उदर में— साथ में *मुझ* जैसे योग-हीन का भी सब कुछ मेरे ही उदर में भस्म कर दिया !! (लेखक)

महाराज

इसी प्रकार :— सदा ही सूक्ष्माहार वाली कुंवरानी प्रमिला ज्योतिप्रसाद (शाहजहानपुर स्टेट) जब महाराज जी के दर्शन को आईं तो उनके सामने पूरा भरपूर भोजन का थाल रखकर महाराज जी बोले, **"खाले !"** तब *उस* भोजन की *मात्रा* देखकर वे अचकचा गईं और बोलीं, "महाराज ! मैं इतना सब थोड़े खा सकूंगी ।" परन्तु बाबा जी अपनी बात पर अड़ गये — **"नहीं खा । सब खा लेगी ।"** मजबूर होकर कुंवरानी साहबा धीरे धीरे *पूरा थाल* भोजन प्राप्त कर गईं !! (यही सोचते कि अब वे अवश्य बीमार पड़ेंगी ।)

परन्तु उन्हें उतनी मात्रा में प्रसाद पा लेने पर भी कुछ न हुआ !! अपितु वे तो अपने को और अधिक स्वस्थ महसूस करने लगीं। किसने दे दी उन्हें वह क्षमता *उस मात्रा* का भोजन प्रसाद भस्म कर लेने की ?

बाबा जी के इस प्रसाद ने वर्षों उपरान्त अपना *सुफल* देना प्रारम्भ कर दिया। कुंवरानी साहेबा आठवें दशक में श्री माँ के सत्संग में धीरे धीरे महाराज जी के प्रति अधिकाधिक समर्पित होने लगीं। और आज तो वे पिछले ४-५ वर्षों से बाबा जी के आश्रमों (विशेषकर कैंची धाम, वृन्दावन, ऋषीकेश तथा बीरापुरम) का श्री माँ की छत्रछाया में अभिन्न अंग बन चुकी हैं। (१९९४)

महाराज

दिल्ली में बाबा जी महाराज अनेक घरों में डोलते फिरते थे अपनी करुणा-दया-कृपा की लीलायें करते। सुप्रसिद्ध विश्व-ख्याति प्राप्त सर्जन, डा० एन० सी० जोशी जी की पुत्री, निर्मला (निम्मी) के घर भी जाते रहते थे। एक बार निम्मी के मन में आया कि अबकी बाबा जी के साथ जितने भी भगत आयेंगे सबको मन-भर दूध अर्पित करूँगी। (बाबा जी निम्मी जी के यहाँ केवल दूध ही पीते थे।) उक्त विचार के अनुसार उसने बाबा जी के आगमन के एक दिन पूर्व ही एक मन (चालीस सेर) दूध मँगवाकर रख लिया। बाबा जी आये सदा की तरह कुछ भक्तों को लिये। आते ही कहा, **"दूध ला मेरे लिये।"** एक बड़े गिलास में दूध आ गया बाबा जी के लिये। एक साँस में पी गये। **"और ला।"** वह भी उदरस्थ हो गया। **"और ला।"** पुनः आ गया भरा गिलास। वह भी स्वाहा हो गया। और फिर, **"और ला, और ला"** होती रही, दूध से भरे गिलास आते रहे, बाबा जी पीते रहे — एक मन दूध शेष हो गया !! तब निम्मी जी ने सोचा कि नौकर से और दूध मँगवा लूँ। अन्तर्यामी तत्काल बोल उठे, **"नहीं, अब नहीं। तूने 'मन-भर' पिलाया। हमने 'मन भर' पी लिया !!"** और उठकर चल दिये। (उषा बहादुर – दिल्ली)

महाराज

भूमियाधार में आश्रम में एक रात भोजनोपरान्त महाराज जी विश्राम हेतु अपने कक्ष में जा चुके थे। तभी २ बजे रात एकाएक उन्होंने हलचल

मचानी प्रारम्भ कर दी कि **हम तो दाल रोटी खायेंगे** । श्री माँ ने तथा अन्य भक्तों ने उन्हें स्मरण दिलाया कि अभी साढ़े-नौ बजे रात वे अपना नियमित प्रसाद पा चुके हैं, पर वे *बाल सुलभ* जिद में अड़ गये कि हम तो अभी खायेंगे दाल रोटी । महाराज जी की इस जिद के आगे किसी का वश चलना तो संभव न था । अतः श्री माँ और ब्रह्मचारी बाबा ने चूल्हा आदि जला कर उनके लिये पुनः दाल रोटी बनाई जिसे न केवल बाबा जी ने पाया बल्कि अपने उपस्थित भक्तों को भी पवाया ।

महाराज जी के इस व्यवहार के रहस्य को *तब* तो कोई न समझ पाया पर तीसरे दिन ज्ञात हुआ कि उनका एक अनन्य भक्त *उस रात मृत्यु के समय* दाल रोटी की प्रबल इच्छा कर बैठा था, परन्तु उसके घर वालों ने उसे *उस* स्थिति में दाल रोटी देना उचित न समझा था । उसके *मृत्यु के समय की यह इच्छा* बाबा जी ने स्वयँ दाल रोटी प्राप्त कर पूरी कर दी थी उस रात !! (उसे **मुक्त** करने को ?)

महाराज

काशीपुर (नैनीताल) में अपनी लीलायें कर महाराज एक अत्यंत धूल-धूसरित मार्ग पर चल पड़े । तभी सामने से कुम्हारों की एक टोली गधों पर घड़े लादे चली आई । उनमें से एक किशोर-वय के कुम्हार को महाराज जी ने रोक कर पूछा, **"तू कहाँ से आ रहा है ?"** शायद अपना इस तरह से रोके जाना और यह प्रश्न उसे रुचा नहीं । वह प्रतिवाद में बोला, "तू कहाँ से आ रहा है !" महाराज जी पुनः बोले, **"कौन जात है?"** उसने भी बाबा जी से पूछ लिया, "तू कौन जात है ।" बाबा जी बोले, **"भंगी ।"** और फिर उसके हाथ में उठाये हुक्के को देख बोले, **"हुक्का पिलायेगा ?"** किशोर कुम्हार बाबा जी की वय और वेषभूषा देख पहले कुछ झिझका, फिर उसने हुक्का बढ़ा दिया महाराज की तरफ । महाराज जी ने उसके सिर पर हाथ रख दिया और आगे बढ़ गये ।

कुछ ही क्षणों में *वह* किशोर अपनी टोली छोड़ हमारे पीछे लग लिया और हमारी टोली का अंग बन गया !! तब बाबा जी ने एक बाग के मध्य एक कुएँ के किनारे उस कुम्हार किशोर को अपने कम्बल से एक माला निकाल कर दे दी और कहा, **"जपना"** और कान में भी कुछ कहा। वह माला लेकर चला गया । हम लोग भी हल्द्वानी को चल दिये ।

सारी लीला एक रहस्य बन कर रह गई । न मालूम *किस जन्म का परिकर था* वह बाबा जी का जिसे उस धूल-धूसरित राह में बाबा जी ने ढूँढ निकाला और उसे पुनः साधना-क्षेत्र में प्रविष्ट करा दिया । (पूरनदा)

महाराज

इसी तरह केवल १२-१३ वर्ष के एक बालक (*अब* ब्रह्मचारी रामशरण दास जी, राम कुटी, कासगंज) को (*तब*) स्वयं लम्बी जटायें लिये, शरीर में भस्म रमाये, हाथ में चिमटा लिये बाबा जी महाराज मैनपुरी के *मोटा* नामक स्टेशन के बाहर मिल गये और उनके हाथ से पानी पीकर बोल उठे, "***तू जल्दी ही घर से विरक्त हो जायेगा*** ।"

ऐसा ही हुआ । बाबा जी महाराज का पूर्वजन्म का यह परिकर युवावस्था प्राप्त करते करते विरक्त हो गया और कासगंज में *राम कुटी* बनाकर ब्रह्मचारी रामशरण दास बन गया !! वर्षों बाद जब बाबा जी के दर्शन हुये तो इनका ब्रह्मचारी वेष देखते ही बाबा जी बोल उठे, "**हो गया !! (विरक्त) हो गया !!**" (इतने वर्ष बाद भी ब्रह्मचारी वेष धारण किये अपने परिकर को *पकड़* लिया — पहचान लिया बाबा जी ने !!)

महाराज

श्री जे० एन० उग्र *तब* इलाहाबाद में कलेक्टर थे । वे अक्सर प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के पास आया करते थे । ब्रह्मचारी जी से बाबा महाराज के बारे में जब-तब सुनते उग्र जी को भी बाबा जी के दर्शनों की उत्कट अभिलाषा हो चली । और एक दिन उनकी *इस* इच्छा पूर्ति हेतु बाबा जी ब्रह्मचारी जी के आश्रम पहुँच ही गये । ब्रह्मचारी जी ने तत्काल उग्र जी को सूचना भिजवा दी । परन्तु उनके आश्रम पहुँचने में तो आधा-पौन घंटा लग जाना स्वाभाविक था और बाबा जी को इतनी देर रोक पाना सम्भव भी तो न होता । अस्तु, ब्रह्मचारी जी बाबा जी को एक कमरे में उठा ले गये और उन्हें वार्ता में उलझाये रखा । साथ में खातिर-तवाजो भी करते रहे । बाबा जी समझ तो गये ही थे — स्वयँ भी बैठे रहे । पौन घंटे बाद एक शिष्य ने आकर उग्र जी के आने की सूचना दी तो उन्हें लिवाने ब्रह्मचारी जी शिष्य को वहीं पहरे में छोड़ कमरे से बाहर आ गये और कुछ आगे बढ़ गये ।

परन्तु जब क्षणों बाद उग्र जी को लेकर ब्रह्मचारी जी कमरे में पहुँचे तो पाया कि बाबा जी वहाँ हैं ही नहीं !! कहाँ गये ? शिष्य से पूछा तो शिष्य ने भी कहा कि उसने तो उन्हें बाहर निकलते नहीं देखा । कमरे में कोई खिड़की भी तो न थी (बाहर निकलने को !!) और कुछ ही दूर पर ब्रह्मचारी जी ने भी कुछ नहीं देखा था ऐसा ।

तभी सबने देखा कि महाराज जी मुस्कुराते हुए अन्य मार्ग से उनकी तरफ चले आ रहे हैं !! उग्र जी के लिये *इतना ही पर्याप्त* था महाराज जी का **रूप** समझ पूर्ण रूपेण उनका चरणाश्रित हो जाने हेतु । लीला भी तो अपने इस पूर्वकालिक चरणाश्रित को पुनः इस जीवन में अपने कृपा-क्षेत्र में प्रविष्ट कराने हेतु ही थी — न कि अपनी शक्ति प्रदर्शन हेतु। (केहर सिंह)

महाराज

ये थे अनेकों में से कुछ दृष्टान्त — बाबा महाराज की अपने पूर्वकालिक भक्तों को पुनः अपने भक्ति-क्षेत्र में खींचने की लीलाओं के । वस्तुतः हम सभी भी तो इसी प्रकार से श्री चरणों के प्रश्रय में लाये गये बाबा जी द्वारा — स्वयं ही द्वारे-द्वारे, गाँव-गाँव, शहर-शहर जा जा कर अपने इन पूर्वकालिक शरणांगतों को समेटते अपने कृपा-अंक में । और अब अन्य *ऐसे* ही परिकर भी, जिन्होंने बाबा महाराज के स-शरीर दर्शन नहीं किये थे, चले आ रहे हैं समर्पित होकर — तन-मन-धन से — बाबा जी की (अर्थात ***आश्रम-रूप*** बाबा जी की सेवा हेतु !!)

महाराज

इलाहाबाद में राम बाग नामक स्थान में स्थापित एक काफी पुराना हुनमान विग्रह है जिसकी बहुत बड़ी मान्यता है । इन हनुमान जी का *पुराना* मंदिर दुमंजिले पर बना था । ऊपर चढ़ने को १७-१८ सीढ़ियाँ थीं। बड़े बूढ़ों, महिलाओं एवं बच्चों को ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने में काफी कष्ट होता था — विशेषकर मंगलवार की भीड़ में, जिस हेतु ऊपर प्रांगण भी सीमित क्षेत्र का ही था । यही अनुभव श्री माँ को भी हुआ जब वे महाराज जी के साथ वहाँ दर्शनों को गई थीं । तब उन्होंने यह बात बाबा जी से भी कह दी (बड़े-बूढ़ों, महिलाओं, अपंगों तथा बच्चों के कष्ट के बारे में ।) महाप्रभु ने इसके निराकरण की *मंशा* बना ली ।

पुराना मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो ही चला था। ट्रस्टियों ने इसके जीर्णोद्धार का निर्णय ले लिया था। महाराज जी चर्चलेन (इलाहाबाद) में दादा के घर पधारे थे। मंदिर के दो ट्रस्टी, श्री आर० एन० मिश्रा तथा श्री भार्गव बाबा जी के दर्शनों को वहाँ आ गये। बातों बातों में (प्रभु-प्रेरित) मंदिर के जीर्णोद्धार का प्रसंग भी उठ गया। महाराज जी ने बड़ी सरलता से (*बिना* अपनी राय पर जोर दिये) कहा, **"जनता को ऊपर चढ़ने में तकलीफ होती है। हनुमान जी को नीचे (एक मंजिले पर) ले आओ।"** परन्तु दोनों ट्रस्टी बाबा जी की बात पर सहमत न हुए और बोले, "बहुत पुराना मंदिर है, महाराज। इसका रूप बदलने में जनता को अच्छा न लगेगा, और दूसरे ट्रस्टी भी राजी न होंगे। अब तो जीर्णोद्धार का पूरा प्लान भी बन चुका है। आप भी एक बार आकर स्वयँ देख लें।" महाराज जी उस वक्त कुछ न बोले।

सन्ध्या समय वे लोग गाड़ी लेकर आ भी गये। मिश्रा जी से पुरानी पहिचान थी मेरी मोहल्ले तथा **सत्संग** के कारण। सो मुझे भी गाड़ी में जगह मिल गई। मंदिर में ऊपर चढ़कर महाराज जी कुछ देर हनुमान जी के सामने बैठे रहे। पता नहीं उस बीच महाराज जी ने हनुमान जी से क्या कहा कि जीर्णोद्धार कार्यों के मध्य ही एक रात हनुमान जी स्वयँ **धम्म** से **कूद** कर छत को फाड़ते हुए १५-१६ फीट नीचे आ गये, मय सिंहासन के !! विग्रह में न कोई टूट, न फूट !! अन्ततोगत्वा जब मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ तो हनुमान जी **नीचे ही** प्रस्थापित हो गये !! उनके सामने का दर्शन-प्रांगण क्षेत्र भी स्वतः बड़ा हो गया।

श्री माँ की *इच्छा* एवं महाराज जी की **मनसा** — कैसे पूरी न होती। (मुकुन्दा)

महाराज

भद्री स्टेट (प्रतापगढ़, उ०प्र०) के पूर्व के शासकों ने अपने अपने समय अपनी भावनाओं एवं संस्कारों के अनुरूप स्टेट में भगवान शंकर एवं देवी जी के मंदिर बनाने के प्रयास किये। मंदिर भी बन गये, परन्तु उनमें विग्रह प्रतिष्ठापन के पूर्व ही ऐसे महानुभावों का असमय ही देहावसान हो जाता था। न मालूम कौन सा ऐसा प्रचण्ड दैवी कोप था यह। ऐसे तीन मंदिर बनकर अधूरे ही पड़े रह गये। भावी शासकों को भय हो गया अन्तर में आगे ऐसे प्रयास करने के प्रति।

अन्तिम राजा साहेब (भद्री), श्री बजरंग बहादुर जी बाबा जी के अनन्य भक्तों में से थे । महाराज जी भी कई बार उनकी स्टेट तथा महल में पधारे थे । इन मंदिरों के बारे में पूछने पर जब बाबा जी को इस दैवी प्रकोप के बारे में बताया गया तो उन्होंने राजा साहेब से कहा, **"तुम बनाओ मंदिर। तुम्हें कुछ न होगा । हमने कह दी ।"** पर भय तो भय, वह भी प्राणों का । आगे कोई मंदिर न बना ।

कालान्तर में राजा साहेब का देहावसान भी हो गया । बाद में इन अधूरे मंदिरों के बारे में बताते हुए रानी गिरिजा देवी ने बाबा जी की यह बात श्री माँ से कही तो माँ ने कहा, **"आप बाबा जी की बात पर विश्वास लाइये । इच्छा हो तो बनाइये मंदिर । *आपको कुछ न होगा* ।"** रानी साहेबा की इच्छा तो थी मंदिर पूर्णतया स्थापित कर उक्त दैवी प्रकोप से रियासत को मुक्त कर दिया जाये । अस्तु, उन्होंने श्री माँ के आश्वासन पर विश्वास कर वर्ष १९८६-८७ में एक नहीं, दो नहीं, बल्कि पाँच मंदिर खड़े कर दिये, जिसमें धूम-धाम के साथ क्रमशः अन्नपूर्णा-दुर्गा-सरस्वती, सीताराम-लक्ष्मीनारायण-राधाकृष्ण, शंकर-पार्वती-गणेशजी एवं हनुमान जी के विग्रहों की स्थापना कर दी गई, और वर्ष १९८८ की कार्तिक पौर्णमासी को श्री माँ तथा बाबा जी महाराज के अनेक परिकरों की उपस्थिति में पाँचवें मंदिर में एक भव्य समारोह के साथ बाबा जी महाराज भी विराज गये !! इसके पूर्व तीन दिन तक पूजा-हवन तथा रुद्राभिषेक सम्पन्न हुआ । नाम कीर्तन, सुन्दरकाण्ड, अखण्ड रामायण, हनुमान चालीसा एवं भजनों की एक सप्ताह तक धूम मची रही । हजारों लोगों ने भण्डारा प्रसाद पाया और फिर वर्ष १९९० में वार्षिकोत्सव के अवसर पर भागवत सप्तहोपरान्त पुनः वृहद् भण्डारा आयोजित हुआ ।

बाबा जी के आशीर्वचनों तथा श्री माँ द्वारा पुनः आश्वस्त किये जाने के फलस्वरूप पूर्व में हुए किसी भी अनर्थ की पुनरावृत्ति न हो सकी *इस बार* और सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गये ।

महाराज

मेरा छोटा भाई, शिवबोध सिंह, मेडिकल कालेज, आगरा से अपना कोर्स पूरा कर चुका था वर्ष १९३५ में ही । परन्तु कहीं भी उसकी नौकरी का जुगाड़ नहीं बैठ पा रहा था । मैं इस कारण चिन्तित था । एक दिन

किलाघाट (फतेहगढ़) में महाराज जी की सेवा में रत था तो उन्होंने पूछा, **"क्या चिन्ता है ?"** मैंने उन्हें अपने भाई के बारे में बताया तो बोले, **"लिख अर्जी अभी ।"** उस स्थान में न तो कागज उपलब्ध था और न कलम, पर उनकी आज्ञा पालन हेतु मैंने अपनी डायरी जेब से निकाली और उसमें से एक पन्ना फाड़कर उसी में लगी पेन्सिल से अर्जी लिख डाली । (पर किसको, कहाँ को तथा किस पोस्ट हेतु ?) अर्जी लिख कर उसे महाराज जी की तरफ बढ़ाया तो बोले, **"मैं क्या करूंगा इसका ? डाल दे गंगा में ।"** मैंने आज्ञानुसार वही कर दिया ।

(पर वह तो बाबा जी द्वारा लिखवाई और गंगा जी में डलवाई गई अर्जी थी !! दो दिन में तैरकर कानपुर पहुँच गयी होगी, क्योंकि) तीसरे ही दिन एलगिन मिल से भाई को तार मिल गया कि "*फौरन चले आओ, मिल में मिल-डाक्टर का स्थान रिक्त है !!*" (सूबेदार मेजर जगदेव सिंह, बेहटा – रायबरेली — **स्मृति-सुधा** में।)

महाराज

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी अल्मोड़ा में श्री आनन्दमयी आश्रम में कुछ दिनों से रह रहे थे। एक शाम को एक वृद्ध महाशय आश्रम में आकर उनसे पूछने लगे, "क्या यहाँ बाबा जी आये हैं ? ब्रह्मचारी जी ने पूछा, "कौन बाबा ?" आगन्तुक ने कहा, **"बाबा नीम करौली महाराज।"** तब ब्रह्मचारी जी ने कुछ हँसकर विनोद में कहा, "यहाँ तो कोई नीम करौली बाबा नहीं आये। उन्हें पुकारो तो शायद आ जायें।" उस बूढ़े भक्त ने *अपने ही विश्वास पर जोर* से महाराज जी का नाम लेकर पुकारा । तभी प्रभुदत्त जी हतप्रभ हुए आश्चर्यचकित देखते रह गये कि *पुकार सुनते ही महाराज जी आश्रम के द्वार से अन्दर प्रविष्ट हो रहे हैं* !! ('स्मृति सुधा से')

(भक्त के *सच्चे हृदय* से पुकारने पर *भगवान* बिना प्रगट हुए कैसे रह पाते और अपने ही **विरद** की रक्षा कैसे कर पाते ?)

महाराज

एक बार मैं वर्ष १९६२ में कैंचीधाम महाराज जी के दर्शनों को आया। मुझे विदा करते हुए बाबा जी बोले, **"जा, ४-५ दिन में मैं भी बरेली आऊँगा ।"**

लौटकर चौथे दिन से मैंने डाक्टर भण्डारी के घर (जहाँ महाराज जी बरेली आकर अवश्य आते थे) आदमी भेजना शुरू कर दिया कि — देखकर आओ बाबा जी आये कि नहीं । परन्तु बाबा जी का तो पता भी न रहा कई दिन तक । नौकर भी ऊब गया इस सुबह-शाम-दोपहर की दौड़ से । तभी मुझे भी बड़ा तेज बुखार हो चला । फिर भी मैं कम्बल ओढ़ कर बाबा जी की तलाश में भण्डारी जी के घर पहुँच गया । पता चला कि बाबा जी तो बरेली नहीं आये, शायद सीधे लखनऊ को निकल गये हैं। सुनकर मैं फफक कर रो उठा कि — कहकर भी बरेली क्यों नहीं आये । भण्डारी जी की पत्नी ने मुझे बहुतेरा समझाया । पर मैं बाहर बैंच पर बैठा बिफर कर रोता ही रहा और बहुत देर तक बच्चों की तरह रोता ही रह गया। तभी एक जीप फाटक में घुसकर बगल में आकर रुक गई, और मेरे देखते ही देखते बाबा जी उसमें से उतर कर सीधे भीतर चले गये मेरे ऊपर एक उड़ती नजर डालते । खुशी की बौखलाहट में मैं उन्हें प्रणाम भी न कर सका । तब रामानन्द ड्राइवर ने बताया — महाराज जी तो फरीदपुर से भी आगे पहुँच चुके थे । परन्तु उसके आगे गाड़ी बढ़ी नहीं — जाम हो गई वहीं । तब महाराज जी ने ही कहा, **"अरे ! वो प्यारेलाल रो रहा है। चलो वापिस बरेली"**, और हम १७-१८ मील आगे से वापिस आ गये !! (प्यारे लाल बरेली)

(भक्त के अन्तर की सच्ची पुकार बाबा जी को वापिस खींच लाई भक्त की निष्ठा, आस्था तथा विश्वास की रक्षा हेतु — लेखक)

प्रसंगवश — रात को फिर बाबा जी मेरे ही घर रहे । सुबह श्री कुन्दन लाल साह जी के घर गये । वहां भी, साह जी के घर प्रसाद पा लेने पर भी, मेरी रोटी-सब्जी खाई । तब चीन ने भारत पर हमला बोल दिया था । उस रात मेरे घर एकाएक उन्होंने टेलीफोन उठा लिया और सीधे बोल उठे, **"भगवान सहाय ! रोता क्यों है तेरा पंडत ? उसकी फौज के पास बूट-सूट नहीं है । उसका इन्तजाम कर । यह ऋषियों का देश है । कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । चीन लौट जायेगा खुद ही ।"** और फिर फोन रख दिया । (प्यारे लाल – बरेली)

महाराज

बहुत छोटे थे तब मैं और मेरी बहिन । बाबा जी आते रहते थे हमारे घर/निवास भी करते थे वहीं कुछ दिन । एक बार ऐसे ही आये नैनीताल परन्तु फिर बजरंगगढ़ से सीधे चले गये — पर कहाँ ? पता न था । जब मुझे मालूम हुआ कि महाराज जी चले गये तो मैं बिलख बिलख कर रोने लगी । माँ ने बहुत समझाया कि महाराज जी फिर आयेंगे । परन्तु पता नहीं क्यों, मेरे अन्तर में महाराज जी के *ऐसे* चले जाने पर कुछ ऐसी चोट लगी कि मैं अपने को संयत नहीं कर पाई और रोती रही। यहाँ तक कि रात को मैंने खाना भी नहीं खाया माँ-पिता के लाख समझाने पर भी । ऐसे ही सो गई ।

सुबह न हो पाई थी — रात्रि के तीसरे प्रहर में ही दरवाजे पर दस्तक पड़ी । माँ ने दरवाजा खोला तो महाराज जी खड़े थे वहाँ !! स्वयँ भीतर आ गये यह कहते हुए, ***"कहाँ है हमारी लड़की ? वह भी भूखी हैं ; हम भी भूखे हैं । लाओ रोटी ।"*** मैं भी जाग गई और महाराज जी से लिपट गई । माँ ने मेरे लिए रखी चार रोटियाँ और आलू-टिमाटर की सब्जी गरम कर एक थाली में लाकर महाराज जी के सामने रख दीं — दो मैंने खाईं और दो महाराज जी ने खा लीं !!

तभी बोले, **"हमारी लड़की भूखी थी, ताई सों हमें बरेली से वापिस आना पड़ा ।"** आज भी महाराज जी की मेरे प्रति (उस कच्ची अवस्था में) ऐसे वात्सल्य की याद मुझे विभोर कर देती है यद्यपि (तब) उनके इस भाव को मैं पूरी तरह न ग्रहण कर पाई थी। (रजनी जोशी।)

(एक अज्ञान बालिका के निश्छल प्रेम की भी तड़पन बाबा जी को विचलित कर गई ।)

महाराज

जनवरी सन १९६२ की घटना है । महाराज जी मेरे घर पधारे थे। कड़ाके की सर्दी थी। कानपुर में वैसे ही सुबह के समय धुँध छाई रहती है मिलों के धुएं के कारण, और उस दिन तो सर्दी के मारे बाहर ऐसा घना कुहरा छाया हुआ था कि हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था । ऐसे में सुबह ५ बजे ही महाराज जी ने गाड़ी निकालकर प्रयाग चलने की आज्ञा दे दी। मैं कुछ असमंजस में पड़ गया कि इतने अंधकार, कुहरे और कड़ाके की ठंड में *यह सब* कैसे संभव हो पायेगा । फिर भी आज्ञा पालन कर मैं

गाड़ी निकलवाकर बाबा जी के साथ प्रयाग को रवाना हो गया । कुहरा इतना गहन था कि आगे कुछ भी दिखना असंभव-सा था और इसकी पूरी संभावना थी कि कभी भी किसी गाड़ी से, किसी यात्री से, किसी पेड़ से टक्कर हो जाये । गाड़ी की हेडलाइट कोई लाभ नहीं पहुँचा पा रही थी । ऐसे में गाड़ी की गति भी अत्यन्त धीमी थी और ६-७ किमी० (चकेरी तक) हम किसी तरह डेढ़ घंटे में पहुँच पाये । तभी मेरे मन में आया कि महाराज जी से प्रार्थना करूं कि कुछ देर यहीं रुक जायें और कहीं चायं पी लें ताकि तब तक कुहरा कुछ कम हो जाये और सूरज का प्रकाश भी तेज हो जाये । तब मैंने महाराज जी से (लगता है प्रभुप्रेरित हो *उसी ऐन वक्त*) ऐसा निवेदन कर ही दिया और बाबा जी भी फौरन राजी हो गये और बोले, **"यहाँ नहीं, उस फाटक के भीतर ले चलो ।"** पता नहीं किसके मकान का फाटक है वह — उसको हमारा भीतर घुस जाना नागवार गुजर सकता है — यही सोचता रह गया मैं और तब तक ड्राइवर ने गाड़ी फाटक के भीतर कर दी । अब महाराज जी का दूसरा हुकुम हुआ कि, **"जाओ, दरवाजा खटखटाओ ।"** अब तो मेरे लिये और भी अधिक दुविधाजनक समस्या हो गई कि पता नहीं इस मकान में कौन रहता है और इतनी सुबह ऐसी ठंड में वह क्या समझेगा, क्या कहेगा । तभी बाबा जी ने जोर देकर आज्ञा दुहराई, **"जाओ, दरवाजा खुलवाओ ।"** आखिर आज्ञा का पालन करना ही पड़ा ।

और दरवाजा खुलते ही सामने कौन था ? बाबा जी के अनन्य भक्त हब्बा जी !! (श्री हीरा लाल साह, जो उन दिनों अपने भतीजे के साथ वहाँ रह रहे थे । यहाँ यह बता देना समुचित होगा कि साह जी जब अत्यन्त आनन्द में डूब जाते थे तो जोर से **हब्बा** कह देते थे । अस्तु, उनका नाम ही हब्बा पड़ गया ।) वे तो महाराज जी के इस अप्रत्याशित दर्शन से आत्मविभोर हो गये । बोले, "महाराज ! अभी अभी हम आपकी ही चर्चा कर रहे थे कि अगर बाबा के दर्शन इस वक्त हो जायें तो आनन्द बरस जाये और तभी ही आप आ गये !! **हब्बा !"** और तब वहीं चाय-नाश्ता पाकर हम पुनः प्रयाग को चल दिये । तब तक कुहरा भी काफी छँट चुका था ।

परन्तु महाराज जी तो उस मकान में पूर्व में कभी नहीं गये थे और न उन्हें कोई सूचना ही प्राप्त थी कि हब्बाजी तब कहाँ थे !! और उसी

मकान के फाटक पर मेरे मुँह से कुछ देर रुक जाने की प्रार्थना कर देना भी तो उन्हीं का **खेल** था !!

महाराज

परन्तु उक्त घटना से मेरे मन में कुहराम-सा मच गया कि यह सब क्या खेल है ? मैंने महाराज जी से पूछ ही लिया, "महाराज, यह सब क्या है ?" मेरे मन में उठे भावों को पढ़कर महाराज जी ने बड़ा सूक्ष्म-सा उत्तर दिया, (और इसी के साथ *अपना परिचय भी दे डाला*) — **"भगवान का बगीचा है ।"** मैं सोचता रहा कि "*बगीचा क्या है ? उसमें क्या होता है ? मालिक जब चाहे, जो फल चाहे खाले, जो फूल चाहे सूँघ ले, जो चाहे उगा ले* ।" तभी मेरे विचारों को पढ़कर बाबा जी बोल उठे, **"तुम नहीं समझते । अगर मुझे लोग *जान जायें* तो मेरे रोम रोम का ताबीज बना लें।"** मैं सुनकर मूक हो गया मन ही मन महाराज जी को शत शत प्रणाम कर । सचमुच **वनमाली** बाबा जी महाराज अपने **बागीचे** में यही सब तो कर रहे हैं । (देवकामता दीक्षित – कानपुर ।) (श्यामसुन्दर के लिये भी तो **वनमाली** सम्बोधन प्रयुक्त होता है — मुकुन्दा ।)

महाराज

वर्ष १९६६ के कुम्भ की बात है । मैं महाराज जी के साथ कार में कानपुर से प्रयाग को जा रहा था । फतेहपुर से आगे निकल चुके थे हम। सड़क पर यातायात पूरे जोर पर था और पैदल यात्रियों तथा सवारियों की भीड़ चल रही थी । तीन बज चुके थे अपरान्ह के । इतने में बाबा जी बोले , **"उस आदमी को (गाड़ी में) बिठा लो ।"** मैंने देखा कि आगे जाते सिर पर एक गठरी लिये आदमी को महाराज इंगित कर रहे हैं । गाड़ी उसके पास रुकवाकर मैंने उससे आग्रह किया कि वह भी गाड़ी में बैठ जाये । परन्तु उसने यह कहकर मना कर दिया *तीर्थयात्रा पैदल ही की जाती है और वह भी कुम्भ यात्रा पैदल ही करेगा* । तब बाबा जी ने उससे यूँ ही कह दिया कि, **"हमारे अन्नक्षेत्र में आना ।"** (महाराज जी की इच्छानुरूप भक्तों द्वारा उन्हीं की शक्ति पा एक अन्न-क्षेत्र स्थापित कर दिया गया था गंगा-क्षेत्र में ।) हम आगे बढ़ गये । इलाहाबाद पहुँचकर दादा मुखर्जी के घर कुछ देर रुककर हम कुम्भ-क्षेत्र को चले गये ।

वहाँ पहुँचकर मुझे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि *वही* व्यक्ति अपनी गठरी लेकर बाबा जी के **हनुमान-आश्रम** में मौजूद है !! न महाराज जी ने उसे बताया था कि **हम कौन हैं** और न अता-पता ही दिया था अपने अन्न-क्षेत्र का, न इस अन्न-क्षेत्र का नाम ही बताया था । और फिर महाराज जी का तो स्वयँ उस अन्न-क्षेत्र में कहीं नाम तक नहीं था । क्षेत्र की पहिचान *केवल* एक झंडा था — हनुमान जी की **आकृति** लिये । वह अन्न-क्षेत्र भी न तो बहुत बड़ा था न अन्य बीसियों अन्न-क्षेत्रों की तरह ख्याति-प्राप्त । उस बड़े कुम्भ-क्षेत्र में, जो मीलों तक गंगा जी के दोनों किनारों में फैला था, *बिना* किसी जानकारी के इस **हनुमान क्षेत्र** का पता लगाना साधारण बात न थी । अस्तु, उक्त परिस्थितियों में उसका हमसे भी पूर्व वहाँ पहुँच जाना एक चमत्कार ही था ।

पर हम न भी जानें, बाबा जी तो जानते ही थे *वह* व्यक्ति कौन था— साधारण मनुष्य था या कोई **पहुँचा हुआ संत** जो *बिना* किसी के बताये बाबा जी महाराज को स्वयँ भी पहिचान गया और बाबा जी के **साधारण**-से निमन्त्रण पर ही पहुँच गया उनके पास !! (देवकामता दीक्षित)

महाराज

महाराज जी की कृपा से मेरा उनके कई अनन्य भक्तों से मैत्रीपूर्ण गुरु-भाई का सम्बन्ध स्थापित हो चला था । महाराज कुमार विजयानगरम भी इन्हीं ऐसे मित्रों में से थे । उनके देहावसान का समाचार पाकर मैं भी बहुत दुःखी हुआ । परन्तु महाराजकुमार के *अलावा* उनके परिवार में मेरा और कोई परिचित न था । अतः मैं अपना शोक एवं अपनी ओर से संवेदना भी प्रगट न कर सका किसी से । मन की मन में दबी रह गई ।

तभी कुछ समय बाद महाराज जी आ गये । अन्य बातों के अलावा कहने लगे कि, **"तुम नहीं गये विजयानगरम के घर उसकी मृत्यु पर ?"** मैंने कहा, "महाराज, मैं उनके सिवा किसी और परिवार वाले को जानता नहीं था । क्या करता वहाँ जाकर ?" तो बोले, **"चलो, बनारस चलें विजयानगरम कोठी । फिर *उसके बाद शंकर भगवान के दर्शन करायेंगे तुम्हें* ।"** अतः हम चल दिये। सूक्ष्म में — कोठी तक जाकर (पर भीतर न जाकर बाहर ही) महाराज जी बोले, **"नहीं, संकट-मोचन चलो।"** और जब हम संकट-मोचन हनुमान मंदिर पहुँचे तो महाराजकुमार का *सारा* परिवार

वहीं मिल गया !! उनके साथ फिर कोठी पर आये। आवश्यक औपचारिकता के बाद हम सीधे **विश्वनाथ** जी के मंदिर पहुँचे । परन्तु वहाँ मंदिर में *न जाकर* बाबा जी सीधे **ज्ञानवापी** पहुँच गये । वहाँ उन्हें विचित्र वेशभूषा में साधू किस्म का एक आदमी मिला जिससे महाराज जी भी बड़े *विचित्र भाव एवं अंतरंगता* से मिले !! वह साधू भी महाराज जी से ऐसे मिला और *इस तरह* बातें करता रहा, मानो, वह महाराज जी की महत्ता जानता ही न हो और उन्हें एक साधारण दर्शनार्थी मात्र समझता हो । अपने प्रभू के प्रति उसका ऐसा व्यवहार देखकर उस मनुष्य के प्रति मेरे मन में क्षुब्धता और खिन्नता-सी व्याप गई । तभी महाराज जी ने मुझसे कहा, **"इसे चार आने दे दे ।"** मैंने बड़े *बेमन* से बाबा जी की आज्ञा से उसे चार आने दे दिये । (मन में तो रोष भरा था ।) तभी महाराज जी बोले, **"सन्त के प्रति बुरे भाव नहीं रखने चाहिए ।"** मेरी समझ में नहीं आया कि *वह* व्यक्ति संत कैसे हो सकता है ।

फिर हम सीधे वापिस आ गये कानपुर । मैं मन ही मन सोचता रह गया — महाराज जी ने कहा था **"शंकर भगवान के दर्शन करवायेंगे पर करवाये नहीं ।"** (मेरा *यह* भाव केवल विश्वनाथ मंदिर के *शिवलिंग* तक ही सीमित था ।)

बहुत बाद में (एक) श्री गुहा महाशय महाराज जी के दर्शनों को आये । बाबा जी द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि, "विश्वनाथ जी के मंदिर से भी *अधिक* महत्ता ज्ञानवापी की है जहाँ शंकर भगवान अनेक वेषों, अनेक रूपों में घूमते रहते हैं — कोई जान नहीं सकता । अतएव वहाँ घूमते-बैठते हर साधू-संत-जोगी-भिखारी आदि को *कुछ न कुछ* दान में अवश्य देना चाहिए । पता नहीं शंकर भगवान *किस* वेष में हों उस वक्त।"

तभी महाराज जी ने मेरी तरफ *ऐसी* मतलब भरी निगाह से देखा मानो कह रहे हों, **"अब समझे हम क्यों ले गये थे तुम्हें ज्ञानवापी और क्यों चार आने दिलवाये *उसको* वहाँ ?"** तब वहाँ के *उस रोज* का सारा दृश्य मेरी आँखों के आगे घूम गया। महाराज जी ने कहा था, **"शंकर भगवान के दर्शन करायेंगे तुम्हें ।"** परन्तु उनकी रहस्यमय वाणी और लीलाओं को कब कौन समझ पाया सही अर्थ में। मन-बुद्धि-वाणी की कोई क्षमता नहीं कि बाबा जी को समझ सके, जान सके और विशेषकर *तब* जब स्वयँ रुद्रावतार बाबा जी ही *अपने ही दूसरे स्वरूप* के दर्शन कराने

की बात करते हों !! मैं तब *इतने ही* संतोष में डूब गया कि, **"मैंने न सही, शंकर भगवान ने तो मुझे देख लिया बाबा जी की कृपा से।"** (देवकामता दीक्षित)

महाराज

बाबा जी महाराज कब, किस पर, कैसी दया की वर्षा कर दें, कुछ कहा नहीं जा सकता था । दया पात्र लाला रामकिशन (हल्द्वानी) ने अपनी गाथा यूँ सुनाई ।

मेरे बड़े भाई (नानक स्वीट हाउस, हल्द्वानी के मालिक) अक्सर बाबा जी महाराज के दर्शन हेतु कैंची धाम जाया करते थे । एक बार कन्या के विवाह के उपलक्ष में प्रसाद चढ़ाने वे नैनीताल बजरंगगढ़ गये तो बाद में कैंचीधाम महाराज जी के दर्शनों के लिये भी पहुँच गये । मैं भी बाबा जी के दर्शन हेतु जाना चाहता था । परन्तु, चूँकि मैं बहुत *बातूनी* था, मेरे परिवार वालों को मुझे साथ ले जाना पसन्द न आया । जब ये बाबा जी के पास पहुँचे तो उन्होंने मेरे बड़े भाई से मेरे लिये कहा, **"उसको क्यों नहीं लाये ?"** तो मेरे परिवार वालों ने कहा कि मैं बहुत बात करता हूँ । पर बाबा जी बोले, **"तो क्या हुआ ? अगले हफ्ते उसे जरूर लाना ।"**

मेरी माली हालत बहुत खराब थी, काम धन्धा कुछ था नहीं । बड़े भाई की दुकान में उनके कर्मचारी की हैसियत से काम करता था । अगले हफ्ते बड़े भाई के साथ कैंचीधाम गया । अन्य बातों के अलावा महाराज जी ने मुझसे कहा, **"मैं तुझसे जो माँगूगा, लायेगा ?"** मैंने कहा, "अगर हिम्मत (मेरी शक्ति के भीतर) हुई तो जरूर लाऊँगा ।" तब बाबा जी ने कहा, **"देख, सवा मन *देसी घी* के लड्डू *अपने हाथ* से बनाकर लाना हुनमान जी के लिये । बोल, लायेगा ?"** मैं मन ही मन बोल उठा, "अरे ! ये क्या कह दिया आपने। *मेरे पास तो सवा किलो आटा भी अपना नहीं हैं*" फिर भी मेरे मुँह से निकल गया, "अच्छा, महाराज जी ।" वापिस हल्द्वानी आ गया ।

कराया तो *सबकुछ* महाराज जी ने ही, मैं तो केवल **मशीन** बना रहा, पर जैसे तैसे मैंने दो तीन हफ्तों में सवा मन लड्डू अपने हाथ से तैयार कर लिये और उन्हें लेकर बाबा जी के पास हाजिर हुआ । किन्तु

मेरे कैंची धाम पहुँचते ही आप भीतर कमरे में चले गये और पन्द्रह मिनट बाद ही बाहर आये । लड्डुओं का भोग लगवाकर मेरे ही हाथ से सबको प्रसाद पवाया ।

इसके बाद मैं एक बार फिर महाराज जी के दर्शनों को गया । उस समय भण्डारे का काम चल रहा था । मैंने भी **सेवा** की इच्छा की तो बाबा जी बोले, **"यहाँ नहीं, तू *अपनी* दुकान खोल ।"** मैंने महाराज जी से कहा, "महाराज जी, मैं तो पागल हूँ। दुकान कैसे करूँगा।" तब बाबा जी ने कहा, **"देख, एक तू पागल है और एक *मैं* पागल हूँ। जा, अपना काम शुरू कर ।"** और मुझे एक गीता की पुस्तक देकर कहा कि, **"अपनी घरवाली को दे देना। कहना, पढ़ा करे।"** न मालूम क्या अर्थ थे इसके।

बाबा जी ही जानें कि कैसे कैसे, क्या क्या, कहाँ कहाँ से हो गया, पर उनके चमत्कार स्वरूप *आज* मेरे पास एक बड़ी दुकान (स्टैन्डर्ड स्वीट हाउस) है । और *जिस* हैसियत (फकत कर्मचारी) से मैं स्वयं काम करता था, *उसी* हैसियत के *दस* कर्मचारी आज मेरी दुकान में काम करते हैं !! *बाबा जी की दया ही दया है* । (लाला राम किशन, हल्द्वानी)

महाराज

भगवान सिंह (सम्प्रति लखनऊ हनुमान सेतु के मंदिर में पुजारी) को, जब वह एक अनपढ़ अनाथ-सा बालक था छोटी उम्र का, (तभी) महाराज जी ने अपनी शरण में ले लिया था । कुछ काल बाद उसका उपनयन संस्कार भी कर दिया था बाबा जी ने और उसे वृन्दावन आश्रम के हनुमान मंदिर में पुजारी का काम भी सौंप दिया । सरल बालक बड़ी लगन से हनुमान जी की सेवा करने लगा । परन्तु कुछ लोग उसे ऐसा काम सौंपे जाने पर नाखुश थे कि एक तो ठाकुर, दूसरे अनपढ़ । मंदिर श्री मंगतूराम जैपुरिया का बनाया हुआ था और जब बाबा जी वृन्दावन आश्रम से अन्यत्र चले गये तो लोगों ने जैपुरिया जी के कान भर दिये उसके खिलाफ । उन्होंने भवानी सिंह को हटा दिया। अनाथ भगवान सिंह रुआँसा हो गया — कहाँ जाये अब ? बाबा जी महाराज को याद करता रहा भूखा-प्यासा भवानी (भगवान सिंह) और तभी बाबा जी आ गये !! आर्त पुकार तो कहीं भी सुन लेते थे सरकार । भवानी को दम-दिलासा दिया, खाना खिलाया अपने कम्बल से !! सूचना पाकर जैपुरिया भी आ गये।

महाराज जी ने किसी से कुछ न कहा। साधारण-सी बातें करते रहे। जैपुरिया जी का परिवार भी आ गया। जब *कुछ* मजमा इकट्ठा हो गया तो महाराज जी ने जैपुरिया जी से पूछा, **"तूने इसके (भगवान सिंह के) मुँह से गीता सुनी है ?"** सभी आश्चर्यचकित कभी महाराज जी का मुँह देखें और कभी भवानी का !! भवानी के भी कुछ समझ में न आया कि महाराज जी कह क्या रहे हैं। अब सबके मन में यही हुआ कि आज देखें महाराज जी क्या *खेल* खेलेंगे। किन्हीं किन्हीं के मन में तो *आज* बाबा जी के प्रति शंका भी उठी कि एक अनपढ़ के लिए बाबा जी क्या कह रहे हैं?

तभी जैपुरिया जी भी बोल उठे, "नहीं महाराज ।" मन में तो था कि आज इस अनपढ़ को पुजारी के पद से हटा देने का उनका कदम पक्का हो जायेगा । **"कौन सा अध्याय सुनेगा ?"** "*ग्यारहवाँ, महाराज* ।" बाबा जी ने भवानी को अपने पास बुलाया और कहा, **"सुना बेटा ग्यारहवाँ अध्याय ।"** भवानी के काटो तो खून नहीं । तभी बाबा जी ने हल्के-से अपना पाँव आगे बढ़ा *पैर का अंगूठा भवानी की त्रिकुटी* में लगा दिया और अपना कम्बल **ठीक** करने की-सी प्रक्रिया में उसके सिर को आधा ढक दिया कम्बल के छोर से । भवानी चालू हो गया ग्यारहवें अध्याय के पाठ में !! पहले तो लोग चौंके । फिर संगीतमय, शुद्ध उच्चारण-युक्त पाठ सुनते सुनते सबकी आँखें मुँद-सी गईं और नम भी हो चलीं ।

खेल समाप्त हुआ । जैपुरिया जी समझ गये कि महाराज जी द्वारा की गई नियुक्ति में उन्होंने रोड़ा अटकाया था । उसकी माफी माँगी और भवानी को पुजारी बने रहने देने की प्रार्थना की, परन्तु महाराज जी ने कुछ काल बाद भवानी का **तबादला** लखनऊ मंदिर में कर दिया ।

महाराज

अनुभूत दर्शन

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के आदर्शों में पगी और संत-महात्माओं के मर्यादित आचरण के प्रति एक *निश्चित* धारणा रखने वाली *मैं*, बाबा जी महाराज की अत्यन्त भ्रामक और कभी कभी संतों से अपेक्षित आचरण के विपरीत-सी लगने वाली लीलाओं को देख देख बहुत भ्रमित हो चली थी महाराज जी के **सत्यरूप** के प्रति । साथ में मातृवर्ग का महाराज जी के

साथ *अन्तरंग-रूप* व्यवहार तथा महाराज जी का भी उनके साथ *उसी* प्रकार का *खुलापन* मुझे साधु-महात्माओं के प्रति अपने परम्परागत विचारों के विरुद्ध ही लगता था । एक घुटा घुटा-सा रोष मेरे मन-मानस में घुमड़ता रहता था महाराज जी के खिलाफ । परन्तु साथ में महाराज जी की ***प्रेमडोर*** भी तो नहीं टूट पा रही थी मुझसे !! और मेरी ही तरह (भ्रमित होते हुए भी) मेरे पति (इस **'लघु भागवत'** के लेखक) भी महाराज जी की प्रेम-रज्जु के बन्धन में जकड़े जा चुके थे । अतः वे भी मुझे निश्चित रूप में कोई मार्ग-दर्शन न कर सके। बाबा जी के प्रति अपने रोषपूर्ण भाव से व्यथित मैं एक-दो बार पूछ भी चुकी थी उनसे — **"आप बताते क्यों नहीं आप हैं कौन, और आपकी ये उल्टी- सीधी लीलाएँ आखिर क्या हैं और किसलिए हैं ?"** महाराज जी की कुछ अनन्य भक्त-माइयों तथा परिकरों से भी इन प्रश्नों का उत्तर उनकी अपनी अनुभूतियों के आधार पर बताने की भी मैंने प्रार्थना की । परन्तु कोई भी मुझे संतोषप्रद उत्तर न दे पाया । तब महाराज जी ने ही कहा था, **"कोई नहीं समझा सकता तुझे । समय आने पर मैं ही समझाऊँगा ।"** पर इसे भी मैंने उनकी मुझे बहलाने की ही एक और लीला समझी । और एक दिन जब मैंने कहा, "*महाराज मेरी तो कागभुशुंडि-सी गति हो गई है*", तो उत्तर में महाराज जी ने कह दिया, **"*वो तो होगी ही* !!"** सुनकर मैं *और भी* अस्थिर हो गई, यद्यपि (तभी) **संकेत सा** देते हुए पास बैठी श्रीमती क्रान्ती साह की तरफ मुँह कर वे बोल उठे थे — **अपने जन के कारणा, श्री कृष्ण बने रघुनाथ ।**

और एक दिन तो मैंने प्रण ही कर लिया कि मैं अब बाबा जी के पास जाऊँगी ही नहीं । परन्तु *उसी* दिन दोपहर बाद ही साढ़े तीन बजे मैं पुनः बाबा जी द्वारा **खींच** ली गई । (सब कुछ तो वे ही संचालित कर रहे थे !!) तब फिर मैंने अपना *आखिरी* दाँव मारा, "महाराज, आप बताते क्यों नहीं अपने बारे में सत्य ? मैं अब सबको सचेत करूँगी कि आपके पास आना सर्वथा निरर्थक है — अपने को धोखा देना है । मैं आपके खिलाफ किताब भी लिखूँगी", — आदि आदि । तब भी बाबा जी मुझे कुछ देर *और* भ्रमित करते रहे — (१) मुझसे अपने कान पकड़वाकर (२) और कसम खाते, **"तेरी सौं, मैं तुझे सब बता दूँगा । तू तो मेरी *गुरु-माई* है !!"** (३) **"तेरे *भाव* खराब हो गये हैं मेरे लिये। तू मुझे *बालरूप* में क्यों नहीं**

देखती ?" — आदि । और जब उनके इस **नाटक** से मेरा रोष पराकाष्ठा तक पहुँच गया तो महाराज जी तखत से नीचे उतर *मेरी गोद* में बैठते हुए बोल उठे, **"तेरे तीन तो थे ही तुझे तंग करने को**, **(हमारे तीन पुत्र हैं)** ***एक मैं भी हो गया*** **!!"** (कहाँ *बाबा जी का लम्बा-चौड़ा भारी-भरकम शरीर* और कहाँ चार फीट कुछ इंच की मेरी जन्मजात रोगग्रस्त दुबली पतली काया !! कल्पना की जा सकती है स्थिति की — कुचल जाने के सिवा और क्या होता ?)

परन्तु जब महाराज जी उक्त बात कहते मेरी गोद में बैठ गये तो मुझे लगा कि मानो मेरी गोद में एक रुई का छोटा बन्डल अथवा फोम का तकिया आ गया है — *अपना ही वजन लिये* !! किन्तु उनके एकाएक इस अप्रत्याशित ***हमले*** से मैं तो एकदम अवाक और बुद्धि-शून्य हो गई । और अपनी बदहवासी में मैं (तब) यह भी ठीक से न देख पाई कि ऐसा करते वक्त बाबा जी का **आकार** क्या था । हाँ, इतना निश्चित था कि उनके मेरी गोद में बैठ जाने के बाद भी मैं सामने रखे उनके तखत को भी देख सकती थी और उन्हें भी — पूरी तरह। (निश्चित ही शरीर *बालरूप* धारण कर चुका होगा ।) तभी मेरे मुँह से बरबस निकल गया — **'बन्दौं *बालरूप* सोइ रामू ।'**

और इतना सुनते ही महाराज जी फफक कर रो उठे और कुछ क्षणों बाद मेरी गोद से उठकर पुनः तखत पर जा बैठे — उसी प्रकार सिसकते, अविरल अश्रुपात करते। मैं यह लीला देख और भी विस्मित हो गई ।

फिर महाराज जी ने अपना मुँह ढक लिया कम्बल से — उसी तरह रोते-सिसकते। कुछ देर बाद मुझसे कहा— **"अब तू जा ।"** मैं कमरे से निकली तो उन्होंने स्वयँ भीतर से *उसी* विह्वल अवस्था में दरवाजा बन्द कर लिया पर कुछ देर बाद पुनः पूर्णरूपेण प्रकृतिस्थ हो बाहर बैठक में आकर बैठ गये !! परन्तु *इस* लीला से अपने अन्तर में उठे तूफान के शान्त होने पर मैंने पाया कि महाराज जी ने मेरे प्रश्न— **'आप कौन हैं'** का स-पुष्टि उत्तर दे दिया था — मुझे अपने **बालस्वरूप** की अनुभूति कराकर !!

इस संदर्भ में एक और तथ्य प्रगट करना अप्रासंगिक न होगा । यद्यपि पूर्व में मैं बाबा जी से उनकी भ्रामक लीलाओं के कारण अत्यंत क्षुब्ध

थी — और *ऐसा* प्रगट भी कर देती थी उनके समक्ष, परन्तु फिर भी, न मालूम क्यों (महाराज जी की ही माया थी यह भी कि) मैं रामायण के एक *विशिष्ट संदर्भ* का नित्य पाठ करती थी बाबा जी के *ही* चित्र के आगे — उन्*हीं* को लक्ष्य कर — **मनु** की श्री राम से प्रार्थना —

'चाहहुँ *तुमहिं समान* सुत, *प्रभु* सन कवन दुराव ।'

और भगवान का उत्तर —

***आप सरिस* खोजों कहँ जाई ।**
नृप *तव तनय होब* मैं आई ।।

और एक दिन यही पाठ मैंने अपने मझले पुत्र पन्नू द्वारा महाराज जी के समक्ष भी *उनकी ओर देखते हुए करवा दिया* । तब महाराज जी **"बहुत चल्लाक (चालाक) है"** कहकर मेरी तरफ मतलब भरी मुस्कराहट के साथ देखते हुए उठकर दूसरे कमरे को चले गये । परन्तु ***"तेरे तीन तो थे ही, एक मैं भी हो गया"*** सुनकर तथा *बाद में* उस पर मनन करने पर मुझे अन्ततोगत्वा यही लगा कि **एहिमिस** महाप्रभु ने मेरी **'चाहहुँ तुमहि समान सुत'** की प्रार्थना को भी स्वीकार कर लिया !!

कुछ भी तो असम्भव न था महाप्रभु के लिये । *सत्तर वर्ष की वृद्धा* लीलामाई की गोद में बालरूप धारण कर तो *स्तनपान* भी कर लिया था उन्होंने भरपूर !!

और उक्त तथा अन्य लीलाओं की परिणति वृन्दावन में वर्ष १६७३ की होली के अवसर पर हो गई । परम्परागत रूढ़ता में बँधी मैं सदा ही पुष्प-मालाओं को बाबा जी के श्री चरणों में या (पलथी मारे बैठे) बाबा जी के घुटनों में चढ़ाती रही (इस भाव के अन्तर्गत कि माला *केवल* भगवान के या *पति* के गले में डाली जानी चाहिए ।) परन्तु *उस* दिन बिहारी जी से लौटी तो मैंने वहाँ प्राप्त पुष्प-माला भीतर कुटी में बैठे *महाप्रभु के गले में डाल दी* !! और फिर अपने ही कृत्य से भाव में आकर उन्हीं की गोद में अपना मुँह छिपा लिया । तभी महाराज जी ने भी वह माला अपने गले से उतार कर मेरे गले में डाल दी, कहते हुये — **"लो, आज *हमने भी* पहिराय दई !!"**

इसी प्रसंग के बाद उन्होंने कहा था — **'तेरे लिये (तेरी रूढ़िगत कुंठाओं को दूर करने में) हमें बहुत मेहनत करनी पड़ी ।'** (रमा जोशी)

महाराज

जड़ वस्तु पर भी नियंत्रण

चल-अचल, जड़-चेतन — प्रकृति-सृजित अथवा मनुष्य निर्मित वस्तु — सभी पर ही तो बाबा जी महाराज का नियंत्रण *केवल मनसाशक्ति* से ही संभव हो जाता था । प्रकृति के तत्वों पर नियंत्रण के संदर्भ में बहुत कुछ पूर्व में कहा जा चुका है । यहाँ मनुष्य द्वारा निर्मित (मशीनरी आदि) वस्तुओं पर भी बाबा जी की नियंत्रण-शक्ति के कुछ आश्चर्यजनक दृष्टांत दिये जाते हैं ।

बाबा जी महाराज के फोटो-चित्र लेने की उत्कट अभिलाषा से श्री युधिष्ठिर सिंह बड़े उत्साह से एक दिन एक मंहगा विदेशी कैमरा ले आये। महाराज जी से चित्र ले लेने की अनुमति माँगी तो उन्होंने मनाकर दिया । परन्तु युधिष्ठिर जी की जिद के जवाब में बाबा जी ने हँसकर कह दिया, **"अच्छा, नहीं मानता तो *अपने मन की कर ले* ।"** फिर क्या था, युधिष्ठिर जी ने एक के बाद एक कई फोटो चित्र ले लिये बाबा जी के जब-तब अपने कैमरे का बटन खटकाते ।

परन्तु जब रीलें धुल कर आईं तो सबकी सब काली निकलीं — बिना छबि के !! *महाराज जी ने फोटो चित्र लेने को मना जो कर दिया था* !!

(उक्त घटना का विवरण मुझे श्री केहर सिंह जी के सौजन्य से प्राप्त हुआ — मुकुन्दा ।)

महाराज

आगरा के श्री जवाहर लाल खण्डेलवाल को करीब १६-१७ वर्ष की अवस्था में अपने एक आत्मीय के निवास पर बाबा जी को अपनी कार में बिठाकर उनके मनचाहे स्थान पर छोड़ने का शुभ-अवसर प्राप्त हो गया एक बार। जाड़े की रात थी, बाहर खूब ठंड थी । ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे होंगे तो आदेश मिला, **चलो**। गाड़ी में पेट्रोल बहुत कम था — **रिजर्व** में

थी । बाबा जी बैठ गये तो जवाहर जी ने गाड़ी मोड़ी मन में सोचते कि पेट्रोल पम्प से तेल ले लूँ । परन्तु बाबा जी ने टोक दिया, **"कहाँ ले जा रहा है ? पेट्रोल बहुत है । कम नहीं पड़ेगा, चल ।"** जवाहर जी क्या कहते और करते भी क्या यह पूछने के सिवा कि, "किधर चलूँ, महाराज?" उत्तर मिला, **"जमुना पार ।"** पार पहुँचने पर शिकोहाबाद – फिरोजाबाद रोड पर चलने की आज्ञा हुई काफी रफ्तार से गाड़ी चलाने पर भी आज्ञा होती रही **"और तेज ।"** फिरोजाबाद, शिकोहाबाद आदि सब निकल गयें। इटावा भी आ गया । तब १० कि० मी० और आगे पहुँचने पर आज्ञा हुई, **"गाड़ी रोको।"** स्वयँ उतर गये, और जवाहर जी को आज्ञा दी, **"अब तू जा । पीछे मुड़ कर न देखना । पेट्रोल कम न होगा ।"** और ऐसा कह स्वयँ निर्जन स्थान को चल दिये । सुबह के साढ़े चार-पाँच बज चुके थे ।

आज्ञानुसार जवाहर जी ने गाड़ी मोड़ी और वापिस चल दिये और बाबा जी की मनसा शक्ति से **रिजर्व** में आई गाड़ी बाबा जी को उतनी दूर पहुँचा कर जवाहर जी को भी पुनः उनके घर पहुँचा गई — *बिना पेट्रोल के* !! (स्मृति सुधा से)

महाराज

बरेली के एक भक्त, श्री योगेन्द्र गोयल हल्द्वानी आये थे अपने उद्योग से सम्बन्धित कार्य से । यद्यपि सन्ध्या होने लगी थी फिर भी उन्होंने सोचा — चलो लगे हाथ कैंची में बाबा जी महाराज के दर्शन-लाभ भी कर लें — समय से बरेली भी लौट लेंगे । पेट्रोल मीटर देखा तो पेट्रोल कैंची जाकर हल्द्वानी वापिस आने लायक पर्याप्त था — सोचा लौटकर भरा लेंगे। बाबा जी के शीघ्र दर्शन की लालसा ने *तत्काल* पेट्रोल लेने में समय बर्बाद करना गवारा नहीं किया कि कहीं फिर बाबा जी विश्राम को न चले जाये ।

कैंची पहुँचे, दर्शन हुये । जाने की आज्ञा माँगी तो महाराज जी ने रोक दिया । सोचा, अब रात को काम ही क्या होना है बरेली में — सुबह पेट्रोल लेते निकल जायेंगे । आनन्द पूर्वक प्रसाद पाया और विश्राम करने चले गये धर्मशाला में ।

पर रात को ही साढ़े दस-ग्यारह बजे बाबा जी की आज्ञा हुई, **"चलो, अभी चलते हैं ।"** क्या करते ? यह भी नहीं बताया बाबा जी ने कि

कहाँ जाना चलना है । इसी उम्मीद में कि काठगोदाम-हल्द्वानी-किच्छा में कहीं तो मिलेगा पेट्रोल, आप बाबा जी को गाड़ी में बिठा कर चल दिये। पर जहाँ जहाँ पहुँचे, पेट्रोल पंप बंद मिले । फिर भी गाड़ी को बाबा जी के निर्देशानुसार आगे बढ़ाते रहे और चलते चलते बुलन्दशहर के पास एक निर्जन स्थान पर बाबा जी ने गाड़ी रुकवाई, चटपट उतर पड़े नीचे और एक तरफ अंधेरे में निकल गये कहते हुये कि **"हम एक भगत के यहाँ जा रहे हैं । तुम बरेली वापिस चले जाओ ।"** देख-सुन कर गोयल साहब तो सकते की हालत में आ गये सोचते हुये कि — अब तक तो बाबा जी की शक्ति से गाड़ी चलती रही — मैं भी निर्द्वन्द्व रहा — पर अब बिना पेट्रोल बरेली कैसे पहुँचूंगा ?

और अंधेरी रात में ऐसे निर्जन स्थान में *उस* विकट परिस्थिति में उनके हृदय में भय व्यापना भी स्वाभाविक था । लाचार हो महाराज जी का स्मरण कर उन्होंने गाड़ी लौटाई और बरेली की ओर चल दिये । गाड़ी भी चलती रही !! पर सहसा एक स्थान पर घरघराते हुये रुक गई । तब गोयल जी अत्यंत दुखी भी हो गये, भयभीत भी । *पर बाबा जी ने ही तो* उन्हें इस परिस्थिति में डाला था, तब क्या अनहोनी होती उनके साथ ? एकाएक उनकी नजर काफी दूर पर बिजली की रोशनी पर पड़ी ! यह तो पेट्रोल पम्प भी हो सकता है — सोचते गोयल जी जेरीकेन लेकर वहाँ पहुँचे तो सचमुच पेट्रोल पम्प था और खुला भी था *उस* वक्त !! बाबा जी की इस *कृपा* का मन ही मन आनन्द लेते हुये इन्होंने जेरीकेन में कुछ पेट्रोल लाकर गाड़ी में डाला और फिर गाड़ी लाकर पूरा पेट्रोल ले सकुशल बरेली पहुँच गये ।

महाराज

इन्हीं गोयल साहब को इससे भी विचित्र एक और अनुभव हुआ । अपने फरीदपुर प्रतिष्ठान से ये शारीरिक रूप से अत्यंत अवसाद-ग्रस्त, क्लान्त स्थिति में रात होते बरेली आये और कुछ हल्का-फुल्का खाकर सो गये । और तभी कुछ देर बाद ही बाबा जी भी वहाँ पहुँच गये !! उठकर इन्होंने उनका स्वागत किया । प्रसाद पवाकर, चादर आदि बदलकर बाबा जी को अपनै पंलग पर शयन करा दिया । स्वयँ पलंग के पास नीचे जमीन पर लेट सो गये । अंग अंग दुःख रहा था, ज्वर भी था, सिर में पीड़ा भी ।

पर साढ़े दस-ग्यारह बजे रात बाबा जी ने इन्हें जगाया और कहा, **"हम कैंची जायेंगे । गाड़ी निकालो ।"** सुनकर मन ही मन ये दुःखी हो गये कि *ऐसी* शारीरिक अवस्था में उनसे यह कैसे संभव हो पायेगा । इन्होंने कहा भी कि, **"महाराज, कल सुबह चले चलेंगे ।"** इस पर बाबा जी ने कहा, **"तू नहीं चलता तो हम अपने आप चले जायेंगे ।"** क्या करते बेचारे । लाचार हो कपड़े पहन किसी तरह गाड़ी निकाली और बाबा जी को बैठाकर ले चले । हल्द्वानी-काठगोदाम तक मैदानी सड़क पर तो किसी तरह चल लिये गाड़ी हाँक कर, पर आगे पहाड़ी मोड़दार चढ़ाई लेते हुये मार्ग के आ जाने पर हतोत्साह होने लगे । शरीर थक चुका था पर चुपचाप गाड़ी चलाते रहे । **गेठिया** पहुँचने पर इन्होंने सोचना प्रारम्भ किया कि — अब तो मैं गाड़ी को अवश्य खड्ड में डाल दूँगा या पहाड़ से टकरा दूंगा । बाबा जी से कहूँगा कि *आज* रात भूमियाधार में रुक लें, सुबह कैंची चले चलेंगे — आदि, पर सोचते सोचते ही और *इसके लिये हिम्मत जुटाते* भूमियाधार भी निकल गया तो ये एकदम निढाल हो गये । भीषण हताशा में ये थकान के कारण अर्धचेतना को प्राप्त निद्रा-ग्रस्त हो गये । इनका सिर स्टीयरिंग से जा लगा !! पहाड़ी रास्ते, जगह जगह छोटे-बड़े मोड़, चढ़ाई, फिर ढलान, और उस पर भी आने-जाने वाले यातायात से बचाव — एक तरफ खड्ड तो एक तरफ पहाड़ !! (कल्पना की जा सकती है इस भयावह परिस्थिति की ।)

परन्तु कार चलती रही !! और १२-१३ किमी० दूर चल कर *तभी* रुकी कैंची धाम के फाटक पर *जब* बाबा जी ने इन्हें झकझोर कर *निद्रा-बेहोशी* से जगाकर कहा, **"सो रहे हो ? गाड़ी रोको । कैंची आ गई !!"** अचकचा कर इन्होंने ब्रेक लगा कर गाड़ी रोक दी । मन ही मन महाराज जी की उस अलौकिक शक्ति को, जिसने ड्राइवर की सुप्तावस्था में इस पहाड़ी मार्ग में १२-१३ किमी० उनकी कार को सकुशल गन्तव्य तक पहुँचा दिया, प्रणाम किया ।

(महासमाधि के उपरान्त गोयल जी के महाराज जी की मूर्ति को *भावपूर्ण प्रणाम* करते देख जिज्ञासावश **अलौकिक यथार्थ** के लेखक, राजदा ने उनसे उनके उक्त दो अनुभव सुने, और फिर मुझे भी सुनाये — (मुकुन्दा)

बाबा जी महाराज की *ऐसी* अलौकिकता-पूर्ण लीला, जिसमें उन्होंने सर्प दंश के कारण अर्ध चेतन अवस्था को प्राप्त युधिष्ठिर जी द्वारा भूमियाधार से रानीखेत और वहाँ से कैंची आश्रम तक जीप चलवाई, **गजेन्द्र मोक्ष** पुष्पाञ्जलि के **अलौकिक उपचार** शीर्ष में दी गईं गाथाओं में वर्णित की जा चुकी है ।

महाराज

आगरा में *तब* श्री चतुर्वेदी डी० एस० पी० थे । बाबा जी के भक्त भी थे । एक दिन बाबा जी उनकी गाड़ी लेकर शहर में अन्य भक्तों के घर दर्शन देने हेतु निकले तो (सरकारी नौकरी के प्रति वफादार) चतुर्वेदी जी ने एक तो माइलोमीटर की रीडिंग नोट कर ली और स्केल-डिप लेकर पेट्रोल की मात्रा भी (ताकि बाद में पेट्रोल का खर्चा भर दें ।)

बाबा जी घूम फिर कर आ गये । चतुर्वेदी जी ने माइलोमीटर देखा तो गाड़ी ४४ मील चली थी — ऐसा पाया, और फिर डिप लेकर पेट्रोल का खर्चा देखा तो पाया कि एक बूँद भी पेट्रोल खर्च न हुआ था !! (केहर सिंह)

महाराज

सरदार बलवन्त सिंह, (तब) आई० टी० ओ० (नैनीताल क्षेत्र) बाबा जी महाराज से बहुत **प्रीत** रखते थे । जब-तब कैंचीधाम आकर बाबा जी के दर्शनों का लाभ उठा लेते थे । एक दिन कैंची आते आपने देखा कि बाबा जी कार में चले जा रहे हैं हल्द्वानी की ओर । आपने भी अपनी कार बाबा जी की कार के पीछे दौड़ा दी परन्तु कितनी कोशिशों के बावजूद बाबा जी और उनकी कार के बीच २०-२५ गज का फासला बना रहा !! गहरी बारिश हो रही थी । तभी बाबा जी की कार एक छोटी पुलिया डाक कर आगे निकल गई परन्तु जब सरदार जी की गाड़ी पुलिया के मोड़ पर पहुँची तो उसे एकाएक ब्रेक लगाकर रोक देना पड़ा ।

पुलिया पूरी तरह क्षतिग्रस्त थी !! सरदार जी हताश हो वापिस लौट गये — शायद यही सोचते कि *बाबा जी को न टूटी सड़क रोक सकती है, न टूटी पुलिया* !!

महाराज

और टूटी सड़क की भी एक घटना । छठे दशक में कुमाऊँ मण्डल के तत्कालीन कमिश्नर, श्री प्रकाश कृष्ण ने बाबा जी को अपने घर (नैनीताल) लाने के लिये अपनी गाड़ी भेजी । भीषण वर्षा के कारण नैनीताल-भवाली रोड कई जगह कमजोर पड़ गई थी पर बाबा जी गये और लौट भी आये । तब ड्राइवर कार को वापिस ले गया । रास्ते में **पाइन्स** में चुंगी के मुन्शी ने ड्राइवर को टोका कि कहाँ से आ रहे हो ? उसने बताया कि नीम करौली बाबा जी को कैंची आश्रम पहुँचा कर आ रहा हूँ । तब चुंगी मुन्शी, रघुनन्दन ने उसे डांट कर कहा, "झूठ बोलता है । पीछे तो सड़क टूटी हुई है बड़ी देर से ।" और ड्राइवर के यह कहने पर भी कि *यह तो उसका चौथा चक्कर है*, वह नहीं माना ।

नैनीताल लौटकर ड्राइवर ने यह बात कमिश्नर साहेब को बताई तो वे आश्चर्यचकित रह गये । जिज्ञासावश जब उन्होंने तथ्य का पता लगाया तो बात सही मालूम दी ।

दूसरे दिन जब वे अन्य रास्ते से कैंची पहुँचे तो उनके कुछ कहने से पूर्व ही बाबा जी बोल उठे, **"तेरा ड्राइवर बड़ा तेज है । *राम राम* कहकर जहाँ चाहे, वहीं गाड़ी चला देता है !!"**

लीला का **सार** समझकर कमिश्नर साहब चुप रह गये ।

महाराज

महाराज जी के जीप के ड्राइवर रामानन्द की आँखों में वैसे ही धुँधलापन छाया रहता था। उस पर भी उस रोज दिल्ली से वृन्दावन यात्रा के समय तेज वर्षा हो रही थी और दृष्टिहीनता व्यापी थी। परन्तु बाबा जी जब भी किसी गाड़ी में बैठते थे वह उन्हीं के नियंत्रण में रहती थी (जैसा कि कई अन्य घटनाओं से स्पष्ट है।) मार्ग में एक स्थान पर सड़क में गहरापन था ऊपर से जाते रेल मार्ग के कारण (जिसके स्थान पर अब पुल — ओवर ब्रिज बन चुका है।) वर्षा के कारण वह बुरी तरह पानी से भर चुका था — *इतना* कि उसमें से होकर निकलने पर गाड़ियाँ आधी डूब कर बेकार हो जातीं । अतः दिल्ली से आने वाली गाड़ियां भी वापिस हो रही थीं और मथुरा से आने वाली भी । रामानन्द ने भी दिल्ली वापिस लौट चलने की बाबा जी से आज्ञा माँगी तो बाबा जी ने कहा, **"आँख बन्द कर ले और आगे बढ़ा दे गाड़ी को ।"** रामानन्द ने यही किया और तब

बाबा जी ने कहा, **"खोल दे आँखें । अब क्यों बन्द किये हैं ?"** आँखें खोल रामानन्द ने पाया कि *गाड़ी उस पार होकर चल रही है* !! (रामानन्द द्वारा श्री केहर सिंह को सुनाई घटना)

महाराज

वृद्ध रामदास बाबा तथा हम कुछ अन्य भक्तगण गेठिया की एक दुकान में महाराज जी के साथ बैठे थे । बरसात के दिन थे । उस पर पहाड़ों की बारिश । रात्रि बारह बजे के करीब एक ट्रक हल्द्वानी की तरफ जाता गेठिया पहुँचा । बाबा जी को देखकर ड्राइवर, भक्त वासुदेव ने उसे रोका और महाराज जी के चरणों में आकर नत हो गया । महाराज जी उसकी ट्रक पर बैठ गये । हम सब भी पीछे चढ़ गये । तब महराज जी ने वासुदेव के *सिर पर अपना हाथ* रखकर आदेश दिया, **'चलो'** । कृष्ण-भक्त वासुदेव उस हाथ का *स्पर्श* पाकर मदहोश हो चला और उसने (अपने अनजाने ही) ट्रक को उस पहाड़ी ढालदार मार्ग में पूरी गति से छोड़ दिया मानो कार चला रहा हो । पीछे बैठे रामदास बाबा ने जब यह स्थिति देखी तो भय से सबको राय दी कि *त्रिपाल* ओढ़ लो — गाड़ी उलटेगी तो शायद त्रिपाल के कारण रक्षा हो जाये !! परन्तु ट्रक *निर्बाध* पूरी गति से पहाड़ी सड़कों की मोड़दार ढालों में चलता ही रहा भारी वर्षा के मध्य । वासुदेव तो **बुत** हो चला था ।

तब रानीबाग के करीब वह गतिशील ट्रक *एकाएक रुक गया* । सभी को झटका लगा । महाराज जी ट्रक से उतर पड़े और हम सब भी उतर गये । ड्राइवर *तब* होश में आ गया और नीचे उतरकर जाँच करने लगा कि ट्रक इस तरह क्यों-कैसे रुक गया । पर जब कुछ समझ में न आया उसके तो वह प्रश्न लिये महाराज जी के पास आया । महाराज जी ने कहा, **"जाओ, आगे देखो ।"** आगे जाकर वासुदेव ने देखा कि १५-२० गज आगे मोड़ पार सड़क का अधिकांश भाग पूरी तरह क्षतिग्रस्त होकर एक खाई के रूप में परिवर्तित हो गया था !! गतिशील ट्रक के उसमें गिरने पर सभी की मृत्यु निश्चित थी । अपने ट्रक के बाबा जी द्वारा इस अलौकिक संचालन को समझ वासुदेव विभोर हो उनके चरणों में लोट गया। (पूरनदा)

महाराज

अगस्त १९६७ में श्री माँ महाराज जी के साथ श्री माँ, माइयाँ तथा कुछ अन्य भक्त अमरनाथ यात्रा पर थे । जम्मू से आगे पहुँच चुका था काफिला । आगे एक छोटे कस्बे में मोटर मैकेनिक की दुकान देखकर ड्राइवर ने मोटर में उभरी मामूली खराबी ठीक करवाने के लिये आज्ञा चाही । कार्य हो रहा था और सब लोग सड़क के किनारे बाबा जी को घेर बैठ गये । काफी समय बीत गया — क्या कर रहा है ड्राइवर? तभी उसने सूचना दी कि मोटर में मरम्मत के समय *और भी अधिक* खराबी आ गई है — गियर जाम हो चुका है, मैकेनिक के वश के बाहर की बात हो गई है । बाबा जी बोले, **"मोटर को ट्रक में बाँध ले चलो ।"** पर कोई ट्रक न मिल पाया उधर जाता हुआ । फिर रस्सा भी खरीद लिया गया ट्रक के मिल जाने पर मोटर को उसके साथ बाँधने हेतु । और जब एक ट्रक मिला भी तो वह भी भाग लिया आर० टी० ओ० के आगे मिल जाने की संभावना से ।

अंधकार बढ़ता जा रहा था । तब गुरुदत्त शर्मा जी ने महाराज जी से मोटर में बैठने का आग्रह इस दलील से किया कि उनके बैठने पर मोटर स्वतः चल पड़ेगी । पहले तो महाराज जी गहरी रात और अनदेखे पहाड़ी मार्ग का बहाना बनाते रहे पर जब रात्रि में (माइयों के साथ) ठहरने की व्यवस्था आदि न होने की दलील पेश की गई तो अपनी अप्रसन्नता (?) दर्शाते हुए महाराज जी भी बैठ गये काफिले के साथ मोटर में ।

और बाबा जी का मोटर में बैठना था कि वह चल पड़ी !! (मानो इसी का इन्तजार था उसे ।) गाड़ी श्रीनगर तक निर्बाध चलती रही — न *गियर का प्रयोग हुआ और न टंकी में भरे पेट्रोल का ही* !! श्रीनगर में पूरे इन्जन का ओवरहॉलिंग कराना पड़ा । (स्मृति सुधा से अनूदित ।)

महाराज

नीब करौरी धाम में रेलगाड़ी रोकने की लीला तो प्रसिद्ध है ही पर केवल यही लीला प्रथम और अन्तिम न थी ।

भोजीपुरा जंक्शन में लखनऊ की ओर गाड़ी जाने हेतु सिग्नल हो चुका था । गार्ड ने हरी झंडी दिखा सीटी पर सीटी बजाना प्रारम्भ कर दिया था । ड्राइवर ने भी काफी कोशिश कर ली थी गाड़ी आगे बढ़ाने की पर गाड़ी तो अपनी जगह से हिली नहीं । तब गाड़ी पर सवार बाबा जी

से उनके भक्तों ने पूछा कि गाड़ी क्यों नहीं बढ़ रही है आगे। निरपेक्ष भाव से बाबा जी ने कहा, **"हमारा एक भक्त हमारे दर्शन को आ रहा है। हमने उसे यहाँ मिलने को कहा है।"** तभी ४-५ मिनट बाद एक व्यक्ति बाबा जी को खोजते हुए फर्स्टक्लास के डिब्बे के पास पहुँच गया। उसने महाराज को प्रणाम किया, कुछ कहा और कुछ सुना। तब उसे आशीष देकर महाराज जी ने जैसे ही विदा किया गाड़ी चल पड़ी !! (अलौकिक यथार्थ – २०८)

महाराज

बाबा जी महाराज इलाहाबाद से आगरा होते हुए वृन्दावन जा रहे थे। फर्स्टक्लास के डब्बे में उनके साथ श्री माँ तथा अन्य भी थे। गाड़ी छूटने का समय हो चुका था, सिग्नल डाउन था, गार्ड का हरा टॉर्च भी चमक रहा था और सीटी भी बज रही थी। इंजन भी सीटी दे रहा था पर न तो बाबा जी का पता था और *न गाड़ी ही आगे खिसक रही थी*। कुछ मिनट बाद देखा गया कि महाराज जी प्लेटफार्म के दूसरे कोने से इलाहाबाद हाइकोर्ट के दो जजों के कन्धों पर हाथ रखे धीरे धीरे मन्थर गति से चले आ रहे हैं। सभी को हुआ कि बाबा जी के पहुँचने के पूर्व ही अगर डीजल इंजन वाली गाड़ी चल दी तो क्या होगा ? पर बाबा जी अपनी **हंस चाल** चलकर डब्बे में चढ़े !! और *तब तक* गाड़ी भी अपनी ही जगह बनी रही !! परन्तु उनके चढ़ते ही गाड़ी चल दी !! तभी मुझसे बाबा जी ने **गैट-आउट** कहा और मैं किसी तरह (तब तक रफ्तार पकड़ चुकी) गाड़ी से कूद पाया। (हेम चन्द्र जोशी – हेमदा)

महाराज

बाबा जी महाराज दिन भर मेरे रेलवे के बंगले में सुबह से ही विराजमान थे, कारण, दादा के घर दो ऐसे उद्योगपति श्री सूरज मेहरोत्रा जी के साथ बैठे थे जिन्हें महाराज जी दर्शन ही नहीं देना चाहते थे (उनके स्वार्थरत उद्देश्य को विफल करने।) जो भी मेरे घर आता उसे बाबा जी वहीं रोक लेते कि उनके ठिकाने का किसी को पता न लग जाये। मेरा भाई मुकुन्द और उसके तीनों लड़के दिन भर वहीं कैद हो गये। श्री माँ और जीवन्ती माँ तो सुबह से ही वहीं रहीं। वहीं बाबा जी ने तथा अन्य ने प्रसाद पाया।

शाम चार बजे मुकुन्द को हुक्म हुआ कि दादा के घर से **चुपचाप** श्री बर्म्मन को बुला लाओ । वे आ गये । मुझसे कहा, **"इसे चाय पिला और फिर दिल्ली की गाड़ी में बिठा कर आ ।"** मेरी समझ के बाहर था कि चार बजकर पन्द्रह मिनट हो चुके हैं और चार पच्चीस पर गाड़ी छूट जाती है — आज्ञा पालन कैसे संभव होगा जबकि स्टेशन ५ कि०मी० दूर था ? उस पर बर्म्मन साहब चाय पीते बातें भी करते रहे बाबा जी से । तभी श्री कन्हैया लाल जी अपने बहनोई, श्री रामकृष्ण के साथ उनकी कार में आ गये !! स्टेशन पहुँचने के लिये साधन जुटाने की एक लीला तो यूँ पूरी हुई । स्टेशन पहुँचने पर पता चला कि हावड़ा-दिल्ली एक्सप्रेस अब भी खड़ी है प्लेटफार्म पर, यद्यपि सिग्नल भी हो चुका था और चार चालीस समय भी हो गया था !! फर्स्टक्लास का टिकट लेकर प्लेटफार्म पर पहुँचे तो इलाहाबाद से जुड़ने वाले फर्स्टक्लास के डब्बे में बर्थ भी मिल गई !! ठीक समय (३.५५ पर) पहुँची गाड़ी अपने समय से पन्द्रह मिनट अधिक कैसे रुकी रही ? बाबा जी ही जाने उधर श्री मेहरोत्रा और साथी हताश हो लखनऊ वापिस चले गये। (हेमदा)

महाराज

मनुष्य मात्र को तो अपना अस्तित्व बनाये रखने को बाबा जी महाराज का **सम्बल** मिलता ही था, जड़ वस्तु को भी उनका ऐसा सम्बल मिलते रहना उनकी ईश्वरीय अलौकिकता का ही और भी स्पष्टतर प्रतिबिम्ब है ।

कैंचीधाम में शिला-आसन के पास खड़े अपना अस्तित्व खो चुके अतीस के वृक्ष को पुनर्जीवन प्राप्त करा देने की अद्‌भुत गाथा पूर्व में वर्णित की जा चुकी है ।

वर्षों पूर्व (१९६०) में बाबा जी अपने कई परिकरों के साथ चित्रकूट यात्रा पर गये थे । उनमें कई माइयाँ भी सम्मिलित थीं — श्री सिद्धी माँ एवं जीवन्ती माँ समेत । तब वे वहाँ रामघाट में *मिथिली* नाम के मल्लाह की नाव में सवार हो **मन्दाकिनी** के उस पार रामरोशन बाबा के घर मिथिली के साथ गये । रामरोशन बाबा ने तब उन्हें मन्दाकिनी के किनारे ही स्थित **दतिया धर्मशाला** में पहुँचा दिया, और वहाँ महाराज जी को निवास करने हेतु दुमंजिले पर एक ऐसा कमरा दे दिया गया जिसकी फर्श

को *टेक देने* वाली धन्नी-बल्लियाँ पूर्ण रूपेण जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थीं तथा किसी समय भी फर्श को लिये-दिये ध्वस्त हो सकती थीं !!

परन्तु बाबा जी तो *उसी* कमरे में ५ दिनों तक न केवल बने रहे वरन उनके परिकर, विशेष रूप से मातायें भावावेश में उनके सम्मुख एकत्रित हो भजन-कीर्तन भी करती रहीं और भावातिरेक के मध्य उन्मुक्त हो नृत्य भी !! परन्तु फर्श, धन्नी, बल्लियाँ तब भी *अपने स्थान पर बने रहे* !!

और इसी के मध्य बाबा जी महाराज का नित्य का भण्डारा भी चलता रहा जिसमें काफी संख्या में लोगों ने, (रामरोशन बाबा के परिवार एवं मिथिली के नाविक नाते-रिश्तेदारों समेत) प्रसाद पाया । *फर्श अपनी जगह ही बना रहा* ।

परन्तु *जिस दिन* महाराज जी ने उस कमरे को छोड़ चित्रकूट से प्रस्थान कर दिया, *उसी दिन* वह कमरा फर्श, बल्लियाँ धन्नी समेत टूट कर नीचे बिखर गया !! अब तक कौन रोके था उसे ?

वर्ष १९८६ में श्री माँ के साथ (मेरे अपने जीवन में *प्रथम* बार) चित्रकूट यात्रा में माँ ने हमें रामघाट के उस पार ले जाकर बाबा जी महाराज की उक्त लीला का वर्णन करते वह दतिया धर्मशाला भी दिखाई जो तब बिल्कुल ही जर्जर स्थिति में पहुँच चुकी थी ।

महाराज

श्री धाम कैंची के आश्रम क्षेत्र में **गोविन्द कुटी** नाम का दुमंजिला भवन वर्ष १९६३-६४ में ही बन चुका था । मात्र चूने की चिनाई से बने इस भवन में ऊपर के हॉलनुमा कमरे में कैंची में कार्यरत सेवादार रहते थे तथा नीचे के दो तीन खण्डों में जमादार, चौकीदार, (और बाद में एक अनाथ हरिजन महिला-*पनुली*) एवं जानवर रहते थे । ऊपर टीन के चादरों की छत थी तथा ऊपरी मंजिल में प्रवेश हेतु पहाड़ से लगा लकड़ी का एक मोटा-चौड़ा तख्ता बिछा था प्रवेश द्वार तक पुल की भाँति । सेवादार रात को (और दोपहर में भी विश्राम के समय) खूब धमाचौकड़ी मचाते थे हॉल के भीतर ।

वर्ष १९८६ में इस पुरानी जीर्ण-शीर्ण हो चुकी गोविन्द-कुटी के स्थान पर एक पक्के ६ कमरों वाली इमारत *गोविन्द-कुटी* ही के नाम से

निर्मित कराने की योजना बनी जिस हेतु माँ-महाराज के प्रति समर्पित कुछ भक्तों ने भरपूर योगदान दिया। परन्तु जब पुरानी कुटी को हटाने के लिये सम्बल-फावड़ा आदि लेकर कार्य प्रारम्भ हुआ तो कुछ ही प्रयास के बाद *पूरी की पूरी इमारत हरहरा कर बैठ गई* !! जीर्ण हो चुकी धन्नियाँ-बल्लियाँ-छत-दीवारें *स्वतः बिखर गईं* !! (सोचा तो यही गया था कि १०-१५ दिन तो लग ही जायेंगे इस कुटी को गिराने में।) भवन के इस तरह सहसा बैठ जाने पर भी किसी को भी चोट न आने दी बाबा जी ने। इतने वर्षों से जीर्ण-शीर्ण हो चुकी उन बल्लियों-धन्नियों-दीवारों को बाबा जी ने *अपने स्टाफ के आवास की अवधि* में रोके रखा उनकी रक्षा करते !!

महाराज

अपने **अलौकिक** टेलीफोन से महाराज जी टेलीफोन वालों के पास अपना सन्देश, अपनी आज्ञा आदि भेज ही देते थे — स्वयँ *बिना टेलीफोन* के प्रयोग के भी, अथवा टेलीफोन सुविधा होने पर उस पर *बिना सरकारी टेलीफोन बिल के*। श्री जमुना दत्त पंत (इलाहाबाद) तथा दादा के घर से तथा अन्य स्थानों से भी, जहाँ टेलीफोन सुविधा नहीं थी, लोगों को बाबा जी के टेलीफोन मिलते रहते थे। ऐसा एक बार तब भी हुआ जब लखनऊ में केहर सिंह जी और उनकी पत्नी पहले बड़ी देर तक अपनी भैंस के सामने इस आशा से बैठे रहे कि ग्वाले के प्रयासों से शायद भैंस दूध दे दे। फिर दोनों दुःखी हो विस्तरों पर जा लेटे बिना नींद के कि अपनी ईमानदारी की कमाई से खरीदी भैंस सूख गई है खरीद के इतने शीघ्र। तभी (दादा के घर विराजमान) बाबा जी का फोन आ गया —

"केहर सिंह, क्या कर रहा है ?"

"कुछ नहीं, महाराज।"

"नहीं, तू और तेरी पत्नी परेशान हो कि भैंस दूध नहीं दे रही है। अब, सो जाओ। कल सुबह दे देगी भैंस दूध।" और टेलीफोन बन्द !!

दूसरी सुबह से भैंस ने पुनः दूध देना प्रारम्भ कर दिया !!

महाराज

परन्तु साथ में पोस्ट के द्वारा भी बाबा जी को संदेश प्राप्त करने में अथवा *भेजने* में कोई भी बाधा आड़े न आ पाती थी। लगता था वे

स्वयँ ही पत्रवाहक भी बन जाते थे । इस तथ्य के भी कई ज्वलंत दृष्टांत हैं जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है ।

कैंचीधाम में १५ जून के भण्डारे में मालपुवों को सेंकने-तलने के लिए एक विशेष प्रकार की कढ़ाई, जिसे **तई** कहा जाता है, प्रयोग होती है। यह तई विशेषकर अलीगढ़ में अच्छी बनती है । एक बार महाराज जी की इच्छा हुई कि अबकी १५ जून के लिए अलीगढ़ वाली एक तई और मँगाई जाये। अस्तु, उन्होंने श्री माँ से अलीगढ़ के अपने अनन्य भक्त, श्री होतृ दत्त शर्मा को पत्र भिजवाया कि तई लेकर शीघ्र कैंची पहुँचे । (मालपुए १३ जून से ही बनने प्रारम्भ हो जाते हैं और १५ जून की शाम तक भी रात-दिन बनते रहते हैं ।) पत्र में पता लिखा था — **'श्री पवन मेटल इण्डस्ट्रीज, अचल रोड, अलीगढ़ ।'**

परन्तु अलीगढ़ में तो तब कई दिनों से दंगों के कारण कर्फ्यू लगा हुआ था । सभी बाजार-हाट, कालेज-स्कूल, दफ्तर, डाकखाने आदि बन्द थे। उक्त नामित इण्डस्ट्रीज में भी ताला पड़ा था और इस परिस्थिति में शर्मा जी भी अपने गाँव अहलादपुर चले गये थे । तब ? पत्र कैसे पहुँचता ?

किन्तु *यह* तो बाबा जी का सन्देश था — शर्मा जी तक पहुँच ही गया, अहलादपुर ही !! परन्तु कैसे ? इसका उत्तर तो बाबा जी ही दे सकते हैं । हमें तो इतना ही कहना है कि *न तो* शर्मा जी अलीगढ़ के कोई विख्यात, ख्याति-प्राप्त व्यापारी अथवा नेता, या राजकीय अफसर अथवा कोई करोड़पति उद्योगपति ही थे/न हैं कि डाकवाले उनके पत्रों की विशेष परवाह करते, और न डाक कर्मचारी ही इतने कर्म-निष्ठ थे कि शर्मा जी की साधारण-सी डाक उतने दिनों से पड़ी डाक थैलियों में से ढूँढकर उनके नाम का *केवल* यही पत्र निकालकर अलीगढ़ से चलकर अहलादपुर पहुँच उन्हें दे देते । वह भी उस कर्फ्यू के मध्य ।

और शर्मा जी भी तई लेकर यथासमय धाम पहुँच ही गये ।

महाराज

श्री दयानारायण मेहरोत्रा कार्यवश बनारस जा रहे थे तो उनके बड़े भाई सूरज बाबू ने उनके साथ अपने लड़के गोपाल को भी भेज दिया

कि यह भी बनारस घूम लेगा । साथ में लल्ला ड्राइवर भी सेवा में गया । वहाँ से सूरज बाबू के मित्र महाराज कुमार विजयानगरम के गेस्ट हाउस में ठहरे जहाँ सभी सांसारिक ठाठ उपलब्ध थे । परन्तु उनके वहाँ पहुँचने के तीसरे दिन ही बनारस शहर दंगे की चपेट में आ गया । सारे शहर में कर्फ्यू लग गया। सब कुछ बन्द हो गया । दयानारायण भी अटके रह गये गेस्ट हाउस में । और इस बीच न केवल गोपाल को बल्कि लल्ला को भी **वाइरल फीवर** ने धर दबोचा । दोनों को भीषण ज्वर हो गया । सन्निपात की स्थिति हो उठी । पर दंगों के कारण न तो डाक्टर उपलब्ध थे न दवायें ही और न टेलीफोन हो पा रहा था । डाक व्यवस्था तो स्वतः ही छिन्न-भिन्न थी। असहाय दया बाबू अपने माथे पर मँडराते कलंक से आतंकित हो उठे। *क्या करूँ, कैसे करूँ* में सारा दिन सारी रात बीत गई।

परन्तु अचानक दूसरे दिन दस्तक पड़ने पर उन्होंने जो दरवाजा खोला तो एक पोस्टमैन को हाथ में एक पार्सल लिये खड़ा पाया । दया बाबू सोचते रह गये कि ऐसी परिस्थिति में इन दंगों के बीच यह पोस्टमैन और यह पार्सल कहाँ से आ गये ? पार्सल लिया तो उसमें भेजने वाले का नाम था — **'बाबा नीब करौरी !!'** बड़ी उत्सुकता से उन्होंने जो पार्सल खोला तो उसमें निकला *केवल* एक **फूल** — *बिना* कोई संदेश के !! पर इसी को बाबा जी का संदेश समझ दया बाबू ने फूल की कुछ पंखुड़ियाँ लल्ला के सिर पर रख दीं और बाकी फूल गोपाल के तपते सीने पर । हो गया उपचार । शीघ्र ही दोनों का ज्वर लापता !!

दया बाबू सोचते रह गये कि बाबा जी महाराज को कैसे पता चला मेरी दशा का ? इस कर्फ्यू के बीच कौन लाया यह पार्सल ? दो दिन के ही भीतर यह सब कैसे संभव हो गया ? (केहर सिंह)

(हमारे पास भी यही प्रश्न हैं, पर सबका उत्तर एक ही है — **"बाबाजी महाराज ।"** – लेखक)

महाराज

मैं बैंक की ओर से जर्मनी स्पेशल ट्रेनिंग के लिए गया हुआ था । तीन चार हफ्ते बीत चुके थे । पत्नी के पत्रों से मालूम हुवा कि दयानिधान बाबा महाराज हर पखवारे मेरे कानपुर के मकान में पहुँच बच्चों को दर्शन दे आते थे । एक दिन सुबह ही आ गये और मेरी पत्नी से बोले, **"गण्डा**

को चिट्ठी लिख दे कि वह जो कार खरीदने वाला है न खरीदे । वरना बड़ी दुर्घटना हो जायेगी ।" कहकर चले भी गये, पर तीन घंटे बाद पुनः आ गये और पत्नी से पूछा, — **"लिख दी तूने चिट्ठी ?"** पत्नी के **"अभी नहीं"** कहने पर फौरन बोल उठे, **"अभी लिख मेरे सामने ।"** और फिर स्वयँ चिट्ठी वाला लिफाफा लेकर चले गये ।

उधर मैंने और मेरे साथी ने एक पुरानी कार का सौदा कर रखा था कि दोनों उसमें खूब घूमेंगे अवकाश के समय । अगली सोमवार को सौदा पक्का होना था *परन्तु न मालूम किस प्रेरणा से* कि शनिवार (दफ्तर बन्दी का दिन) होने पर भी मैं अपरान्ह में अपने इन्स्टीट्यूट चला गया काम करने । तभी दूसरे कमरे से दफ्तर का एक आदमी, जो मेरी तरह ही दफ्तर आवश्यक कार्य से आ गया था, मेरे नाम का एक लिफाफा लेकर चला आया कि, **"आज शनिवार के कारण *डाक वितरण बन्द के बावजूद पता नहीं कौन केवल यही एक लिफाफा मेरी मेज पर छोड़ गया* !!"** क्या बाबा जी स्वयँ ही कृपा कर गये ? मुझे तो यही प्रतीत हुआ सभी बिन्दुओं पर विश्लेषण करने पर । जब मैंने आश्चर्य के साथ लिफाफा खोला, पत्र पढ़ा तो उसके अन्दर लिखी बात पर भी आश्चर्य करता रह गया कि जर्मनी में भी मेरे कार्य कलापों पर बाबा जी अपनी दृष्टि गड़ायें हैं !! मैंने तत्काल कार *न खरीदने* का निर्णय ले लिया । मेरे निर्णय का कारण जानने पर मेरे साथी ने भी कार न खरीदने का फैसला कर लिया। मनन करने पर मुझे यही स्पष्ट हुआ कि *चरणाश्रित कहीं भी हो*, बाबा जी की आँखें रक्षात्मक भाव लिये *सदा* उसका पीछा करती रहती हैं । (एस० डी० गण्डा – नई दिल्ली)

महाराज

भावपूर्ण अर्पण

सर्वत्र सदा घर की जानो,------- xx ------ रूखो सूखो ही नित खानो ।

सबरी के बेर, सुदामा के (पत्नी द्वारा मधुकरी कर के अर्पित) तंदुल तथा विदुर के साग को भगवान ने कितना अधिक महत्व दिया नाना प्रकार के फल-फूलों एवं अपने तथा दुर्योधन के महलों के छप्पन भोगों की *तुलना में — केवल* ***भावपूर्ण अर्पण*** के ही कारण । बाबा जी महाराज की

भी न मालूम कितनी ऐसी लीलाएं हैं जहाँ उन्होंने ऐसे भावपूर्ण अर्पण को राजसी भोगों की अपेक्षा *अधिक प्रेम* से ग्रहण किया । **'भगवान *भाव* खाता है'** — आप पढ़ ही चुके हैं ।

सिपाहीधारा (नैनीताल) के श्री रमेश चन्द्र पाण्डे जी अपने ८-६ प्राणियों का परिवार लिये (तब) कुछ गर्दिश के चक्कर में पड़े थे । परन्तु फिर भी घर में जो कुछ भी उपलब्ध होता, *उसी* को लेकर बड़ी बेटी शान्ता और उसकी माँ पहुँच जाते बजरंगगढ़ बाबा जी के पास, और बाबा जी भी **"क्या लाई है ?"** पूछकर ग्रहण कर लेते उसे उसी वक्त बड़े प्रेम से —*समृद्ध* भक्तों द्वारा लाये गये नाना प्रकार के भोग पाते हुए भी । शान्ता जी ने इस संदर्भ में अपने अनुभव सुनाये —

एक दिन मैं इसी प्रकार जौ-चने-गेहूँ के मिश्रित आटे की रोटियाँ तथा लाई (राई) की सब्जी लेकर जब महाराज जी के पास पहुँची तो देखा कि नैनीताल के एक सम्पन्न भक्त महोदय (सपरिवार) एक बड़े से टिफनदान में बाबा जी के लिये भोग लेकर पहुँच गये । उनकी बहू ने मेरे सामने चाँदी की थाली एवं कटोरियों में वह भोग परोसकर महाराज जी के सामने रखना प्रारम्भ कर दिया। यह सब देखकर मैंने अत्यन्त संकोच से अपनी रोटी-सब्जी का कटोरदान चुपचाप छिपा लिया, पर अन्तर्यामी ने मुझसे पूछ ही लिया रोज की तरह, **"क्या लाई है ?"** मैंने कह दिया, "कुछ नहीं महाराज ।" तब बाबा जी ने डाँटकर कहा,**"देती क्यों नहीं जो लाई है ?"** सहमकर मैंने वह कटोरदान बाबा जी की तरफ झिझकते हुए बढ़ा दिया, पर मन ही मन रुदन का उच्छ्वास उमड़ पड़ा मेरे अन्तर में उन महोदय के उस भोग के समक्ष अपना रोटी-सब्जी का कटोरदान देखकर। कटोरदान खुला तो वे महोदय कुछ रोषपूर्ण शब्दों में बोल उठे, **"हुँ ! ये खायेंगे महाराज ?"** और फिर अपनी बहू की तरफ देख बोले, "थाली क्यों नहीं देती महाराज को ?" और बहू ने थाल आगे बढ़ा दिया। अन्तर में वैसे ही भरी थी मैं । उन सज्जन की बात सुनकर आँखे बरस पड़ीं मेरी और मैंने सिर नीचे कर छिपा लिया उन्हें । पर अन्तर्यामी तो सब जान ही गये मेरी दशा और साथ ही उन महोदय के *अहंकार* को भी (यद्यपि मुझे मालूम था कि उनका महाराज जी के प्रति प्रेम मेरे प्रेम से कई गुना अधिक था और कि वे जो कुछ कर रहे थे *प्रेमवश* ही ।) महाराज जी ने उनका थाल कुछ दूर हटा मेरी रोटी-सब्जी पाना प्रारम्भ

कर दिया !! यह देखकर मैं और भी टूट-बिफर गई । तभी बाबा जी ने उन महोदय की भावना में लगी चोट पर भी मरहम लगा दिया — उनके थाल से थोड़ा थोड़ा भोग ग्रहण कर ।

पर जब सबसे मधुर व्यंजन — मेवों से भरी तालमखाने की खीर — का नम्बर आया तो महाराज जी ने उसमें से थोड़ा पाकर कटोरी मेरी तरफ बढ़ा दी !! **"ले, इसे तू खा ले ।"** मेरे काटो तो खून नहीं । मेरे संकोच को देखते हुए बाबा जी डाँटकर बोले, **"खाती क्यों नहीं ?"** एक तरफ बाबा जी की डाँट और दूसरी ओर इस घटना से उन भक्त सज्जन के मुँह पर उतार-चढ़ाव — इसी माहौल में मैंने रोते हुए वह खीर एक साँस में गटक ली — उसमें बिना किसी प्रकार का स्वाद पाये !!

उसके बाद परम आशीर्वाद मिला, **"जाओ अब तुम्हारे घर में किसी चीज की कमी नहीं रहेगी !!"** (शान्ता पाण्डे)

महाराज

उक्त आशीर्वाद की सार्थकता के लिये महाराज जी ने मेरे लिये व्यवस्था कर दी कि **"जब हम नहीं रहें यहाँ तो रघुनाथ जी को (गढ़ में स्थापित रघुनाथ मंदिर में) नित्य भोग लगाना रोटी-सब्जी का ।"** एक माह तक यह कार्यक्रम चला जिसके मध्य महाराज जी की लीला ने एक विचित्र मोड़ ले लिया पर इसकी *जो अनुभूति* मुझे और मेरी बहिन भारती को होती रही, उसे हम अन्तिम दिन ही *पूरी तरह* ग्रहण कर पाये । होता यह था कि जब हम कटोरदान में रोटी सब्जी दिन के बारह बजे के भोग के पूर्व रघुनाथ मंदिर को ले जाती थीं तो कटोरदान का वजन उन चन्द रोटियों और सब्जी के वजन के अनुसार *हल्का* ही रहता । परन्तु लौटती बेर कटोरदान अप्रत्याशित रूप से *भारी* हो उठता । हम बहनों को तो उसे बारी बारी से ढोना पड़ता था। हम यही समझते रहे कि पहिले सिपाहीधारा (हमारे घर) से सड़क तक की खड़ी चढ़ाई और फिर एक मील बाद गढ़ की चढ़ाई एवं लौटने की थकान तथा भूख के कारण कटोरदान भारी लगता है । (और *तब* इस कटोरदान की रोटी-सब्जी भी तो पूरे परिवार के लिये यथेष्ट हो जाती थी !!)

परन्तु बाबा जी महाराज की इस लीला के अन्तिम चरण ने हमारी आँखें खोल दीं । तीसवें दिन जाते जाते हमें देर हो चुकी थी पर मार्ग में ही कटोरदान *अन्य दिनों की अपेक्षा और भी अधिक भारी* हो गया !! और जब हम पहुँचे तो भोग-आरती के बाद रघुनाथ मंदिर बन्द हो चुका था । हमें बहुत दुःख हो गया । तब मौनी हरदा बाबा ने स्लेट में लिखकर बताया कि, "भोग लग चुका है । अब पूर्ण हो गया है। कल से मत लाना ।" पहले तो हमारे दिमाग में केवल यही आया कि भोग लग चुका है, हमें ही देर हो गई । पर अपनी लीला महाप्रभु *अनबूझे* कैसे छोड़ सकते थे ? तभी हमारे मस्तिष्क में ***'कटोरदान का लौटती बार नित्य भारी हो जाना और आज आते वक्त ही आधे मार्ग से ही उसका और भी वजनी हो जाने'*** का रहस्य कौंध गया !! आज तो रघुनाथ जी ने (अर्थात महाराज जी ने, क्योंकि हम तो भाव में महाराज जी के लिये ही भोग ले जाते थे) मार्ग ही में भोग स्वीकार कर लिया था !! (तभी तो कटोरदान *पूर्व में ही भारी* हो गया था !!) लीला का *सार* मन में समाते ही हमारे आँसू फूट पड़े दयानिधान की इस कृपा पर ।

कहना आवश्यक नहीं कि *तभी से* हमारे घर से सब प्रकार का **अभाव** दूर होता चला गया ।(शान्ता पाण्डे)

महाराज

इन्हीं शान्ता जी की माँ जब भूमियाधार बाबा जी महाराज के दर्शनों को आती थीं तो कुछ न कुछ भोग प्रसाद अवश्य लाती थीं, और यह भोग प्रसाद होता था घर में उस दिन तैयार दाल, चावल, सब्जी, रोटी या कोई *कुमाऊँनी व्यंजन* । उसी को ये एक ही कटोरदान-नुमा बर्तन में भरकर ले आती थीं । कभी अर्थाभाव अथवा कभी सवारी गाड़ी के न मिल पाने के कारण पैदल ही ८-१० किमी० चलकर भी आ जाती थीं ।

एक दिन ऐसे ही कारणों से वे पैदल आ रही थीं भूमियाधार को कि व्रत के कारण थकी माँदी वे मार्ग में एक शिला पर बैठ गईं । और वहीं उनके मन में विचार उठने लगे कि, "क्या ले जा रही हूँ मैं महाराज जी के लिये ? कितना-कितना, कैसा-कैसा दिव्य भोग-प्रसाद लाती हैं अन्य माइयाँ । सबके सामने कैसे दूँगी अपना ये भोग मैं महाराज जी को ?" और फिर कुछ देर बाद चल दीं भूमियाधार को । दर्शनों के बाद जब कुछ

एकान्त-सा मिला तो बाबा जी को अर्पण करने के लिये जो कटोरदान खोला तो देखा कि वहाँ *कुछ भी न था* !! बहुत परेशान हो गईं मन में कि आखिर प्रसाद गया कहाँ ? न तो कटोरदान कहीं खुला और न कहीं उलटा । तभी महाराज जी मुस्कुरा कर बोल उठे, **"दुःखी क्यों होती है ? हमने तेरा प्रसाद *वहीं पा लिया* था *जहाँ तू शिला के ऊपर बैठी थी* !!"**

गरीब नेवाज बाबा जी की दीनवत्सलता !!

महाराज

वृन्दावन आश्रम में साँझ का अंधेरा होने लगा था । कुछ ठंड भी बढ़ जाती थी मार्च माह की सन्ध्या के समय। परन्तु तब भी बाबा जी महाराज, शरीर क्लान्त होने पर भी, बाहर खुले में तखत पर बैठे ही रहे । उधर इशारे से मोहिनी माई बाबा जी को कुटी में पहुँच जाने को कह रही थीं (कि ठंड हो चली है) पर बाबा जी बैठे ही रहे। मेरा पहिला अनुभव था यह उस शनिवार को आगरा से आने पर । सोचता रहा — कौन आ रहा होगा ऐसा **खास** कि बाबाजी ठंड में भी बाहर बैठे हैं । तभी एक छोटा लड़का आ गया हाथ में एक कटोरदान-नुमा डिब्बा एक कपड़े में बाँधकर लिये । आकर उसने प्रणाम किया और वह बँधा डिब्बा आगे बढ़ा दिया। बाबा जी ने उसे *स्वयँ ही अपने हाथों* से खोला। मैंने देखा उसमें दो मिस्सी रोटियाँ हैं और कुछ हरी सब्जी । बाबा जी ने उन्हें वहीं बैठे बैठे पा लिया सबके सामने !! और फिर उसी डिब्बे में सेवानन्द जी से प्रसाद मँगवाकर भर दिया तथा अपने ही हाथों से बन्दकर उसी कपड़े से बाँध भी दिया। तब उसे लड़के के हाथ में देते हुए कहा, **"अब जा बेटे, ठीक से जाना।"** और मेरे अनुमान से बाहर तखत पर तब तक बैठे ही रहे जब तक लड़का दूर गाँव में अपने घर न पहुँच गया होगा। यह लीला मैंने उसके बाद कई बार देखी जब जब मैं शनिवार-इतवार को अथवा अवकाश की अवधि में बाबा जी के श्री चरणों में वृन्दावन आश्रम में होता था। कभी कभी मुझे भी वह प्रसाद मिल जाता था, और कभी हाथ फैलाने पर भी *मना* हो जाती थी।

कितने प्रेम-भाव से बनाकर भेजती होगी उस **दानी** नाम के लड़के की माँ वे रोटियाँ बाबा जी के लिये ? *तभी तो* !!

(और *अब* जवान **दानी** मिस्सी रोटी श्री माँ की सेवा में भी अक्सर ले आता है उनके वृन्दावन प्रवास के मध्य ।)

महाराज

वर्ष १९४९ की घटना है । बाबा जी महाराज नैनीताल से काशीपुर पहुँच गये साथ में हम नौ भक्तों को लेकर । वहाँ श्री किशन चौबे के घर अपने भक्तों के साथ भरपूर प्रसाद पाया । और दिन भर अन्य भक्तों के द्वारा लाया गया भोग प्रसाद एवं दूध भी पाते रहे । इस तरह कई थाल भोग प्रसाद एवं कई सेर दूध आप दिन भर में प्राप्त कर चुके थे । परन्तु सन्ध्या पूर्व ही बाबा जी ने कुछ ऐसा व्यक्त किया कि उन्हें *पुनः* भूख लग आई है !! मुझको बुलाकर कहा कि, **"वहाँ उस गली में एक बुढ़िया बैठी है। मेरा इन्तजार कर रही है। *उसने मेरे लिये रोटी बनाई है, ले आ* ।"** मैं पता लगाता उस तंग गली में घुसा तो देखा एक बुढ़िया दरवाजे पर ही बैठी है । अन्दाज लगाकर कि यही वह बुढ़िया होगी, मैंने उससे बाबा जी की बात कही । बुढ़िया अत्यन्त प्रसन्न हो गई और भीतर से एक **मोटी-सी रोटी और हरी सब्जी** ले आई । तभी बाबा जी भी स्वयँ आ पहुँचे। फिर क्या था — बुढ़िया तो *भाव* की चरमसीमा में जा पहुँची । बाबा जी ने भी हँसते हँसते, बुढ़िया की तरफ देख देख बड़े प्रेम से रोटी हाथ में लेकर खा ली !! कहाँ वे दिन भर के तरह तरह के भोग-प्रसाद और कहाँ शबरी की सूखी-मोटी रोटी !! **भाव वस्य भगवान**। (पूरनदा)

महाराज

मुझे जब मालूम हुआ कि पूज्य बाबा जी महाराज बजरंगगढ़ (नैनीताल) में पधारे हैं तो मैं भी उनके दर्शनों को चल पड़ी । साथ में अपनी सहेली, चम्पा को भी ले लिया । मैंने सुन रखा था कि जब किसी संत के पास या मंदिर-दर्शन को जायें तो खाली हाथ नहीं जाना चाहिए— कुछ न कुछ प्रसाद अवश्य ले जाना चाहिए । पर *तब* मेरे पास केवल एक दुअन्नी थी । मैंने उसी का एक संतरा ले लिया पर मार्ग में ही मुझे संकोच होने लगा कि महाराज जी को तो मनों की मात्रा में मिठाइयाँ, ढेरों फल अर्पण होते हैं, और मेरे पास तो केवल एक संतरा है — कैसे दूँगी उन्हें यह संतरा ? तब मैंने चम्पा से कहा, "मुझे इस संतरे को महाराज जी को

देने में शर्म आ रही है । ले, तू ही दे देना ।" पर वह बोली, "क्या मुझे नहीं आयेगी शरम (शर्म) एक ही संतरा देने में ?" तब यही तय हुआ कि "महाराज जी तो स्वयँ हनुमान जी ही हैं अतएव यह संतरा हनुमान जी को ही अर्पण कर देंगे ।"

हमने यही किया — चुपचाप संतरे को हनुमान जी के मंदिर की रेलिंग पर रख दिया और महाराज जी का स्मरण कर आँखें बन्द कर अर्पण कर दिया । तभी मुझे वहाँ दूसरी सहेली, मुन्नी (रजनी जोशी) दिखाई दी । उससे हमने पूछा, "महाराज जी कहाँ हैं ?" तब उसने बताया कि, "महाराज जी तो वहाँ (कुटी की तरफ इशारा कर) बैठे हैं । मुझसे कहा— जा हनुमान मंदिर में *एक* संतरा रखा है, उसे उठा ला । मैं पहले आई तो संतरा नहीं था *तब* पर *अब* मुझे फिर से भेजा संतरा लाने को तो देखती हूँ कि सचमुच रखा है संतरा ।"

मैं तो यह सब सुनकर स्तब्ध भी रह गई और आनन्द में भी डूब गई कि श्रद्धा-प्रेम की इस छोटी-सी भेंट को भी महाराज जी ने किस उदारता से स्वीकार कर लिया । और कि महाराज जी ने वहीं बैठे हमारी सारी बातें कैसे जान लीं कि मुन्नी को प्रथम बार *तब* भेजा *जब* हम मंदिर नहीं पहुँचे थे (पर हनुमान जी को भाव में संतरा अर्पण कर चुके थे) और दूसरी बार फिर भेजा *जब सचमुच अर्पण* हो चुका था !! साथ ही हमारी इस धारणा की कि — बाबा जी स्वयँ ही हनुमान जी हैं — कैसे इस लीला द्वारा पुष्टि कर दी !! (पुष्पा साह)

महाराज

भक्तों के भावों का सम्मान

नैनीताल में पूरनदा को बड़ी इच्छा थी कि बाबा जी महाराज उनके घर (सिपाहीधारा) भी पधारें और प्रसाद ग्रहण करें परन्तु महाराज जी उनकी यह बात सदा टाल देते (यद्यपि बाद में हल्द्वानी में वे यदा-कदा पूरनदा के घर प्रसाद ग्रहण करने आ पहुँचते थे ।) कारण ? पूरनदा की (तबकी) माली हालत । बाबा जी को तो मालूम था कि वे जहाँ भी जाते हैं उनके साथ १०-१२ अथवा अधिक संख्या में भक्तगण भी पहुँच जाते हैं । कहाँ से करेगी पूरन की बहू सबके लिए प्रबन्ध ? पूरन को तो इन सब

बातों का होश ही नहीं रहता कभी — यही भाव रहता बाबा जी का। परन्तु भक्त की इस भावपूर्ण इच्छा का भी तो महाराज जी ने *उसी भाव* से सम्मान करना था। अस्तु, एक दिन वे पूरनदा को लेकर अकेले ही नैनीताल में पाषाण देवी के मंदिर पहुँच गये तथा झील के किनारे एक शिला पर बैठ गये। कुछ क्षण बाद बोले, **"पूरन हमें भूख लगी है। घर से *खिचड़ी* बनवाकर ले आ।"** पूरनदा तत्काल सिपाहीधारा (१¹/४ मी०) को रवाना हो गये। और फिर डेढ़ घंटे बाद घर से खिचड़ी बनवाकर लौटे। *ये* डेढ़ घंटे महाप्रभु ने *अकेले* झील के किनारे केवल भक्त के भावों के आदर-सम्मान में शिला पर बैठकर बिता दिये !! और जब खिचड़ी आ गई तो उसे भी सारी की सारी प्रेम से प्राप्त कर ली।

महाराज

और लखनऊ में लच्छीदा (लक्ष्मी दत्त त्रिपाठी) के मन में भी उत्कट अभिलाषा बनी रही कि महाराज जी उसके घर भी पधार कर प्रसाद पायें। पर वे यही देखते थे कि बाबा जी तो *केवल* बड़े बड़े लोगों के, या कार वालों के घर ही जाते हैं — मेरे जैसे गरीब के घर क्यों आयेंगे ? घट घट की जानने वाले बाबा जी लच्छीदा से बहुत प्रेम मानते थे, परन्तु उसके घर न जाने का कोई और ही कारण था। भक्त के भाव के सम्मान में (तथा उसके अन्तर में उठी *गलत* अवधारणा मिटाने को भी) एक दिन महाराज जी उसके घर भी पहुँच गये ६-७ भक्तों के साथ। लच्छीदा मगन हो गये और महाराज जी को भोजन प्रसाद से तथा अन्य भक्तों को चाय, मिठाई, फल से तृप्त किया।

जब सब कुछ हो गया आनन्द के साथ तो बाबाजी ने लच्छीदा को अलग बुलाकर पूछा — **"तेरा कितना खर्चा हुआ ? *अट्ठाइस रुपये पचास पैसे* ?"** और जब एक एक वस्तु मूल्य सहित गिनवाई गई तो पूरा हिसाब भी पूरे अट्ठाइस रुपये पचास पैसे का निकला !! अब बाबा जी ने फिर पूछा — **"तेरे घर चाय में कितना खर्च होता है ?"** हिसाब किया गया तो *इस हेतु भी* अट्ठाइस रुपये पचास पैसे बने !! (दूध, चाय, चीनी।) तब बाबा जी बोले — **"अब बच्चों को चाय कहाँ से पिलायेगा ? ताई सों हम तेरे घर नहीं आते थे !!"**

महाराज

इसी के विपरीत केवल औपचारिक रूप में लाये गये, *अहंकार* एवं *दोषपूर्ण* अथवा किसी अवांछनीय कामना लेकर अर्पित भोग प्रसाद (फल, मिठाई अथवा अन्य भोग-सामग्री) को महाराज जी तत्काल एकत्र जन समुदाय में वितरण कर देते या करवा देते, *स्वयँ* ***स्वीकार नहीं करते थे ।*** घट घट के भावों को जानने वाले बाबा जी ने ऐसे अर्पण को लेकर कई **सीखयुक्त** लीलायें भी कर डालीं ।

एक महिला (श्रीमती कुशवाहा) बाबा जी द्वारा प्रसाद वितरण के समय महाराज जी के तखत के बिल्कुल पास बैठा करती थीं इस भाव से कि बँटना प्रारम्भ होते ही उन्हें अधिक मात्रा में प्रसाद मिलेगा । अपने ही मुँह से भी उन्होंने अपना यह भाव मुझसे स्वयँ भी व्यक्त कर दिया था ।

एक दिन वे एक दोने में चार *बड़े* गुलाब जामुन लाईं और मुझसे निहोरा किया कि, "इन्हें तुम *महाराज जी को* ही जरूर खिला देना — तुम्हारे हाथों से वे अवश्य स्वीकार कर लेंगे ।" उसके इस भाव को महाराज जी पूर्व में ही समझ गये कि **"मेरे भक्तों को यह *मान्यता* नहीं देती।"** (बाबा जी तो अपने से अधिक अपने भक्तों की सेवा में अधिक प्रसन्न होते रहे हैं *और आज भी होते हैं*।) उसकी इच्छा के मुताबिक मैंने वह गुलाब जामुनों का दोना महाराज जी के हाथ में रख दिया कि श्रीमती कुशवाहा ने अर्पण किया है । महाराज जी ने वह दोना तत्काल सामने बैठे एक भक्त को दे दिया । महिला देखकर बहुत दुःखी हो गई ।

परन्तु लीला यहीं समाप्त नहीं हुई । बाबा जी ने उस महिला के अबोध बच्चे को पास बुलाया और उससे पूछा, **"बेटा, गुलाब जामुन और हैं ?"** सरल बुद्धि बालक ने हामी भर दी कि कमरे में और भी हैं । (तब वे कृष्ण-बलराम कुटी के नम्बर एक कमरे में रहती थीं ।) महाराज जी ने वे गुलाब जामुन भी मँगवाकर वितरित कर दिये। और फिर बालक से पुनः पूछा, **"और क्या क्या है तुम्हारे कमरे में ?"** लड़के ने बता दिया एक एक कर — नमकीन, समोसे, मिठाई, फल आदि। और बाबा जी ने भी एक एक कर सब चीजें मँगवा कर बँटवा दीं !! महिला देखती रह गई ।

ऐसा कर यही समझा दिया महाराज जी ने कि स्वयँ तो अन्य का अर्पित प्रसाद बटोरती हो और अपना प्रसाद *मेरे भक्तों को देने में* कृपणता करती हो । (ऊषा बहादुर – दिल्ली)

(प्रसंगवश — एक दिन दादा से मुझे बहुत-सा प्रसाद दिलवाने पर जब मैंने संकोच व्यक्त किया तो महाराज जी ने मुझे भी प्रताड़ना दी थी कि — **"तू क्यों समझता है कि यह प्रसाद मैंने *तेरे लिये* या *तेरे बच्चों* के लिये दिया है ? प्रसाद है यह, सबको बाँटो, जो भी मिले तुम्हें।"** और एक बार जलेबी प्रसाद बाँटते समय *कुछ भाग* अपने लड़कों के लिये भी बचा लेने पर भी बहुत फटकारा था कि *सबको ही अपना लड़का क्यों नहीं समझता* ?)

महाराज

एक बार वर्ष १९६० में नैनीताल में बिजनौर शुगर मिल्स के मालिक, सेठ कुन्दन लाल ने (शायद सबकी देखा देखी) महाराज जी को अपनी कोठी में आकर *प्रसाद ग्रहण करने का आग्रह किया* । बाबा जी *बेमन* से राजी हो गये । सेठ जी ने बाबा जी से पूछा, "कब आयेंगे ?" बाबा जी ने कह दिया, **"जब प्रभु की इच्छा होगी ।"** सेठ जी बोले, "कल आइये।" बाबा जी इसमें भी राजी हो गये ।

सेठ जी *इतने में ही* सन्तुष्ट हो जाते तो बात बन जाती पर तुरन्त पूछ बैठे, "क्या बनवाऊँ ?" बाबा जी ने कहा, **"मिस्सी रोटी और दाल।"** पर शायद सेठ जी को सेठ होने के नाते दाल और मिस्सी रोटी में अपनी प्रभुता कुछ *छोटी* होती दिखाई दी, सो बोल पड़े, **"दाल-रोटी नहीं, मालपुवा-खीर ।"**

गर्वप्रहारी को यह रुचिकर न लगा । सो बोले, **"ठीक है, मालपुवा-खीर ही बनाना । *कुत्तों का पेट भरेगा* ।"** और फिर रूखे ढंग से सेठ को विदा कर दिया । सेठ जी *अपने मद* में महाराज जी के *कथन* और उनके *व्यवहार* को न समझ पाये ।

और जब दूसरे दिन सेठ जी ने *बड़ी* मात्रा में मालपुवा-खीर बनवाकर बाबा जी एवं भक्तों को लिवाने अपनी कार भेजी तो वह अचानक भीषण वर्षा के कारण कहीं बीच में रुक गई, और उधर बाबा जी भी कहीं अन्यत्र चले गये । इस बीच बाबा जी के इन्तजार में किसी को भी ध्यान नहीं रहा कि भण्डारगृह के पीछे के दरवाजे से दो कुत्तों ने घुसकर मालपुवों और खीर का भोग लगा लिया है !! सारा सामान दूषित हो गया। सेठ जी ताकते रह गये इस लीला को । (पर क्या उनकी समझ में आया

होगा इस लीला का *सार* कि *केवल* अहंकार-हीन भावपूर्ण अर्पण ही महाप्रभु को स्वीकार्य है ?)

महाराज

कानपुर के एक बहुत बड़े उद्योगपति की माता जी ने महाराज जी से कई बार आग्रह किया था कि, **"हमारे घर प्रसाद पायें ।"** महाराज जी उनका अनुरोध टालते रहते थे परन्तु एक दिन उन्होंने हामी भर दी इसके लिये और कह दिया, **"गाड़ी मत भेजना, हम अपने आप आ जायेंगे ।"** दूसरे दिन वे अकेले ही ड्राइवर बृजलाल के साथ उन माता जी की कोठी पर पहुँच गये ।

मारवाड़ी उद्योगपति के घर चाँदी-सोने के पात्रों में तरह तरह के षट-रस व्यंजन युक्त भोजन को देखकर बाबा जी का विरागी मन वैसे ही विचलित हो गया था, और शायद, गृहस्वामिनी के मन में भी ऐसे पात्रों में विविध प्रकार के व्यंजन अर्पण करते वक्त *कुछ* **दूसरा** भाव आ गया हो, (अहंकार का ।) कुछ ही क्षणों के भीतर बाबा जी ने एक पात्र के व्यंजन को दूसरे पात्रों में मिलाना प्रारम्भ कर दिया। गृहस्वामिनी कहती रह गई, "अरे महाराज ! यह तो खट्टा था, यह तो नमकीन था, मीठा था" — आदि आदि और बाबाजी ने सभी व्यंजनों का घोल-मतोल बना प्राप्त कर लिया !! गृहस्वामिनी अपनी मेहनत से बने व्यंजनों की यह दशा देख हतप्रभ खड़ी रह गई और उधर कार-ड्राइवर ने *वही* व्यंजन एक एक कर पूरा स्वाद लेकर पाये ।

कुछ देर रुकक़र बाबा जी बाहर आ गये और कार में बैठ लिये । फिर कुछ दूर जाकर ड्राइवर से बोले, **"बृजलाल, हम तो भूखे रह गये । चल तेरे घर चलते हैं ।"** ड्राइवर चकित रह गया कि *अभी* तो बाबाजी ने मेरे सामने भरपेट भोजन किया है, फिर यह भूख कैसी ? पर बाबाजी महाराज का भगत यह ड्राइवर कुछ न बोला । (वैसे भी वह क्या समझता कि बाबा जी क्यों भूखे रह गये ?) तब उसके घर जाकर बाबा जी ने रोटी खाकर अपनी तृप्ति की !!

महाराज

मूल-स्वरूप — एक दिग्दर्शन

बाबा जी महाराज की मौज के साथ भक्तों को जब तब उनके शरीर से प्रस्फुटित नैसर्गिक सुगन्ध की **सुवास** प्राप्त होती रहती थी । *ऐसी* सुगन्ध की कोई समता न होती — अपने में ही अनुपम — न तो यह चन्दन की होती, न हिना की, न खस की, न गुलाब-चम्पा-चमेली की, और न किसी ज्ञात इत्र अथवा सेंट की । यही सुवास एक बार क्ले-स्क्वायर (लखनऊ) की भक्त, शांता पाण्डे और उनके पति श्री ललित को प्रथम तो अपने ही घर में प्राप्त हो गई जब बाबा जी सुबह चार बजे ही उनके घर से विदा हो रहे थे इन दोनों द्वारा उनके पार्श्व में हाथ पकड़े ऊपरी मंजिल से (सीढ़ियों में) उतरते हुए । और (मानो, उक्त अनुभूति की पुष्टि रूप) केदार यात्रा में **हनुमान चट्टी** में एक निर्जन-से साधारण मंदिर में भी, जहाँ न दिया अथवा धूप बत्ती ही जल रही थी, **उसी** सुवास ने इन्हें पुनः घेर लिया और यह अलौकिक सुगन्ध उनका काफी दूर तक पद-यात्रा के मध्य पीछा करती रही !!

प्रसंगवश — उस नैसर्गिक शान्त वातावरण के मध्य मंदिर में शान्ता जी के मन में विचार उठा था कि यदि बाबा जी के दर्शन हो जायें तो आनन्द आ जाता । और उनकी इस इच्छा के फलस्वरूप एक तो उन्हें *उस* (पूर्व में अनुभूत) सुगन्ध का आनन्द दे दिया बाबा जी ने, और पुनः पास की एक *निर्जन* गुफा के द्वार पर श्वेत वस्त्रों में लिपटे एक लम्बे-तगड़े साधू के वेश में एकाएक प्रगट होकर दर्शन भी दे दिये — (जब कि ये दोनों पहिले ही उस गुफा के अन्दर झाँककर जान चुके थे कि वहाँ कोई नहीं है, केवल धुएँ के बादल के सिवा !!) परन्तु तब इस अलौकिक एवं अप्रत्याशित दृश्य से चकाचौंध हुए ये दोनों केवल नमन कर पाये उन साधू महाराज को — बातें न कर पाये । दृश्य लोप भी हो गया था शीघ्र ही !!

ऐसे ही शान्ता जी के एक बार महाराज जी से हठ करने पर कि, "महाराज, कुछ चमत्कार दिखाइये", बाबाजी ने अंगूठे से अपनी हथेली रगड़कर इसी सुगन्ध से उन्हें पुनः सराबोर कर दिया !!

और इलाहाबाद में भी एक दिन दादा के घर बाबा महाराज ने अपनी हथेली से ऐसी ही अलौकिक सुवास का प्रसार कर घर के सारे

कमरों को भर दिया — यहाँ तक कि फाटक के बाहर राह चलते लोगों को भी उस सुगन्ध ने आकर्षित कर लिया !!

अतिशयोक्ति-सी लगेगी यह बात कि यही नैसर्गिक सुगन्ध (अब) बाबा जी के **प्रतीक** कम्बल को प्रणाम करते समय भी प्राप्त होती है (परन्तु *कभी कभी* ही — *जब* ऐसा प्रणाम बाबा जी के प्रति *भावातिरेक के मध्य* होता है ।)

इस सम्बन्ध में सबसे आश्चर्यजनक घटना तो लगभग ३० वर्ष पूर्व (१९६४ में) श्री माँ एवं जीवन्ती माँ के साथ घटित हो गई बद्रीनाथ में । महाराज जी इन्हें धर्मशाला में छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। और जब बड़ी देर हो चुकी उन्हें गये तो, उनके बिना बेचैन, दोनों मातायें उन्हें ढूँढने निकल पड़ीं। (*तब* बद्रीनाथ धाम में इतने भवन निर्मित नहीं हुए थे जितने कि अब हैं। चारों ओर छोटी-बड़ी गुफाएँ एवं कन्दरायें ही थीं।) ये दोनों माताएँ बाबाजी को खोजते खोजते, गुफाओं-कन्दराओं के भीतर झाँकते जब एक बहुत बड़ी (कमरानुमा) गुफा में पहुँची तो वहाँ एक कोने में *आसन जमाये, ध्यानस्थ* बैठे बाबा जी को पा गईं। परन्तु, यह भी देखा कि, वह स्थान अत्यन्त निकृष्ट था—चारों ओर भेड़-बकरी खच्चरों की बिष्ठा बिखरी पड़ी थी। और जानवरों के मल-मूत्र से जमीन गीली थी। और *ऐसी* स्थिति में भी बाबा जी *अपने आनन्द* में थे !! तब भी (गुफा की ऐसी दशा में भी) श्री माँ-जीवन्ती माँ के गुफा के भीतर झाँकते और महाराज जी को *पाकर* उसमें प्रवेश करते ही वहाँ (दुर्गन्ध के स्थान पर) अत्यन्त मधुर-मनोहारी नैसर्गिक सुगन्ध की ही इनको अनुभूति हुई परम आश्चर्य के साथ !! (*बाबा जी जो विराजमान थे वहाँ अपने अलौकिक तत्वों में* !!)

ये तो थीं ऐसी अनेक अलौकिक घटनाओं में से कुछेक । अन्यथा तो बाबा महाराज के दिव्य *शरीर से*, उनके कम्बल से, वस्त्रों से तथा उनके शयन के बिस्तरों से सदा ही एक अनिर्वचनीय सुवास प्राप्त होती थी जिसकी उपमा केवल एक अबोध शिशु के बदन की गन्ध से की जा सकती है। *बालरूप भगवान के स्वरूप में ही तो बाबा जी सर्वदा* ***स्थित*** *रहते थे* ***मूल*** *भाव में* —

करारविन्देन्दु पदारविन्दं ।
मुखारविन्देन्दु विनवेशयन्तं ।।

बटस्य पत्रस्य कृतंशयानम् ।
बालं मुकुन्दं शिरसानमामि ।।

बाबा जी के अन्य रूप-स्वरूप तो उनकी लीलाओं के अनुरूप अंश-मात्र होते थे — **एकोहं वहुः श्यामः** के अन्तर्गत । इस तथ्य की **पकड़** *विरलों* के ही परम सौभाग्य की बात थी ।

महाराज

दृष्ट-*अदृष्ट*

बाबा जी महाराज स्वयं तो **अदृश्य** हो ही जाते थे, परन्तु साथ में अपने परिकरों को भी अदृश्य कर देने की भी अलौकिकता उनमें सहज-रूप में विद्यमान थी ।

हल्द्वानी में लटूरी बाबा के आश्रम में महाराज जी विराजे थे । स्वाभाविक था कि भक्तों की भीड़ वहीं एकत्रित हो गई । कुछ देर तक वहाँ अपनी लीलाएँ करते रहे बाबा जी, फिर एकाएक उठकर जाने को उद्यत हो गये । भक्तों की भीड़ भी उन्हीं के साथ जाने को तत्पर हो गई जो बाबा जी नहीं चाहते थे। सो उन्होंने सबसे कहा, **"तुम सब लोग यहीं रुको । हम हाल एक भक्त के घर होकर आते हैं ।"** और तब मुझे साथ लेकर एक रिक्शे में बैठकर हल्द्वानी से उल्टी दिशा को चल दिये । भक्तगण इसी इन्तजार में वहीं रुक गये कि बाबा जी अभी लौटती बेर इसी मार्ग से तो निकलेंगे ।

और उधर महाराज जी रिक्शे में कुछ दूर जाकर पुनः लौट पड़े हल्द्वानी की ओर। लटूरी बाबा के आश्रम के आगे खड़ी भीड़ को देखकर हँसे भी पर लोगों ने न तो बाबा जी को देखा, न मुझे — बस खड़े ही रह गये !! अपने को ही नहीं, रिक्शा समेत मुझे भी अदृश्य कर दिया !! (पूरनदा)

महाराज

इसी प्रकार महाराज जी कहीं *जाने के लिये* कार में बैठ रहे थे कैंची आश्रम में। तभी उन्हें सामने ही आधे-पौन फर्लांग की दूरी पर मोड़ में श्री ए० डी० पाण्डे सपरिवार फारेस्ट रेस्ट हाउस से निकल कर आते हुए

दृष्टिगोचर हो गये। (पाण्डे जी को इसके *कुछ पूर्व* ही आने का आदेश था, *पर* समय का पालन वे न कर पाये थे और उन्हें विलम्ब हो गया था।) महाराज जी को दूर से कार में चढ़ते देख वे वहीं रुक गये कि कार के पहुँचने पर यहीं दर्शन कर लेंगे परन्तु (शायद) महाराज जी गन्तव्य को जाने में अब अधिक विलम्ब नहीं चाहते थे और फिर पाण्डे जी ने भी तो *अपनी ही सुविधा* देखकर समय की पाबन्दी भी भुला दी थी । कार स्टार्ट हुई आगे बढ़ी, उसी मोड़ पर (जहाँ पाण्डे जी सपरिवार खड़े थे) पहुँची और मोड़ पार कर ऊपर सड़क पर चल दी परन्तु पाण्डे परिवार न तो कार को देख पाया और न महाराज जी को !! कैंची आश्रम पहुँचकर ही उन्हें मालूम हो पाया कि महाराज जी की कार उन्हीं के सामने से होकर गुजरी थी !!

महाराज

बाबा जी महाराज वृन्दावन से कैंचीधाम जा रहे थे । हल्द्वानी पहुँचे तो भक्तों ने घेर लिया । परन्तु पीछे बैठी माँ और जीवन्ती माँ को *न देख पाया कोई* !! और तभी भक्तगण पीछे से जीप में आलू की बोरी और सब्जी की टोकरियाँ डालने लगे । तब स्वयँ महाराज ही बोल उठे, **"अरे ! माइयों को दाब कर मार डालोगे क्या ?"** अपनी ही लीला में **पकड़** गये बाबाजी !! (केहर सिंह)

महाराज

अपनी **सर्वदृष्टा शक्ति** देकर महाराज जी ने स्वामी शिवानन्द जी के अन्तरंग शिष्य स्वामी निर्मलानन्द जी को कैंचीधाम में ही उनके ऋषीकेष आश्रम तथा उनके गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन करा दिये थे जिसका वर्णन स्वयँ निर्मलानन्द जी ने ही किया है । निर्मलानन्द जी ने प्रथम तो महाराज जी में अपने गुरु के दर्शन किये और फिर शिवानन्द जी को ऋषीकेष आश्रम में दो भक्तों के कन्धों का सहारा लेकर चलते हुए भी देखा !! (पर तब भी स्वामी निर्मलानन्द जी महाराज जी की इस लीला का रहस्य न जान पाये कि उनके गुरु गम्भीर रूप से फालिज के कारण मरणासन्न हैं, यद्यपि बाबा जी उनसे बार बार ऋषीकेष आश्रम को लौट जाने को कहते रहे ।) निर्मलानन्द जी को

ये दृश्य बाबा जी ने उसी शिला पर बैठा कर दिखाये थे जिसके ऊपर वे स्वयँ भी अक्सर बैठा करते थे।

महाराज

इसी प्रकार महाराज जी मीलों दूर होती ध्वनि भी श्रवण करा देते थे।

इलाहाबाद में (फरवरी १९७२) हेमदा के प्रयाग स्टेशन वाले बँगले में हम सब अखण्ड मानस पाठ में तन्मय थे — उस वर्ष महाराज जी जाड़ों में (हर वर्ष की भाँति) नहीं आये थे — *हम* सब तड़प रहे थे उनके बिना — और *इस* मानस पाठ द्वारा उन्हें प्रयाग खींचने का प्रयास था यह। पाठ का दूसरा एवं अन्तिम दिन था, परन्तु आनन्दमय, संगीतमय होता यह पाठ पूर्ण न हो पा रहा था । रात के ९.३० बज चुके थे । तब पूर्ण होने के बाद ही आरती-पूजन हो पाया । प्रसाद वितरण हो ही रहा था कि दादा के घर उनका भाँजा, विभूति आ पहुँचा दादा को बुलाने — **"महाराज जी आ गये हैं !!"** दादा और चाची जी भाग लिये तुरन्त और हम भी जल्दी जल्दी निवृत्त हो दर्शनों को भागे ।

और तब उस महान आश्चर्यपूर्ण लीला का वर्णन प्रारम्भ हुआ श्री माँ द्वारा जो बाबा जी ने उन्हें दिखाई थी ट्रेन के फर्स्ट क्लास के डिब्बे में। दक्षिण यात्रा से लौटती बेर *मैहर* स्टेशन से आगे रात्रि प्रारम्भ के समय पहुँची चलती ट्रेन में महाराज जी ने माँ से पूछा, **"रामायण सुनेगी ?"** और ऐसा कह उन्होंने डिब्बे की खिड़की खोल दी । तभी बहुत मधुर समवेत स्वरों में उन्हें बाजे-गाजे के साथ जानी-पहिचानी-सी स्पष्ट आवाज में मानस पाठ का **उत्तरकाण्ड** सुनाई देने लगा !! (स्पष्ट है कि उस समय हमारा भी उत्तरकाण्ड प्रसंग चल रहा था ।) कौतूहलवश माताओं ने खिड़की के बाहर इधर-उधर देखा तो अन्धकार के सिवा कुछ न दिखाई दिया । तब कहाँ से आ रही है यह ध्वनि ? गाड़ी तेज गति से कई मील आगे बढ़ चुकी थी परन्तु पाठ अब भी स्पष्ट सुनाई देता रहा मानो पास में ही हो रहा हो !! तभी बाबा जी ने खिड़की बन्द कर दी, और पाठ की ध्वनि भी बन्द हो गई !! गाड़ी के कुछ मील और आगे बढ़ जाने पर महाराज जी ने पुनः खिड़की खोल दी — पाठ की स्पष्ट ध्वनि सुनाई देना भी पुनः शुरू हो गया !! तब माँ और जीवन्ती माँ एक दूसरे का मुँह देखने

लगीं । खिड़की पुनः बन्द हो गई और पाठ भी पुनः लुप्त !! बाबा जी ने एक दो बार और भी यही **खेल** किया — इलाहाबाद आ गया ।

तब दादा के घर पहुँचकर ही माँ तथा अन्य लोगों को पता चला कि वह मानस पाठ तो हेमदा के घर पर हो रहा था !!

महाराज

इसी सन्दर्भ में — जब बाबा जी वृन्दावन आश्रम आ पहुँचते तो मीलों दूर अहलादपुर गाँव (अलीगढ़) में बैठे अनन्य भक्त, श्री होतृदत्त शर्मा जी तक उनकी आवाज स्वतः पहुँचने लगती !! तभी शर्मा जी समझ जाते कि महाराज जी वृन्दावन पहुँच चुके हैं और उन्हें बुला रहे हैं । तब वे दौड़ पड़ते वृन्दावन को और उन्हें महाराज जी भी वहाँ मिल जाते और उनके श्री चरणों में लोटने का परम सौभाग्य भी ।

महाराज

और, (जैसा पूर्व में भी कहा जा चुका है,) अपनी यह आवाज महाराज जी टेलीफोन यन्त्र का स्वयँ प्रयोग किये बिना ही अपने सामर्थ्यवान भक्तों के टेलीफोन की घण्टी बजवाकर (उनसे आवश्यक वार्ता हेतु) पहुँचा देते थे । कर्नलगंज (इलाहाबाद में) सामर्थ्यहीन स्व० जमुनादत्त पंत जी के घर से, तथा दादा के घर से केहर सिंह जी तथा अन्य भक्तों को ऐसे ही टेलीफोन जब-तब मिलते रहे !!

महाराज

बीस साल बाद दर्शन प्राप्तकर्ता कैंची के श्री पूर्णानन्द तिवारी (अब दिवंगत) बाबा जी महाराज की (तथाकथित) पुण्यतिथि में सम्मिलित होने के लिये हल्द्वानी से वृन्दावन जा रहे थे। मध्य मार्ग में जनहीन स्थान पर छद्मवेष में बैठे डाकुओं ने अपनी बन्दूकें निकाल सभी को डराना-धमकाना तथा लूटना प्रारम्भ कर दिया। पूर्णानन्द तिवारी जी के साथ जा रही उनकी पत्नी ने इस पर उन डाकुओं को गाली देना प्रारम्भ कर दिया। इस पर तिवारी जी ने उसी को बुरा भला कहना प्रारम्भ कर दिया कि, "माल तो जायेगा ही, तेरे कारण जान भी चली जायेगी ।"

परन्तु तिवारी दम्पति तो बाबा जी के प्रति अपनी श्रद्धा लिये **श्रद्धा-दिवस** हेतु जा रहे थे । डाकुओं ने सभी यात्रियों को लूटा-खसोटा और मारा भी, परन्तु न तो वे तिवारी दम्पति को देख सके और न उनके बीच जोर जोर से चलती आपसी बहस को ही सुन सके !! अदृश्य भी कर दिया और आवाज को भी **शून्य** कर दिया बाबा जी ने !! तिवारी दम्पति सकुशल वृन्दावन पहुँच गया । (*महासमाधि के बाद भी वही लीला* !!)

महाराज

उक्त लीलाएँ केवल दृष्टान्त-मात्र हैं महाराज जी की इस अदृष्ट होने एवं अदृश्य कर देने की अलौकिकता की । इलाहाबाद स्टेशन प्लेटफार्म पर कन्हैया लाल जी (अब स्व०) कुछ ऐसे लोगों को लेकर (जिन्हें बाबा जी दर्शन नहीं देना चाहते थे) खड़े ही रह गये महाराज जी के दर्शन हेतु जबकि बाबा जी दादा को लिये हुए दो-तीन बार उनके सामने से घूमते हुए प्लेटफार्म के चक्कर लगा गये !! न बाबा जी को और न दादा को ही देख पाये कन्हैया लाल जी !!

महाराज

इसी अदृश्य लीला के समरूप महाराज जी कहीं भी, किसी को भी अन्य स्थानों में होते हुए भी स-शरीर प्रगट होकर दर्शन देते रहते थे और सक्रिय लीला भी करते रहते थे । (पूर्व में वर्णित श्रीमती शान्ती वर्मा का रक्षा-बन्धन प्रकरण देखें ।) और तो और, कोसों दूर स्थित दृश्य दिखा देते थे ।

बद्रीनाथ यात्रा में भक्त-मण्डली ने विचार किया कि **वसोधारा** के भी दर्शन किये जायें और उसके पवित्र जल में स्नान भी । (तब श्री माँ महाराज जी की सेवा में होने के कारण स्वयँ न गई थीं वसोधारा अन्य भक्तों के साथ ।) लघुशंका करते समय एकाएक महाराज जी ने माँ से पूछ दिया, **"वसोधारा के दर्शन करेगी अम्मा ? जा, देख खिड़की से ।"** श्री माँ ने जब खिड़की से बाहर देखा तो उसी स्थान से उन्हें **वसोधारा** के **पूर्ण** दर्शन हो गये !! और उधर भक्त मण्डली को *माना-पास* मार्ग में जाने हेतु स्वीकृति न मिलने के कारण बिना दर्शन-मज्जन के लौट जाना पड़ा (जैसा कि उन्होंने लौटने पर बताया ।)

(प्रसंगवश — वर्ष १६८८, अक्टूबर में बद्रीनाथ यात्रा के अवसर पर श्री माँ बाबा जी के परिकरों को साथ लेकर **वसोधारा** के दर्शन हेतु गई थीं । तब वसोधारा में स्नान करने का कोई विचार न था और न कोई वस्त्रादि लेकर ही गया था इस हेतु । सभी ने देखा कि यद्यपि माँ मुख्य धारा से करीब ५-६ गज दूर खड़ी थीं (तब भी) धारा *बलखाती* सीधे श्री माँ के ऊपर बरस पड़ी और उन्हें पूर्ण-स्नान करा गई !! और उसी प्रकार लौट भी गई अपनी मूल धारा में !! न हवा, न आँधी और न तूफान !! फिर भी !! तब तो सभी अन्य भी बावले हो गये और जा-जा कर वसोधारा की पावन धार के नीचे (ऊपरी ऊनी वस्त्रों को उतार) खड़े हो गये और फिर उन्हीं भीगे वस्त्रों के ऊपर ऊनी परिधान धारण कर लौटे ।)

महाराज

गंगोत्री की यात्रा में भी बाबा जी महाराज ने अपनी अलौकिक दिव्य दृष्टि श्री माँ तथा श्रीमती मुन्नी साह को प्रदान कर दी । गंगा मंदिर में गंगा जी की आरती होते वक्त एकाएक श्री माँ ने अपने *पीछे* देखा तो श्री कैलाश के दर्शन होने लगे (जब कि वहाँ सदा बादल छाये रहते हैं ।) और *उसी के साथ कैलाश पर्वत पर विराजे साक्षात शंकर भगवान एवं पार्वती के भी दर्शन होने लगे* !! तब ये दोनों ही गंगा मूर्ति की ओर पीठ किये उस अनुपम दृश्य का ही पान करने लगीं अपने अतृप्त नयनों से। मन में यह भी हो रहा था कि क्या कहेंगे लोग कि आरती के समय मूर्ति की ओर पीठ कर ली है इन लोगों ने । कुछ लोगों ने इन्हें इस मुद्रा में देखा तो पीछे देखने पर स्वयँ भी उन्हें **श्री कैलाश दर्शन** हो गया (पर *शंकर-पार्वती का नहीं* ।) तब उनके मुँह से निकल गया, **"वाह, आज किस भाग्यवान के कारण कैलाश से बादल हट गये हैं ।"**

महाराज

एक से अनेक

मैं वृन्दावन आश्रम में महाराज जी की कुटी में उनके सम्मुख बैठा था । मुझसे कुछ दूर पर श्री सिद्धी माँ तथा जीवन्ती माँ भी बैठी थीं । केवल हम तीन ही थे उस वक्त कुटी में । महाराज जी अपनी सरस वाणी

में बहुत कुछ सुना रहे थे — कुछ सारगर्भित भी और कुछ हास्यप्रद भी, और इस तरह हमको अपने पर **केन्द्रित** नहीं होने दे रहे थे । साथ में जैसा सदा होता था, वे एक मुद्रा में स्थिर भी तो नहीं हो रहे थे। फिर भी, इस स्थिति में भी, मैंने देखा कि **एक महाराज जी** के स्थान पर **दो महाराज** बैठ गये हैं तखत पर !! बाबा जी के इस **खेल** पर मैं आनन्द से मुस्कुरा उठा । (उधर बाबा जी के दोनों स्वरूप बोलते भी जा रहे थे ।) यह सोचकर कि दोनों माताओं को भी यह दृश्य देखने को मिल रहा है कि नहीं, मैंने उनकी तरफ दृष्टि की तो देखा कि **एक** की जगह **दो** सिद्धी माँ बैठी हैं !! कुछ ही क्षणों में एक *दूसरी* जीवन्ती माँ उनके बगल में अवतरित हो गईं !! मैं तो यह सब देखकर आत्मविभोर हो उठा । तभी महसूस किया कि कोई मेरी बगल में विराजमान हो गया है । घूमकर देखा तो *एक और* होतृदत्त बैठा है बगल में !!

इस लीला-क्रीड़ा ने मेरे अन्तर्मन में कितना आल्हाद, कितना आनन्द भर दिया होगा, पाठक स्वयँ समझें । (होतृदत्त शर्मा – अलीगढ़ ।)

(त्रेता में श्री राम ने एक से अनेक होकर चित्रकूट में तथा अयोध्या वापिस लौटकर सभी को यथायोग्य सम्मानित किया था — ***जथा जोग मिले सबहिं कृपाला*** । **द्वापर** में श्री कृष्ण ने **अनेक** बनकर **महारास** रच दिया और यहाँ तो स्वयँ को ही नहीं अपितु अपने परिकरों को भी एक से दो कर दिया महाप्रभु ने !! मुकुन्दा)

महाराज

अपने ही शरीर से खेलवाड़

बाबा जी महाराज के लीला चरित्र पर गम्भीरता से मनन करने पर पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि शरीर की आकृति अथवा उसके भार (वजन) में आधिक्य अथवा न्यूनता या उनकी शारीरिक शक्ति में कोई निश्चितता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था । **मसक समान रूप** भी हो जाता था, विशाल भी हो जाता इतना कि ऊँचे चौड़े दरवाजे से भी न निकल सकें । केवल एक हाथ का भार ही असह्य हो जाता । छोटी से छोटी जगह में भी समा जाते और पूरी साइज का तखत भी छोटा पड़ जाता । शरीर

कभी अत्यन्त दुबला-पतला हो जाता, कभी अत्यन्त लम्बा और क्षीण तो कभी इतना स्थूल कि पेट और टांगों के बीच का हिस्सा (कटि प्रदेश) ही लोप हो जाता । हाथ-पाँव कोई भी आकार ले बैठते तथा कहीं से भी मुड़ जाते । शरीर की हड्डियाँ हाड़-माँस की थीं या रबर-इलास्टिक की, जानना मुश्किल था और इन कारणों से महाराज जी के फोटो चित्र सदा एक दूसरे से भिन्न होते थे — आकार में ही नहीं, वरन शरीर के विभिन्न अंगों की आकृति अथवा उनकी लम्बाई-चौड़ाई में भी, मुख मुद्रा में भी । यही शरीर बच्चे के शरीर की भाँति अत्यन्त कोमल भी हो जाता और शिला-बज्र की भाँति कठोर भी — **'बज्र देह दानव दलन ।'**

उनके शरीर का वजन भी कुछ भी हो सकता था — रुई अथवा फोम के बण्डल के समान हल्का-फुल्का भी और असहनीय रूप से भारी भी। शक्ति के नाम पर एक ओर जहाँ चढ़ने-चलने-फिरने के लिये भी सहारा अथवा सवारी भी ले लेते थे, वहीं दूसरी ओर शरीर से स्थूल-भारी व्यक्ति को गेंद की तरह उछाल कर दूर फेंक देते थे और सहारा देने वाले व्यक्ति को भी खड्ड में गिरने से बचाने को केवल अपनी दो उंगलियों से उठाकर पुनः सड़क-पगडंडी पर रख देते !!

पर इन सबके लिए किसी **शारीरिक योग** अथवा क्रिया का कोई स्थान न था — सब कुछ सहज-सुलभ था योगेश्वर के लिए — उनकी अलौकिक दैवी शक्ति का प्रताप मात्र। इन सब तथ्यों के ऊपर प्रकाश डालते दृष्टांत कुछ पूर्व में दिये जा चुके हैं, यत्र तत्र भी दिये गये हैं पर यहाँ कुछ और भी ।

महाराज

बाबा जी के साथ बद्रीनाथ यात्रा में गये भक्तों के साथ मेरा एक ४-५ वर्ष का बालक भी था। जब जोशीमठ से पैदल यात्रा होती थी। जोशीमठ में बाबाजी तथा बालक के लिए दो डाँडियाँ मँगाई गईं। डाँडी वालों में बहस छिड़ गई कि कौन बाबा जी को बिठायेगा और कौन बालक को। अन्त में तय हुआ कि बारी बारी से अदला बदली कर ली जायेगी। काफिला चल निकला। बाबा जी ने अपना कौतुक प्रारम्भ कर दिया — उनकी डाँडी वाले तो फटाफट आगे बढ़ते गये मानो उनकी डाँडी में फूलों को टोकरा हो पर बालक के डाँडी वाले उसके भार से त्रस्त हो गये !!

आगे चलकर उन्होंने बाबा जी की डाँडी सँभालनी चाही पर उनके डाँडी वाले राजी न हुए। तब मुस्कुराकर बाबा जी ने बालक को भी अपनी डाँडी में बिठा लिया !! पर तब भी इन डाँडी वालों को कोई फर्क न पड़ा !! (श्रीमती मुन्नी साह)

यहाँ बाबा जी ने तीन खेल एक साथ खेल लिये । अपने भार का हरण कर लिया, बालक के भार को एक बार वजनी कर दिया और फिर पुनः हल्का !! (लेखक)

महाराज

ऐसा ही खेल, कुछ दूसरा रूप लिये, कामदगिरि की प्रदक्षिणा करते वक्त खेल लिया बाबा जी ने। उनका डील डौल शरीर देखकर डाँडी वालों ने साफ मना कर दिया उन्हें बिठाने को — मुँह माँगा पारितोषिक दिये जाने का प्रलोभन देने पर भी । तभी न मालूम कहाँ से एक अन्य डोली वाले आ पहुँचे और बाबा जी को डोली में बिठाकर करीब करीब दौड़ते हुए प्रदक्षिणा मार्ग पर चल पड़े। परिक्रमा के अन्त में जब महाराज जी डोली से उतर गये और डोली वालों को पारिश्रमिक देने दल के मुखिया मुड़े तो न डोली ही थी वहाँ न डोली वाले । दोनों खेल दिखा दिये सरकार ने ।

महाराज

नैनीताल में गवर्नमेन्ट हाउस से लौटती अयारपाटा रोड से सीधे नीचे पगडंडी के रास्ते मुख्य सड़क पर बाबा जी को बिठाये ही उतारने पर जब डाँडी वालों ने मना कर दिया तो महाराज जी ने साथ के भक्तों से डाँडी उठाने को कहा और कुछ ही क्षणों में बावले भक्तगण बाबा जी को डाँडी में बिठाये बिठाये पगडंडी मार्ग से ही नीचे उतर गये। उन्हें लगा कि वे खाली डाँडी ही ढो रहे हैं परन्तु जब सड़क पर डाँडी वालों ने डाँडी उठानी चाही तो उनसे (भार के कारण) डाँडी उठ ही न पाई । तब मुस्कुराकर बाबा जी ने पुनः *अपना* वजन धारण कर लिया (पूरनदा) ।

महाराज

वर्ष १९६३-६४ की बात है । पूर्व में वर्णन कर चुका हूँ कि लटूरी बाबा के आश्रम से **अदृश्य** होकर महाराज जी मुझे रिक्शे में बिठाकर बरेली

रोड पर चल दिये थे । आठ-नौ मील चलने के बाद रिक्शा रोककर उतर गये । मुझसे कहा, **"इसको पैसे दे दे ।"** मेरी जेब में केवल एक रुपिया था, वही दे दिया मैंने पर रिक्शेवाले के हाथ में पहुँचते पहुँचते वह रुपये का नोट या तो १०० रु० का हो गया, या फिर वह स्वयं ही महाराज जी का ही *सृजित* किया रिक्शेवाला होगा — नोट पाकर वह अत्यन्त हर्षित, पुलकित होकर चला गया — कहता हुआ, **१००) रु० हैं ।**

तब करीब ग्यारह बज चुके होंगे रात्रि के । एक गाँव को जाती पगडँडी पर महाराज जी चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर नहर के पास पैरापेट पर लेट गये । घुप्प अंधेरी रात थी — निर्जन वन में हवा साँय-साँय चल रही थी । मन में कुछ भय व्याप गया मेरे । तभी मुझे आज्ञा हुई **"पूरन, मेरा पेट मल दे ।"** स्वयँ जोर जोर से खर्राटे लेने लगे । मैंने जो पेट मलना प्रारम्भ किया तो वह, महाराज जी के शरीर के साथ साथ, विशाल होता चला गया — यहाँ तक कि मेरे हाथों की परिधि के बाहर हो गया । मैं तब केवल अपनी ओर के ही कुछ भाग तक पेट मल पा रहा था । यह सब देखकर मन में भय और भी अधिक बढ़ गया ? तभी महाराज जी उठ बैठे कहते हुए, **"घबरा गया ?"** और मेरा हाथ पकड़कर कह उठे —

'जब बाँह पकड़ ली जब्बर की ।
परवाह नहीं है कब्बर की ।।'

मैं तब पुनः आश्वस्त हो गया । (पूरनदा)

महाराज

वर्ष १९६८ — जनवरी माह — दादा के घर लाइब्रेरी का कमरा । महाराज जी मेज के पीछे कुर्सी पर बैठे थे और मैं कुर्सी के पीछे खड़ी थी। तभी मेरे एक पड़ोसी शर्मा जी और उनकी पत्नी, जिनका एक बहुत ही प्यारा बेटा हाल ही में काल-कवलित हो गया था, वहाँ आ गये और महाराज जी के समक्ष विफर कर रो उठे । मैं पूर्व में ही उस बच्चे की मृत्यु पर रो चुकी थी बहुत, और इस वक्त उसकी स्मृति में पुनः रो पड़ी । महाराज जी उन्हें समझाते रहे और उन्हें आश्वस्त कर दिया कि **"वह बालक पुनः तुम्हारी गोद में खेलेगा ।"**

उनके जाने के बाद मैं महाराज जी से बोली, "महाराज ! भगवान ऐसा कष्ट क्यों देता है ? इससे अच्छा तो यही है कि ऐसी संतान

मिले ही नहीं।" तब बाबा जी बोले, **"तू समझती नहीं। यह मृत्युलोक है। यहाँ जो आता है वह जाता भी है — कोई जल्दी कोई पीछे। *सब अपना-अपना कर्म-भोग लेकर आते हैं और अपने समय से चले जाते हैं"*** — आदि आदि और ऐसा कहते कहते मेरे दोनों हाथ पीछे से माला की तरह अपने सीने में रख लिये। पहले तो उनके बच्चों की तरह मुलायम, कोमल, माँसल सीने की गुदगुदी महसूस करती रही मैं। पर शीघ्र ही वही कोमलता **कठोर** होने लगी और कठोर होते होते बज्र-समान हो चली और साथ में ऊँची भी। मुझे लगा कि मेरी दोनों हथेलियाँ एक कठोर शिला के ऊपर जमी हैं। हनुमान जी की बज्र समान देह का स्मरण हो आया मुझे। एक चमत्कार और कि इस अनुभूति के मध्य न तो मुझे आश्चर्य हुआ और न भय — केवल आनन्दानुभूति हुई, जो महाराज जी की ही **अपनी देन** थी। तदुपरान्त शीघ्र ही महाराज जी की देह यथावत हो गई। (रमा जोशी)

महाराज

प्रसंगवश — अपने लड़के आनन्द की आँख फूट जाने के दुख से रात को श्री केहर सिंह जी अन्य बातों के अलावा यह भी कह गये अपने आप कि, "भगवान, मेरे पापों की सजा इस लड़के को क्यों दे रहे हो ?" (लड़के को महाराज जी के अलौकिक उपचार के बाद पुनः दृष्टि मिल गई थी।) परन्तु कई माह बाद एक दिन एकान्त में महाराज जी ने केहर सिंह जी से कहा, **"उस *रात* तू क्यों कह रहा था भगवान से कि मेरे पापों की सजा मेरे लड़के को क्यों दे रहे हो ? तू नहीं जानता। *सब अपने अपने कर्मों का भोग करते हैं*। मत कहना आज से ऐसा।"**

('कोउ न काहू कर सुख-दुख दाता — निज कृत कर्म भोग सब भ्राता' — *मानस* में शेषावतार — छठे रुद्र – लक्ष्मण द्वारा गुह को सीख।)

महाराज

अपनी भ्रामक लीलाओं में बाबा जी महाराज,शरीर-धर्म के अनुकूल, यह भी व्यक्त करते रहते थे कि वे दिल के मरीज हैं, उन्हें डाइबिटीज (मधुमेह) है, उन्हें पेट (आमाशय जिगर आदि) का रोग हो गया है, वे वृद्ध हो चुके हैं — आदि आदि। इसके लिए वे शोरगुल भी खूब मचाया करते

थे तथा डाक्टर भी बुलाये जाते — तरह तरह की जाँच भी होती रहती थी और इलाज-पानी भी चलता रहता । जो भी भक्तों से राय मिलती वही दवा भी खा लेते — आयुर्वेदिक, अंग्रेजी, होमियोपैथिक दवायें साथ साथ चलती रहती थीं । अभी कुछ देर पूर्व अत्यन्त अस्वस्थ दिखाई देते पर शीघ्र ही **दरबार** में बैठे उन्हें देख कोई नहीं कह सकता था कि कुछ देर पूर्व वे **अत्यन्त** बीमार थे । जहाँ तक *शरीर-धर्म* हेतु ये लीलायें होतीं, *वे भी* अपनी जगह *सही* थीं पर *सत्य* कुछ और भी होता । **अजर-अमर** विभूति बाबा महाराज अपने भक्तों का कष्ट देख ही नहीं पाते थे और अक्सर उनके रोग-व्याधि अपनी शक्ति से ही दूर करते रहते थे, और आवश्यकता पड़ने पर कभी कभी भक्तों के इन रोगों को अपने ऊपर लेकर क्षय कर डालते थे । उन्हें शीत और ग्रीष्म का प्रकोप कितना व्याप पाता था, इसका दृष्टान्त आगे दिया जा रहा है (**'हम ठँड से मर गये'** वाले प्रकरण में ।) ज्ञात-अज्ञात न मालूम कितने दृष्टान्त होंगे जहाँ महाराज जी ने भक्त के कष्ट, रोगादि स्वयँ धारण कर उन्हें भस्म कर दिया ।

श्री केहर सिंह जी को जब लखनऊ में असाधारण रूप से डाइरिया ने ग्रस्त कर लिया, और जब वे इस कारण अत्यन्त कमजोर एवं दुखी हो गये कि अब बिस्तरे में ही मल-मूत्र त्यागना पड़ेगा, महाराज जी ने उनके रोग को वृन्दावन में स्वयँ ग्रहण कर लिया । इधर केहर सिंह जी *रात को ही* आराम से सो गये रोगमुक्त होकर और उधर बाबा जी को ग्लूकोज भी चढ़ना प्रारम्भ हो गया — शरीर तथा खून में जल के अनुपात में कमी के कारण। इस बीच बिस्तरे में ही *खराब* हो चुकी धोती-चादरों की भी माताओं द्वारा धुलाई भी करनी पड़ गई। परन्तु बाहर आये भक्तों को इन सब लीलाओं की भनक तक न मिलने पाई ।

और सन्ध्या समय बाबा जी पुनः **दरबार** में उपस्थित हो गये, मानो कुछ हुआ ही न था । न चेहरे पर शिकन, न आवाज में कमजोरी और न रोज की लीलाओं में ही कुछ हेर-फेर (बदलाव) । कुछ ही घंटों में केहर सिंह जी का रोग बाबा जी ने अपने में लेकर भस्म कर दिया ।

महाराज

इन्हीं केहर सिंह जी को भयँकर रूप की डाइबिटीज हो गई थी जिसके लिये बाबा जी ने इन्हें पूर्व में ही सचेत कर दिया था कि **"तू**

मिठाई प्रसाद बहुत खाता है, तू डाइबिटीज से मरेगा ।" पर ये तब भी न माने और महाराज जी के पधारने पर बड़ी मात्रा में मिठाई खा जाते थे। धीरे धीरे डाइबिटीज ने इतना उग्र रूप ले लिया कि इनको लगा कि अब जीवन भी रहेगा कि नहीं । कोई भी इलाज कारगर साबित न हो पाया । तभी एक दिन रायबरेली से एक भक्त का पोस्टकार्ड इनके पास लखनऊ में आया कि **"बाबा जी महाराज आजकल यहाँ विराजमान हैं और मुझसे कहा है कि आपको लिख दूँ कि *आपकी डाइबिटीज खत्म हो गई है* ।"**

केहर सिंह जी तो डाइबिटीज से छुट्टी पा गये। आज भी (१९९४) मीठा दूध, मीठी चाय, खीर तथा आम तबियत भर के प्राप्त करते हैं। परन्तु उधर महाराज जी ने चीनी, आलू, मीठा, चावल आदि स्वयँ प्राप्त करना एकदम बन्द कर दिया । केहर सिंह जी की डाइबिटीज ने बाबा जी महाराज को घेर लिया और घेरे रही अन्त तक ।

महाराज

श्री गुरु दत्त शर्मा की छोटी पुत्री गीता के अनुसार जब शर्मा जी महाराज जी के साथ यत्र-तत्र घूम रहे थे घर से दूर, तो कानपुर में उसकी माता (श्रीमती शर्मा) को एकाएक ऐसा असाध्य रोग हो गया कि उनके हाथ पाँव बुरी तरह सूज गये और सारा शरीर कम्पायमान होता ऐंठने लगा। दर्द के मारे वे बुरी तरह रो उठीं। घर में सभी छोटे छोटे थे। तभी न जाने कहाँ से बाबा जी प्रगट हो गये, दरवाजा खुलवाया, (जानते हुए भी) सब कुछ पूछा और जाते जाते कह गये, **"माई चिन्ता मत करना, सब ठीक हो जायेगा।"** और दो दिन के भीतर ही श्रीमती शर्मा भली भाँति चँगी हो गईं।

घर लौटकर शर्मा जी को जब सब हाल मालूम हुए तो वे बोल उठे, "ओहो ! तभी महाराज जी स्वयँ दो दिन तक ऐसी ही पीड़ा से त्रस्त रहे !!"

महाराज

वृन्दावन आश्रम में महाराज जी (वर्ष १९७३ – मार्च में) भक्तों से घिरे अपने बरामदे वाले तखत पर बैठे हुए थे । इतने में आश्रम के प्रवेश द्वार से एक अधेड़ावस्था की स्थूलकाय महिला **सीताराम-राधेश्याम** कहती बड़ी कठिनाई से चलती महाराज जी के पास पहुँची। लगता था अपने

स्वयँ के भार के कारण महिला बहुत ही थक चुकी थी। दम भी फूल रहा था उसका। उसके प्रवेश द्वार से तखत तक पहुँचने की अवधि में महाराज जी उसे एकटक निहारते रहे, और जब उसने ब-मुश्किल झुककर महाराज जी को प्रणाम किया (तब भी **सीताराम-राधेश्याम** कहते), तो महाराज जी ने आशीर्वाद की मुद्रा में अपना हाथ उठाते उससे कहा, **"जा, तेरी परिक्रमा पूरी हो जायेगी।"** तब हमें मालूम हुआ कि महिला *सप्तकोशी परिक्रमा* कर रही है। इतना सुनते ही जब महिला उठी तो *बड़ी सरलता* से और *अब स्थिर* कदमों से चलती **सीताराम-राधेश्याम** कहती जाने लगी। तभी (अभी तक सुस्थिर, स्वस्थ और चपल) महाराज जी भी तखत से (कुछ श्रम के साथ) उठ गये और स्वयँ **सीताराम-राधेश्याम** कहते अत्यन्त ही *मँथर* गति से, मानो बहुत ही थक गये हों, प्रांगण पार कर अपनी कुटी की तरफ चल दिये। पर कुछ दूर पूर्व ही रुक गये और आगे पड़े एक खाली ड्रम में, उसे हाथों से पकड़े, झुककर **सीताराम-राधेश्याम** कहने लगे, और पुनः धीमी गति से कुटी में प्रवेश कर वहाँ अपने तखत में लेट गये — थकान मिटाने की मुद्रा में। क्या बाबा जी ने उक्त महिला की सारी थकान अपने में समेट ली थी ? (मुकुन्दा) ।

महाराज

इसी तरह न मालूम किन किन भक्तों के श्रम, विभिन्न प्रकार के रोगादि, शीत-वर्षा-ग्रीष्मादि प्रदत्त पीड़ायें एवं प्रारब्ध-जनित दुःखादि बाबा जी स्वयँ वहन-सहन करते रहे । (***'हम ठंड से मर गये'*** प्रकरण में ऐसी लीला का दृष्टान्त दिया जा रहा है ।) ।

इलाहाबाद में मेरे घर विराजे महाराज जी एकाएक गँभीर हो गये और मुझसे बार बार पूछते रहे, **"अर्धरात्रि गई कपि नहिं आवा — क्या अर्थ हुए इसके ?"** और उतनी ही बार मेरे द्वारा अर्थ बताये जाने पर सिसक-सिसक कर रोते रहे — कभी स्वच्छन्द रूप से तो कभी कम्बल में मुँह छिपाकर। फिर उठकर दादा के घर चले गये। वहाँ भी अपने शयन कक्ष में पुनः इसी प्रश्नोत्तरी के उपरान्त सिसकने लगे, और फिर मुझे वहाँ से चले जाने को कह कर स्वयँ बन्द हो गये कमरे में (बड़ी देर तक।) न मालूम किस भक्ति की व्याधि *वहाँ* अपने में लेकर क्षय करते रहे। (मुकुन्दा)

महाराज

भक्तों के हृदय रोग एवं रक्तचाप भी उन्होंने स्वयँ अपने में ले लिये थे और उन्हें खुद ही भोगना प्रारम्भ कर दिया था । यदि ये रोग *उनके स्वयँ* के होते तो अंतिम दिन — १० सितम्बर १९७३ को — आगरा के प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ उन्हें यह प्रमाण पत्र न देते कि, "*न तो आपको हृदय रोग है*, न किसी प्रकार का, *अन्य रोग और न रक्तचाप* — उल्टे आपका हृदय तो अभी भी नौजवानों की भाँति पुष्ट-तुष्ट है ।" और तभी ही उन्होंने उसी दिन ही महाराज जी को कैंचीधाम (पर्वतों) की यात्रा की सहमति भी *निःसंकोच* दे दी थी (जबकि हृदय-रोग एवं रक्तचाप के मरीजों के लिये पर्वत-यात्रा सर्वथा वर्जित है ।)

महाराज

जहाँ तक बाबा जी के शरीर में लक्षित वृद्धावस्था का प्रश्न है, वाह्यरूप से ऐसा प्रतीत तो होता ही था, और स्वयँ भी वे इसी रूप का दिग्दर्शन भी करते रहते थे पर छठे दशक में जब स्नायु विज्ञान के विश्वविख्यात मर्मज्ञ, डाक्टर भोंसले ने लखनऊ में उनके चरन चाँपे तो २०-२१ वर्ष पूर्व (१९४२ में) महाराज जी के ऋषीकेश की धर्मशाला में *इसी प्रकार* चरन चाँपते वक्त *प्राप्त* अनुभव के आधार पर उनके मुँह से स्वतः निकल पड़ा था आश्चर्ययुक्त भाव से कि, "बाबा, आपकी स्नायु स्थिति तो आज भी पूर्ववत एक युवक की भाँति बनी हुई है ।"

महाराज

महाराज जी की शारीरिक शक्ति के बारे में पुष्टि मुझसे श्री गुरुदत्त शर्मा ने अपने ही अनुभव के आधार पर की । महाराज जी को सहारा देते हुए शर्मा जी उन्हें कैंची फार्म ले गये । नदी पार फार्म के भवनों की ओर जाने को (तब) कुछ चढ़ाई पड़ती थी, और मार्ग भी समतल न था। चट्टानों और ऊबड़-खाबड़ मिट्टीयुक्त १-१¹/४ फीट चौड़ी पगडँडी में वे महाराज जी को सहारा देकर ऊपर ले जा रहे थे । हो सकता है कुछ श्रम पड़ गया हो शर्मा जी को ऐसा करने में, और यह भी हो सकता है कि महाराज जी उन्हें **कुछ** समझाना चाहते हों (कि मुझे बूढ़ा-लाचार न समझना अपने इस सहारे के कारण) कि तभी शर्मा जी का पाँव रपटा और वे नीचे खड्ड की तरफ फिसल गये और तभी ही महाराज

जी ने उन्हें केवल दो उंगलियों से पकड़कर पगडँडी पर खींच खड़ा कर दिया । सहारा देने वाला ही सहारा पा गया अब तक सहारा प्राप्त करने वाले से । *कहाँ चली गई थी तब बाबा महाराज की जरा ?* (केहर सिंह ।)

महाराज

मेजर रिखी, जिनका शरीर डील-डौल काफी स्थूल और भारी भरकम था, एक बार महाराज जी के कोप भाजन बन बैठे । अपने भक्तों के प्रति अपराध तो महाराज जी सहन कर ही नहीं पाते थे और वही अपराध मेजर रिखी से बन बैठा । बस क्या था — कैंची में *रामकुटी* में मेजर के घुसते ही बाबा महाराज ने उन्हें उठा-उठा कर पटकना-मारना प्रारम्भ कर दिया और कुछ क्षणों बाद फुटबॉल की तरह दरवाजे से बाहर फेंक दिया । इस बीच **हनुमदावतार** बाबाजी ने जिस प्रकार *गर्जन-तर्जन* किया, उसको सुन सारा आश्रम आतंकित हो उठा और सारे आश्रमवासी भय से जहाँ तहाँ दुबक गये।

कहाँ चला गया था तब बाबाजी का ***जरा-विन्यास*** ?

महाराज

कैंचीधाम से अपनी अन्तिम यात्रा के दिन (रविवार, ६ सितम्बर १९७३) को महाराज जी सभी से **खिलवाड़**-सा करते रहे उन्हें भ्रमित करने को । स्नान का समय हो गया तो किशन चन्द्र तिवारी जी ने रुद्राभिषेक की ऋचाओं को पढ़कर उन्हें स्नान कराना प्रारम्भ करा दिया । यद्यपि अन्य माइयों ने उन्हें मना भी किया कि महाराज जी अस्वस्थ हैं और *इतनी देर तक* यह स्नान ठीक नहीं पर वे स्नान कराते उनके ऊपर जल डालते रहे। बाबा जी भी निर्विकल्प बने रहे — निर्विकार सदाशिव की भाँति । माताओं ने भी जी भर कर उस *अभिषेक जल* का पान किया तथा पात्रों में भी उस पवित्र चरणोदक को एकत्रित कर लिया ।

तब कहाँ गया था महाराज जी का हृदय रोग और अन्य रोग जिनके कारण उन्होंने पिछले २-३ दिन से धाम में हलचल मचा रखी थी ? परन्तु इस लीला के माध्यम से बाबा जी अपने *चरणोदक* का भण्डार तो दे ही गये श्री माँ को (जो बाद में पाना असम्भव होता ।)

महाराज

जाकी सहज श्वास श्रुति चारी

कहा जाता है कि हनुमान जी ने सूर्यदेव से बाल-हठ कर अपनी बाल्यावस्था में ही समस्त विद्यायें आत्मसात कर ली थीं और **ज्ञानिनामग्रगण्यम** बन गये ।

युग पुरुष एकादशरुद्रावतार बाबा जी महाराज ने स्वयँ भी **ज्ञानिनामग्रगण्यम्** बन जाने में ऐसी विद्यायें, ऐसी विधायें कहाँ से, कैसे प्राप्त कीं, पता नहीं । **'मैंई काऊ कौ चेला नाऊं, तोय कैसे बनाय लेऊं'** कहा था उन्होंने एक भक्त के चेला बना लिये जाने के आग्रह में । परन्तु साथ में पूरनदा से स्वयँ बोले थे, **"पूरन, सत्रह वर्ष की उम्र में (ही) हमें कुछ करने को बाकी नहीं रह गया था ।"** (त्रिगुणात्मक तत्वों से संभूत काया का परिष्करण हो चुका था ।)

उत्तर से दक्षिण एवं सुदूर पूर्व (हमारे ज्ञान में कम्बोडिया तक) से पश्चिम तक तथा विदेशों में भी भ्रमण करने वाले बाबा जी न मालूम कितनी कितनी भाषाओं तथा स्थानीय भाषा में बोलचाल वाले भक्तों-दीनों के साथ लीलाएं करते रहे जिसमें सभी की अपनी अपनी भाषा में कही बातें समझ तथा उन्हें **अपनी** समझाकर तुष्ट करते रहे होंगे, और साथ में न मालूम कौन कौन वेष धारण करते होंगे इस हेतु ।

बजरंगगढ़ (नैनीताल) में दो जर्मन जिज्ञासुओं को भी, अकेले ही बिना किसी दुभाषिये की सहायता के, उनकी जिज्ञासाओं की तुष्टि कर विदा कर दिया ।

श्री के० के० साह (नैनीताल) के घर शुद्ध उच्चारण के साथ अंग्रेजी में लिखी पुस्तक स-स्वर बाँचते **पकड़** गये थे बाबा जी भगवती प्रसाद पाण्डे जी द्वारा ।

और, *महासमाधि के बाद* भी केनेडियन महिला, जिल मार्कस से भी कैंची में अंग्रेजी में कहा था, **"माई चाइल्ड, यू हैव नॉट ईटन ऐनी थिंग सिन्स मॉर्निंग । नाउ गो एण्ड ईट ।"** (मेरी बच्ची, तुमने सुबह से कुछ नहीं खाया है । अब जाओ, कुछ खा लो ।) जिल मार्कस अपनी जिद में सुबह से ही **रामकुटी** में बिना चाय तक पिये बैठ गई थी कि माँ ने कहा था उससे दो दिन पूर्व — "बाबा जी अवश्य दर्शन देंगे तुम्हें ।" और बाबा

जी ने प्रगट हो उसके कँधे पर हाथ रखते उक्त बात कही थी । अपना यह अनुभव जिल ने केहर सिंह जी तथा श्री माँ को बताया ।

इसी प्रकार सुनन्दा मार्कस को भी ग्वाटेमाला के जंगल में अंगेजी में सावधान किया था (चेक द फ्यूज़ — फ्यूज़ चेक करो) कहकर । (१९६२)

महाराज

बाबा जी द्वारा रामदास (डा० रिचर्ड एलवर्ट) की जिज्ञासाओं का दादा को दुभाषिया बनाकर उत्तर देते वक्त कभी कभी वे क्षण भी आते थे जब दादा द्वारा बिना अनुवाद किये बाबा जी अपनी बात कह देते थे और रामदास अपनी । मैं प्रत्यक्षदर्शी रहा इस अवसर पर । (मुकुन्दा)

अलौकिक यर्थाथ के लेखक, राजदा द्वारा महाराज जी की वेद मंत्रों से आरती करते वक्त घबड़ाहट में मंत्र भूल जाने पर बाबा जी ने **आगे** के मंत्र कहकर उनकी गाड़ी चला दी ।

वृन्दावन में अथवा कैंची में अनुष्ठानों के समय वेदपाठियों-कर्मकाण्डियों द्वारा अशुद्ध उच्चारण अथवा कर्मकाण्ड की विधाओं में त्रुटियों पर महाराज जी से उन्हें फटकार मिलती रहती थी उनकी ऐसी त्रुटियाँ स्पष्ट करते हुए (जब कि महाराज जी स्वयँ उस अनुष्ठान-स्थल पर विद्यमान रहते ही न थे ।)

अनुष्ठान का वरण स्वीकार किये श्री किशोरी रमणाचार्य (वृन्दावन) द्वारा शतचण्डी के मध्य पुत्र-प्राप्ति हो जाने के कारण अपने **अशौच** की शंका किये जाने पर महाराज जी ने उन्हें शास्त्रोक्त विधाओं पर उस श्लोक की ओर ध्यान दिला दिया जिसमें **वरण** हो जाने के बाद ऐसे अशौच को नकार दिया गया है ।

महाराज

शंकर जी के स्थापित मन्दिरों में लिंग पर चढ़े जल की निकासी के लिए *शक्ति* के आगे एक नाली-सी बनी होती है जिसे लाँघना सर्वथा वर्जित है और इस कारण ही लिंग की प्रदक्षिणा *आधी* ही की जाती है। श्री होतृदत्त शर्मा ने कैंची में इस विधा का स्पष्ट उल्लंघन देखकर अपनी शंका बाबा जी के समक्ष प्रकट कर दी। तब बाबा जी ने उनका ध्यान इस

सम्बन्ध में शास्त्रोक्त विधाओं के एक श्लोक की ओर आकर्षित किया परन्तु शर्मा जी को *वह* श्लोक याद न आया। तभी बाबा जी ने स्वयँ ही उस *श्लोक* को कहना प्रारम्भ कर दिया — जिसके अनुसार यह प्रतिबन्ध पहाड़ों में स्थापित शिव जी के मन्दिरों पर लागू नहीं होता । सुनकर शर्मा जी मूक हो गये ।

महाराज

कु० गीता निश्शंका के अनुसार (जिसे पूर्व में उद्धत किया जा चुका है) महाराज जी अपनी कैम्बोडियन भक्त के साथ कैम्बोडिया में शुद्ध संस्कृत एवं कैम्ब्रोडियन भाषा में ही बात करते थे ।

महाराज

और अक्सर महाराज जी स्वयँ ही वार्ताओं में, अपनी उक्तियों में रामायण, गीता, भागवत आदि की चौपाइयों, श्लोकों आदि को बड़ी मधुर वाणी में स्थान देते रहते थे । ज्ञात-अज्ञात न मालूम कितने दृष्टान्त होंगे इस सम्बन्ध में, कहाँ तक गिनाई जा सकती हैं उनकी **'जाकी सहज श्वास श्रुति चारी'** की गाथायें ।

वैसे भी उनकी सभी लीलाएं भी तो *इस* **सम्पूर्ण** ज्ञान का ही निरूपण करती हैं ।

महाराज

अपनी महासमाधि के कुछ ही पूर्व श्री कैंचीधाम के आश्रम क्षेत्र में एक विधिवत निर्मित *यज्ञशाला* हेतु महाराज जी बहुत *हलचल* मचाते रहे और फिर एक दिन स्वयँ ही उठकर उस स्थान-विशेष में आप पहुँच गये और वहाँ चक्कर लगाते बताते चले गये (जहाँ-तहाँ निशान लगवाते हुए) कि कहाँ वेदी बनेगी, कहाँ (कितना लम्बा चौड़ा) यज्ञ कुण्ड बनेगा और कहाँ कहाँ उसके अन्दर चार खम्भे एवं बाहर के बारह खम्भे खड़े होंगे । इसी के हिसाब से यज्ञ-शाला की लम्बाई-चौड़ाई भी निर्धारित हो गई ।

और *जब* निर्माण के समय शास्त्रोक्त प्रमाणों एवं विधि तथा परिमाण के अनुसार *नपाई की गई* तो *जहाँ* भी *जिस* निर्माण हेतु बाबा जी ने निशान लगवाये थे, उनमें सूत-भर का भी अन्तर न हो पाया !!

(शास्त्रोक्त विधि से प्रमाणित परिमाणों के अनुसार ही बाबा जी महाराज भी कदम-निशान लगवाते चले गये थे !!)

महाराज

श्री माँ आनन्दमयी के जीवन में घटित एक विशिष्ट प्रसंग को उद्धृत करते हुए उनके एक अन्तरंग भक्त, दादा ब्रह्मचारी ने लिखा है —

वर्षों पूर्व एक बार आनन्दमयी माँ तीर्थ यात्रा के मध्य अनेक तीर्थों और प्रमुख मंदिरों का दर्शन करतीं पूना पहुँची। वहाँ भक्तों ने उनसे वार्ताओं के मध्य सूचना दी कि पास में ही **पुण्यस्थली** की एक गुफा में एक प्रसिद्धि-प्राप्त साधू महाराज अपनी भाव समाधि में ध्यानस्थ रहते हैं। सुनकर माँ को भी जिज्ञासा हो उठी, और वे उन साधू महाराज के दर्शनों को गुफा में पहुँच गईं। तब ज्ञात हुआ कि साधू महाराज और कोई नहीं, स्वयँ बाबा नीब करौरी महाराज जी ही हैं !! माँ उनके दर्शन कर मगन हो उठीं। उन्होंने तब बाबा जी से *वेदों तथा वेदान्त* पर अनेक प्रश्न पूछे। दादा ब्रह्मचारी महोदय लिखते हैं कि महाराज जी ने तब विस्तार से हर प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देकर माँ की जिज्ञासाओं की पूर्ण रूपेण तुष्टि कर दी !!

"जाकी सहज श्वास श्रुति चारी", के लिये यह सब कौन बड़े कौतुक का विषय था। स्वयँ ही श्रुतियों-स्मृतियों, वेदों, पुराणों आदि के **सार** बाबा जी महाराज को विद्या-ज्ञान प्राप्ति हेतु किसी प्रकार की पढ़ाई-लिखाई की लौकिक क्रिया से सरोकार ही कब रहा? राम और कृष्ण के तो **गुरु** थे, और उनके पठन-पाठन का भी उल्लेख है। परन्तु सदाशिव शंकर भगवान के तो न कोई **गुरु** थे और न पठन-पाठन की ही आवश्यकता थी। तब रुद्रावतार बाबा जी को भी **गुरु** एवं विद्याध्ययन की कैसे आवश्यकता पड़ती ?

महाराज

यहाँ एक बार पुनः यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि महाराज जी ने तो बाल्यावस्था-किशोरावस्था के बीच की वय में ही अपना पैतृक घर-द्वार छोड़ दिया था — अपनी त्रिगुणात्मक काया के परिष्करण हेतु। और सत्रह वर्ष की आयु के अन्दर ही वे, अपनी ही वाणी के अनुसार, हर प्रकार से **सम्पूर्ण** बन चुके थे। परन्तु किस माध्यम से अथवा कैसे — ज्ञात

नहीं। अवतार विभूति बाबा जी महाराज का यह रहस्य *सदा* रहस्य ही बना रहेगा कि किस सिद्धि के अन्तर्गत वे संस्कृत के अलावा भी (हमारे ज्ञान में) जर्मन, कैम्बोडियन और अंग्रेजी तथा हमारे देश की अन्य भाषाओं को समझ अथवा बोल लेते थे !!

महाराज

निस्पृहता के प्रतिरूप
(मान-अपमान से परे)

बाबा जी महाराज **बाबा लछमन दास** (लक्ष्मण दास) बनकर ग्राम नीब करौरी आये थे। नीब करौरी के पूर्व वे **तलैय्या बाबा**, **हाँडी बाबा**, **तिकोनियाँ बाबा**, आदि भी कहलाते रहे। और जब नीब करौरी से निकले तो **बाबा नीब करौरी** नाम से प्रसिद्ध हो उठे। यह नाम उन्हें किसने दिया, ज्ञात नहीं पर लगता है कि यह नाम — ***'नीब करौरी वाले बाबा'***— उनके नीब करौरी प्रवास के मध्य, वहाँ से निकलने के पूर्व ही फर्रुखाबाद तथा अन्य जिलों के भक्तों ने **पहिचान** स्वरूप दे दिया होगा। अपनी प्रथम लीला-स्थली से जुड़ा यह नाम बाबा जी ने भी स्वयँ ही ओढ़-स्वीकार कर **नीब करौरी** ग्राम को अमर कर विश्वविख्यात कर दिया।

और जब बाबा जी उत्तराखण्ड आये तो, शायद, **नीब करौरी** का ठीक ठीक उच्चारण न कर पाने, अथवा **नीब** एवं **करौरी** इन दो शब्दों को ठीक से न समझ पाने के कारण वहाँ वे **नीम करौली बाबा** कहलाने लगे। पाश्चात्य देशों के भक्त भी उन्हें **बाबा नीम करौली** ही कहते रहे और इसी नाम को लेकर अमेरिकन भक्त रिचर्ड एलपर्ट (भारत में **रामदास**) ने बाबा जी पर अपनी पहली पुस्तक **बी हेयर नाउ** बाबा जी के सामने ही लिख डाली थी और दूसरी **मिरेकिल ऑफ लव** महासमाधि के बाद लिखी।

इलाहाबाद में तो कुछ लोग उन्हें *निमकौड़ी बाबा* (नीम के फल से जुड़ा नाम) कहने लगे और अन्य कुछ प्रान्तों के लोग **नीम करोली बाबा** भी।

परन्तु अपनी प्रसिद्धि-ख्याति के प्रति सर्वथा उदासीन, सदा दूर भागने वाले बाबा जी महाराज अपने नाम के इन अपभ्रंशों, उसकी इस प्रकार की तोड़-मरोड़ की ओर सदा ही निरपेक्ष रहे, और न ही उन्होंने

इन्हें सुधारने अथवा सुधरवाने की कभी चेष्टा ही की । अधिकतर भक्त उन्हें **महाराज** कहकर सम्बोधित करते थे, और कोई उन्हें बाबा जी, बाबा, सरकार, स्वामी आदि से । परन्तु **बहुनामी** निःस्पृह बाबा जी के लिए *सभी* नाम, सभी सम्बोधन एक समान थे। **'तुम मुझे किसी भी नाम से पुकारो, किसी भी नाम से प्रेमपूर्वक याद करो, मैं तुम्हारा योग-क्षेम वहन करूँगा।'** उनकी *स्पृहा* एक ही ओर लक्षित रहती थी — **जन जन हिताय** ।

अपनी भ्रामक लीलाओं के कारण वाह्य रूप से **अन्यथा** लगने वाले (परन्तु) अन्तर से वैराग्य की प्रतिमूर्ति, त्रिगुणातीत, स्वयँ सर्व-सिद्ध, अवतार-विभूति बाबा जी महाराज के लिए संसार की कोई भी वस्तु — अमूल्य से अमूल्य, सुन्दर से सुन्दर **अप्राप्य** न थी, परन्तु कभी भी *वांछित* नहीं रही । **प्रकृति** उनकी दासी थी और उन्हें **सबकुछ** स्वतः ही उपलब्ध था परन्तु (जैसा पूर्व में भी कहा जा चुका है) प्रकृति की *इस सेवा* को निःस्पृह बाबा जी महाराज ने *न* तो कभी अपनी **दैहिक-दैविक-भौतिक** कही जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही स्वीकार किया, और *न* अपनी महत्ता प्रगट करने हेतु, अथवा अपनीं ख्याति बढ़ाने हेतु ही । (*ख्याति-प्रसिद्धि* के सन्दर्भ में सर्वश्री के० एम० मुन्शी और राजा साहब भद्री की भर्त्सना का प्रसंग पूर्व में दिया जा चुका है ।)

अर्पित सोना-चाँदी, द्रव्य भरी थैलियों आदि को ठुकराते उन्हें क्षण का समय भी न लगता था । नीब करौरी में एक रानी द्वारा अर्पित सोने-चाँदी के आभूषणों को उन्होंने उसी वक्त लौटा दिया था । (जिसके कारण ही उन्हें ग्राम के ब्राह्मण वर्ग का कोप भाजन बनना पड़ा था ।) इसी भाँति वे विदेशियों द्वारा द्रव्य-दान के प्रति भी उदासीन रहते थे परन्तु इसके विपरीत किसी गरीब का भाव से अर्पित *एक* पैसा, *एक* रुपया भी उनके सिर-माथे चढ़ जाता था । इस सम्बन्ध में एक मार्मिक लीला इस प्रकार है जिसका विवरण मुझे श्री केहर सिंह जी से प्राप्त हुआ ।

श्री प्रेमलाल माथुर (लखनऊ) के घर में एक नौकर था जो घर की सभी प्रकार की नीच टहल करता था। एक दिन काम से फुर्सत पाकर वह भी दो ढाई बजे (दोपहर बाद) उस कमरे की देहरी पर आ गया जहाँ बाबा जी आराम पा रहे थे, प्रसाद के उपरान्त (श्री केहर सिंह जी, सूरज बाबू और प्रेम लाल जी से बातें करते ।) आकर उसने बाबा जी को प्रणाम किया और पुनः देहरी पर उकडूँ बैठ गया अपना सिर घुटनों में टिकाये—

बिना बाबा जी की तरफ देखते । तब बाबा जी ने उससे पूछा, **"तेरा कोई गुरु है ?"** उसने उसी तरह मुँह नीचा किये, बिना डोले, गर्दन हिला दी हामी भरते। **"तू अपने गुरु के पास जब जाता था तो उसे एक रुपया देता था ?"** उसने हामी में फिर गर्दन हिला दी। **"तू *मुझको* देने के लिए भी एक रुपया लाया है ?"** गर्दन फिर हिल गई हामी में । तभी बाबा जी तनिक ऊँची आवाज में बोल उठे, **"तब देता क्यों नहीं ?"** और उसका *वह* रुपया लेकर महाप्रभु ने ***अपने माथे से लगा कम्बल में छिपा लिया*** !!

इसी प्रकार छप्पन-भोग उन्हें तृप्त न कर पाते और न राजसी रहनी अथवा राजसी शयन-आराम की व्यवस्था ही उन्हें **आराम-विश्राम** दे पाती (यद्यपि भक्तों की *रुचि रखने* को वे राजसी भोग एवं रहनी को भी स्वीकार कर लेते थे ।) गरीब की गुड़-नमक के साथ रूखी-सूखी रोटी, अथवा प्रेम से समर्पित भोज्य पदार्थ उन्हें तृप्त कर देते । कम्बल में लिपटे हुए सड़कों में, खुले आसमान के नीचे मैदानों में घास के ऊपर, पत्थरों के ऊपर, सड़कों में बनी पुलियों के नीचे लेटकर उन्हें *पूर्ण* विश्राम प्राप्त हो जाता । वस्तुतः उन्हें कभी भी कोई सांसारिक् वस्तु, वैभव, सम्पदा, यशादि **मोहित** न कर पाते — **'जाहि न चाहिय कबहुँ कछु ।'** नँगे पाँव ही सभी यात्रायें होती ।

एक ओर जहाँ समृद्ध भक्त जनों से, अफसरशाही से, राजकीय सत्ता की ओर से मान-सम्मान के प्रति महाराज जी पूर्णतः *निरासक्त* रहते वहीं कभी कभी घोर अपमान (यथा, जेल में बन्द किया जाना, अपशब्दों से भर्त्सना किया जाना, पुलिस द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना — आदि) के प्रति भी महाप्रभु निर्विकार बने रहते । मान-अपमान से परे बाबा जी के लिए दोनों स्थितियाँ एक समान थीं, उन्हें **छू** नहीं सकती थीं । कहते रहते थे **अपना मान-मर्दन कराते रहना चाहिये** (अन्तर के अहं को चूर करने के लिय ।)

जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है, निर्मित कराये गये मंदिरों-आश्रमों में, जो मूलतः प्रचार-प्रसिद्धि के माध्यम हुआ करते हैं, बाबा जी ने कहीं भी *अपना* नाम तक नहीं आने दिया । सभी मंदिर-आश्रम **हनुमान** जी के नाम पर बनवाये और उनकी व्यवस्था पूर्ण होने पर उन्हें विभिन्न ट्रस्टों को सौंपते चले गये । **अपना** कहने को कुछ भी न रखा ।

यह तो उनके महाप्रयाण के बाद ही भक्तों ने इन मंदिरों-आश्रमों में उनका नाम जोड़ दिया ।

वैसे भी, किसी स्थान में, मंदिरों/आश्रमों में महाराज जी अधिक काल के लिये कभी नहीं रहे। रमते जोगी कभी यहाँ तो कभी वहाँ । **सीख** देने को कहते रहते थे **एक स्थान में अधिक रहने से उस स्थान से मोह हो जाता है ।**

निःस्पृह बाबा जी महाराज की कोई भी वस्तु **अपनी** न थी इस संसार में — *केवल भक्तों के अपने प्रति* ***निस्पृह प्रेम*** के सिवा — **'हम भक्तन के भक्त हमारे' बस** ।

सदा के केवल कौपीनधारी बाबा महाराज ने नीब करौरी में सामूहिक लीला के मध्य कौपीन के स्थान पर एक धोती धारण कर ली थी आधी अधोवस्त्र के रूप में और आधी उत्तरीय बनाकर । पुनः भ्रमण के समय भक्तों ने उन्हें एक कम्बल, अथवा (गर्मियों में) एक चादर भी ओढ़ा दी जिसे वे *बदले जाने पर* त्यागते रहते थे और फिर बाद बाद में प्रेमी भक्तों ने अपनी रुचि के अनुसार उन्हें सूती अथवा ऊनी बनियान भी पहिनाना प्रारम्भ कर दिया । एक दिन तो कैंची में **'हम भक्तन के भक्त हमारे'** वाले कौतुकी बाबा जी महाराज ने, भक्तों की इच्छा रखने को, एक के बाद एक **नौ** पुलोवर *एक साथ* पहिन लिये !! और जब भीतर अपनी कुटी में पहुँचे तो उन्हें उतार फेंकते हुए बोले, **"मार दिया मुझे ....ने।"** तब केवल *एक* धोती पहिने घंटों बैठे रहे ।

अपनी वेशभूषा तथा *रहनी* के प्रति सदा उदासीन बाबा जी एक दिन शिमला में कम्बल से मुँह ढाँक कर गठरी बने सड़क में पड़े थे । तभी वहाँ से (उ० प्र० के भूतपूर्व गर्वनर) श्री के० एम० मुन्शी भी गुजरे । उन्हें देखकर एक सज्जन, त्रिवेदी जी ने उंन्हें रोककर कहा, "देखिये मुन्शी जी, ये यहीं सड़क पर पड़े हैं हठ करते । घर नहीं चल रहे हैं ।" मुन्शी जी ने पूछा, "कौन हैं ये ?" और तभी गठरी हिली और एक मुँह बाहर निकला और बोल उठा, **"मुन्शी ! तुम यहाँ हो ?"** तब पहिचान कर मुंशी जी के मुँह से निकल गया, **"अरे ! नीब करौरी बाबा !! आप यहाँ ?"** (स्मृति-सुधा में श्री के० एम० मुन्शी ।)

एक ओर जहाँ सिगड़ी की आग तापने बैठ जाते, वहीं जाड़े-पाले-ओस की रात में कैंची में अथवा वृन्दावन में प्राँगण में भी घूमते रहते २-३ घंटे — शरीर धर्म की ओर सर्वथा उदासीन बने ।

मान-अपमान से सर्वथा परे बाबा जी महाराज के अन्तर में बिगड़े मिजाज भक्तों द्वारा उनकी भर्त्सना *केवल विनोद* का भाव उत्पन्न कर देती। ऐसे कई दृष्टान्त हैं जब उनकी लीलाओं को न समझ पाने से मन में भ्रामक विचार आ जाने के कारण भक्तों ने उनकी प्रताड़ना की (जिनमें मेरी पत्नी भी शामिल है ।) वृन्दावन में एक दिन सबके सामने ठाकुर . . . ने बहुत कुछ कह डाला बाबा जी से । रात्रि ८ बजे दरबार लगा था । ठाकुर साहेब आये तो सभी की तरह उन्हें भी प्रसाद-रूप बताशे की एक पुड़िया दे दी गई । तभी वे बोले, "महाराज, सब्जी की बोरी ले आया हूँ, भूदेव को दे दी है ।" उनके अन्तर में *इस* सेवा का *गर्व-सा* देखकर महाराज जी बोल उठे, **"अरे ! ये सब्जी लाया है । इसे रसगुल्ला-प्रसाद दो ।"** बस क्या था — ठाकुर साहब का पारा चढ़ गया । तेज आवाज में बोले, "जब तक सब्जी की बात नहीं की थी, तब तक बताशे, और अब रसगुल्ले ? नहीं चाहिए मुझे आपके रसगुल्ले ।" और तुनककर चले गये। उनका ऐसा व्यवहार देखकर हम सभी कुछ हतप्रभ हो गये परन्तु महाराज जी हँसते रहे— **"कैसा बावला है ?"**

लेकिन बाबा जी तो उनसे प्रेम करते ही थे। सो सुबह *उसी* प्रेम की डोर से *खिंचे* ठाकुर साहब आकर बाबा जी के चरण चाँपने लगे। (मुकुन्दा)

महाराज

इलाहाबाद में कुम्भ के अवसर पर महाराज जी मेला क्षेत्र में घूमने निकले । एक अधेड़ महिला अपने टेन्ट के आगे रोटियाँ सेंक रही थी और साथ में कुछ भजन गुनगुना रही थी । न मालूम बाबा जी ने उसमें क्या देखा कि उस पर कृपा करने को तत्पर हो गये। पास जाकर बोले, **"माई, एक रोटी हमें भी दे दे ।"** महिला ने उनकी तरफ देखा (पर क्या पहिचानती उन्हें ?) और रोष से बोली "शरम नहीं आती हट्टा-कट्टा भीख माँग रहा है ।" महाराज जी पर इस प्रताड़ना का क्या प्रभाव होना था । निहोरा करते रहे, **"बड़ी भूख लगी है ।"** तब वह महिला बोली, "अभी ठहर जा, पहले ठाकुर जी को भोग लगा लूँ ।" और भोग लगाकर उसने

दो रोटी बाबा जी को दे दीं । बड़े प्रेम से खा गये और साथ के भक्तों को भी खिलाई !!

मान-अपमान के प्रति *इसी* भाव को अपने अंतरंगों के अन्तर में प्रभावी बनाने हेतु महाराज जी अक्सर उन्हें भी ऐसे ही *मधुकरी* को भेजते रहते थे —**"जाओ, खिचड़ी माँग कर लाओ — रोटी माँग कर लाओ ।"**

महाराज

पुलिस दारोगा नासिर अली के सिपाहियों ने बाबा जी महाराज को **लावारिस**-सा घूमते पाकर उन्हें दफा १०९ में थाने में बन्द कर दिया । दारोगा के आने पर उन्हें भी सूचित कर दिया । रात में हवालात में पहरे पर तैनात सिपाहियों ने सुबह दारोगा जी से कहा, "हुजूर, वह दफा १०९ वाला मुजरिम तो कोई *जिन्न* मालूम देता है । रात भर वह हवालात के ताला-बन्द दरवाजे से बाहर आता-जाता रहा, पेशाब करता था और फिर बन्द हो जाता था, और कभी हवालात की छत पर टहलने लगता था । हुजूर, हम तो रात भर खौफ से काँपते रहे और खैर मनाते रहे ।"

सुनकर नासिर अली समझ गये कि *आप* कोई बहुत पहुँचे हुए फकीर हैं । सो खुद जाकर हवालात का ताला खोल बाबा जी से बहुत प्रकार से क्षमा माँगी, अपने घर ले आये सम्मानपूर्वक और उन्हें स्नान आदि करवाकर *प्रसाद पवाया* । इरादा तो था कि अब बाबा जी को अपने ही यहाँ रोके रहेंगे, परन्तु शाम को दिशा-मैदान का बहाना कर बाबा जी बाहर गये तो वहीं से **अदृश्य** हो भाग निकले, यद्यपि नासिर अली ने उनके पीछे अपने दो लड़के लगा दिये थे कि फकीर साहब कहीं चले न जायें !!

उक्त घटना श्री नासिर अली ने स्वयँ अपने मुँह से केहर सिंह जी व सूरज बाबू को लखनऊ में बाबा जी के बार बार *मना* करने पर भी सुनाई ।

प्रसंगवश — इसके पूर्व तो नासिर अली ने बाबा जी के दर्शन कभी किये भी न थे । पर लगता है अली साहब बाबा जी के पूर्व जन्म के ही परिकर रहे होंगे — क्योंकि :—

बाबा जी डी० आई० जी० ओंकार सिंह जी की गाड़ी में बैठे हजरतगंज – लखनऊ से गुजर रहे थे कि मुख्य चौराहे के पास बाबा जी

एकाएक पीछे मुँह कर बोल उठे — **ओंकार सिंह तूने अभी तक नासिर अली को बहाल नहीं किया ?**— (नासिर अली उस समय मुअत्तल थे ।) इस पर ओंकार सिंह जी बोले, "हो गया हुजूर ! नासिर अली बहाल हो गया ।" बाबा जी बोले, **"कैसे हो गया ? तू तो अभी यहीं है ।"** इस पर भी ओंकार सिंह जी बोल उठे, "हो गया बहाल । आपने हुक्म जो कर दिया है ।"

कुछ क्षणों बाद बाबा जी ने फिर पूछ दिया, **"ओंकार सिंह ! बता, *हमें नासिर अली की याद कैसे आ गई ?*"** ओंकार सिंह जी क्या उत्तर देते इस प्रश्न का ? चुप ही रहे । वे क्या जानते कि नासिर अली बाबा महाराज का पूर्व का परिकर है (ओर शायद *तब* अपने अल्लाह से कातर हो दुआ माँग रहा हो !!) बाबा जी अपने प्रश्न पर स्वयं ही हँसते रहे ।

(और अपने इस परिकर को बाबा जी ने पूर्व वर्णित लीला कर — अपने को दफा १०६ में गिरफ्तार करवा — पुनः दर्शन दे दिये ।)

अपनी आप बीती सुनाते मुरीद नासिर अली ने पुनः कहना प्रारम्भ कर दिया :—

तब से मैं हुजूर की याद न भुला सका । और जब भी मेरे ऊपर कोई गर्दिश आती है तब मैं दिन भर फाका (व्रत) करता हूँ और शाम को वजू कर इबादत (प्रार्थना) वाले कमरे में अपने को बन्द कर दरवाज़े-खिड़की सब बन्द कर लेता हूँ । फिर हुजूर की याद (ध्यान) करता हूँ तो *आप बिना दरवाजा-खिड़की खुले सामने परगट (उपस्थित) हो जाते हैं मेरी मुसीबत दूर करने — और फिर वैसे ही चले भी जाते हैं* ।

नासिर अली की अपने पर इस दया की गाथा बाबा जी भी सिर झुकाये सुनते रहे *बिना* किसी प्रतिवाद के !!

महाराज

पाँचवें दशक में तत्कालीन यू० पी० शिक्षा बोर्ड के सचिव का पुत्र महाराज जी का भक्त हो चला था । वह नित्य बजरंगगढ़ आकर बाबा जी के दर्शन करता था । सबको देख उसके मन में भी इच्छा होती थी कि महाराज जी को अपने भी घर ले चलूँ पर अपने पिता के डर से, जो साधु-सन्तों से चिढ़ते थे तथा उग्र स्वभाव के भी थे, वह हिम्मत न जुटा पाता था इसके लिये ।

एक दिन बाबा जी के एक भक्त (स्व०) कैलाश चन्द्र जोशी ने महाराज जी से कहा, "महाराज, आज से मैंने क्रोध करना छोड़ दिया है।" बाबा जी सुनकर केवल हँस दिये, पर उसी दिन सन्ध्या समय सचिव साहब के लड़के से बाबा जी बोले, **"चल, तेरे घर चलते हैं ।"** लड़का घबरा गया कि पता नहीं पिता कैसा व्यवहार करेंगे। पर तब तक तो बाबा जी उठकर चलने भी लगे आगे। साथ में कैलाश जी और अन्य कुछ और लोग भी चल निकले । जब डाँडी सचिव के निवास स्थान पर पहुँची तो लड़के ने दौड़कर भीतर जा अपने पिता को शांत रहने की प्रार्थना की ।

परन्तु महाराज जी तो कुछ *दूसरा* ही **खेल** करने जा रहे थे । सामने बैठे सचिव महोदय से बोले, **तू तो बड़ा सन्त है ।** सचिव का मुँह इस तू-तड़ाक से एकदम लाल हो गया । पर कुछ बोले नहीं । बाबा जी ने फिर कह दिया, **"तू बड़ा सन्त है ।"** अब तो वह और भी अधिक क्रोधित हो उठ खड़े हुए, और तभी बाबा जी ने तीसरी बार कह दिया, **"तू बड़ा सन्त है ।"** बस क्या था, सचिव साहब आग बबूला हो चिल्ला उठे अंग्रेजी में, "बदतमीज, असभ्य, निकल जा ।" सुनते ही कैलाश जी ने अपनी बाहें समेट लीं उन्हें मारने के लिये, और तभी कैलाश जी को अपनी बाँहों में लपेटे बाबा जी, **"चल-चल"** कहते बाहर निकल आये । बाहर आकर मुस्कुराते हुए बोले, **"तू तो कह रहा था क्रोध करना छोड़ दिया । *हमें तो नहीं आया गुस्सा* !!"**

महाराज

पूर्व में विवरण दिया जा चुका है कि किस तरह गतिशील ट्रक को वासुदेव ड्राइवर की **अचेतावस्था** में टूटी सड़क पर पहुँचने के पूर्व ही बाबा जी ने अपनी अलौकिक शक्ति से रोक दिया था । आगे :—

तब हम सभी बाबा जी के साथ पैदल ही काठगोदाम पहुँचे । वहाँ रात्रि के पहरे पर तैनात पुलिस वालों ने एक कम्बलधारी व्यक्ति के साथ कई अनजान लोगों की छाया अंधेरे में देख कड़ककर पूछा, "कौन है ?" महाराज जी ने उसी कड़क के साथ उत्तर दिया, **"चोर, पकड़ लो।"** पुलिस वाले उनकी भर्त्सना करते हम सबको थाने पकड़ ले चले बाबा जी को आगे कर । थानेदार खबर पाकर आया तो प्रभु को देखते ही उनके श्री-चरणों में लोट गया । यह देखकर पुलिस वाले तो हक्का-बक्का रह

गये। जब थानेदार ने उनसे बहुत बुरा-भला कहना प्रारम्भ किया तो महाराज जी ने उसे रोक दिया कि उनका कोई कसूर नहीं है — वे तो अपनी ड्यूटी कर रहे थे ।

न भर्त्सना का कोई असर न पुलिस द्वारा पकड़े जाने का !! (पूरनदा)

महाराज

आगरा में बाबा जी *अपनी धुन* में सड़क पर पैदल चले जा रहे थे कुछ भक्तों के साथ । तभी एक चौराहे पर यातायात नियंत्रित करते सिपाही ने बाबा जी की तरफ से आते यात्रियों, वाहनों आदि को हाथ उठाकर रुक जाने का आदेश दे दिया । परन्तु बाबा जी अपने (समाधिस्थ) भाव में आगे बढ़ते चले गये । सिपाही को अपने निर्देश का ऐसा उल्लंघन सह्य न हुआ और उसने चबूतरे से उतर कर बाबा जी को अपशब्द कहते थप्पड़ मार दिया ।

निःस्पृह बाबा जी पर इस अपमान का कोई असर न पड़ा, परन्तु घटना की जानकारी एक भक्त के घर बाबा जी के श्री-चरणों में उपस्थित नगर के पुलिस अधीक्षक को लग गई । उसने सिपाही को वहीं बुलाकर बाबा जी के ही सामने बुरा-भला कह सस्पेन्ड करने की धमकी दे दी । तभी बाबा जी ने एस० पी० से कहा, **"उसको क्यों डाँटता है ? वह तो अपनी ड्यूटी कर रहा था । जान (जाने) दे उसे ।"** (केहर सिंह)

महाराज

परहित लागि असम्मान भी स्वीकार

श्री बिहारी जी के अनन्य भक्त, श्री जमुना प्रसाद त्रिपाठी तब आगरे में डी० आई० जी० – सी० आई० डी० थे अंग्रेजी राज में । अपने चरित्र एवं ईमानदारी के लिये प्रख्यात थे । बाबा जी उनके घर भी जाते रहते थे । प्रारम्भ में तो त्रिपाठी जी को उनका आना ठीक ही लगा, पर बाद में उन्हें शंका होने लगी कि कहीं बाबा जी स्वयँ किसी अन्य के जासूस तो नहीं है (मेरा तथा सरकारी तथ्यों का भेद लेने हेतु ?) शंका

धीरे धीरे *भय* में बदल गई और उन्होंने बाबा जी से साफ साफ शब्दों में कह दिया कि वे उनके घर न आया करें, परन्तु फिर भी बाबा जी **मान न मान** वाली कर त्रिपाठी जी के घर आते रहे । अन्त में त्रिपाठी जी को उनसे सख्ती से कहना पड़ा आइन्दा आप मेरे घर कदम न रखें । किन्तु बाबा जी पर *इस असम्मान* का भी कोई असर न पड़ा । (पूर्वकालिक भक्त त्रिपाठी जी का हृदय परिवर्तन जो करना था उन्हें ।) और बाबा जी जब-तब आकर उनके बँगले की चहार दीवारी पर आ बैठते !! अब क्या करते त्रिपाठी जी ?

और तब कालान्तर में जमुना प्रसाद जी स्वत: ही बाबा जी को ***बिहारी जी का ही साक्षात् स्वरूप मान*** उनके तन-मन-प्राण से ऐसे भक्त बन गये कि बाबा जी कुछ भी कहें, कुछ भी आज्ञा दें उसका वे आँख मूँदकर पालन कर डालते । इस तथ्य की पराकष्ठा स्वरूप :—

एक दिन एक नौजवान बहुत आर्त होकर बाबा जी के पास एक *ऐसी* नौकरी दिलवा देने हेतु आ गया जिसके लिये गुप्तचर विभाग के किसी बड़े अफसर की संस्तुति परमावश्यक थी । बाबा जी उसे सीधे त्रिपाठी जी के पास ले चले और उनसे कहा — **"तू लिख दे इसकी अर्जी में कि *यह मेरा लड़का है* ।"** त्रिपाठी जी नि:संतान थे — *यह तथ्य* भी सर्वविदित था । तब एक ऊँचे ओहदे पर प्रतिष्ठित सरकारी अफसर के लिये इतनी स्पष्ट झूठ *लिखना* तो दरकिनार, *बोलना* तक उसी के व्यक्तिगत चरित्र पर कितने बड़े लाँछन का कारण बन जाता और कानूनन भी कितना बड़ा अपराध होता ? कल्पना की जा सकती है ।

पर बाबा जी के केवल *एक बार* ही के कहने पर त्रिपाठी जी ने उस लड़के की अर्जी पर आँख मूँदकर लिख दिया — "यह मेरा लड़का है।" लड़के को नौकरी मिल गई और बाबा जी की आज्ञा पालन में किया गया *यह* अपराध त्रिपाठी जी को **छू** तक न सका !! (देवकामता दीक्षित ।)

"जब जानकिनाथ सहाय करें तब कौन बिगाड़ सके नर तेरो ।"

महाराज

मेडिकल डिपार्टमेन्ट (स्वास्थ्य सेवा) का एक डॉक्टर अपनी करनी के कारण सस्पेन्ड हो गया था । बाबा जी महाराज कुछ भक्तों को लेकर

उसके घर पहुँच गये, और एक भक्त को भेजकर कहा, **"जाओ, कहना बाबा नीब करौरी आये हैं ।"** भक्त गया, दरवाजा खुलवाकर बाबा जी का संदेश कहा परन्तु *अपने मद* में मस्त और (तब) एक विपदा में फँसे डाक्टर ने झिड़ककर कह दिया, "भाग जाओ । हम किसी बाबा-वाबा को न जानते हैं और न मानते हैं", और दरवाजा बन्द कर दिया । भक्त ने आकर बाबा जी से कह दी सब बात और डॉक्टर का अपमानपूर्ण आचरण भी, परन्तु बाबा जी अपनी बात पर डटे रहे और एक दूसरे भक्त को फिर भेज दिया। अबकी डॉक्टर ने और भी अधिक असभ्यता दर्शाकर बाबा जी से भाग जाने हेतु आदेश भिजवा दिया। तब भी बाबा जी वहीं बने रहे, और अपना इस प्रकार से अपमान किये जाने की परवाह न करते हुए एक आदमी को *फिर* भेजा यह कहलवाकर कि **"तुमको डाक्टर डी०एन० शर्मा, (निदेशक, स्वास्थ्य सेवायें) ने सस्पेन्ड कर दिया है और हम तुम्हें बहाल कराने आये हैं ।"** अबकी सुनकर डाक्टर बाहर दौड़ा आया परिवार समेत और बाबा जी के चरणों में गिर गया । महाराज जी उसे आश्वासन देकर उससे *बिना कुछ सेवा स्वीकार किये* चले गये ।

और तब डा० डी० एन० शर्मा को अपने समक्ष (लखनऊ) बुलवाकर उस डाक्टर की हर प्रकार से पैरवी कर उसे शीघ्र ही बहाल कर दिया !!

भक्तों के पूछने पर कि डाक्टर द्वारा इतनी अवहेलना करने के बाद भी आपने उसके ऊपर *ऐसी* कृपा क्यों की ? उत्तर मिला, **"तुमने देखा नहीं ? डाक्टर के कितने बच्चे थे ? वह सस्पेंड ही नहीं, नौकरी से भी निकाल दिया जाता । तब उसके बच्चों का, जिनका कोई हाथ नहीं था (डाक्टर की करनी में) क्या होता ?"**

हम सब बाबा जी की इस दयामयी लीला से विभोर हो गये और स्वयँ के प्रति भी बाबा जी की इस *निरन्तर* दया हेतु और भी अधिक आश्वस्त हो गये । (उषा बहादुर–दिल्ली)

महाराज

अहंकार से मनुष्य फूल सकता है, फैल नहीं सकता ।

दलित वर्ग के प्रति विशिष्ट करुणा-रूप

न आसन की इच्छा, न सिंहासन की । जहाँ जो प्रेम-भाव से बिठा दे, सुला दे, वहीं ही प्रभु अति प्रसन्न । चाहे वह ऊँची से ऊँची हस्ती का भक्त हो, चाहे प्रारब्ध का मारा लाचार हो, चाहे हरिजन, सफाई मजदूर — उनके घर जा जा कर मुक्त भाव से उनके द्वारा भावपूर्ण अर्पित प्रसाद पाते रहते। नैनीताल में चुंगी के ऊपर सफाई मजदूरों के घर, बजरंगगढ़ के पास रूसी गाँव के हरिजनों के घर और भूमियाधार तथा कानपुर में भी *तथाकथित* निम्न वर्ग एवं वर्ण के कहे जाने वाले आश्रितों के घर प्रेम का प्रसाद पाने में बाबा जी अत्यन्त सन्तुष्टि प्राप्त करते थे। नीब करौरी में तो एक बहेलिया (हरिजन) गोपाल ही उनकी सब सेवा करता था, उनके लिये गुफा में भोजन-प्रसाद भी वही लाता था। हरिजनों के प्रति बाबा जी के भावों का दिग्दर्शन श्री केहर सिंह जी द्वारा वर्णित निम्नांकित लीला द्वारा पूर्णरूपेण हो जाता है ।

एक बार लखनऊ के हनुमान सेतु में प्रतिष्ठित हनुमान मंदिर में बाबा जी के साथ गया था मैं । साथ में उमादत्त शुक्ला भी थे। हनुमान जी की मूर्ति के पांस जाकर बाबा जी उन्हें निहारते कुछ देर खड़े रहे और फिर हनुमान जी की ओर मुँहकर सड़क की ओर की रेलिंग से टेक लगाकर बैठ गये। उनकी पीठ स्वतः सड़क तथा सड़क से मंदिर तक बने पुल-मार्ग की ओर हो गई । मेरा ड्राइवर हरिजन (कोरी) था । उसके मन में भी भीतर आकर हनुमान जी को प्रणाम करने की लालसा जाग उठी। सो वह कार को भली भाँति बन्द कर पुल पार करता मंदिर को आने लगा। बाबा जी की ओर मुँह किये शुक्ला जी ने जब यह देखा तो दौड़कर उस हरिजन ड्राइवर को पुल पर ही घेर लिया और उसे धकिया कर वापिस भेजने लगे । उस तरफ पीठ किये बाबा जी ने यह सब देख-जान लिया और *बिजली की-सी फुर्ती* से स्वयँ दौड़कर पुल पर चले गये तथा ड्राइवर को शुक्ला जी की पकड़ से ऐसी जोर से छुड़ाया कि शुक्ला जी धक्का बर्दाश्त न कर पाये और एक ओर जा गिरे । और फिर शुक्ला जी की प्रताड़ना करते हुए बोले, **"तू कौन होता है इसे रोकने वाला ? तू क्या सोचता है कि यह मंदिर मैंने तेरे जैसे लोगों के लिए बनाया है ? यह मंदिर इन्हीं (हरिजन, गरीब, दीन-दुःखी जनता) के लिये बनाया है मैंने।"** ऐसा कह वे स्वयँ उस ड्राइवर का हाथ पकड़ हनुमान

जी के पास ले गये और उसे अपने हाथों से झुकाकर प्रणाम करवाया !! ड्राइवर महाराज जी की इस दीन-वत्सलता पूर्ण लीला से विभोर हो आँसू बहाता उनके श्री चरणों में लोट गया ।

महाराज

बजरंगगढ़ में एक दिन पास के **रूसी गाँव** से एक (हरिजन) कुमारी गिलास में दूध भरकर महाराज जी के लिए ले आई । वह घर से चली ही होगी कि इधर महाराज जी ने **राधा राधा** पुकारना प्रारम्भ कर दिया । महाराज जी की इस अप्रत्याशित भाव-भँगिमा को कोई नहीं समझ पाया, परन्तु न मालूम *उस* कुमारी कन्या के अन्तर में महाराज जी के प्रति कैसा उत्कृष्ट भाव था कि उसके आते ही महाराज जी उठ खड़े हुए और विभोर अवस्था में बोल उठे, **"अरी राधा, तू यहाँ क्यों आई ? मैं तो वहीं आ रहा था तेरे पास । चल, चल, मैं वहीं आता हूँ ।"** और दूध पीकर बाबा जी डाँडी मंगवाकर (रूसी को) डाँडी में बैठकर चल दिये । कुछ अन्तरंग भक्त भी साथ हो लिये ।

गाँव जाने को केवल पगडंडी का मार्ग था टेढ़ा-मेढ़ा । किसी तरह डाँडी वाले तंग पगडंडी पर कुछ दूर चले पर एक मोड़ ऐसा आ गया कि पहाड़ की तरफ तो एक बड़ा मोटे तने वाला पेड़ खड़ा था और दूसरी तरफ खड्ड। डाँडी लेकर उसमें *घूम पाना* असंभव ही था, वह भी महाराज जी को उसमें बिठाये बिठाये । अतएव डाँडी वालों ने डाँडी जमीन में रख दी कि *ऐसे* **पार** नहीं जा सकते — कम से कम महाराज जी को उतरना ही पड़ेगा । परन्तु महाराज जी **बालहठ** में आ गये कि **'हम तो डाँडी में ही जायेंगे !!'** और फिर कुछ भक्तों से कहा, **"तुम उठाओ डाँडी।"** अर्धचेतना में बावले भक्तों ने बिना कुछ सोच-समझे उठा ली डाँडी और देखते, देखते महाराज जी के उसमें बैठे बैठे ही डाँडी ने पेड़ की *तीन चौथाई* परिक्रमा कर दी !! किसी को आभास तक न हो पाया कि *यह* सब कैसे हो गया !! काफिला आगे को अग्रसर हो गया ।

गाँव पहुँचकर बाबा जी *पहिले* उस बाला के घर गये। वहाँ भोग प्रसाद पाया। पूरी हरिजन बस्ती बाबा जी को घेर कर बैठ गई आनन्द से। अनपढ़, सरल-हृदय, निष्कपट, छल-छिद्र से विहीन *इन* समाज से उपेक्षित

लोगों ने महाराज जी में **अपने भगवान** के दर्शन ***बिना किसी योग-साधना के ही पा लिये*** !! (पूरनदा)

महाराज

भूमियाधार का मंदिर भी महाराज जी ने इर्द-गिर्द बसी हरिजन बस्ती के ही बीच बनवाया जिसमें मुख्यतः वे ही लोग दर्शन करने, प्रसाद पाने आते हैं ।

मुसलमान भक्तों (जिनमें स्व० रफी अहमद किदवई और उनका परिवार, श्री चिश्ती (सपरिवार) तथा श्री इसलाम अहमद, गवर्नर अकबर अली खाँ, डॉक्टर एम० यू० खान, श्री बशीर अहमद, नासिर अली आदि भी शामिल थे) के घर भी उसी मुक्त भाव से प्रसाद ग्रहण होता जिस प्रकार सवर्णों के घर में — शायद, उससे भी अधिक प्रेम से । प्रभु के इस साम्प्रदायिक सद्भाव का ऐसा विचित्र प्रभाव भक्तों पर पड़ा कि आज आश्रमों में सभी वर्ण एवं वर्ग के भक्त तथा दर्शनार्थी — मिस्त्री-मजदूर, विदेशी, आदि एक ही साथ बैठकर प्रसाद पाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। सब में *एक ही* आत्मा का दर्शन महाप्रभु की अपनी अलौकिकता थी । न किसी के द्वारा स्पर्श से संकोच था और न किसी के द्वारा भावपूर्ण अर्पित प्रसाद से ही । (**'सब मम प्रिय सब मम उपजाये।'**) स्व० किदवई की मज़ार (समाधि) पर भी बाबा जी जब-तब चले जाते थे ।

महाराज

मातृवर्ग के प्रति विशेष कृपा-भाव

(एक अनुभूत चिन्तन)

"नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्त हेतवे । विश्वेशराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ।"

बाबा जी महाराज की *भारहीन* होकर *बाल-रूप* में मेरी गोद में बैठ जाने की लीला ने (जिसका मैं पूर्व में वर्णन कर चुकी हूँ) मुझे आराध्य देव की मातृवर्ग के साथ विशेष-रूप की अन्तरंगता लिये की गई लीलाओं पर (जिनके कारण मैं प्रभु के प्रति कुंठाओं से ग्रस्त थी) सार्थक विवेचन एवं उनका विश्लेषण करने हेतु एक *नई प्रेरणा एवं दिशा* दे दी । और *तब*

एक एक कर उनके द्वारा मेरे तथा अन्य भक्त माइयों पर दया-कृपा-करुणा की उनकी विभिन्न लीलाओं में *निहित मूलगत उद्देश्य* मेरे अन्तर में नई नई अनुभूतियाँ देता चला गया । इन्हीं लीलाओं के मन्थन में मुझे रामायण एवं भागवत के अनेक लीला-प्रसंग भी स्मरण होने लगे तथा उनमें महाराज जी की इन भ्रामक-सी लगने वाली लीला-क्रीड़ाओं का पूर्ण-रूपेण समन्वय भी होता चला गया ।

केवल दृष्टान्त रूप — (सूक्ष्म में) :— वेदोपनिषद के अन्तर्गत वर्णित भगवान के **सत्य रूप** की आराधना (श्री सत्यनारायण जी की **मूल** कथा) में दिये गये जिन चार अध्यायों का मैं नित्य पाठ करती हूँ, उसके मध्य एक दिन महाराज जी की लीलाओं को मन-मानस में गुनती हुई पाठ में आये एक संदर्भ में मेरा मन उलझ गया और महाराज जी के **लीला-चरित्र** की एक नई ही अनुभूति दे गया । प्रसंग था :—

भगवान के **'सर्वांग सुन्दरम् रामं, सच्चिदानन्द लक्षणम्'** में व्याप्त **मोहिनी** को (जिसकी मात्र झलकी पाकर ही वनवासी **बैरागी** मुनिगण भी *विस्मृत* हो जाते हैं — **'वभूः विस्मृता दृष्ट्वा मुनियो वनवासिनः'**) निहार कर देवताओं के मन में भी उत्कट अभिलाषा जाग उठी कि *ऐसी* माधुरी लिये भगवान राम का हम भी आलिंगन करें । और उन्होंने **आलिंगामो वयँ रामो** कह कर अपनी अभिलाषा भगवान से व्यक्त कर दी । उनके अन्तर की *इस* परम प्रीति को जानकर भगवान अत्यन्त तुष्ट और हर्षित होकर बोले, **"हे देवताओ ! तुम्हारी इस प्रीति का मैं पूर्ण आदर करता हूँ। परन्तु तुम *इस रूप*, इस देह से मेरा आलिंगन नहीं कर सकते। (अस्तु,) 'द्वापरे गोपिका भूत्वा, ममालिंगय भूः सुरा।' तुम (प्राकृत देह धरकर) द्वापर में *गोपिकाओं* के रूप में प्रगट होना और तब मेरे कृष्ण-रूप का आलिंगन कर (आत्मतृप्तो आत्मरतिः भाव से मुझमें आत्मरमण कर) अपनी आत्मतुष्टि कर लेना ।"**

यही हुआ — कथा सर्वविदित है । देवताओं ने गोपिकाओं का स्वरूप धारण कर कृष्ण कन्हैया से अपने-अपने *भावानुकूल* आत्मरमण कर आत्मतृप्ति कर ली — कृष्ण की अनेक विहार-लीलाओं में *पात्र* बनकर । (परन्तु साथ में कृष्ण के प्रति अपने *विशुद्ध प्रेम* के कारण ही **महारास** की वंशी भी *केवल* गोपिकायें ही सुन पाईं !! और *केवल वे ही* **महारास** में पात्र बन परमानन्द प्राप्त कर पाईं !! लगता है *आत्मरमण* **सखीभाव** से ही संभव

है — **दर्शन** भले ही *सखा* बनकर, *भक्त* बनकर, *दास* बनकर अथवा *देवता* बनकर हो जायें। वृन्दावन में, जगन्नाथपुरी में, नवद्वीप में संत महात्माओं के *ऐसे* ही **'सखी भाव — प्रिया-प्रियतम भाव'** में डोलते रहने का भी *यही* कारण है।

साँवरे सलोने श्याम की सुन्दरता पर देवगणों का भी उक्त प्रकार से मोहित हो जाने का *मूल* कारण था श्यामसुन्दर के *अंग अंग से फूटती मोहिनी,* न कि *केवल* सुन्दरता। *इसी* मोहिनी-शक्ति से ही सागर-मन्थन के अवसर पर भगवान ने *स्वयँ ही* **मोहिनी-रूप** से असुरों को *मोह-पाश* में उलझाकर देवताओं को अमृत प्राप्त करा दिया और *इसी मोहिनी रूप* पर कामारि शंकर भी डगमगा गये !! भस्मासुर को भी यही मोहिनी रूप धारण कर सुरपुर पहुँचा दिया गया। यद्यपि श्याम सुन्दर के नख-शिख की सुन्दरता का भक्तों-कवियों ने अनेक प्रकार से बखान किया है, किन्तु सुन्दरता के मध्य ***मोहन की मोहिनी ही प्रथम स्थान*** पाती है। राम-विवाह के समय जेवनार के मध्य भी श्री राम के **इसी मोहिनी** भरे दृष्टिपात से आहत मिथिला की नारियाँ (जो अब तक विनोद में अयोध्यानरेश के लिए गालियाँ सुना रही थीं) —

भूल गईं अवधेश को नाम
औ देने लगी मिथिलेश को गारी !!

बाबा जी महाराज में *यही* **मोहिनी** कूट-कूट कर भरी थी। प्रारम्भ में तो उनकी चमत्कारी लीलायें ही भक्तों को दृष्टिगोचर होती रहीं। परन्तु बाद में तो वय प्राप्ति के साथ (लगभग) दन्तविहीन, बावले-से, अधनंगे, अधगंजे, थुलथुल बेडौल शरीर तथा श्यामल त्वचा वाले बाबा जी महाराज के अंग-प्रत्यंग से यह मोहिनी, यह माधुरी, यह मनोहरता मानो किसी श्रोत की भाँति निरन्तर फूटती रहती थी — केवल भक्ति भाव भरी माताओं एवं बहिनों के लिए ही नहीं, वरन *ऐसे ही भावुक* पुरुष वर्ग के लिए भी परम आकर्षण का *मूल* बन गई।

अस्तु — भक्तों, विशेषकर मातृवर्ग (जिसमें पाश्चात्य सभ्यता में *रंगी* भारतीय एवं विदेशी रमणियाँ भी शामिल थीं) का बाबा जी के *ऐसे* माधुर्य, ऐसी मोहिनी पर *गोपी-भाव* में न्योछावर हो उसमें डूब जाना स्वाभाविक था। *अपने अपने* भावों के अनुरूप ये मातायें बाबा जी महाराज में ही पुत्र, पिता, माता, बन्धु, सखा, परम गुरु, परम-इष्ट रूप के, तथा

प्रणय एवं **प्रणव** स्वरूप में दर्शन पाती रहती थीं, और उसी के अनुरूप ही बाबा जी महाराज की पूजा-अर्चना करतीं उनसे आत्मतुष्टि प्राप्त करती रहती थीं। और *प्रणतपाल* बाबा जी महाराज भी *ऐसे* मातृवर्ग के साथ उन्हीं के भावानुरूप उन्हें अपनी लीला-माधुरी में सराबोर कर आत्मतृप्ति से परिपूर्ण करते रहते थे। कन्हैया की वंशी की तान में समाहित माधुरी और बाबा जी की मधु-मिश्रित वाणी में, चाहे वह प्रताड़ना भरी ही क्यों न हो, उनके लिये कोई *अन्तर* न था। बाबा जी के मुखमण्डल को निरन्तर निर्निमेष निहारते रहने में ही उन्हें गोपिकाओं के कृष्ण-रूप-दर्शन की, अथवा अयोध्यावासियों के श्री राम के मुखारबिन्द की रस-माधुरी की भाँति नैसर्गिक परमानन्द की ही सुखानुभूति प्राप्त होती रहती। ऐसे अवसरों पर बाबा जी महाराज तथा ऐसी *निर्मल-मना* माइयों के बीच कोई संकोच अथवा किसी प्रकार के दुराव-छिपाव का स्थान ही न होता। ये ही क्षण **महारास** की अनुभूति भी करा देते इन गोपिकाओं को ।

परन्तु यह तो मातृवर्ग का बाबा जी के श्री चरणों में समर्पित होने का केवल **अनुपूरक** कारण था, जिसकी अनुभूति मातृवर्ग को बाबा जी की *उनके प्रति मूल-रूप में विशेष कृपा-भाव के अन्तर्गत ही* प्राप्त हुई। और यह कृपा-भाव भी तो श्री कृष्ण और श्री राम की उद्धार-लीलाओं का ही प्रतिबिम्ब है :—

श्री कृष्ण की माधुरी लीलाओं में केवल देवकी, रोहिणी, यशोदा एवं रूक्मिणी ही न थीं — उनमें राधा भी थी, कुन्ती भी थी, द्रौपदी भी थी, विभिन्न आचरणों, रंग-रूप एवं वय वाली गोपिकायें भी थीं — और साथ में *कुब्जा* भी थी, पूतना भी थी और भौमासुर द्वारा बन्दी १६१०० कुमारियाँ भी !!

श्री राम भी केवल कौशल्या, सुमित्रा, अनुसूया और सीता तक ही सीमित नहीं रहे — उनके **उद्धार** लीला-क्षेत्र में अहिल्या भी आई, तारा भी, मन्दोदरी भी — और शबरी भी — साथ में कैकयी भी। पुनः, लंका की जातुधानी भी !!

उक्त संदर्भों में वर्णित कथानकों से सभी परिचित हैं ।

बाबा जी महाराज की राम तथा कृष्ण *सम* ऐसी ही माधुरी एवं उद्धार-लीलाओं में भी यशोदा, कौशल्या, सुमित्रा, अनुसूया, देवकी, शबरी आदि के *सदृश* परम सुशीला, सद्गृहस्थ, भगवद्प्रेमी माइयाँ भी थीं एक

ओर (जिनका लक्ष्य था *केवल महाराज में ही* भगवान के **सत्य** रूप के दर्शन की प्राप्ति) तो दूसरी ओर स्वकर्मों से अभिशप्त, सामाजिक उत्पीड़न की शिकार, पारिवारिक शोषण से दुखी अथवा लाँछित-उपेक्षित, शारीरिक-मानसिक-आर्थिक कारणों से हीन-असमर्थ, अथवा अन्य कारणों से *अपूर्ण-अधूरी* माँ-बहिनें भी इन उद्धार-लीलाओं की पात्र बनी रहतीं । इनमें सधवायें भी थीं, विधवायें भी, सुन्दर भी, कुरूप भी, भंग अथवा टेढ़े-मेढ़े अंगों वाली भी (कुब्जा), अमीर भी और गरीब भी थीं ।

और महाराज जी को अपनी इन गोपिकाओं पर दया-कृपा की वर्षा हेतु उनकी वय, वर्ण, जाति, सम्प्रदाय आदि से कभी कोई सरोकार न रहा — उनमें युवा भी थीं, अधेड़ (कई बच्चों वाली) भी, वृद्ध भी और अतिवृद्ध भी, कुलीन और (तथाकथित) शूद्र भी — हिन्दू-मुसलमान, ईसाई — स्वदेशी-विदेशी — सभी ।

इन सबके जीवन में अपनी लीला माधुरी के माध्यम से प्रवेश कर (और कभी उन्हें ***बरबस*** अपनी ओर खींचकर भी) महाराज जी ने उनके (सासांरिक) दैन्य का शोषण कर एक नई जीवन-ज्योति प्रदान कर दी — उन्हें आत्मबल देकर एवं भगवान की ओर उन्मुख कर ।

और फिर अपनी लीलामाधुरी के ही माध्यम से उन सबके मन-मानस में दीर्घ रूप में आसन जमाकर उन्हें **परम-तत्व** से परिचित भी करा दिया — उनके साथ आत्म-रति द्वारा उनकी आत्मतृप्ति-आत्मतुष्टि कर उन्हें एक नई आत्मानुभूति करा दी। अपनी इन कल्याणमयी लीलाओं से उनके अन्तर में यही भाव सुदृढ़ कर दिया कि, **'मैं ही तुम्हारा पिता हूँ, मैं ही माता, मैं ही भ्राता, मैं ही सखा, मैं ही बन्धु और मैं ही *सर्वस्व* ।'** जिनका संसार आश्रय-विहीन हो चुका था वे अब श्री चरणों में एक ऐसा प्रश्रय पा गईं जिसकी तुलना में संसार के समस्त भोग नगण्य-से हो गये। इतने बड़े और *ऐसे* मातृवर्ग को इतना सुदृढ़ संबल संसार में और कहीं मिला भी तो न था — न घर में, न बाहर, न स्वजनों से और न परिजनों से। (रमा जोशी)

महाराज

और भी —

अपनी शरणांगत माइयों के उत्थान एवं उनकी दैहिक-दैविक-भौतिक आपदाओं से मुक्ति हेतु बाबा जी महाराज ने नीति-धर्म आदि की

सीमाओं की उपेक्षा करने में भी कोई संकोच नहीं किया और न इस हेतु अपने ऊपर आते *आक्षेपों की ओर ही कभी ध्यान दिया* । अपनी इन माइयों के भावों के वशीभूत हो महाराज जी उन्हीं के भावानुरूप अनेक रूप धारण कर उन्हें नाना प्रकार के अनुभवों एवं अनुभूतियों से परितुष्ट करते रहते थे और आज भी वही अनुभूतियाँ अपनी इन गोपिकाओं को (उन्हें *धर्म का मुख्य अंग मानकर*) उसी भाँति प्रदान कर रहे हैं उनके जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में । अपने श्री-मुख से महाप्रभु ने अनेक बार कहा भी, **"भारतवर्ष में धर्म की रक्षा माइयाँ ही करेंगी ।"**

परन्तु अपनी इन माधुरी लीलाओं के माध्यम से महाराज जी ने इन माइयों को अपने श्री चरणों में *मात्र* प्रश्रय ही नहीं दिया, अपितु उन्हें *अर्थहीन सांसारिकता* से भी बड़े परिमाण में ***उपराम*** भी करा दिया — उन्हें (रामायण, भागवत वेदोपनिषद आदि में निहित **सार**) — ढाई अक्षर वाले **प्रेम** का *सच्चा स्वरूप* हृदयंगम करा कर । फलस्वरूप इन माताओं-बहिनों के अन्तर में महाप्रभु इस तरह *समा* गये कि आज (भी) अपनी परम्परागत मान्यताओं के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं की — (यहाँ तक कि राम, शंकर और कृष्ण की भी) — पूजा अर्चना करते (तथा विभिन्न सांसारिक कार्यों के मध्य भी) ब्रज-गोपियों के अनुरूप इनके मन-मानस में बाबा जी महाराज ही *छाये* रहते हैं । बाबा जी से **परम प्रेम** प्राप्ति का इससे अधिक उत्कृष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है ?

और अन्ततोगत्वा अपनी इन गोपिकाओं के प्रति *सर्वदा सचेत* बाबा जी ने वृन्दावन तथा कैंची में अनुपम आश्रमों की स्थापना इसी उद्देश्य से कर दी कि **'मेरी शरीर-लीला के उपरान्त भी इन माइयों को *वही* प्रश्रय, आनन्द और प्रेम इन आश्रमों के माध्यम से प्राप्त होता रहे *जो* मैं इन्हें देता रहा हूँ ।'** कैंचीधाम में तो इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु अपनी इन शरणागत गोपिकाओं को *और भी पुष्ट आधार देने के लिए* श्री माँ को प्रेरित कर अपना *तत्व-पीठ मंदिर* भी अपनी महासमाधि के ढाई वर्ष के भीतर ही स्थापित करवा दिया, जिसमें अपनी मूर्ति का प्रतिष्ठापन भी बाबा जी ने, (परिस्थितियों को *सानुकूल* मोड़ देकर) अपनी परम निष्ठ भक्त-माता **लीला माई** के हाथों ही करवाना स्वीकार किया !! अपने श्री-मुख से स्वयँ भी अनेक बार कहा था—***'यह आश्रम मैंने माइयों के लिये ही बनाया है ।'***

और अब महाराज जी के *इसी लक्ष्य* का विस्तार श्री माँ नें वीरभद्र (ऋषीकेश) आश्रम के रूप में कर दिया है ।

अन्ततः एक विचित्र सत्य और भी :— बाबा जी महाराज जब-तब माइयों के मध्य भी बैठा करते थे स्वतन्त्र रूप से। माइयाँ भी इसी प्रकार महाराज जी से बहुत अन्तरंगता पूर्ण व्यवहार करती रहती थीं— निःसंकोच। परन्तु महाराज जी के प्रति उनके इस सरल, निश्छल, निष्कपट एवं प्रेमा-भक्ति युक्त भाव को कई लोग (कई मातायें भी, *मैं भी*) न समझ पाकर महाराज जी के प्रति गलत एवं विकृत अवधारणा बना बैठे थे। (मद्रास के भक्त हुकुमचंद जी भी प्रथम दर्शन में कुछ माइयों को बाबा जी के चरण चाँपते देखकर कुछ क्षणों के लिये विचलित हो उठे थे।) प्रत्युत्तर में महाराज जी ने भी स्पष्ट कह दिया था कि, **"मैं तो *माइयों* का ही बाबा हूँ ।"** परन्तु साथ में यह भी कह दिया कि, **"समय आने पर सब समझ जायेंगे ।"**

यही हुआ भी । और अब तो बाबा जी महाराज की उक्त लीलाओं की परिणति उसी के विरोधाभास स्वरूप हो रही है — आज श्री सिद्धी माँ को *उसी* प्रकार से घेरकर न मालूम कितना बड़ा *पुरुष वर्ग* (जिसमें वे भी शामिल हैं जो महाराज जी से उक्त संदर्भ के कारण *तब* **परहेज** रखते थे, तथा महाराज जी एवं माइयों के प्रति *भ्रमित* भी रहे) बैठा रहता है — ***माँ से वही अपेक्षा लिये जिसकी*** कि (तब) माइयाँ बाबा जी से करती थीं — यथा, अन्तर की आत्मिक शांति, भवसागर के दुःखों से निवारण, और साथ में ***श्री माँ में ही महाराज जी के स्वरूप का प्रतिबिम्ब-दर्शन भी*** !!

वैसे भी, सांसारिक बुद्धि लेकर *ऐसी आत्मानन्द* विभूतियों के आचरण को समझ पाना सर्वथा असम्भव भी तो है ।

इसी संदर्भ में — बाबा जी महाराज ने वृन्दावन में संकेत भी दिया था कि, **"बहुत खराब समय आ गया है । सर्वत्र पाखंड व्याप गया है — अनेक रूप के गुरु और साधू पैदा हो गये हैं । पर *विश्वास इतनी सस्ती* चीज नहीं है कि जिस-तिस पर लुटा दो ।"** कहते रहते थे — **'गुरु करना जानकर — पानी पीना छानकर ।'** (**सचेत** रहने भर को ही यह संकेत था बाबा जी का — रमा जोशी)

महाराज

माँ के साथ यात्राओं में अन्य लोगों से भी बाबा महाराज की अनेक लीलायें सुनने को मिलती रहती थीं — बाबा जी की व्यापकता पर प्रकाश डालतीं ।

वृन्दावन में मैं माँ के साथ बैठी थी महाराज जी के मंदिर के आगे (तब के) बने कच्चे हवनकुंड वाले चबूतरे पर। तभी एक वय-प्राप्त महिला आ गई दर्शनों को। माँ के पास भी आ गई। माँ ने मुझे उकसाया, "रमा ! इससे पूछ बाबा जी के बारे में ।" मैंने भी तब उससे बाबा जी के बारे में कुछ बताने को कहा । (वृद्धा अकबरपुर की ही निकली ।) बोली, "का बताऊँ बाबा की ? एक हो तो बताऊँ । मौसा लगें थे हमारे ।" मैंने पूछ दिया, "सगे ?" बोली, "अरे ! सगे-वगे नाँय । गाम (गाँव) के नाते हम मौसा कहें थे उनसे । आय कै हमारी चार दीवारी (चहार दीवारी) पर बैठ जायँ और हमारी दुख-सुख की सुन लेवें थे । एक दिना हम दूर के **कुआँ** से पानी लाय रही थीं । सो पूछ बैठे — **का करेगी पानी कौ ?** हमने कही— ऊपर छत्त पै डारूंगी ठंडा करिबे कौ और फिर बिछौना डारूंगी वापै सोइबे कौ । तब बोल पड़े — **अरे का करैगी पानी डारिकै — अभी मेह बरस जावैगौ** । मैं बोली — कहा कौ बरसैगौ मेह — आसमान तो बिल्कुल सफा है — धूप चमक रही हैगी — ऊपर से गरम हवा और मारै है। तो बोले — **तू तो बावरी है — हमारी नाँय मानैगी** । और उठकर चले गये। हमने छत्त पै खूब पानी डारौ, वापै बिछौना डारौ और चली आईं नीचे कूं । अरे बप्पा रे ! थोड़ी ही देर में वो आँधी चल पड़ी और फिर वो मेह बरसौ कि कही नाँ जाय। दौड़ी दौड़ी जाय बिछौना समेटौ और नीचे भाजि कै दम लीनौ । ऐसे हते बाबा जी सब कुछ जानने वारे ।"

और फिर माँ की तरफ हाथ हिला हिला कर बोली, "अरे! तुम का जानौ उनकी बात । तुम तौ भीतर ही बैठी रहती हौ ।" माँ सुनकर उसकी प्रेम भरी बातों का रस लेतीं हँसती रहीं ।

मैंने फिर पूछ दिया, "और कुछ ?" तो बोली, "और का का बताऊँ। दिसा-मैदान से आय रही थी लोटा पकड़े । हाथ भी नाँय धोऔ हतौ । कई दिना से हाथ में पीर हती — ठीक से उठतौ भी नाँय रह्यौ । मिल गये दीवार पर बैठे । बोले— **का बात है, दुखी दिख रई है** । हमने कही — बहुत पीर है हाथ में कई दिना से । बोले — **ह्याँ आ** । मैं वैसे ही चली गई पास— तो मेरौ हाथ लैके उल्टी हथेली पै चार-पाँच **दफे चूम कै छोड़**

दओ । बस ! हम तो दर्द से तबै छुट्टी पाय गईं, और आज तक कोऊ तकलीफ नाँय भई हाथन में ।" फिर वृद्धा चली गई । (रमा जोशी)

क्या महत्त्व था उस साधारण बुढ़िया का बाबा जी की इतनी बड़ी ऋष्टि में ? न विशेष रूप की भगत, और बाबा जी की लीलाओं में किसी विशेष रूप की पात्र ही — केवल एक नगण्य प्राणि-मात्र इतने बड़े संसार में । पर बाबा जी के सम्पर्क में आ गई और दया पा गई उनकी — **'सब मम प्रिय सब मम उपजाये !!'** (लेखक)

महाराज

केवल उपहास-सी लगती महाराज जी की बातें उपहास न होकर भविष्य का लेखा ही सिद्ध हो जातीं । त्रिकालदर्शी-भविष्य दृष्टा बाबा महाराज को किसी भी व्यक्ति के जीवन में होने वाली घटनाओं की पूरी जानकारी तो रहती ही थी, पर कभी कभी **अपनी मौज** में उसे खुलकर भी व्यक्त कर डालते थे जिसमें *उनकी अपनी* कृपा भी समाहित रहती थी। (वैसे भी किसी को भी देखते ही बाबा जी उसकी पिछली पुश्तों का पूरा इतिहास जान जाते और कभी कभी व्यक्त भी कर देते !!)

डाक्टर प्रभात कुमार शर्मा मथुरा स्थित पशु-विज्ञान (वैटर्नरी) कालेज में शिक्षा पूर्ण कर फौज में भरती हो गये थे । अपने शिक्षा-काल में वे जब-तब बाबा जी के भी दर्शन करते रहते थे प्रेम-भाव से । शिक्षा की अन्तिम परीक्षा में उनका एक परचा बुरी तरह खराब हो गया था । उत्तीर्ण हो पाने का प्रश्न ही न था । बहुत दुखी-उदास मन लेकर वे बाबा जी के पास आये तो अन्तर्यामी ने उन्हें देखते ही पूछा, **"दुखी क्यों है ?"** जब इन्होंने अपने परचे के खराब हो जाने के बारे में बताया तो बाबा जी तत्काल बोल उठे, **"खराब कहाँ हुआ है ? वह तो *सबसे अच्छा* परचा हुआ है तेरा ।"** इन्होंने सोचा कि केवल मेरा मन रखने को बाबा जी ने ऐसा कह दिया है । परन्तु जब नतीजा निकला तो *उसी* परचे में इन्हें *सबसे अधिक* अंक प्राप्त हुए थे !!

फौज में तरक्की करते ये *मेजर* बन चुके थे और शीघ्रातिशीघ्र ले० कर्नल बन जाना चाहते थे । बाबा जी के पुनः दर्शन होने पर इन्होंने पूछ दिया उनसे, "महाराज जी ! मेरी तरक्की कब होगी ?" बाबा जी ने तत्काल उत्तर दिया, **"अब कोई तरक्की-वरक्की नहीं होगी । तुझे तो कलेक्टर**

बनना है ।" फौज में रहकर कलेक्टर बन पाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता — यही सोचते रह गये डा० शर्मा । तभी बाबा जी ने पुनः कह दिया, **"तू अब कलेक्टर बनेगा ।"** *तरक्की नहीं होगी* सुनकर मेजर शर्मा उदास हो लौट गये ।

परन्तु यह तो बाबा जी की *वाणी* थी — चरितार्थ कैसे न होती । कुछ ही काल बाद मेजर शर्मा का अपने अफसरों से ऐसा विवाद हो गया कि भविष्य में प्रोन्नति का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया जिसकी परिणति इनके फौज से इस्तीफे के रूप में हो गई । पर कुछ ही काल के उपरान्त इन्होंने आर्मी कोटे से पी० सी० एस० परीक्षा में सफलता प्राप्त कर ली, और अन्ततोगत्वा *कलेक्टर* होकर ही सेवा-निवृत्त हुए । (श्री सदाकान्त) ।

महाराज

बाबा जी द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के भविष्य-निर्धारण के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं । डा० अनूप कुमार (बरेली) के लिये, जिनके खानदान में सिल-सिलेवार करीब सभी लोग भारतीय लोक सेवा के अफसर बने थे, बाबा जी ने कह दिया था, **"डी० एम० (कलेक्टर) नहीं, एम० डी० (डाक्टर) बनेगा — जनता की सेवा करेगा"**— (यद्यपि अनूप कुमार स्वयं भी आई०ए०एस० बनना चाहते थे ।) अन्ततोगत्वा अनूप साहब हृदय रोग विशेषज्ञ बनकर गरीब जनता एवं आश्रमवासियों की तन-मन-धन से सेवा कर रहे हैं ।

महाराज

इलाहाबाद में एक भक्त श्री बी० डी० गुप्ता के घर बाबा जी जाया करते थे । उनकी लड़की की आदत थी कि स्कूल जाते वक्त या किसी भी अन्य स्थान में मार्ग में पड़े पत्थरों को फुटबाल की तरह ठोकर मार देती । परिणाम स्वरूप उसके जूते सामने की ओर से फट जाते । तब उसे डाँट भी पड़ती और मार भी । पर दूसरा जूता आना अनिवार्य हो जाता । उसकी यह आदत *बनी ही रही* ।

एक दिन वर्ष १९६४ में बाबा जब उसके घर विराजे थे तो लड़की (जो तब दसवीं कक्षा में पढ़ती थी) स्कूल से फटी हालत में पहुँचा जूता लेकर घर पहुँच गई । देखते ही बाबा जी बोल उठे, **"इसे डाँटना मत । यह हमारी लड़की है । इसके लिये नया जूता लाओ ।"** और फिर उस

लड़की को दुलराने-पुचकारने लगे । तभी बोल उठे, **"तू बड़ी होकर *हमारे* पड़ोस में *आस पास* ही रहेगी ।"** तब कौन देता किसी प्रकार का महत्व बाबा जी की इस बात को ।

कालान्तर में बाबा जी ने शरीर भी छोड़ दिया और उनका तत्वपीठ मंदिर भी बन गया वृन्दावन आश्रम में । लड़की भी बड़ी हो गयी, पढ़-लिख कर डाक्टर बन गई । इंजीनियर डाक्टर से विवाह भी हो गया।

और अब (वर्ष १९८९-९०) में दोनों ने अपना एक नर्सिंग होम खोल लिया है — **बाबा जी के ही *पड़ोस* में** — अटल्ला चौकी के पास (वृन्दावन आश्रम से केवल २५०-३०० गज दूरी पर ही) — **'दीपशिखा नर्सिंग होम !!'** (**मेरे पड़ोस में रहेगी** जो कहा था बाबा जी ने उससे वर्षों पूर्व !!)

महाराज

मंजुल कुमार जोशी, हेमदा का छोटा पुत्र, (तब सातवीं कक्षा में) इलाहाबाद में दादा के फाटक में प्रवेश कर ही रहा था तभी बरामदे में बैठे महाराज जी उसकी ओर देखते दो बार बोल उठे — **"पी० सी० एस०, आई० सी० एस० ।"** बाबा जी की इस बात को *तब* क्या समझा जा सकता था । पर वह तो बाबा जी का वाक्य था । वर्ष १९८० में मंजुल कुमार ने पी० सी० एस० परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया !! आई० ए० एस० भी कालान्तर में वे हो ही जायेंगे । (बाबा जी ने जो कहा है ।)

इसी प्रकार श्री पूरनचन्द पाण्डे, (रिटायर्ड कमिश्नर) से नजरबाग, लखनऊ में उनके आने पर कह दिया बाबा जी ने, **"आ गया डिप्टी कलेक्टर ।"** तब केवल पाँच जगहें खाली थीं और पाण्डे जी का नम्बर सातवाँ था । शंका करने पर भी बाबा जी ने कहा था, **"हमने कह दी ।"** और यही हुआ । कालान्तर में पाण्डे जी आई० ए० एस० होकर कमिश्नर के पद से रिटायर हुए ।

इलाहाबाद में बाबा जी विराजमान थे । तभी एक लड़का, केसरवानी, लखनऊ से इलाहाबाद आया पी० सी० एस० की परीक्षा हेतु । आते ही बाबा जी के दर्शन करने आया तो बाबा जी बोल उठे, **"आ गया एक्साइज इन्सपेक्टर ।"** यही हुआ। दो-तीन प्रयासों के बाद भी केसरवानी जी पी० सी० एस० परीक्षा पास न कर सके और *अन्त में* एक्साइज

इन्सपेक्टर ही बन पाये । (पर बाबा जी के आशीर्वाद स्वरूप शीघ्र ही तरक्की पाते रहे और असिस्टेन्ट एक्साइज कमिश्नर बने इलाहाबाद में रहे — १६६० ।)

महाराज

दरबार

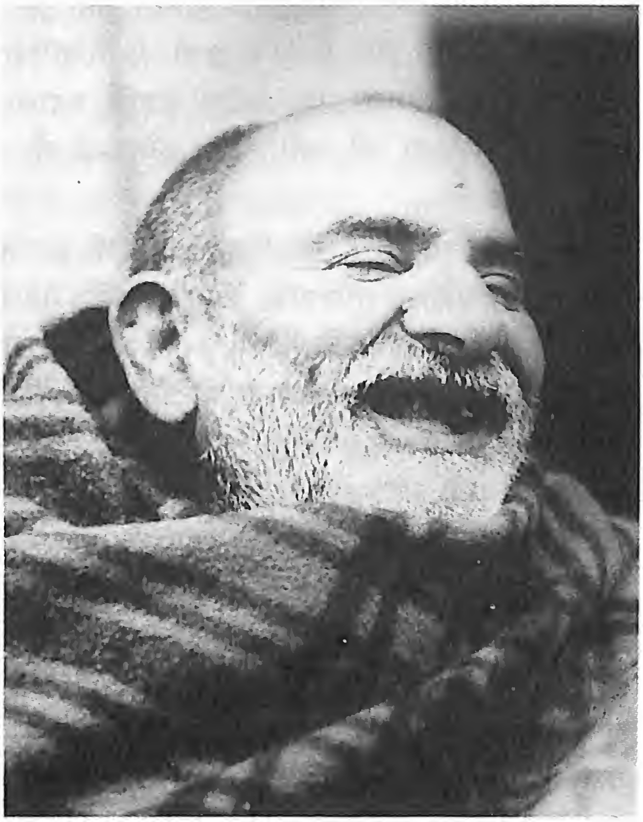

दरबार में हास-परिहास के मध्य

महाराज जी के इर्द-गिर्द भक्त समुदाय एवं दर्शनार्थियों का समूह — कभी बड़ा तो कभी छोटा — एकत्रित होता रहता था। न तो बाबा जी अपने भक्तों के बिना अधिक देर तक रह पाते, और न भक्तों को ही बाबा जी महाराज का सान्निध्य पाये बिना चैन मिल पाता। समूह के बीच में बैठे या फिर कभी कुछ उच्चासन ग्रहण किये बाबा जी पर ही सभी का ध्यान केन्द्रित रहता । इस शोभा को हमने **दरबार** की संज्ञा दे डाली थी, जिसमें बाबा जी सबकी सुनते भी रहते, और (अधिकतर) अपनी ही कहते रहते —

कभी विनोद-युक्त उक्तियों के रूप में तो कभी आज्ञा-डाँट-फटकार के रूप में, और कभी **सीख** युक्त दृष्टान्तों के रूप में । अक्सर दरबार विनोद-प्रिय बाबा जी की उक्तियाँ सुनकर अथवा हास-परिहास युक्त लीलाओं के कारण हँसी के ठहाकों से गूँजता रहता । साथ में कल्याणमयी लीलायें भी चलती रहती थीं बाबा जी की। ऐसी ही लीलाओं के माध्यम से तथा अपने अलौकिक व्यक्तित्व के प्रभाव में डुबोकर अनेक प्रकार की विषमताओं, समस्याओं तथा आपदाओं से त्रस्त उपस्थित जनता को इन सबसे **दूऽऽर** ले जाकर महाराज जी उनके मन में उन क्षणों में नैसर्गिक आनन्द की अनुभूति कराते हुए एक नवजीवन, एक नवीन स्फूर्ति प्रदान करते रहते। **सब कुछ** भूलकर सभी बाबा जी की इन लीलाओं में डूबे आनन्द लेते रहते थे ।

दरबार में, अन्यथा भी, चर्चा का विषय कुछ भी हो सकता था — राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्यायें, अफसरशाही या धर्माधिकारियों अथवा धर्मावलम्बियों में उपजी विकृतियाँ — आदि आदि। मुख्य उद्‌देश्य इन चर्चाओं के मध्य भी सूक्त-रूप में अथवा दृष्टान्त-रूप में **सीख** देना ही होता ।

इन दरबारों में बाबा जी की अलौकिकता-पूर्ण एक विशिष्टता यह भी देखने को मिलती थी कि उतनी भीड़ के मध्य भी यदि बाबा जी किसी से, *केवल उसके लिये ही*, **कुछ** कहते होते — निर्देश रूप में अथवा निजी गुप्त समस्या के निराकरण हेतु, आदि — तो उनकी वह बात केवल वही व्यक्ति सुन पाता — सभी अन्य केवल मुँह ताक़ते रह जाते !!

ऐसे बहुत से **दरबार** देखे — वृन्दावन आश्रम में, कैंचीधाम में, दादा के घर, अपने घर, अन्य भक्तों के घर, सड़कों के किनारे, खुले मैदान में — आदि आदि । **दरबारे-आम** भी देखा, **दरबारे खास** भी । उपस्थित, भक्तों-दर्शनार्थियों में सभी श्रेणी के व्यक्ति होते थे — राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, भावी राष्ट्रपति, गवर्नर, (केन्द्रीय अथवा राज्य के) मंत्रीगण, प्रान्तों के मुख्यमंत्री, कमिश्नर, कलेक्टर, पुलिस एवं जंगलात के चीफ (आई० जी०, डी० आई० जी०) तथा उनके मातहत अफसरान, विभिन्न विभागों के डाइरेक्टर व उनके मातहत, मिलिटरी के बड़े बड़े ओहदेदार, लखपती-करोड़पति, उद्योगपति, विदेशी आदि आदि, और *साथ में* होती दीन-हीन आतुर, कर्म और प्रारब्ध से अभिशप्त एवं पीड़ित जनता, सामान्य स्तर के पुरुष एवं माइयाँ — हर अवस्था की — युवा, अधेड़, वृद्धा, और

यदा-कदा बड़े बड़े सिद्ध महात्मा, जोगी, साधू, ब्रह्मचारी, योगी, तपसी, ज्ञानी, प्रबुद्ध, शिक्षाविद, साहित्यिक विभूतियाँ, कवि आदि भी इन दरबारों में बाबा जी के दर्शन हेतु आ पहुँचते । परन्तु विशिष्टता यह थी कि हर स्तर के, हर श्रेणी के दर्शनार्थी को *यथायोग्य* आदर, सम्मान एवं व्यवहार मिलता था बाबा जी से — **'जथा जोग मिले सबहिं कृपाला ।'**

और एक ही तमाशा देखने को मिलता था हर **दरबार** में — इन सबके मध्य अपना अलौकिक व्यक्तित्व लिये केवल *एक ही* **पुरुष** दृष्टिगोचर होता — धोती पहिने, कम्बल (या चादर) में लिपटे **बाबा जी महाराज** ! और दरबार में उपस्थित सभी अन्य केवल **याचक**, या फिर भक्ति-भाव, दास-भाव में ओत-प्रोत परिकर अथवा राधा भाव में **बूड़े** *प्रणव* के पुजारी। केवल सरकार का मुखारबिंद, उनकी मुद्रायें निर्निमेष दृष्टि से निहारते रहने अथवा उनकी **अनहद** वाणी सुनने के सिवा अन्य कोई हरकत करने की शक्ति भी तो न होती किसी में — बिना सरकार की इच्छा के !! नाम से नहीं, काम से नहीं, चाम से नहीं — केवल अपने भगवद-स्वरूप की अलौकिकता, अपने **अवतार** की **पूर्णता** लिये महादानी, गरीबनेवाज, शाहंशाहों के शाहंशाह (**'जाहि न चाहिय कबहुँ कछु'** वाले *पूर्ण रूपेण निःस्पृह-निरपेक्ष*) बाबा जी महाराज के समक्ष सभी तो दीन-हीन थे — *मात्र याचक* ।

जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है—ऐसे **आम** दरबारों में हास-परिहास, गंभीर विवेचन आदि के मध्य महाराज जी की **संकट- मोचन** लीलाएँ भी स्वतः चलती रहती थीं *जिनके लिए ही*, वस्तुतः, ये दरबार हुआ करते थे। इन्हीं के मध्य दुख-सुख भी सुने जाते थे, उनका निराकरण भी होता रहता, सीखें भी दे दी जातीं — या तो स्पष्ट रूप में या दृष्टान्तों के माध्यम से । और यदि याचक को बाबा जी महाराज से अपनी व्यथा, अपनी समस्या, अपनी आर्त

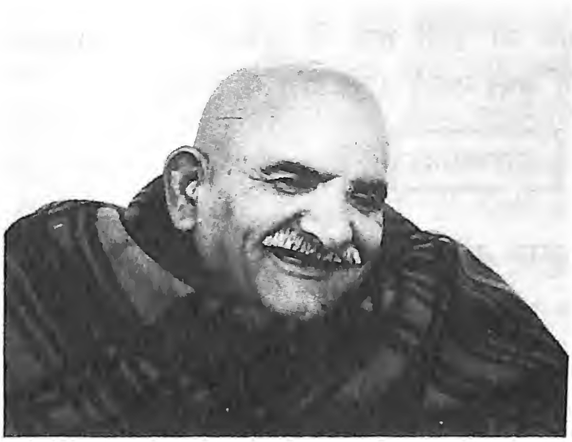

पुकार एकांत में ही सुनानी होती तो (उसके मन की जानकर) उसे अलग कमरे में या एकांत में भी बुला लिया जाता। सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी बाबा जी द्वारा जनता एवं भक्तों की सांसारिक एवं अन्य दुःख-सुख की बातें सुनते भान होता था —

'वेद वचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना ऐन ।
वचन किरातन्ह के सुनत, *जिमि* पितु *बालक* बैन ।।'

वैसे तो बाबा जी महाराज जी के सम्मुख पहुँच जाने पर ही सारे दुःख, सारी समस्यायें-शंकायें, समस्त विपदायें स्वतः ही तिरोहित हो जाती थीं — बाकी *केवल* लीला-मात्र होती । बिना कोई निवेदन पाये भी बाबा जी महाराज **याचक** के मन की जान उसकी विपदाओं को दूर कर देते थे। ऐसा होता था उनका दरबार, उनके अलौकिक दर्शन का प्रभाव । (उनके प्रत्यक्ष दर्शन की यही **अलौकिक प्राप्ति** *अब* उनकी मूर्तियों, उनकी फोटो छबियों द्वारा तथा उनके आश्रमों के **प्रसाद** से प्राप्त हो जाती है ।)

दिन भर विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सत-असत भावों की टक्कर सहन करने के उपरान्त स्वयँ को और सेवक भक्तों को भी **विश्राम** की भी आवश्यकता हो जाती थी, और तब लगता था **दरबारे खास** — केवल अन्तरंगों के साथ **घुल-मिल** कर बैठकर, जहाँ तरह-तरह के हास-परिहास के साथ बाबा जी अपने इन अन्तरंग *सेवक-भक्तों* को भी विश्राम प्रदान कर उनका भी **श्रम** हर लेते थे। ऐसे दरबारों में ***केवल भाव की सहजता*** ही अपनी मुख्य भूमिका अदा करती थी, और बाबा जी महाराज एवं परिकरों के मध्य संकोच नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती थी । यहाँ महाराज जी स्वयँ ही **सखी** अथवा **सखा** भाव के प्रतीक बन जाते थे, और अपने परिकरों, सेवक-भक्तों को भी *इसी* भाव में डुबोकर उन्हें ***महारास*** की-सी अनुभूति करा पूर्ण रूपेण **तृप्त** करते रहते थे। (मुकुन्दा)

महाराज

हमारी कुछ और अनुभूतियाँ

पूर्व में बहुत कुछ कह चुका हूँ, यत्र-तत्र, बाबा जी महाराज के श्री चरणों में प्राप्त अपनी अनुभूतियों के सिलसिले में । फिर भी इच्छा हुई कि बाबा जी के पतित पावन चरण कमलों में *ऐसी* कुछ अन्य स्मृतियों की

अँजलि और भी (अलग से) अर्पण करूँ । यद्यपि अब वे पावन क्षणों की लीलायें पूरी तरह तथा क्रमवार याद नहीं रहीं, और न वे छोटे-छोटे अनगिनत अपनत्व एवं आत्मीयता भरे **खेल**, जो महाराज जी हमारे साथ खेलते रहे — प्रत्यक्ष में भी और परोक्ष में भी । फिर भी :—

जब घर में भोजन-प्रसाद बन चुकता तो उसे एक बड़ी थाली में सजाकर उसे पूजाघर में महाराज जी के फोटो-चित्र के सामने हम रख देते थे । समुचित अर्पण-भाव के बाद *वही* थाली लेकर मैं प्रसाद पाकर ऑफिस को चला जाता । (कालान्तर में महाराज जी के भोग-प्रसाद हेतु पात्रों की अलग से व्यवस्था हो गई थी।) वर्ष १९६७ के *सितम्बर* माह की बात है कि एक दिन अर्पित प्रसाद पाते वक्त मैंने पाया कि दाल में नमक है ही नहीं। सहज क्रोधी स्वभाव का मैं — एकदम पत्नी पर बरस पड़ा कि, "महाराज जी के भोग पर ध्यान नहीं देती हो ? कोई श्रद्धा नहीं तुम्हें। दाल में नमक नहीं डाला ।" अन्यथा सहिष्णु स्वभाव की, उस दिन पत्नी भी न मालूम किस मूड में थी कि गलती स्वीकार करने के बदले बोल उठीं, "मैंने जैसा भी भोग अर्पण किया *प्रेम* से किया है । महाराज ने उसे पा भी लिया है। लो, तुम्हारी दाल में नमक डाले देती हूँ ।" उनके इस उत्तर से मेरी झुँझलाहट और बढ़ गई तथा उसी झुँझलाहट के साथ मैंने प्रसाद पाया और गुमसुम होकर आफिस चला गया।

नवम्बर तीसरे सप्ताह में ही महाराज जी इलाहाबाद आ गये उस वर्ष । सूचना मिलते ही हम दोनों दादा के घर को दौड़ पड़े । पहले पत्नी ने प्रणाम किया, परन्तु उनके श्री-चरणों में झुकते ही बाबा जी कुछ रोष में बोल उठे, **"हमें *बिना* नमक की दाल खिला दी ?"** पत्नी कुछ भ्रमित-सी हो गईं, पर मुझे याद आ गई *सितम्बर* माह की *वह* घटना, और मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि अब डाँट पड़ी, तब नहीं मानी थीं । परन्तु तुरन्त ही मेरे भी प्रणाम करते ही महाराज जी, कुछ मुस्कुराते हुए, प्रसन्न मुद्रा में बोल उठे मेरी ओर देखते, **"पर इसने बड़े प्रैम (प्रेम) से खिलाई थी, ताईसों हमने भी खाय लई !!"** अब मेरी बारी थी खिसियाने की ।

कैंचीधाम में बाबा जी और इलाहाबाद में हमारी तकरार !! **'नयन बिनु देखा, श्रवण बिनु सुना, बिनु रसना रस भोगा !!'** (और कौन जाने **बिनु पग** चल वहीं आ भी गये हों प्रसाद ग्रहण करने !!)

महाराज

एक दिन सुबह को जब मैं महाराज जी के दर्शनों को दादा के घर पहुँचा तो मुझे देर हो चुकी थी और महाराज जी निकल चुके थे भक्तों को अनुग्रहीत करने। निराश हो मैं घर लौट आया। फिर गया, तब भी निराश हो लौट आया। शीघ्रता में थोड़ा प्रसाद पाकर पुनः गया परन्तु पता न चल पाया कि बाबा जी कहाँ को निकल गये हैं। घर के कार्यों से निबट पत्नी भी ११ बजे वहीं आ गई थीं। मैंने इधर-उधर — हेमदा के घर, राजदा के घर, विजय चौधरी जी के घर तथा कुछ अन्य घरों में —जहाँ जहाँ महाराज जी के विद्यमान होने की संभावनायें थीं, ढूँढ मारा, पर बाबा जी का पता न लग पाया। हारकर पुनः घर आ गया। कुछ भूख-सी लग आई थी पुनः। सो रसोई घर में जाली से दो रोटी और सब्जी का बर्तन निकाल जल्दी जल्दी पा तथा रोटी और सब्जी का बर्तन यथास्थान रख फिर से दादा के घर चला गया कि अब वहीं आसन जमा कर बैठा रहूँगा। तभी पत्नी निराश हो घर को लौट गईं।

और जब मेरे भी धैर्य का बाँध पुनः टूट गया, बेचैनी बढ़ गई बिना दर्शनों के तो डेढ़ बजे के करीब मैं घर को चल दिया (कि अब जाकर सोऊँगा।) कुछ कुछ रोष भी हो आया था भीतर ही भीतर बाबा जी के प्रति। घर की सीढ़ी में कदम रखते ही पाया कि कुछ जोड़े जूते-चप्पल जमा हैं वहाँ। तो क्या बाबा जी यहाँ आये हैं! सीढ़ियाँ कूदता-फाँदता ऊपर पहुँचा तो पाया कि आँगन में एक (मूँज की नंगी) खाट पर महाराज जी बिराजे हैं पल्थी मारे, सामने मेज पर थाली में कुछ चपातियाँ हैं जिसे महाराज जी *दही-नमक के साथ* **पा** रहे हैं, और सब्जी भरी कटोरी थाली के बाहर मेज में *अलग* से रखी है !! सात-आठ भगत (दादा समेत) घेरे खड़े हैं बाबा जी को जिनके साथ महाराज जी रोटियाँ खाते खाते हँस हँसकर बातें भी करते जा रहे हैं। देखकर तो मेरे होश उड़ गये (कि सब्जी तो उच्छिष्ठ ही नहीं, जूठी भी है !) तभी महाराज जी बोल उठे, **"हमें बड़ी भूख लगी थी, तेरी माई ने हमें रोटियाँ खिला दीं।"** और फिर भक्तों से बतियाने लगे। सहमा-सा मैं पत्नी के पास गया कहा, "गजब कर दिया तुमने, सब्जी तो जूठी थी।" तब पत्नी ने कहा, "सब्जी की कटोरी तो महाराज जी ने पहले ही हटा दी कि इसे नहीं खाऊँगा।" सुनकर कुछ आश्वस्त हुआ और फिर पूछा, "पर बासी (सुबह की बनी) रोटियाँ क्यों खिलाईं ? ताजी नहीं बना सकती थीं ?" पत्नी बोली, "मैं क्या करती ?

महाराज ने कहा — बड़ी भूख लगी है, रोटी खिला । और जब मैंने कहा कि महाराज अभी बना देती हूँ, तो बोले — ***नहीं, वही ला जो है, बड़ी भूख लगी है*** । तब मैंने (नीचे) बेनी महाजन (हलवाई) की दुकान से दही मँगा लिया । बहुत घबरा गई थी मैं ।" सुनकर कुछ शांति मिली । पाँच-छः रोटियाँ पाकर महाराज जी चले गये पुनः दादा के घर । जाते जाते पत्नी से पूछा, "***तूने नौन-रोटी खाई है कभी ? बड़ी मीठी लगती है*** !!"

तब मैं इस लीला के विवेचन में डूब गया — कई प्रश्न उठ खड़े हुए मन में । क्या बाबा जी *सचमुच* इतने भूखे थे ? क्या उन्होंने दादा के घर *हमेशा* की तरह बाल-भोग न पाया होगा सुबह ? क्या उन ५-६ घंटों की अवधि में कई भक्तों के घर जाकर भी बाबा जी ने कुछ भी नहीं पाया होगा? (उपस्थित भक्तों से पता लग चुका था कि महाराज जी सप्रू साहब, काटजू साहब, गुप्ता जी आदि आदि बड़े बड़े लोगों के घर लीला करते मेरे घर पहुँचे थे ।) और तब तो दादा के घर भी दोपहर का षटरस प्रसाद भी कब से तैयार हो चुका होगा !! तब मेरे घर उन ***बासी*** रोटियों को *केवल* दही-नमक के साथ क्यों तोड़ गये ?

एक ही उत्तर मिल पाया मुझे इन सबका, "***तेरे बासी कर्म खाने आया था मैं*** ।"

महाराज

महाराज जी का हमारे प्रति असीम *वात्सल्य-युक्त* प्रेम था । वे हमारे घर पूर्व में हर वर्ष ३-४ बार कृतार्थ करने पहुँच जाते थे परन्तु अन्तिम २-३ वर्षों में केवल एक-दो बार ही आये । माली हालत हमारी बहुत साधारण स्तर की थी । पूर्व में तो हम उन्हें केवल नंगी मूँज की खाट पर बिठा देते थे । बाद में पूजाघर में एक गद्दा या लिहाफ जमीन में ही बिछाकर उस पर एक चादर डाल देते, और प्रभू भी सीढ़ी चढ़कर आँगन पारकर सीधे वहाँ पहुँच आसन जमा लेते। (ऐसे विराजे रहने की *अवधि* कुछ भी हो सकती थी — एक घंटा भी, डेढ़ घंटे भी और ढाई-तीन घंटे भी।) बाद बाद में उनके लिए खाट पर गद्दे आदि बिछाकर उस पर चादर डाल देते थे। अभावग्रस्त गृहस्थी के गद्दे — कुछ अधफटे, कुछ अधमैले — उन्हीं पर कोई धुली चादर — (और कभी कभी तो *अपनी प्रयोग* की हुई भी) — डाल दी जाती थी ।

ऐसे ही एक बार जब वे आये तो हमने उन पुराने गद्दों के ऊपर एक रेशमी फूलदार चादर डाल दी थी । महाराज जी उस पर कुछ देर तो शांत बैठे रहे । फिर *कौतुकी* बाबा जी ने एक कोने से चादर उठाई, पुराने गद्दे को देखा, और उसके नीचे वह भी जो *और भी* बदतर हालत में था। देखकर पुनः चादर का कोना यथास्थान डालकर *अपने हाथ* से उसकी सलवटें मलकर ठीक कर दीं । अपनी यह **पोल** खुलते देखकर मन में ग्लानि हो उठी मेरे । बाबा जी भी शायद मेरे मनोभावों को पढ़कर कुछ *चोट-सी* खा गये ।

अगले वर्ष मुझे प्रमोशन का कुछ एरियर मिला । मैंने तीन नये गद्दे और तीन रजाइयाँ बना डालीं । उस वर्ष जब बाबा जी आये तो मैंने *अपने **बचपने*** में चारपाई पर दो नये गद्दे बिछा उनके ऊपर पुनः (*बिना* चादर के) एक रजाई और बिछा दी । फिर एक रजाई गोल लपेट गाव तकिया-सा बना दिया और एक रजाई ओढ़ने को भी रख दी ! (अब हँसी आती है अपनी *इस* करतूत पर ।) बाबा जी ने बातें करते करते इन सभी का भी निरीक्षण कर डाला । परन्तु *उस दिन अधिक न ठहरे* — न मालूम क्या बेचैनी व्याप गई उनके मन में कि पूजा-अर्चना-आरती-प्रसाद के बाद *तुरन्त* भाग लिये दादा के घर को ।

कुछ देर बाद मैं भी पहुँच गया वहीं । तब श्री सिद्धी माँ ने मुझे बुलाकर कहा—मुकुन्दा, जब महाराज जी तेरे घर से आये तो सीधे हमारे (श्री माँ और जीवन्ती माँ के) कमरे में *जोर से* दरवाजा खोल घुसते ही बच्चों की तरह प्रफुल्लता से बोले—**"तुझे नहीं मालूम ? मुकुन्दा के घर नई नई रजाइयाँ-नये नये गद्दे—नई नई रजाइयाँ-नये नये गद्दे !!"** (और भी क्या क्या कहा मेरे बचपने को देख, नहीं मालूम ।)

सुनकर मेरी आँखे भर आईं । जिस विभूति को जब-तब राजसी रहनी प्राप्त होती रहती थी, वह *आज* अपने एक दीन-हीन चरणाश्रित के घर *केवल* मामूली स्तर की नई रजाइयाँ-गद्दे देखकर ही बच्चों की तरह प्रफुल्लित-आल्हादित हो श्री माँ को यह सब बताने दौड़ पड़ा !! (*श्री माँ के अलावा* महाराज जी के इस वात्सल्य-भाव को *दूसरा* समझ भी कौन सकता था ?)

मुझे विगत वर्ष की लीला याद हो आई। *तब* जो चोट लगी थी मेरे अन्तर में, और मेरे भगवान को भी, उस पर आज मलहम लग गया।

कोई चमत्कार नहीं, और कोई बड़ी **देन** भी नहीं यह महाप्रभु की — परन्तु उनके *इसी* प्रेम, *इसी* वात्सल्य ने ही हमें जीत लिया था जन्म जन्मान्तर के लिये ।

महाराज

ऐसा ही और भी — वर्ष १९७१ — अप्रैल १७ तारीख को मैं प्रथम बार वृन्दावन आश्रम गया था । अलीगढ़ में सरकारी दौरे पर था तब मैं । बाबा जी के दर्शन *वृन्दावन* में प्रथम बार हो रहे थे मुझे । बहुत कुछ हुआ *तब* मेरे साथ बाबा जी की ओर से । परन्तु सबसे अधिक वात्सल्य-पूर्ण लीला यूँ हुई —

महाराज जी ने मुझे तथा मेरे साथ आये मातहतों से कहा कि, **"जाओ, बिहारी जी के दर्शन कर आओ । *वो* यहाँ को देवता है ।"** हम चले गये । पर कुछ मार्ग में भटक जाने के कारण और कुछ प्रथम बार बिहारी जी के दर्शनों में आनन्द-वश बारह बजे की आरती तक रुक जाने के कारण भी हमें आश्रम लौटने में बिलम्ब हो गया ।

आश्रम के प्राँगण में पहुँचते ही पाया कि अपनी कुटी के आगे ग्रिलयुक्त बरामदे के भीतर रखे तखत-आसन पर महाराज जी हमारे इन्तजार में चादर ओढ़े बैठे हैं । बोले, **"कहाँ रहे गये ? प्रसाद का टाइम हो गया कब का । प्रसाद पाने बैठो जल्दी ।"** और भूदेव को आदेश हुआ कि पूरियाँ बनाओ । (तब ग्रिलदार बरामदे से लगे आगे के बरामदे में ही भट्ठी बनी हुई थी भण्डारे की ।) और *जब तक* हम सब गरमागरम पूरियाँ और सब्जी पाते रहे, सरकार बैठे ही रहे तखत पर सब कुछ देखते— निरीक्षण-सा करते !! फिर बोले, **"जाओ, अब आराम करो ।"** और स्वयँ भी भीतर कुटी में चले गये ।

बाहर सुबह दस-साढ़े-दस बजे से ही गरम हवायें चलने लगी थीं। तब भूदेव से पता चला कि साढ़े दस-ग्यारह बजे ही प्रसाद का टाइम हो जाता है । महराज जी प्रसाद पा चुके हैं, और उसके बाद सारे आश्रम वासी भी । *ग्यारह बजे बाद* महाराज जी का कुटी में बन्द हो *आराम* का समय हो जाता है (गरमी के कारण।)

फिर भी इस अकिंचन के लिये वे उस गरमी में बाहर बैठे रहे कि मुझे मेरे साथियों को ठीक प्रकार से गरम ताजा प्रसाद मिले जिसकी

व्यवस्था वे *स्वयँ ही* अन्त तक देखते रहे !! उनको मेरे कारण इतना कष्ट उठाना पड़ा जान मन में बहुत ग्लानि हो उठी ।

यदि महाराज जी भूदेव को इस विषय में समुचित आदेश देकर कुटी में विश्राम पाने *पहिले ही* चले जाते तो क्या हमें प्रसाद न मिलता ? परन्तु महाराज जी के अन्तर में भक्त-चरणाश्रितों के लिए जो *मातृत्व-पूर्ण वात्सल्य* भरा पड़ा था, उसने उन्हें उस गर्मी में भी बारह बजकर पैंतालीस मिनट तक बाहर ही बैठे रहने को *विवश* कर दिया था। और सम्भवतः इस कारण भी कि कहीं किसी प्रकार की कोई कमी हो जाने के कारण *मुझे* अपने साथियों के समक्ष *लज्जित* न होना पड़े। बाबा जी के *ऐसे ही वात्सल्य* को ही, जो पग पग पर मुझे मिलता रहा, मैं अपने अन्तर में समेटे हूँ।

महाराज

वर्ष १९६७ जनवरी माह की बात है । मेरे डिपार्टमेन्ट की **आल-इंडिया** परीक्षायें थीं । भारतवर्ष में कई हजार परीक्षार्थियों में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों का प्रतिशत विभिन्न प्रदेशों में ५ से लेकर १०-१२ तक ही हुआ करता था और उत्तर प्रदेश में तो केवल ४-५ प्रतिशत ही । मेहनत पढ़ाई तो विशेष की नहीं थी मैंने — अधिकतर सोया पड़ा ही रहता था। तैंतालीस वर्ष की उम्र में क्या पढ़ाई होती ? पहला ही पर्चा बिगड़ चुका था। मैंने आगे परीक्षा देना उचित न समझा पर साथ के लोगों ने कहा फेल तो होना ही है, आगे के लिए कुछ अनुभव हो जायेगा ।

घर लौट रहा था कि राह में दादा के घर मुख्य द्वार पर से *उसी वक्त* श्री माँ निकलती दिखाई दे गईं !! अरे ! महाराज जी आ गये ? तत्काल अन्दर गया। प्रभू को प्रणाम करते करते अपनी कलम-पैंसिल उनके श्री-चरणों में रख दीं। **"इम्तहान दे रहा है ?"** प्रश्न हुआ। "हाँ, महाराज, पर आज का पहला परचा ही ठीक नहीं हुआ।" बोले, **"पास हो जायेगा ।"** कुछ देर बैठकर घर आ गया आगे के परचों हेतु पढ़ाई करने।

बीच में तीन दिन के अवकाश की अवधि थी। दो दिन तो किसी तरह ऊहापोह में कट गये । पर तीसरे दिन नहीं रहा गया तो सुबह ही जा पहुँचा श्री-चरणों में । दादा के घर की छत पर धूप ले रहे थे सरकार एक कुर्सी पर बैठे हुए, पीठ टेके। पीछे हब्बा जी (स्व० हीरालाल साह) खड़े थे । मैं प्रणाम करते ही रो उठा। आँसू तो किसी के देख ही नहीं

सकते थे सरकार । तुरन्त बोले, **"क्या बात है ? क्यों रो रहा है ?"** मैंने कहा, "महाराज, पास होने की विशेष इच्छा तो कभी रही नहीं । पिछले बीस वर्षों में कोई प्रयास किया नहीं । अब इस उम्र में फेल हो गया तो लड़कों से कैसे कहूँगा कि *तुम* फेल मत होना ।" मेरी बात सुनते ही महराज जी, जो *अब तक* पीठ टेके बैठे थे, *तनकर* बैठ गये और जोर देकर बोले, **"जा, पास हो जायेगा । हमने कह दी ।"** पर दीन-हीन को अपनी दशा देखकर विश्वास कैसे होता — आँसू बहते रहे महाराज जी का मुँह निहारते । तभी हब्बा जी ने डाँट लगाई, **"कह तो रहे हैं पास हो जायेगा । अब जाओ ।"** चला आया घर को चुपचाप ।

दूसरे दिन इम्तहान के लिए जाते समय राह में पड़ते दादा के घर दर्शन करते जाने को मन हुआ । पर दादा ने कहा, "अभी अन्दर मत जाओ । बाबा जी प्रसाद पा रहे हैं ।" मुझे देर हो रही थी । दादा की सुन जैसे ही जाने को हुआ तो भीतर से (महाराज जी की) आवाज आई, **"कौन ? दादा *आन* (*आने*) दो ।"** अन्दर आ गया । प्रणाम किया। **"जा, पास हो जायेगा"**, सुन चला गया परीक्षा हेतु ।

परन्तु उस दिन तो और विचित्र **खेल** हो गया। जिस परचे में चालीस प्रतिशत अंक लाना अनिवार्य होता है उसी में ५ में से साढ़े तीन प्रश्न बुरी तरह बिगड़ गये यद्यपि अपरान्ह का परचा अच्छा हो गया। मन मार कर घर चला आया । दादा के घर महाराज जी भी नहीं मिले । लगा भाग्य का निर्णय हो गया है ।

दूसरे दिन परीक्षा हेतु जाते वक्त पुनः बाबा जी के दर्शनों को गया। आज सीधे भीतर चला गया । महाराज जी भोग पा रहे थे कल की तरह । प्रणाम किया। **"कल कैसा हुआ परचा ?"** प्रश्न हुआ । *बरबस* (?) मुँह से निकल गया, "बहुत अच्छा हुआ, महाराज ।" ***"वो तो होता ही, हमने कह दी थी !!"*** पुनः प्रणाम कर जब बाहर फाटक तक पहुँचा तो होश आया — अरे मूर्ख ! महाराज जी से कह तो देता असली बात। शायद कुछ कर ही देते। पर अवसर चूक गया था मैं। फिर भी *बिना* मेरे विश्वास के उस दिन के दोनों परचे अप्रत्याशित रूप से अच्छे हो गये।

शाम को पुनः महाराज जी के दर्शन कर रात की गाड़ी से लखनऊ चला गया ससुराल में एक विवाह में शामिल होने । तीन-चार दिन बाद लौटा तो महाराज जी इलाहाबाद छोड़ चुके थे ।

बाद में अपने परचों की समीक्षा-पुनरीक्षण किया — फिर फिर किया। पास होने का प्रश्न ही न था। बाबा जी **बावला** बनाकर चले गये।

अप्रैल अन्त में परीक्षाफल घोषित हुआ। सफल परीक्षार्थियों में *मेरा भी* नाम था !! घर आकर महाराज जी के चित्र के आगे **लोट** कर खूब रोया।

महाराज

उक्त सन्दर्भ में — महाराज जी के एक पुराने भगत श्री नन्दाबल्लभ जोशी की ऐसी ही दुर्दशा की याद आ गई । जोशी जी का एल०एल०बी० (फाइनल) था लखनऊ युनिवर्सिटी में । तभी, परीक्षा के कुछ पूर्व, महाराज जी लखनऊ आ गये। सदा की भाँति नन्दाबल्लभ जी महाराज जी के साथ ही ५-६ दिन तक सुबह-शाम, रात-दिन लगे रहे। और जब महाराज जी (बिना बुलाये स्वयं ही) उनके भी घर गये तो वे रोने लगे। दयानिधान ने पूछा तो बताया कि फाइनल परीक्षा है, कुछ पढ़ा नहीं है। बाबा जी ने डाँट लगाई, **"तब क्यों हमारे पीछे भागता रहा ? पढ़ा क्यों नहीं ?"** क्या उत्तर देते नन्दाबल्लभ ? केवल आँसू बहाते रहे। तब करुणानिधान ने कहा, **"अच्छा ला, कहाँ है तेरी किताबें ? कलम भी लाना।"** *नन्दाबल्लभ ८-१० अंग्रेजी* में लिखी कानून की मोटी पतली पुस्तकें ले आये एक लाल-नीली पेंन्सिल के साथ । महाराज जी एक एक पुस्तक उठाकर पन्ने पलट कर पेंसिल से उन पर निशान लगाते रहे। और बिना कुछ कहे चले गये।

कहना न होगा कि नन्दाबल्लभ जी केवल *उन्हीं उन्हीं* निशान वाले विषयों-प्रश्नों को पढ़कर ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये !! (श्री केहर सिंह जी ने उनके सामने हुई यह लीला मुझे कैंचीधाम में सुनाई — युगलचरणाश्रित ।)

महाराज

दिसम्बर १९६८—अन्तिम सप्ताह, शाम साढ़े सात-आठ बजे । ***"हम तो ठंड से मर गये । हम तो ठंड से मर गये ।"*** — बार बार यही दुहराते हुए महाराज जी दादा के घर अपने शयन कक्ष में पहुँच बिस्तरे पर लेट गये । एक रजाई, एक कम्बल और फिर दूसरा कम्बल, और फिर भी **ठंड से मर गये** की रट । उस छोटे-से कमरे की एकमात्र खिड़की और

दरवाजा बन्द कर देने की आज्ञा हुई । फिर सिगड़ी में आग जलाई गई, ऊपर तवा रख कपड़े की मोटी तह बना उसे गरम कर सेंक दिया गया घुटनों से ऊपर तक । थोड़ी ही देर में हम ३-४ आदमी जो कमरे में थे, विकल होने लगे गरमी से । कुछ देर में महाराज जी सो (?) गये खर्राटे लेते हुए !! हम आश्वस्त हुए ।

पर तभी मुझे **राम-राम** सुनाई देने लगा — कुछ फुसफुसाहट लिये शब्दों में । मैंने उपस्थित लोगों की तरफ देखा एक एक कर — कौन जाप कर रहा है राम नाम का ? पर सभी चुप हुए महाराज जी को ही निहार रहे थे । तब ? ऑडिट वाला दिमाग काम करने लगा । मैं कुछ नजदीक खिसक गया बाबा जी के सिरहाने की तरफ । अब **राम-राम** और भी स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगा । महाराज जी के मुँह की ओर दृष्टि की तो पाया उनके तो ओंठ बन्द थे । तब और करीब चला गया — बिल्कुल मुँह के पास — पाया महाराज जी के *श्वास-प्रच्द्वास के साथ ही* ***राम-राम*** *उच्चरित हो रहा था* !!

उस वक्त तो मैं केवल इस घटना का ही आनन्द लेता रहा परन्तु **महासमाधि** के उपरान्त मनन-काल में **सत्य** प्रस्फुटित हो उठा । **महादेव** (सदाशिव) भी तो सदैव एक महामंत्र जपते हैं — **राम-राम** ।

"महादेव सदा जपत एक नाम राम ।
काशी मरत मुक्ति देत कहत राम राम ।।"

और शंकर के ही शब्दों में भी तो — **'सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा।'**

तब रुद्रावतार बाबा जी महाराज का श्वास-प्रच्छवास से भी इसी प्रकार **राम-राम** प्रस्फुटित होना स्वाभाविक था ।

महाराज

उसी रात, (जैसा दादा ने दूसरे दिन बताया) दादा दरवाजे की खटर-पटर सुन अपने कमरे से बाहर निकले शॉल ओढ़े, तो पाया कि महाराज जी अपने कमरे से बाहर निकल गली में बाहर निकलने वाला दरवाजा खोल खड़े हैं — *केवल* एक धोती पहिने !! पर बाहर भी नहीं निकल पा रहे हैं — *कारण,* शरीर की लम्बाई-चौढ़ाई सात फीट ऊँचे और साढ़े तीन फीट चौढ़े दरवाजे से *अधिक* हो गई थी !! कुछ देर दादा

भौंचक हो यह दृश्य देखते रहे, फिर अपने ही लहजे में बोल उठे, "ये क्या हो रहा है, बाबा ?" **"दादा, हमें बड़ी गरमी लग रही है । हम बाहर जायेंगे ।"** तब दादा ने थोड़ा उचक कर अपना शॉल उनके कन्धे में डालते हुए कहा, **"इसे तो डाल लीजिए ?"** शॉल कन्धे में पड़ते ही महाराज जी अपने औसत डील-डौल में आ गये और बाहर निकल *उसी अवस्था में* एक-डेढ़ घंटे में बाहर बैठ पुनः भीतर आ गये !!

शाम को **हम तो ठंड से मर गये** की लीला करने वाले आधी रात को केवल एक धोती पहिने, शॉल ओढ़े बाहर बैठे रह गये !! न मालूम *किस* निरीह आश्रित की ठंड अपने में ले ली होगी बाबा जी ने *उस दिन*।

महाराज

वर्ष १९७३ में मुझे फरवरी से साढ़े तीन माह के लिये आगरा में सरकारी कार्य हेतु भेज दिया गया था । शनिवार की शाम श्री चरणों में वृन्दावन पहुँच जाता और सोम की सुबह वापिस आ जाता । पुनः हर अवकाश की अवधि भी वहीं बीतती ।

तब वही लीला, जो इलाहाबाद में देखता था, वृन्दावन में भी देखी। प्रभु ज़िसको चाहें, अपनी लीला हेतु **जमूरा** बना लें । किसी को केवल सिर में थपकी देकर या अपने दिव्य चक्षुओं के माध्यम से ही **समाधि** लगवा दें तो किसी की *जेब* में रुपये भर दें — प्रसाद वितरण हेतु अथवा किसी जरूरतमन्द को दान देने हेतु या फिर किसी अन्य कार्य हेतु, और किसी को माध्यम बना *असंभव को भी संभव* करवा दें, अथवा उससे *महा-ज्ञान* भरी बात कहलवा दें या **अनहद** वाणी सुनवा दें अथवा किसी के घर अन्न-भण्डार पूरा करवा दें भक्तों को प्रसाद पवाने हेतु । आदि आदि। जनसाधारण को यही लगता कि *समाधि में जाने वाला* भगत *बड़ा योगी* है, *खर्च करने* अथवा भण्डारा करने वाला *बड़ा दानी* है और *असंभव को संभव* कर किंसी का भला करने वाला बड़ा *सामर्थ्यवान* है, तथा *ज्ञान भरी* बातों वाला अथवा **अनहद** वाणी बोलने वाला व्यक्ति *परम-ज्ञानी* है, *जबकि यह सब कुछ* महाराज जी की *अपनी शक्ति* से ही *संभव* होता । अपने को **छिपा** अपने भक्तों-आश्रितों को विभिन्न लीला-क्रीड़ाओं के माध्यम से **श्रेय-ख्याति** दिलवाते रहते इसी प्रकार। यही लीला इलाहाबाद एवं कैंचीधाम में भी दिखती रहती थी ।

'प्रभु तरुतर कपि डारपर, ते किये आपु समान ।'

महाराज

केवल एक शनिवार को नहीं जा पाया वृन्दावन — अपने सहकर्मियों के आग्रह पर रविवार को उनके साथ सिनेमा देखने चला गया। और *उसी दिन* जेब **साफ** हो गई — ३६६)रु० के साथ महाराज जी का फोटो-चित्र भी चला गया !! पास में कानी कौड़ी भी न बची ।

परन्तु सोमवार को जब ऑफिस पहुँचा तो १५०)रु० का एक मनीआर्डर प्राप्त हो गया !! मेरी पत्नी ने इलाहाबाद से भेजा था — पता नहीं क्यों ? मैंने तो कभी भी उन्हें कुछ भेजने को नहीं कहा था अपने १६-२० वर्ष के दौरों की नौकरी के मध्य । यही *पहिला* और *अन्तिम* मनीआर्डर भी था उनकी ओर से । वाह रे प्रभु ! पूर्व में ही *सब कुछ जानकर* प्रेरित कर दिया पत्नी को इस हेतु !!

और सबसे आश्चर्य की बात थी कि एलनगंज जैसे *नगण्य* पोस्ट आफिस से *शनिवार* के दिन भेजा हुआ रुपया मुझे *सोमवार* को ही *साढ़े ग्यारह* बजे आगरे में मिल गया !!

महाराज

और फिर चौथे शनिवार को राजामंडी में गाड़ी में चढ़ते वक्त पुनः जेब से रुपये निकल गये । उस दिन तो मुफलिसी के कारण अपने एक सहकर्मी, पाठक जी से २०)रु० उधार लेकर चला था मैं । चार रुपये टिकट में, चार रु० आधा किलो पेठे में, और कुछ रिक्शा-पान-चाय में — खर्चे के बाद कुल ११)६० पैसे बचे थे जेब में । परन्तु वाह रे प्रभु ! *उसी* जेब से नोट ही नोट ले गया जेबकतरा और उन्हीं नोटों में लिपटा टिकट तथा ६० *पैसे* की रेजगारी सही सलामत रहे — वृन्दावन तक बस का किराया ६० पैसे !! रास्ते में सोचता रहा कि लौटती सरकार से १०)रु० ले लूँगा और अगली बार लौटा दूँगा ।

आश्रम पहुँचा तो देखा कि बरामदे के तखत पर महाराज जी विराजे हैं, और आँख मूँदे, (बिना आवाज मुँह चलाते *महाराज महाराज* करते) अलीगढ़ के विशम्भर जी बैठे हैं बाबा जी के चरन चाँपते। पेठा अर्पण कर जैसे ही प्रणाम करने को झुका, विशम्भर जी से बोले, **"इसे**

दस रु० दे दे ।" विशम्भर जी ने तत्काल मिरजई में हाथ डाल एक दस रुपये का नोट निकाल मेरी तरफ बढ़ा दिया । मेरे *अहं* को अजीब-सी लगी यह बात और मैंने बाबा जी से कहना चाहा, **"महाराज......"**, पर घट घट की जानने वाले तत्काल बोल उठे, कुछ जोर देकर, **"ले लो, प्रेम (प्रेम) से दे रहा है ।"** क्या करता, चुपचाप लेकर बाबा जी के चरणों में उसे छुवा जेब में रख लिया । फिर बोला, "महाराज, आज फिर जेब साफ हो गई ।" तपाक से बोल उठे सरकार, ***"ताई सों तो दिब्बाये हैं !!"*** क्या कहता—सोचा भी तो था कि महाराज जी से ले लूँगा १०)रु० ।

महाराज

पुनः सन्ध्या समय मेरे बाँये पंजे में अपना दाहिना पंजा फँसा, और मेरे ऊपर एक प्रकार से *लद* कर आप आवासीय भवनों के चक्कर लगाने लगे कहते हुए कि, **"शाम को घूमना अच्छा होता है स्वास्थ्य के लिए ।"** तभी मैंने पुनः कह दिया, "महाराज, आपने विशम्भर जी से मुझे १०)रु० दिलवा दिये । वो तो मैं आपसे ले लेता — वह दूसरी बात होती।" तो बोले, **"तुझे बुरा लगा ? अच्छा, उसे वापिस कर देना ।"** मैं आश्वस्त हुआ । परन्तु दूसरे ही चक्कर में पुनः बोल उठे, ***"नहीं उसे मत वापिस करना । वह बुरा मान जायेगा । हमें दे देना ।"***

वाह प्रभु ! भक्त की *भावनाओं के प्रति* कितने सचेत,कितने चैतन्य, उनके प्रति कितना आदर—कि किसी के अन्तर में किसी प्रकार की चोट न लगने पावे !!

अन्ततोगत्वा, सोमवार को मुझे ५००) रु० देकर एक लिस्ट दे दी गई कि अब आओगे तो आगरा से ये सामान भी लेते आना । साथ में हिदायत भी दी गई कि किस दुकान से कौन सी वस्तु खरीदनी होगी !!

महाराज

चार रु० में जाने का टिकट, चार ही में आने का, चार रु० का पेठा, दो रुपये रिक्शे और कुछ खर्च अपने पर — अधिकतम २०)रु० में महाप्रभु के हर अवकाश में दर्शन सुलभ !!

महाराज जी की लीलाओं को देखता रहता, और साथ में भक्तों का अर्पण भी—जिसकी तुलना में इतनी *तुच्छ-ओछी* लगती अपनी सेवा—

ग्लानि से अन्तर दुःखी हो जाता । अपनी स्थिति पर बहुत दुःख होता । (यद्यपि प्रभु बहुत पूर्व में ही मुझे आशीर्वाद दे चुके थे — **"मुकुन्दा, तू गरीब ही ठीक है ।"**)

यही सब सोचता एक सोमवार की सुबह आगरा वापिस जाने को तैयार होकर मैं आवासीय भवन के बरामदे में टहल रहा था कि महाराज जी कुटी से निकलें तो उन्हें प्रणाम कर चल दूँगा । तभी मन की ग्लानि मिटाने को बुद्धि में तर्क आ गया कि — अरे ! तू क्यों ग्लानि करता है ? *जो* भारी मात्रा में अर्पण कर रहे हैं, *उनमें* तो पूरी सामर्थ्य है और उनकी कमाई भी तेरे से **अलग** किस्म की है । उनका *तेरे साथ* क्या मुकाबला । *तेरी गाढ़ी कमाई* के १०)रु० उनके दस हजार के बराबर हैं ।

और एकदम ही *तभी* महाराज जी अपनी कुटी से निकलकर सामने के बरामदे में रखे तखत-आसन पर आ विराजे । देखते ही मैंने दौड़कर उन्हें जैसे ही प्रणाम किया, सरकार तत्काल रोष से बोल उठे, **"ऐसे ऐसे लोग आ जाते हैं यहाँ । दस रुपिया देते हैं और कहते हैं *दस हजार* दे दिया !!"** सुनते ही मैंने और भी अधिक ग्लानि से अपने दोनों कान पकड़ लिये । तब अत्यन्त मधुर मुस्कान के साथ (जिसमें उनके श्यामल कपोल भी प्रभात की अरुणिमा सम लाल हो गये) बोले, **"तू क्यों कान पकड़ता है ?"** मैं बोला, "महाराज, आप जानते ही हैं कि क्यों ?" तब पुनः बोले, ***"नहीं, तेरा सब ठीक है ।"*** (मैं सबकी एक एक साँस गिनता हूँ — बहुत चल्लाक हूँ — *मुझे बावला मत बनाओ* — यही तो जब-तब कहते रहते ।) शान्ति पाकर मैं आगरा चला गया ।

महाराज

अन्तिम स-शरीर दर्शन

तेरह जून १९७३ को मैं भी पहुँच गया लखनऊ से कैंचीधाम १५ जून के भण्डारे का भोग पाने। तब पाया कि महाराज जी बाहर बरामदे की गद्दी पर *समाधिस्थ-से* बैठे रहते हैं आँखे मूँदे । बाकी तीन ओर भक्तों-दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती । सामने का काफी क्षेत्र तो विदेशियों — अमरीकरन, ग्रीक, कैनेडियन, जर्मन, अंग्रेज — आदि से घिरा रहता था। महाराज जी तभी आँखे खोलते जब प्रसाद-फल या मिठाई बाँटते होते —

फेंक फेंककर, या *किसी आतुर* की कोई फरियाद सुननी होती। हाँ, **रामकुटी** में सभी से खुलकर बात कर लेते ।

१५ जून निकल गया । १६ जून को मैं वापसी के लिए अपना सामान लेकर आश्रम से मंदिर-प्रांगण में ले आया बाल भोग के बाद । मैं इन्तजार में बैठा रहा कि कहें कि **"अब जाओ ।"** (मेरे लिये *विदाई-प्रसाद* भी आ चुका था ।) उक्त आज्ञा हेतु ३-४ बार प्रणाम भी किया (उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने हेतु) जब भी महाराज जी *राधा-कुटी* या *राम-कुटी* से बाहर निकले । पर मेरी तरफ देखकर भी उन्होंने **जाओ** नहीं कहा । मुझे क्या पता था कि यह उनका अन्तिम स-शरीर दर्शन होगा मेरे लिये, और कि *इसी कारण* वे मुझे अधिकतम अवधि के लिए अपने श्री-चरणों में रोकना चाह रहे हैं । और *इसी कारण* भी इस बार *जिस* गम्भीरता से मुझसे बातें कर रहे थे *उस तरह* पूर्व में कभी नहीं की थीं । पर मैं तब क्या समझता उस समय उनके उस आचरण को ?

तीन बज गये अपरान्ह के, फिर चार और फिर पाँच भी । मैं अपना सामान समेट कर पुनः आश्रम-खंड में चला गया । करता भी क्या और ?

फिर १७ जून आ गई । लखनऊ में काम की भी चिन्ता थी । मातहतों को ऐसे ही छोड़ आया था । अवकाश भी खत्म होने को आ गया था । महाराज जी अपने नियमित समय पर बाहर भी आ चुके थे । और फिर ११ बजे प्रसाद पाने राधाकुटी में चले भी गये थे । मैंने आज चले जाने का निश्चय कर लिया था ।

पर *राधाकुटी* में तो मेरे *हेतु कुछ और ही* वात्सल्य-लीला चल रही थी दीनदयाल की (जिसका मुझे बाद में पता चला श्री माँ से ।) जब बाबा जी प्रसाद पाकर पुनः बाहर आ गये तो मुझे कोई पीछे के दरवाजे से महाराज जी की *राधाकुटी* के सामने प्रांगण में बुला ले गया । वहाँ श्री माँ कुटी के बरामदे में खड़ी थीं — हाथ में दो रोटी और उसके ऊपर रखी सूखी हरी सब्जी लिये । मुझे देखकर बोलीं, "ले मुकुन्दा, महाराज जी तेरे लिये दे गये हैं *अपनी थाली* से कि मुकुन्दा को बुलाकर दे देना । वे तो तुझे भीतर ही बुलवा रहे थे *अपने ही हाथों* से देने, परन्तु दादा — हां बाबा, हाँ बाबा, अभी बुलाते हैं — ही कहते रह गये (कि कहीं तेरे आने से महाराज जी ठीक से भोजन न कर पायें ।)"

महाराज जी का अपने प्रति *ऐसा* वात्सल्य देखकर मैंने प्रेमाश्रु बहाते वह अन्नपूर्णा प्रसाद श्री माँ के कर कमलों से ले माथे चढ़ा लिया । इस घटना की याद आते ही आज भी मेरी आँखें भर आती हैं ।

महाराज

और फिर अन्तिम दर्शन और विदाई । रामकुटी में मुझे बुलाकर बहुत उदासीन हो बोले, **"अब जाओ । काम पर तो जाना ही पड़ता है।"** प्रणाम करने लगा तो *जी भर* कर प्रणाम भी नहीं करने दिया । बोले, **"नहीं, अब जा ।"** (न मालूम क्या कष्ट हो रहा था उन्हें मेरे *उस* अन्तिम प्रणाम से ।) पुनः जालीदार खिड़की से मुझे जाते हुए देखते अधेलेटे हो कर झुक गये । वहीं, उस खिड़की से मुझे **अपने सर्वस्व** का *अन्तिम दर्शन* मिला — *स-शरीर दर्शन* । वहीं से पुनः प्रणाम किया । इतने में ही मेह बरसने लगा पर हल्का ही । नहीं देखा गया महाप्रभु से मेरा *इतना सा भी भीगना* । वहीं से बोले, **"दादा, इसे एक छाता, दे दो ।" एहिमिसि** चलते चलते अपनी **छत्रछाया** भी उस छाते के रूप में छोड़ गये मेरे लिये ***जो अब श्री माँ के स्नेहाञ्चल का रूप लिये हमारा रक्षा-कवच बन चुकी है*** । (मुकुन्दा)

महाराज

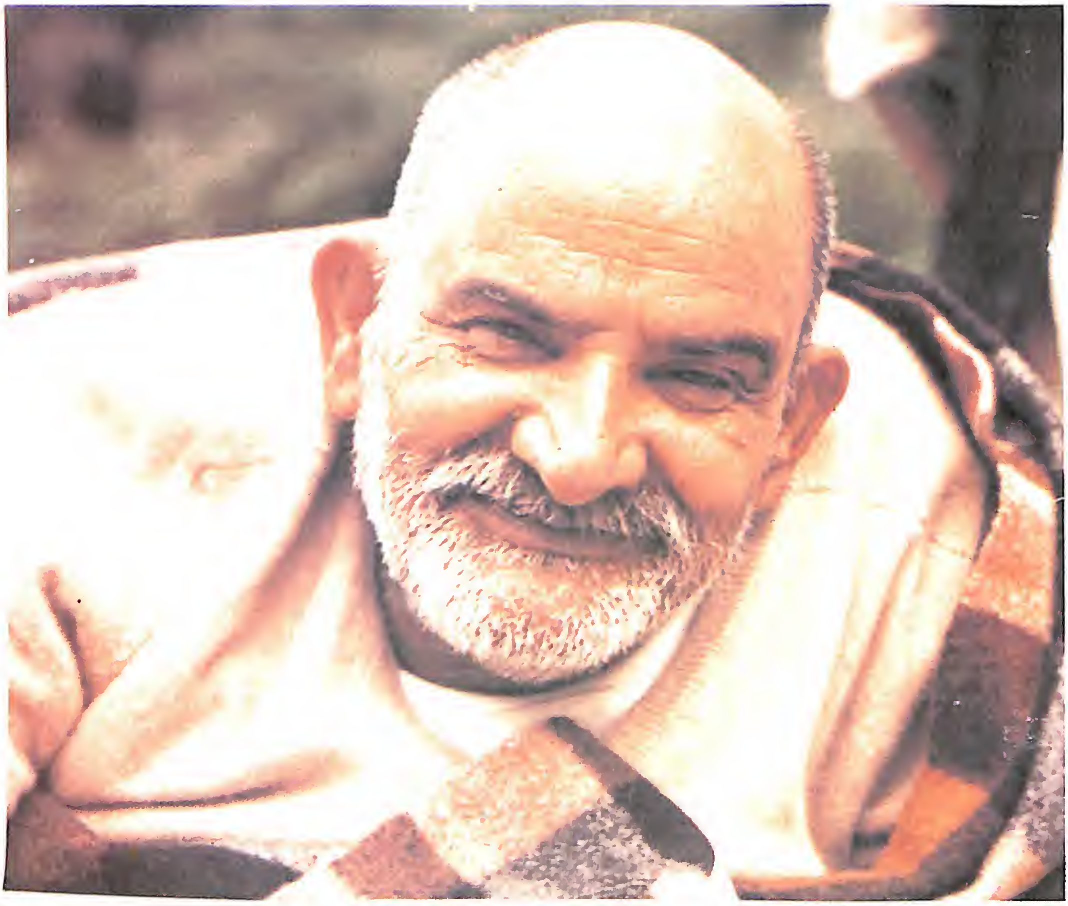

मैं कौन हूँ

एकादश पुष्पाञ्जलि

मैं कौन हूँ

तुम्हरो रूप लोग नहिं जाने, जापै कृपा करहु सोइ माने ।।

बाबा जी महाराज की अब तक की यहाँ एवं अन्य ग्रन्थों में वर्णित गाथाओं एवं लीलाओं पर गहनता से मनन करने पर *यही* स्पष्ट होता है (और *अब तो* स्पष्टतर होता जा रहा है) कि परमावतार बाबा जी महाराज *कौन थे/कौन हैं* — और यह भी कि वे सहस्त्रों आँखें, सहस्त्रों कान, सहस्त्रों हाथ-पैर लिये *न केवल* अपने हर भक्त, हर आश्रित, हर शरणांगत का (*बिना उसके जाने ही*) सदा पीछा करते रहते थे (और *आज भी* कर रहे हैं) वरन उस अज्ञात व्यक्ति का भी जो केवल **श्रवण सुजस सुनि** ही उनकी याद कर रहा हो, उनसे याचना कर रहा हो !! (**सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्र पात् ... !!**)

यद्यपि अपने **प्राकृत** एवं **विसंगतिपूर्ण आचरण की ओट** में वे **अपने को छिपाये** रखने की भरपूर चेष्टा में भी रत रहते थे, फिर भी कई अवसरों पर *स्वयं ही* — कभी **जानबूझ** कर तो कभी अपनी ही **तरंग** में, अपनी **मौज** में अथवा **भावावेश** में — भक्तों को अपने **मूल तत्त्व**, **मूल-स्वरूप** अथवा अपने **ईश्वरत्व**, अपने **अमरत्व** से अवगत कराते रहते थे। (और ***अब तो खुलकर ऐसा कर रहे हैं* सचेत** भक्तों के समक्ष !!)

ऐसे अवसरों पर भक्तों को बाबा जी महाराज के यथार्थ स्वरूप के **अंशों** की **झलकी** भी मिलती रहती थी । परन्तु शीघ्र ही बाबा जी के *प्राकृत* आचरण के कारण उनकी इन अलौकिकताओं से प्रभावित भक्तों के अथवा दर्शनार्थियों के मन में उनके प्रति उठे सात्विक भाव पुनः तिरोहित भी होते रहते थे । इसका एक कारण तो यह था कि बाबा जी महाराज स्वयँ भी **अपने** को जन समुदाय के — यहाँ तक कि अपने भक्तों के भी— समक्ष पूर्णरूप से प्रगट नहीं करना चाहते थे । एक संदर्भ में, वार्तालाप के मध्य, (जैसा पूर्व में भी कहा जा चुका है) उन्होंने स्वयँ ही श्री माँ से तथा लल्लू दादा (श्री देवकामता दीक्षित – कानपुर) से भी अपने श्री-मुख से कहा था कि, **"मनुष्य इतना स्वार्थी, इतना धूर्त है कि यदि लोग मुझे *जान जायें* तो मेरे रोम रोम का ताबीज बना लें ।"** अपने को सबसे

छिपाये रखने को, एवं इस हेतु अपनी **शक्ति** अपनी **सत्ता** को भी गौण बनाये रखने के लिये ही वे साथ साथ भ्रामक लीलायें भी करते रहते थे। यहाँ तक कि अगर किसी ने उनके स्वरूप को **समझ** पाने की इच्छा से उनके ऊपर (अपने हृदय में) ध्यान केन्द्रित करने की चेष्टा की तो उसे या तो अनर्गल-सी लगने वाली वार्ताओं से, या अपने भ्रामक आचरण से चंचल कर देते, या फिर अपना **ब्रह्मास्त्र — "अब जाओ, फिर आना"**— चला देते !! इस संदर्भ में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि *एक ओर* जहाँ (कुछ इने गिने **अपनों** को छोड़कर) उनके ही अन्य परिवारी जन एवं ग्रामवासी भी यह न जान सके कि उनके लक्ष्मीनारायण शर्मा जी *विश्वविख्यात अवतारी विभूति* बाबा नीब करौरी जी महाराज हैं, और न बाबा जी के ९९.९९ प्रतिशत भक्त ही उनकी महासमाधि के पूर्व जान पाये कि बाबा महाराज आगरा जिले के अकबरपुर ग्राम के एक परिवारी श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा हैं !!

और फिर महाराज जी के यथार्थ स्वरूप को, उनकी लीलाओं के **सार** को, उनकी उक्तियों को समझ *न* पाने का, उसे हृदयंगम *न* कर पाने का, एवं उनकी **प्राप्त झलकी** को हृदयन्तर में स्थिर *न* कर पाने का एक और भी तो कारण था — *वह था हमारा स्वार्थ* — महाराज जी से अपनी मनेच्छा-पूर्ति की हमारी बलवती अपेक्षा, जो महाराज जी के स्वरूप को **सीमित** कर देती थी । अधिकांश के लिये वे *केवल* एक सिद्धि-प्राप्त महात्मा भर बने रह गये ।

अपनी ***तरंग*** में, **मौज** में, **समाधिस्थ** अवस्था में अथवा **जानबूझ** कर भी अपने को **प्रगट** करने की बाबा जी महाराज की अनेक लीलायें हैं । एक बार एक भक्त से स्वयँ ही कहा था उन्होंने **"पूरन, खेल नहीं है । खड्ग की धार पर चलना होता है । जन्म जन्म का ब्रह्मश्चर्य चाहिए । दाँतों से लोहे का चना फोड़ना होता है । और जो यह चना फोड़ ले (और तभी अपने हृदय प्रदेश को तर्जनी से इंगित करते हुए) तब *'मैं ही राम'*, *'मैं ही कृष्ण'* !!"**

महाराज

कैंचीधाम में एक भक्त, श्री शिवगोपाल तिवारी से जब रामायण सुनाने को कहा बाबा महाराज ने तो स्वाभाविक तौर पर उन्होंने पूछ लिया, **"कहाँ से सुनाऊँ, महाराज ?"** तब बाबा जी महाराज न मालूम

किस भाव-सागर में गोते लगाये हुए थे कि बोल उठे, ***"जहाँ से हमने विभीषण से कही थी ..."*** और *तभी प्रकृतिस्थ* हो उठे !! फिर भी **पकड़** तो गये ही थे !! और जब *इसी* मगन भाव में तिवारी जी भी वह प्रसंग-विशेष सुनाने लगे तो महाराज जी पुनः *उसी* भाव-सागर में जा डूबे स्वयँ भी और शीघ्र ही भावावेश में आ गये !! उठ खड़े हुए और दादा मुखर्जी का सहारा लिये बाहर चले गये । परन्तु *तब भी* उनका जागृत भावावेष उतर न पाया और दादा के कंधे पर रखा उनका हाथ *भारी* होता चला गया, यहाँ तक कि दादा के लिए उसका वजन असहनीय हो गया !! तभी शंकर जी के मंदिर के पास दादा ने मुड़कर जो बाबा जी की तरफ देखा तो पाया कि हाथ ही नहीं वरन महाराज जी के शरीर का रोम रोम (हनुमान जी की वानरी देह की भाँति) बालों में परिवर्तित हो गया है !! देखकर दादा तो अर्ध-चेतन अवस्था में दूर जंगलों में भाग गये और साथ में महाराज जी भी मंदिर परिसर छोड़कर दूर चले गये। कुछ देर बाद बाबा जी तो पुनः प्रगट हो गये मंदिर परिसर में परन्तु दादा बहुत देर बाद महाराज जी द्वारा खोजबीन कराये जाने के उपरान्त ही लौट पाये !!

महाराज

शंकर भगवान के अनन्य भक्त, मेरे पिता जी नित्य ही रुद्राभिषेक अत्यन्त निष्ठा से एकाग्र हो करते थे और भेड़ाघाट (ज़बलपुर) से प्राप्त एक अनुपम स्फटिक सदृश बड़े आकार के **नार्मदेश्वर** का श्रृंगार नित्य रोरी, लाल चन्दन तथा फूलों से करते थे। साथ में *उसी* भाव से विष्णु-सहस्त्र नाम का पाठ भी। पर वे मेरे बड़े भाई, पूरनदा के कारण महाराज जी से अत्यन्त क्षुब्ध थे कि अभाव में डूबे पूरनदा गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ त्याग उनके पीछे **निरर्थक** डोलते हैं *बिना* किसी (सांसारिक) **प्राप्ति** के ।

परन्तु एक दिन हल्द्वानी फॉरेस्ट क्वाटर्स में जब सामूहिक पूजन हो रहा था शंकर जी का तो महाराज जी के एकाएक वहाँ आगमन पर उन्हें देखकर पिताजी को अकस्मात हल्का-सा उन्माद हो उठा। उन्होंने काँपते हुए महाराज जी को प्रणाम किया तो महाराज जी ने उनसे पूछा, **"तूने हेड़ियाखान के बाबा देखे हैं?"** पिताजी ने कहा, "नहीं, महाराज। मैं तो सोमवारी महाराज को मानता हूँ।" बाबा जी ने फिर पूछ दिया, **"नहीं देखे तूने हेड़ियाखान बाबा? *वे शिव थे*।"** और *अबकी* पिताजी के **नहीं**

कहने पर महाराज जी ने अपने सीने से दोनों हाथों से कम्बल हटा दिया। पिताजी ने महाराज जी के सीने में साक्षात् शंकर भगवान के दर्शन किये !! उन्होंने काँपते हुए बाबाजी को पुनः प्रणाम किया !! (लेखक)

महाराज

और अपने स्वरूप (रुद्रावतार) की पुष्टि हेतु महाराज जी ने पिता जी के साथ एक और लीला कर दी ।

उस दिन शिवरात्रि को पिताजी हल्द्वानी से ४-५ किमी० दूर चित्रशिला (रानीबाग) नामक शिवभूमि में स्नान-पूजा हेतु चले गये । वहाँ एक शिवलिंग समान एक छोटी शिला का प्रतिष्ठापन कर उसी को लक्ष्य कर शिवार्चन-रुद्राभिषेक करने लगे। परन्तु थोड़ी ही देर में उन्होंने देखा कि *उस* शिवलिंग की जगह स्वयँ महाराज जी विराज गये हैं — *नंग-धड़ंग* — दिगम्बर-रूप !! पिता जी को अपनी ही दृष्टि पर भ्रम हो गया। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं । और जब पुनः खोलीं तो महाराज जी को वहाँ यथावत पाया !! पुनः आँखें बन्द कीं और खोलीं तो *वही* दृश्य। अब उन्होंने दुगुने उत्साह से अभिषेक करना प्रारम्भ कर दिया। महाराज जी भी बैठे ही रहे अभिषेक कराते। परन्तु जब काल्पनिक रूप से (सामग्री तो थी नहीं) आरती करने लगे तो थोड़ी देर में महाराज जी अन्तर्ध्यान हो गये !!

महाराज

(प्रसंगवश — २७ नवम्बर, १९५२ को पिताजी के देहावसान के बाद बाबा महाराज जी ने पूरनदा को दर्शन दिये तो कहा था, **"पूरन, तेरा बुड्ढा मुझमें समा गया है — वह *ऐसा आठवाँ* व्यक्ति है जो मुझमें समा गये हैं । मैंने उसे बद्रीनाथ भेज दिया है । अब मैं हूँ तेरा बाप ।"** — लेखक)

महाराज

बजरंगगढ़ की स्थापना के कई वर्ष पूर्व ही नैनीताल में एक चाँदनी रात में पाषाण देवी मंदिर के नीचे एक शिला खण्ड पर बैठे झील के उस पार एक भवन को इंगित करते हुए बाबा जी बोल उठे, **"पूरन, वहाँ *कात्यायिनी* रहती है जिसके कारण *हनुमान* को यहाँ आना पड़ा ।"** भवन था इंडिया होटल और *कात्यायिनी* थी श्री सिद्धी माँ, जिनकी **गहनता** का

अनुमान *तब तक* किसी को न था — पूरनदा को भी नहीं, (जो *तब* महाराज जी को भी केवल **बाबा जी** मानते थे और माँ को केवल अन्य भक्त-माइयों की तरह अपना समकक्षी) और न *तब* माँ के परिवारी ही महाराज जी के भक्त थे। इस साधारण-से कथन में ही महाराज जी ने न केवल अपने शिव-रूप का, वरन श्री माँ का भी **मूलतत्व** अनावृत कर दिया !!

महाराज

बाबा जी महाराज के प्रथम दर्शन के कुछ साल बाद श्री माँ को महाराज जी के बारे में *बहुत कुछ* सुनने को मिलने लगा, उल्टा-सीधा भी। तब माँ के मन में और अधिक जिज्ञासा जागृत हो उठी, (वर्ष १९४९-५०)। प्रश्न उठने लगा मन में, ***"आप कौन हैं ? आपका मूल सत्य स्वरूप क्या है ?"*** तभी एक रात स्वप्न में महाराज जी ने उन्हें दर्शन देकर कहा, **"तूने गीता के सातवें अध्याय का सातवाँ श्लोक पढ़ा है ?" (मैं वही हूँ ।)** श्लोक है —

मत्तः परतरं नान्यकिंचिदस्तिं धनंजय ।
प्रयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।

(मेरे सिवा किंचित-मात्र भी *दूसरी* वस्तु नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में *सूत्र के मणियों* सदृश मेरे में गुँथा हुआ है । अर्थात् — माला की मणियाँ (ऋष्टि) एक सूत्र में मुझमें ही गुँथी हुई हैं।)

महाराज

एक अवसर पर अपनी मौज में यह कह कर भी कि, **"पूरन, हमारा सारा काम प्रकृति करती है"**, स्पष्ट कर दिया **मैं** प्रकृति पर नियन्त्रण रखने वाले जगन्नियन्ता का ही स्वरूप हूँ ।

महाराज

बाबा जी के आदेश पर कैंची में हनुमान जी के दर्शन करते श्री एस० एस० चिन्वान को हनुमान मूर्ति के स्थान पर बाबा जी खड़े दिखाई दिये !! एहिमिसि उन्हें भान करा दिया कि ***'मैं ही हनुमान भी हूँ ।'***

महाराज

बद्रीनाथ धाम की धर्मशाला में श्रीमती मुन्नी साह को बाबा जी ने पुनः भेज दिया बद्री-दर्शन को, परन्तु उन्हें बद्री भगवान के स्थान पर *अब* बाबा जी ही स-शरीर बैठे दिखाई दिये । वे अश्रुपूर्ण नेत्रों से बड़ी देर तक यह दृश्य देखती रहीं ।

पुष्टि हेतु बाबा जी ने उनके श्वसुर श्री हीरालाल जी (हब्बा) को भी पुनः दर्शन कर आने की आज्ञा दी । हब्बा जी ने भी *वही* दृश्य देखा— बद्रीनाथ मूर्ति की जगह बाबा जी !!

दोनों अश्रुपूरित नेत्रों से बाबा जी के पास चले आये । मुन्नी जी तो स्वभावतः मूक रहीं, पर हब्बा जी (जो बाबा जी से मुखर थे) बोल उठे, **"जब *यहीं* दर्शन हो रहे थे तो *वहाँ* फिर से भेजने की क्या जरूरत थी ?"** और फिर **हब्बा** कहकर *खुलकर* रो दिये ।

महाराज

मेरे द्वारा एक दिन गम्भीर परिस्थिति से उबारे जाने हेतु प्रार्थना करने पर कि **'प्रभू सोच त्यागहुँ बल तोरे, सब विधि घटहु काज अब मोरे'**, तुरन्त बोल उठे **'तू जानती नहीं—*मैं ही तो सब कुछ कर रहा हूँ, करता आया हूँ, करता रहूँगा* !!'**

और एक बार **अपने चले जाने** (अन्तर्ध्यान हो जाने) के प्रसंग में अपनी ही तरंग में मुझसे कह बैठे, **"अभी कहाँ जा रहा हूँ मैं ? *राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहाँ विश्राम* ।"** और अपने *इस* कथन पर मुझे *विस्मित* होते देख तुरन्त अपना मुँह कम्बल से छिपा लिया ।

अन्ततः बाल रूप में मेरी गोद में बैठकर बाबा जी ने मुझे *अपने* स्वरूप के बारे में बाकी **सबकुछ** भी बता दिया !! (रमा)

महाराज

मसक समान रूप कपि धरी

महाराज जी को हनुमदावतार मानने वाले इंडिया होटल (नैनीताल) के मालिक परम भक्त श्री तुलाराम साह जी बाबा जी के उसी रूप का अनुभूति दर्शन प्राप्त करना चाहते थे जिस रूप में हनुमान जी ने लंका में प्रवेश किया था — **मसक समान रूप** । साह जी की इस प्रबल अभिलाषा

की पूर्ति हेतु बाबा जी ने इलाहाबाद में एक लीला रच डाली — एक दिन कृतिम रोष-झुंझलाहट के साथ दादा से बोले, **"दादा, हमें तंग कर दिया है सबने । निकाल दो सबको बाहर । कमरा बन्द कर बाहर से ताला लगा दो ।"** दादा ने ऐसा ही किया और लाइब्रेरी के छोटे कमरे में बाबा जी बन्द हो गये । बाहर से ताला लग गया और दादा ने (महाराज जी की आज्ञानुसार) चाभी साह जी को सौंप दी चौकीदारी(?) के लिये । भीतर की तरफ एक ही दरवाजा था लाइब्रेरी से बाहर निकलने को — उसे बाबा जी ने सिटकिनी चढ़ा भीतर से स्वयँ बन्द कर लिया । अब रह गई केवल एक सघन ग्रिलदार खिड़की हवा के लिये (जिसमें से केवल एक हाथ बाहर निकाला जा सकता था ।) बाहर की तरफ दरवाजे के सामने पुरुष वर्ग बैठ गया और भीतरवाले दरवाजे के बाहर महिला वर्ग कि बाबा जी निकलें तो दर्शन करें । बाबा जी के बिना चैन भी किसको था ?

बहुत देर हो गई। तभी (प्रभुप्रेरित) श्री माँ ने, जो बाहर आँगन की तरफ स्नानागार की गैलरी में गई थीं, बाबा जी को लम्बे लम्बे डग भरते हुए उत्तर-पूर्व की ओर एलनगंज मोहल्ले को **भागते** देख लिया । आकर उन्होंने सब से कहा, "यहाँ क्या बैठे हो ? महाराज जी तो चले गये हैं — शायद मुकुन्दा के घर।" पर कौन विश्वास करता ? इधर से ताला और उधर से सिटकिनी। और फिर किसी अन्य ने भी तो नहीं देखा था। राय हुई ताला खोला जाये। पर आज्ञा उल्लंघन का भी डर था। फिर खिड़की की ओर से रब्बू ने देखा अन्दर तो महाराज जी गायब !! ताला खोला गया तथा भीतर सिटकिनी भी देखी गई। वह यथावत चढ़ी हुई थी !! *अब* तो बाबा जी के निकलने का एक ही रास्ता रह गया था — खिड़की की ग्रिल के बीच से — साधारण दृष्टि से अदृश्य अवस्था में — **मसक समान रूप** धर कर !!

तब तक बाबा जी मेरे घर पहुँचकर सीढ़ियों में बैठ गये । सभी भागकर वहीं आ गये और वहीं भी, तथा ऊपर आकर भी **दरबार** लग गया। सब कुछ देख-समझ साह जी के हृदयोद्गार फूट लिये, **"अब कोई शंका नहीं रह गई, महाराज ।"** उपरान्त, उपलक्ष में, भण्डारा भी हो गया वहीं । (मुकुन्दा)

महाराज

यही लीला नैनीताल में कमिश्नर रामरूप सिंह जी के घर भी हुई जहाँ बन्द कमरे से महाराज जी न मालूम कौन रूप धर भाग निकले थे। अन्य कई भक्तों के घर से भी महाराज जी ऐसे ही बन्द कमरों से अदृश्य हो भाग गये। उन्हें कोई भी नहीं बाँध सकता था — *न पवन को बाँध सका कभी कोई और न पवन पुत्र को ही*।

महाराज

श्री हेमचन्द्र जोशी को लेकर महाराज जी दादा के घर से निकल एक रिक्शे पर बैठ गये। संकोचवश हेमदा रिक्शे के पाँवदान पर बैठना चाहते थे पर महाराज जी ने उन्हें बरबस अपने बगल ही में बैठा लिया। रिक्शा कुछ दूर पहुँचा तो कुछ शंकित-से होकर हेमदा ने महाराज जी की ओर मुँह किया और उसी क्षण बाबा जी ने भी हेमदा की ओर घूमकर देखा। दृश्य देखकर हेमदा अवाक रह गये — महाराज जी की बढ़ी दाढ़ी वाले मुखमण्डल के स्थान पर एक अत्यन्त तेजोमय चेहरा था — रतनारे बड़े बड़े कमलनयन — श्यामसुन्दर की चंचल चितवन लिये साँवरी छवि — भूषणायुधों से कटि प्रदेश तक अलंकृत !! कुछ क्षण मदहोशी में हेमदा यह सब देखते रह गये — और फिर *वही* दाढ़ी-युक्त मुँह !! उसके बाद बहुत देर तक हेमदा न तो बाबा जी की लगातार चलती वार्ता को ही समझ पाये और न बाबा जी की **'सुनते नहीं ? बोलते नहीं'** का उत्तर दे सके। उनके नेत्रों के आगे तो महाराज जी की वह कटि प्रदेश तक अलंकृत अनुपम मनोहारी रम्य छबि ही घूमती रही थी।

महाराज

लटूरी बाबा के आश्रम से **अदृश्य** कर महाराज जी मुझे जंगल में एक नहर के किनारे ले जाकर वहाँ पैरापेट पर बैठ गये। बैठे बैठे काफी समय बीत गया। इस बीच मुझसे अपना बज्र-सम सीना भी मलवा चुके। ब्राह्म बेला आ चुकी थी। नहर में गँदला पानी बह रहा था। मैं यही देख रहा था कि तभी महाराज जी ने मुझसे कहा, **"पूरन, *सरयू* में स्नान कर लो।"** आज्ञानुसार मैंने उसी गँदले पानी की नहर में डुबकी लगा कमीज से बदन पोंछ लिया। परन्तु मन ही मन सोचता रहा, "यह कैसी सरयू है ?" स्नान के बाद महाराज जी को दंडवत प्रणाम करने लगा तो

बोल उठे, **"पूरन, सरजू स्नान कर तुम निर्मल हो गये"**, और फिर गा उठे, **"*तहंहि अवध जहँ राम निवासू* ।"**

महाराज जी से यह *संकेत* पाकर कि *जहाँ* राम *तहीं* ही अवध और *तहीं ही* सरयू भी!! मैंने उन्हें पुनः दण्डवत प्रणाम किया — गद्गद होकर। (पूरनदा)

(उक्त घटना के संदर्भ में मुझे भी उत्तरकाण्ड का वह प्रसंग याद हो आया जहाँ श्री राम पुष्पक में चढ़े विभीषण-अंगदादि को ***उस अवध*** की महिमा सुना रहे हैं *जहाँ उनका जन्म होता है — (भक्त का हृदय)— जहाँ वे वास करते हैं — जहाँ ही विवेक की सरजू बहती है — जहाँ ही उनकी सुख-राशि धामदापुरी है* — (बैकुण्ठ नहीं) — और *तब* राम जी से यह *संकेत* पाकर सबने ***उसी* अवध** (भक्त-हृदय) को **धन्य-धन्य** कहा — **'धन्य अवध *जो* राम बखानी'** – लेखक)

महाराज

महाराज जी की विस्मयकारी लीलायें देख कु० रजनी जोशी उनसे पूछती रहती थीं, "महाराज ! आप कौन हैं ?" वे उत्तर में केवल मुस्कुरा देते थे । परन्तु एक दिन इस प्रश्न के बाद सुबह ही रजनी को अपने साथ ले चले । एक-दो घरों में अपनी मनोहारी लीलायें कर बाबा जी रजनी को श्री शिवदत्त मण्टन जी के घर ले गये और सीधे उनके पूजा-घर में जा पहुँचे । वहाँ रजनी ने देखा कि मण्टन जी की पत्नी महाराज जी के फोटो-चित्र के सम्मुख वीरासन में बैठी अविरल अश्रुपात करती रामायण का *वह* प्रसंग पढ़ रही हैं *जहाँ* **शबरी** श्री राम जी की आराधना कर रही है। वेषभूषा भी शबरी की ही तरह थी — पर्वतीय प्रथा के अनुसार केवल एक (पुरानी) धोती पहिने वे रसोईघर से भोग प्रसाद लेकर सीधे वहाँ आकर पाठ करने लगी थीं — बाल भी कुछ कुछ रूखे-बिखरे हुए थे । बाबा जी और रजनी कुछ देर तक यह भाव-पूरित पाठ सुनते रहे । उधर महाराज जी के नेत्रों से अश्रुपात होता रहा ।

तभी महाराज जी ने रजनी को लक्ष्य कर पूछा, **"अब भी ना समझी तू?" (कि मैं कौन हूँ?)** उनकी बात सुनते ही श्रीमती मण्टन पलट कर उनके चरणों में लिपट गईं — शबरी की तरह !!

महाराज

अवतारी विभूतियों के बारे में साधारणतः यही धारणा रहती है कि उनके पाँव धरती पर नहीं पढ़ते — वे ऊपर ही ऊपर हवा में तैरते-से चलते हैं और इस कारण उनके पाँव सदा स्वच्छ-निर्मल रहते हैं । श्री होतृदत्त शर्मा से किसी ने कह दिया था कि बाबा जी के पाँव भी जमीन से काफी ऊँचे रहते हैं चलते वक्त । परन्तु, सदा नंगे पाँव चलने वाले बाबा जी के तलुवे अक्सर धूर-धूसरित भी दिखाई देते थे और उनके पाँवों में बिवाई भी दिखती थी !!

एक दिन वृन्दावन में शर्मा जी इसी शंका में सोच में पड़े थे कि बाबा जी ने उन्हें साथ घूमने के लिए बुला लिया। शर्माजी को पकड़े पकड़े बाबा जी आश्रम के पीछे मैदान में चल निकले जहाँ गोखरू-करील की बहुतायत थी। स्वाभाविक था कि थोड़ी ही देर में शर्मा जी के पाँवों में गोखरू-काँटे घुसने शुरू हो गये और कुछ देर बाद उनमें रक्त भी चालू हो गया । काँटे निकालने के लिए जब शर्मा जी एक-दो बार बाबा जी को छोड़ रुके तो **अनजान** बने महाराज जी ने उनसे पूछा, **"पंडित, रुक क्यों गये ?"** शर्मा जी ने कहा, "महाराज, पाँव में गोखरू घुस गये हैं । उन्हें निकाल रहा हूँ।" *तब* महाराज जी ने *मतलब भरी* निगाह से उनकी तरफ देखते हुए कहा, **"ओहो ! *हमारे तो नहीं लगे काँटे* ! तुम्हारे कैसे लग गये ?"**

शर्मा जी *तभी* लीला का *सार* समझ गये — शंका दूर हो गयी ।

महाराज

कानपुर में (पूर्व में) बाबा जी गंगा जी के किनारे लाडली पंडा के घर ही प्रवास करते थे । (केवल बाद में ही लल्लू दादा या श्री एस० के० चौधरी के घर निवास करने लगे थे ।) सुबह शौच के लिये वे उथली गंगा के बीच से होते बीच में बने एक बालू के टापू में चढ़ जाते और वहीं शौच से निवृत्त हो टापू के *उस पार* गहरे-जल में स्नान कर लेते ।

एक दिन *नित्य की भाँति* लाडली महाराज के एक गुमाश्ते को लेकर बाबा जी टापू की तरफ चले तो गुमाश्ता भी, और लाडली पंडा भी, *यही* देखकर अचम्भित होते रहे कि बाबा जी ***केवल गंगा जी की सतह पर ही चल रहे हैं***, मानों पक्की सड़क पर चल रहे हों !! साथ में *यही अनुभव* गुमाश्ते को भी करा दिया !! न बाबा जी के *श्री-पद* भीगे और न गुमाश्ते

के पैर। (लाडली पंडा द्वारा श्री केहर सिंह जी को वर्णित पंडा जी के अनुभवों से ।)

महाराज

भगवान सदा ही अपने भक्तों-शरणागतों के हितों की रक्षा करते रहे हैं । यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयँ ही ऐसे भक्त का रूप-स्वरूप धारण कर उसका योग-क्षेम भी वहन करते रहे हैं । *संत-भक्तों* के जीवन में घटित ऐसी कई घटनायें प्रकाश में आई हैं ।

उदाहरणार्थ — बिहार प्रदेश के एक महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशन में एक परम वैष्णव राम-भक्त स्टेशन मास्टर नियुक्त थे । प्रारम्भ से ही राम-भक्ति में रँगे ये संत-प्रकृति स्टेशन मास्टर साहब ब्राह्म बेला से ही राम जी की पूजा एवं उनके ध्यान में निमग्न हो जाते तथा भजनों में ही घंटों तल्लीन रहा करते थे । इस कारण सुबह ८ बजे के बजाय दस-साढ़े दस बजे तक ही अपनी ड्यूटी में पहुँच पाते थे । परन्तु राम कृपा से उनकी अनुपस्थिति के बीच कभी कोई चूक न होने पाई और न कोई नुकसान ।

परन्तु एक दिन तो *अति* ही हो गई । उस दिन स्टेशन मास्टर साहब अपने भजन-ध्यान में *इतने* तल्लीन हो गये कि उन्हें ड्यूटी का ध्यान ही न रहा । और उसी दिन (तबकी) ईस्टर्न इंडिया रेलवे का एक अंग्रेज अफसर कलकत्ते से स्टेशन का मुआइना करने आ पहुँचा । अंग्रेजी राज था और अफसरशाही की सख्ती थी । परन्तु अफसर मुआइना कर संतुष्ट हो चला गया !! लोगों ने देखा कि स्टेशन मास्टर साहब भी अफसर को विदा करने चले गये । और जब ध्यान टूटने पर *असली* मास्टर जी स्टेशन पहुँचे तो सभी मातहत उन्हें बधाई देने लगे मुआइने की सफल सम्पन्नता पर कि — "वाह साहब ! कितनी कुशलता से *आपने* सारे रेकार्डों का मुआइना करा लिया । अंग्रेज अफसर भी खुश हो चला गया ।"

मैंने कराया मुआइना ? "हाँ हुजूर । आप ही तो उसे सारे रिकार्ड एवं लीवर-पॉइंट आदि दिखाते रहे । ये देखिये, कितनी अच्छी रिपोर्ट लिख गया अफसर ।" ये आश्चर्यान्वित हुए वस्तुस्थिति समझने की चेष्टा करते रहे ।

रिपोर्ट का पहला वाक्य था — मैंने आज ...... स्टेशन का मुआइना किया । स्टेशन मास्टर ...... स्वयँ वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने मुझे सब रेकार्ड दिखाये...... आदि आदि । और अन्त में स्टेशन मास्टर की कार्यकुशलता पर प्रसन्नता और टिप्पणी !!

स्टेशन मास्टर साहब कुछ देर सोचते रहे — "ओहो ! मेरे कारण मेरे प्रभु श्री राम को इतना कष्ट उठाना पड़ा !! मेरा रूप धर कर मुआइना कराते एक *मानव* की जी-हुजूरी भी करनी पड़ी !!" तभी उन्होंने मेज से कागज कलम उठाया, अपना स्तीफा लिखा और उसे मेज पर रख सीधे अज्ञात की ओर निकल गये । (स्वयँ बाबा जी द्वारा केहर सिंह जी को सुनाई गाथा ।)

महाराज

बाबा जी महाराज ने भी कई अवसरों पर ऐसी ही परिस्थितियों में आबद्ध अपने भक्त-शरणागतों की लाज की रक्षा हेतु इसी प्रकार की लीला-क्रीड़ा कर भगवान के उक्त *चरित* की पुनरावृत्ति कर डाली । और ऐसी लीलाओं के माध्यम से भी स्पष्ट कर दिया कि — ***'मैं कौन हूँ'*** । (परन्तु *तब* उनके इस रूप-स्वरूप विशेष की *पकड़* ही किसको हो पाती— सभी तो मनेच्छाओं की जकड़ से मोह-पाश में आबद्ध थे ।)

श्री आर० पी० पाण्डे जी को आफिस पहुँचने में देर हो चुकी थी। सोचा "*अब* आधे दिन की छुट्टी लेनी पड़ेगी । तब तक दादा के घर बाबा जी के ही दर्शन क्यों न कर लूँ ।" सो बाबा जी के श्री चरणों पर जा पहुँचे ।

और बाबा जी ने उन्हें अपने पास *ऐसा* बिठा लिया कि *आधे दिन* की छुट्टी का भी प्रश्न शेष हो गया । पाण्डे जी सोचते रह गये कि *अब* तो पूरे ही दिन की छुट्टी लेनी पड़ेगी । तभी बाबा जी से **"अब जा । काम पर नहीं जायेगा ?"**— सुनकर आप पूरे दिन की छुट्टी की अर्जी लगाने हेतु जब दफ्तर पहुँचे तो हाजिरी बाबू आश्चर्य से बोल उठा, "पाण्डे जी, आप तो *सुबह से* यहीं हैं । तब यह छुट्टी की अर्जी कैसी ?" पाण्डे जी द्वारा शंका करने पर उसने हाजिरी रजिस्टर में उनके दस्तखत भी दिखा दिये !!

इस घटना से और भी अधिक आश्चर्यान्वित हुए पाण्डे जी अपनी सीट पर पहुँचे तो आस पास बैठे अन्य कर्मचारियों से जिक्र करने पर

उन्होंने भी पुष्टि कर दी कि आप तो सुबह से ही अपनी सीट पर बैठे काम कर रहे थे !!

बाबा जी की *इस दया* का गुणगान करने के सिवा *पाण्डे जी* तब और कर भी क्या सकते थे । (परन्तु क्या *तब* उन्हें स्पष्ट हो गया होगा कि बाबा जी ही *पाण्डे जी बनकर* यह लीला कर रहे थे ?)

महाराज

हाइडिल विभाग के श्री ईश्वरी प्रसाद अपने विभाग के ३६ नलकूपों की देखरेख हेतु ऐटा की एक तहसील में अमीन के पद पर नियुक्त थे । वर्ष १९७०-७१ में ही उन्हें बाबा जी के प्रथम बार दर्शन मिल पाये । पर *तभी* से वे बाबा जी के प्रति समर्पित भाव से जब-तब वृन्दावन आ पहुँचते।

एक दिन वे ऐसे ही भावपूर्ण हुए दर्शन हेतु वृन्दावन आश्रम आये तो बाबा जी ने उन्हें रोक लिया । दूसरे दिन ड्यूटी पर जाने को हुए तो बाबा जी ने उन्हें पुनः रोक लिया । और फिर इसी तरह ६-७ दिन रोके चले गये अपने पास ।

उधर उनके असिस्टेंट इंजीनियर को, (जो उनसे रुष्ट रहता था) एक सुनहरी मौका मिल गया उन्हें सबक सिखाने का। उसने इनकी चौथी गैरहाजिरी के बाद उनके खिलाफ एक लम्बी चौड़ी रिपोर्ट सुपरिंटेन्डिग इन्जीनियर के पास भेज दी कि किस तरह अमीन ईश्वरी प्रसाद लगातार बिना अर्जी, बिना आज्ञा-मंजूरी के अपने कार्य से अनुपस्थित हैं, और कितने नलकूप उनकी गैरहाजिरी के कारण *बीमार* पड़े हैं — आदि आदि । और भी कि, ऐसी ही गैरहाजिरी इनकी जब तब हो जाती है ।

परन्तु इधर बाबा जी भी देख रहे थे उसकी सब करतूत । अपने भक्त को वे कैसे *असहाय* छोड़ देते ? अपने चरणाश्रित की रक्षा हेतु तुरन्त क्रियाशील हो गये । प्रथम तो उन्होंने सुपरिंटेन्डिग इंजीनियर का ही दिमाग चला दिया कि (असिस्टेन्ट इंजीनियर की बातों पर पूरा यकीन न कर) इस तथ्य की सही जानकारी मैं स्वयँ करूँगा । और वह अपनी जीप लेकर इन ३६ नलकूपों के मुआइने हेतु खुद चल दिया । तब एक के बाद एक उन नलकूपों पर जब वह पहुँचा तो वहाँ तैनात कर्मचारियों से उसे मालूम हुआ कि — *अभी अभी* (या कल ही-परसों ही) तो मुआइना कर अमीन आगे चले गये हैं और कुएँ के बारे में अपनी रिपोर्ट भी लिख कर

(आवश्यकतानुसार) हिदायतें भी दे गये हैं। कई नलकूपों पर इसी प्रकार की फुटकर रिपोर्ट मिलने-देखने पर सुप० इंजी० असिस्टेन्ट इंजीनियर पर ही क्रोधित हो उठा और उसे ही चार्ज-शीट दे दी !!

और जब सातवें दिन ईश्वरी प्रसाद महाशय अपनी ड्यूटी पर हाज़िर हुए तो २-३ दिन में ही उन्हें हर कुएँ पर एक ही तरह की बात सुनने को मिली अपने मातहतों से (सार में) — "वाह सरकार, कैसा बढ़िया मुआइना हो गया आपका। और *आप भी कैसी मुस्तैदी से साइकिल भगाते एक कुएँ से दूसरे कुएँ दौड़ते रहे इन दो-तीन दिनों में* !! क्या आपको पहिले से मालूम हो गया था कि बड़े साब आयेंगे ?" आश्चर्यान्वित हुए अमीन मूक ही बने रहे। परन्तु तब क्या उन्होंने सोचा भी होगा या विश्वास ही किया होगा कि बाबा महाराज उनकी रक्षा हेतु *अमीन ईश्वरी प्रसाद बनकर* उनकी ड्यूटी पूरी करते रहे !! (अमीन ने अपने जीवन की यह महानतम घटना श्री केहर सिंह जी को स्वयँ सुनाई — लेखक ।)

महाराज

लखनऊ का एक भक्त एम० बी० लाल, जिसे हम *रमेश* नाम से जानते थे, बाबा जी के साथ कानुपर में मगन था। तभी उसे याद आया कि लौरेट्टो कान्वेन्ट में लड़की के इम्तहान की फीस जमा करनी है *कल ही*। पर वह बाबा ज़ी के *साथ के आनन्द* का लोभ त्याग न सका। फीस जमा करने की तारीख निकल गई। अन्ततोगत्वा, जब बाबा जी कानपुर से चले गये, वह लखनऊ आ गया। दूसरे दिन वह जब क्षमा-याचना लेकर कॉन्वेन्ट पहुँचा फीस लेकर तो मदर सुपीरियर ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए उससे कहा कि "आपकी लड़की की फीस तो एक *वृद्ध महाशय* जमा कर चुके हैं। वे रसीद भी नहीं ले गये।" और मदर ने आफ़िस से फीस-रसीद मँगवाकर उन्हें दे दी !! रमेश बाबू का अपने प्रति भक्ति-भाव देखकर महाराज जी ने स्वयँ एक बूढ़े का रूप रखकर यह लीला रच दी। (केहर सिंह)

महाराज

बाबा जी महाराज के साथ हम कुछ चरणाश्रित प्रयाग में कुम्भ मेले में घूम रहे थे । तभी बाबा जी *सहसा* एक महन्त के वेष वाले साधू की कुटी के पास रुक गये और उस साधू से कहने लगे — **"मुझे बड़ी भूख**

लगी है, कुछ दे खाने को ।" साधू बाबा ने उन्हें भण्डारे हेतु बनी सामग्री से कुछ देना चाहा । परन्तु तुरन्त ही बाबा जी बोल उठे— **"नहीं, 'वो' ला जो तूने *भगवान* के लिये बनवाकर रख छोड़ा है ।"**

दरअसल साधू बाबा कुछ **तरमाल** बनवाते रहे भगवान हेतु भोग की आड़ में और फिर उसे स्वयँ ही चुपचाप पा लेते । चेलों तथा अन्य लोगों के लिये केवल साधारण-सा भोजन अलग से बनता था भण्डारे में । परन्तु बाबा जी से क्या छिप सकता था ।

जब बाबा जी ने उसका रहस्य इस प्रकार खोल दिया तो साधू महाराज सकपका गये । फिर भी बात टालने के लिये बोल उठे । "वह भोग तो *भगवान* के लिये है ।" तब महाराज जी बोले, ***"जब भगवान के लिये है तो देता क्यों नहीं ?"*** हारकर (कि उसका रहस्य सर्वविदित न हो जाये) साधू ने वह भोग निकालकर महाराज जी को पवा ही दिया ।

तब तो बाबा जी की उक्त लीला पर न तो मनन करने का ही अवसर मिला था और न इस ओर मनोवृत्ति ही हुई थी । अन्य लीलाओं की तरह मैं यही समझता रहा कि बाबा जी ने उस साधू का भेद खोल दिया है, और इस तरह बता दिया हमें कि *उनसे* कुछ छिपा नहीं है ।

किन्तु उस लीला पर मनन करने पर *अब* स्पष्ट हो गया है कि अपनी *उक्ति* **'*भगवान* के लिये है तो देता क्यों नहीं'** के द्वारा बाबा जी ने पूरी तरह **खुलासा** कर दिया अपने भगवद् रूप-स्वरूप का !! परन्तु केवल हमारी भेद-दृष्टि और बुद्धि ने हमें *तब इस* सत्य को पकड़ने से वंचित रख दिया । (देवकामता दीक्षित)

महाराज

मैं महाराज जी के साथ बैठा उनकी विभिन्न लीला-क्रीड़ाओं का आनन्द ले रहा था। तभी उनके एक भक्त श्री बद्रीनाथ-केदारनाथ यात्रा से लौटकर उनके दर्शनों को आ गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से अपनी यात्रा के अनुभव सुनाये जिनके मध्य उन्होंने बाबा जी से सु-विख्यात *काली कमली वाले बाबा* द्वारा यात्रियों की सुख सुविधा हेतु मार्ग में स्थान-स्थान पर उनके द्वारा आवास एवं भोजन-प्रसाद की व्यवस्था की भी भूरि भूरि प्रसंशा की । (तब केवल जोशी मठ तक ही यातायात व्यवस्था थी — बाकी मार्ग पैदल तय करना पड़ता था ।) महाराज जी ध्यान से सब सुनते रहे और

अन्त में बोले, **"तुम जानते नहीं । *काली कमली वाले बाबा स्वयँ भगवान थे* । काला कम्बल ओढ़े प्रगट हुए और अपने दर्शनार्थी भक्तों के लिये ही ऐसा प्रबन्ध करते रहे ।"** अपनी *इस* वाणी को उन्होंने *कई* बार दुहराया, और *उतनी ही* बार स्वयँ *अपने कम्बल* की ओर भी दृष्टि करते रहे तथा उसे इधर-उधर भी करते रहे — सँभालने की मुद्रा का भ्रम दिलाते (जो एक अप्रत्याशित क्रिया थी बाबा जी की ।) तब तो उनके *ऐसा* करने का प्रयोजन जरा भी समझ में नहीं आया न उनके *अपने* भी कम्बल की ओर बार बार निहारने में *निहित इशारे* का ही । परन्तु *अब* **काली कमली** के साथ उनका *अपने भी कम्बल* का *सम्बन्ध* पूरी तरह स्पष्ट हो गया है । (देवकामता दीक्षित)

महाराज

मेरे साथ बाबा महाराज प्रयाग में गंगा जी के किनारे बसे सुप्रसिद्ध ज्ञानी महन्त श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी से मिलने गये थे — केवल अपनी **मौज** में। कार से उतरकर मैंने पास खड़े कुछ शिष्यों से पूछा कि ब्रह्मचारी जी कहाँ हैं। मालूम हुआ कि ब्रह्मचारी जी दोपहर का प्रसाद पाने की तैयारी में हैं। (ब्रह्मचारी जी श्रीकृष्ण भगवान के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित भगवान के **वासुदेव**-रूप के परम निष्ठ पुजारी थे)

तभी एक दरवाजे से ब्रह्मचारी जी निकल आये और बाबा जी को देखकर दौड़ते उनके पास आ गये । बाबा जी ने उन्हें **अपने** में ही **अपना** कौन सा रूप-स्वरूप दृष्टिगोचर करा दिया कि (श्री चरणों में प्रणाम करने की जगह) ब्रह्मचारी जी बाबा जी से सर्वांग लिपट गये — कहते हुए **'ॐ नमो भगवते बासुदेवाय ।'** केवल एक बार नहीं — जब तक लिपटे रहे तब तक अनेकों बार — अश्रुप्लावित हुए !!

और जब बाबा जी तथा ब्रह्मचारी जी दोनों प्रकृतिस्थ हुए तभी चल पड़ा औपचारिक व्यवहार — आग्रह, साथ साथ प्रसाद-भोग एवं प्रस्थान आदि । (केहर सिंह)

महाराज

बाबा जी में **हनुमान-दर्शन** का एक संस्मरण श्री गोपाल नारायण मेहरोत्रा जी द्वारा मुझे कैंचीधाम में प्राप्त हुआ ।

मैं महाराज जी के (विग्रह) दर्शनों के लिए कैंचीधाम जा रहा था। मेरे डब्बे में भारतीय नौ सेना **विराट** जलपोत के एक बड़े अफसर बैठे हुए थे जो नैनीताल अपने मित्र श्री देवीलाल साह जी से मिलने जा रहे थे। बातों बातों में बाबा जी की बात चल पड़ी तो बोले —

मैं तो भाई नास्तिक था अव्वल दर्जे का परन्तु मेरी पत्नी देवीलाल जी के परिवार से मित्रता होने के कारण बाबा जी की भक्त हो चली थीं। उस दिन (वर्षों पूर्व) हम अल्मोड़ा जा रहे थे। मार्ग में कैंची में १५ जून के सिलसिले में भीड़ देखकर पत्नी ने आग्रह किया बाबा जी के दर्शन हेतु। हम मंदिर के भीतर आ गये। पत्नी तो बाबा जी के पास चली गई पर मैं दूर ही खड़ा रहा। कुछ देर बाद बाबा जी मुझे पास बुलाकर बोले, **"तू तो नास्तिक है।"** "हाँ, जी।" **"हम तुझे आस्तिक बना दें?"** "बना दीजिए।" **"अच्छा जा, हनुमान जी के दर्शन कर आ।"** मैं चला गया। पर *जब* हनुमान जी के दर्शन करने लगा तो देखा कि बाबा जी हैं *उस स्थान पर* !! अपनी आँखें मलीं और फिर देखा तो पुनः बाबा जी ही दिखे !! आश्चर्य से मैं यह सब कुछ देखता रह गया।

(प्रसंगवश — और फिर जब उनके पास लौट कर आया तो बोले, **"तेरे दिमाग में एक प्रश्न है।"** "हाँ महाराज।" **"तू पास हो जायेगा, जा।"**

दरअसल मैंने (तब) *नेवी* में नौ सैनिक अफसर की प्रोन्नत-परीक्षा दे रखी थी। पर मेरा एक परचा बिल्कुल बिगड़ गया था। पास होने का कोई प्रश्न ही न था। मैंने कहा, "मेरा तो एक परचा बिल्कुल बिगड़ गया है। मेरे पास होने का कोई सवाल ही नहीं है।" पर वे बोल उठे, **"नहीं, उसी में तेरे सबसे ज्यादा नम्बर आयेंगे।"**

और जब रिजल्ट के बाद मार्कशीट भी मिली तो उसी परचे में मैंने सबसे अधिक नम्बर पाये थे !!)

महाराज

इसी प्रकार वर्ष १९८४ में परिक्रमा मार्ग में गोरे दाऊ जी के मंदिर में रामायण सुनते श्री अमरं सिंह यादव को शंका हो उठी कि हनुमान जी को *अजर अमर* कहा जाता है परन्तु वे किसी को दिखाई नहीं देते। अपने ही गुरु से यह शंका प्रगट करने पर उन्होंने यादव जी को पास में बाबा

नीब करौरी आश्रम में हनुमान जी के दर्शन कर आने को कहा । पर जब यादव जी वहाँ पहुँचे तो देखा कि वहाँ हनुमान मंदिर तो है, पर *अभी* मूर्ति स्थापित नहीं हुई लगता है — (उन्होंने हनुमान मूर्ति के स्थान पर एक स्थूलकाय वृद्ध महोदय को कम्बल ओढ़े बैठे देखा, ओर समझा कि ये यहाँ के व्यवस्थापक होंगे !!)

और जब अपने चचेरे भाई, श्री आर० एस० यादव के घर *उन्हीं* वृद्ध महोदय का फोटो चित्र उन्होंने देखा तो पूछने पर और तथ्य मालूम होने पर आश्चर्य में पड़ गये कि (१) हनुमान विग्रह की स्थापना २८-२६ वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी उस मंदिर में, और कि, (२) जिन्हें उन्होंने देखा था, वे बाबा नीब करौरी हैं — *शरीर-लीला के बाद भी अजर-अमर — हनुमान जी की तरह*, और उन्हीं के अवतार !! (अलौकिक यथार्थ से)

महाराज

इसी प्रकार श्री त्रिगुण वैद्य जी को भी दिल्ली मंदिर में *हनुमान जी की जगह* बाबा जी महाराज के दर्शन हुए थे — *२४ सितम्बर, १६७३* को !! (जबकि बाबा जी *१० सितम्बर, १६७३* की रात को ही शरीर लीला कर चुके थे !!)

पुनः वर्ष १६८० में उन्हें कैंची मंदिर में *बाबा जी की मूर्ति की जगह हनुमान जी* का विशाल विग्रह दिखाई दिया !! दिल्ली वापिस आकर ही उन्हें पता चला कि महाराज जी तो *उस* तत्व-पीठ में पद्मासन में *१६७६ से ही* मूर्ति रूप में विराजमान हैं !!

बाबा जी की ये लीलाएँ *केवल* पूर्व में उनके द्वारा किये गये कौतुकों की मात्र पुनरावृत्ति थी— स-शरीर भी तथा महासमाधि के उपरान्त भी — **'मैं कौन हूँ'** बताने हेतु ।

महाराज

और अन्त में श्री सदाकान्त, (आई० ए० एस०, विशेष सचिव उ०प्र० शासन) द्वारा एक विशिष्ट अनुभूति का विवरण —

मैं पिछले अनेक वर्षों से महाराष्ट्र के महान सन्त साक्षात् नारायण स्वरूप श्री शिरडी के साईं बाबा तथा महान सद्गुरु श्री दत्तात्रेय की

आराधना करता आ रहा हूँ, (यद्यपि बाल्या-किशोरावस्था में मैं हनुमान जी के प्रति भी अपने भावानुसार आकर्षित रहा था ।)

वर्ष १९६० में लखनऊ से स्थानान्तरित होकर क्षेत्रीय खाद्य-नियंत्रक (हल्द्वानी) के पद पर आरूढ़ हो जब मैं सरकारी कार्य से हल्द्वानी से अल्मोड़ा जा रहा था तो मार्ग में कैंचीधाम आश्रम में हनुमान जी के दर्शन करने का अवसर मिला । वहाँ जाने पर महान सद्गुरु श्री नीम करौली बाबा के बारे में भी जानने का अवसर मिला । वहीं पर ही श्री विनोद जी से **मिरेकिल ऑफ लव** पुस्तक प्राप्त हुई जिसे मैं रात्रि भर अल्मोड़ा में पढ़ता रहा । और तब श्री बाबा ने मेरे हृदय को मानो ईश्वर-भक्ति से आन्दोलित कर दिया । अल्मोड़ा से लौटने पर श्री विनोद जी के माध्यम से श्री बाबा की कृपा ने मुझे कैंची में *पहली बार* रात्रि विश्राम का सुअवसर प्राप्त करा दिया । सायंकाल सभी मंदिरों में आरती होने के पश्चात सद्गुरु के मंदिर में आरती में मैं भी सम्मिलित हुआ । आरती समाप्ति पर **जय गुरुदेव** के उच्च स्वर से होती परिक्रमा में भी सम्मिलित हुआ । *उसी समय* मेरे मन में शंका का उदय हुआ कि मैं तो शिरडी स्वामी — दत्तात्रेय का भक्त' हूँ । क्या यह मेरे लिये उचित है कि मैं श्री नीब करौरी बाबा को गुरु रूप में स्वीकार करते हुए उनकी इस प्रकार परिक्रमा करूँ ? क्या ऐसा करने से एकनिष्ठ गुरु-भक्ति में विचलन नहीं हो जायेगा ?

आरती के पश्चात मैं अपने कमरे में चला गया, और वहाँ जाकर मैंने श्री साईं बाबा की सायंकाल-आरती को भी यथावत पूर्ण किया । आरती पाठ के समय मैं *शिरडी में स्थापित* गुरु की मूर्ति का ध्यान कर रहा था तो *उसी समय* सहज ध्यान में सिंहासन पर विराजमान *उस मूर्ति के स्थान* पर मुझे एक विशाल शरीर वाले स्थूलकाय महान विभूति के दर्शन हुए, जो कि कम्बल ओढ़े हुए थे, तथा थोड़ी चंचलता ओर चपलता के साथ अपने शरीर को हिला-डुला रहे थे । यह दृश्य देखकर मैंने आश्चर्य से आँखें खोल दीं और श्री साईं बाबा का चित्र देखने लगा । चित्र में मुझे साईं बाबा भी *मुस्कराते* हुए दिखाई दिये !! इसके पश्चात मैंने पुनः आँखें मूँद लीं और पुनः मेरे सहज ध्यान में *वही* दृश्य घूम गया !! इस प्रकार काफी देर तक मुझे महान अवतार विभूति श्री नीब करौरी बाबा के अति सुन्दर और मंगलमय स्वरूप के दर्शन होते रहे । इसके तत्काल पश्चात ही मेरी बुद्धि में *इस ज्ञान* का उदय हुआ कि श्री नीब करौरी बाबा

और श्री शिरडी के साईं बाबा अलग अलग दो अवतार नहीं हैं, बल्कि दोनों सन्त *एक ही* स्वरूप हैं और एक दूसरे से अभिन्न हैं । मुझे इसका भी बोध हुआ कि श्री साईं बाबा ने ही मुझे श्री हनुमान जी के पास कैंची भेजा । और यहाँ आने पर श्री नीब करौरी बाबा ने श्री साई महाराज के साथ अपनी अभिन्नता और एकता के दर्शन करा दिये ।

इसके पश्चात नवरात्रि में दिनाँक २८ सितम्बर १९९० को पुनः कैंची गया और *इस बार* वहाँ *जगदम्बा स्वरूपा* श्री सिद्धि माँ के दर्शन प्राप्त हुए। परम सरल प्रेममयी मूर्ति करुणामयी माँ ने मुझ पर कृपा की, और उनके दर्शन कर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ । माँ ने प्रथम दर्शन में ही अपने **भगवती-स्वरूप** को प्रकट कर दिया।

इस प्रकार मैं श्री नीब करौरी बाबा और श्री हुनमान जी के दरबार में सम्मिलित हो गया और मुझे दिनांक १५ जून, १९९१ को भी महाभण्डारे के अवसर पर कैंची में चार दिन निवास करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मुझे तब इसका पूर्ण बोध हुआ कि *इस भण्डारे के पूरे आयोजन में सद्गुरु की महान शक्ति अनवरत रूप में सब कार्यों का संचालन करती रहती है, और कि महाराज जी सद्गुरु रूप में* ***साक्षात् हनुमान ही हैं*** ।

भण्डारे में जहाँ प्रसाद बनता है वहाँ पर बाबा जी के चित्र-विग्रह की स्थापना कर अखण्ड हनुमान चालीसा पाठ किया जाता है । मुझे भी इस अवसर पर श्री बाबा को हनुमान चालीसा सुनाने का अवसर प्राप्त हुआ। पढ़ते हुए मेरी दृष्टि बाबा की छवि पर गई जो कि अद्भुत तथा अलौकिक है । प्रत्येक अंगों को हर्षपूर्वक निहारते हुए मेरी दृष्टि उनके हृदय-स्थल पर रुक गई । हृदय-स्थल पर बालों की संरचना कुछ इस प्रकार बनी है कि जैसे भगवान नारायण के हृदय पर **भृगुपाद** के चिन्ह हों। यह दृश्य देखकर मुझे महान हर्ष हुआ, और सहज ध्यान में बाबा के इस चित्र में *उनके हृदय स्थान पर मुझे निर्मल प्रकाश के दर्शन हुए* । तत्काल ही सद्गुरु ने बोध कराया कि *उनके हृदय में श्री राम जानकी का निवास है, अतः हृदय में श्री नारायण-हरि के स्थित होने से ही भृगुपाद के दर्शन हो रहे हैं* । मुझे अत्यन्त सुखद आश्चर्य हुआ और तत्काल ही मन में *इस* छवि को प्राप्त करने की शुभ इच्छा मन में जाग उठी। मैंने मन ही मन बाबा से प्रार्थना की कि यदि आप मुझे इस चित्र के रूप में प्राप्त हो जाते हैं तो मैं प्रति मंगलवार को आपको नियमित रूप से हनुमान चालीसा

सुनाता रहूँगा । (परन्तु यह विचार मैंने किसी से प्रकट नहीं किया, और इस बात का ध्यान भी मेरे मन से निकल चुका था ।) किन्तु जब सायंकाल बाबा के *अनन्य* भक्त श्री देवकामता दीक्षित और उनके पुत्र से मेरा *प्रथम* परिचय हुआ तो श्री दीक्षित जी के पुत्र ने सत्संग के अवसर पर कहा कि वे एक सुन्दर वस्तु मुझे भेंट में देना चाहते हैं । मुझे और भी महान आश्चर्य *तब* हुआ *जब* श्री दीक्षित बाबा जी की *वही* छवि लेकर आये और सहर्ष मुझे दे दिया !! मुझे लगा कि बाबा कितने *सर्वज्ञ* हैं और *प्रत्येक* हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों और विचारों को जानते हैं । मेरी इच्छा की पूर्ति उन्होंने *बिना* किसी से प्रकट किये ही अपनी छवि प्रदान करके कर दी । इसके पश्चात् श्री महाराज के बहुत से अनुभव मेरे जीवन में हैं, जिनका वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है । यद्यपि सत्गुरु के यश तथा कीर्ति का शब्दों में वर्णन किया जाना असम्भव है फिर भी सत्गुरु, स्वयँ भक्तों पर कृपा करने के लिए ही अपने **विश्वरूप** को **शब्द-विग्रह** में समाहित कर लेते हैं, और *भक्तों पर कृपा करने के लिये ही अपनी यश कीर्ति और लीलाओं का वर्णन करने की शक्ति प्रदान करते हैं* ।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि श्री बाबा समस्त प्राणियों में महा चैतन्य सच्चिदानन्द रूप में विद्यमान हुए निवास करते हैं । वे *सर्वव्यापक* हैं और *श्री नारायण से अभिन्न हैं*, तथा जो निर्गुण, निराकार, अद्वैत, अजर-अमर-अविनाशी सच्चिदानन्द परमात्मा हैं, ***वही भक्तों के निमित्त कैंची में श्री बाबा नीब करौरी महाराज के रूप में***, (सगुण ब्रह्म के रूप में,) अवतरित हुए । और कि एक अपरिमित, अनन्त, सत्य तथा अपरिवर्तनशील सिद्धान्त जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व है, श्री नीब करौरी बाबा में *आविर्भूत* हुआ है । यह अमूल्य निधि *केवल* सत्गुण सम्पन्न और भाग्यशाली भक्तों को ही प्राप्त हुई । जिन्होंने श्री बाबा को *केवल* सामान्य पुरुष समझा, वे यथार्थ में अभागे हैं ।

बाबा ने अद्वैत भक्ति के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि श्री हनुमान होकर किस प्रकार श्री हनुमान की आराधना की जाती है, तथा शिव होकर शिव की आराधना करना, श्री नारायण होकर नारायण की आराधना करना और भगवती होकर भगवती की आराधना करना ही अद्वैत भक्ति है । बाबा *सदैव सहज समाधि* में और *अपनी आत्मा* में ही स्थित रहते थे । विश्वरूप परमात्मा में अद्वैत रूप से सदैव स्थिर रहते हुए भी

सगुण रूप से वे मानवीय लीलायें करते रहे। *परम सत्य यही है कि सत्‌गुरु के अतिरिक्त परमात्मा और कुछ भी नहीं है*। और *परम ज्ञान* भी यही है। बाबा जी की इस अहैतुकी कृपा से मेरे मन मानस में महान हरि भक्ति का उदय हुआ और यह जीवन महा मंगलमय हो गया।

महाराज

ऐसे ही न मालूम कितने ज्ञात-अज्ञात दृष्टान्त होंगे सैकड़ों अन्य भक्तों के पास भी — उनके स्वयँ के अनुभवजन्य — बाबा जी के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डालते हुए — बाबा जी द्वारा स्पष्ट करते हुए ***'मैं कौन हूँ।'***

इस **लघु भागवत** में गाये गये बाबा जी महाराज के **चरित** की अलौकिकता पर जितना भी सूक्ष्म रूप में निरूपण हो पाया है, उसके ही विश्लेषण एवं उस पर सार्थक विवेचन के उपरान्त रामचरित मानस में ऋषि बाल्मीकि के श्रीराम के प्रति उद्‌गार बरबस स्मरण हो आते हैं :—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार .... ।।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई ।।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी।
***विगत विकार* जान अधिकारी ।।**

नर तन धरेहु संत सुर काजा ।।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा ।।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।।

तुम जो कहहु करहु सब साँचा।
जस काछिय तस चाहिय नाचा ।।

परन्तु जैसा पूर्व में भी निवेदन किया जा चुका है — हमारी सांसारिक स्वार्थ की बलवती मनेच्छाओं ने सब कुछ देखते-जानते हुए भी हमें उनसे **आत्मसात** कर पाने से वंचित कर दिया — कुछ अपनी ही

निर्मूल शंकाओं के कारण भी और *सांसारिक बुद्धि* लगाने से भी — **'मन शंकित वंचित भक्ति धने ।'** हमारी दशा अर्जुन की तरह रही —

दिव्य चक्षु पाकर भी **विराट** के मुँह-दाढ़ों में समाते अपने प्रिय पुत्र अभिमन्यु को न देख पाया अर्जुन!! परन्तु क्यों? क्यों उसने *केवल* पितामह, गुरु द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, दुस्शासनादि को ही देखा दाढ़ों में समाते? क्या केवल इसलिये कि *इन सबके* द्वारा अपने, अपने भाइयों, अपनी द्रौपदी के प्रति किये गये अन्याय को वह अपने **अवचेतन** मस्तिष्क में संजोये था? और क्या इसी अन्याय के प्रति **अवचेतन में बसी** उस क्षोभ-युक्त कुंठा के *कारण* ही उसने **विराट** में *उतना ही* देखा *जितना वह देखना चाहता था* — (यद्यपि वाह्य रूप से दाढ़ों में समाते उन्हीं सम्बन्धियों को वह अपना पूज्य, अपना प्रियजन कहता रहा ?) स्पष्ट है कि **विराट** का भी *भावानुरूप* ही दर्शन हो पाया उसे — भाव चाहे चेतन रहा हो अथवा अवचेतन !! और, शायद, *तभी ही* भगवान ने उसे *पूर्व में ही* (गीता के ग्यारहवें अध्याय का सातवां श्लोक देखें) **सचेत** कर दिया था कहकर कि, **'*तू जो देखना चाहता है*, मेरे इस विराट रूप में, देख ले** !!')

उक्त परिप्रेक्ष्य में *हम भी* बाबा जी महाराज में भी *उतना ही* देख पाये, *उनको उतना ही* जान पाये जितना हम अपने चेतन अथवा अवचेतन मस्तिष्क में, मन मानस में उनका स्वरूप सँजोये थे — **'मनेच्छाओं की पूर्ति हेतु — *यन्त्र मात्र*** !!' — ज्ञान में भी अनजाने भी, यद्यपि (पूर्व में दिये गये संदर्भों के अनुसार) बाबा महाराज **अपने को** कई प्रकार से **प्रकट** करते भी रहे ।

और वैसे भी **नर** और **नारायण** की *संयुक्त समन्वित भूमिका* के निर्वाह में बाबा जी महाराज द्वारा सम्पन्न ऐसी लीलाओं के मध्य उन्हें **ढूँढ** पाना, उन्हें **जान** पाना सांसारिक बुद्धि लेकर संभव भी तो न था — संभव था तो *केवल* उनका अनुभूति दर्शन हो पाना ही । (मुकुन्दा)

महाराज

संसार से दूऽऽर

तृतीय सर्ग

स-शरीर लीला-सागर का संवरण

महासमाधि एवं उपरान्त

प्रथम भावाञ्जलि

महासमाधि

दस सितम्बर, १९७३ की मध्य रात्रि के एक बजकर पन्द्रह मिनट — वृन्दावन में रामकृष्ण मिशन अस्पताल में डॉक्टरों के सारे प्रयास अपनी स्वेच्छा, अपनी मनसा के समक्ष निष्फल करते हुए महाप्रभु ने **'जगदीश हरे-जगदीश हरे'** कहते अपना लीला-शरीर त्याग कर **निराकार** में प्रवेश कर लिया ।

जैसा दिव्य, अलौकिकता-युक्त, रहस्यमय, चमत्कार-पूर्ण महाप्रभु का स-शरीर लीला चरित्र रहा आद्योपान्त, अपनी **महासमाधि-लीला** को भी आपने उसी के अनुरूप ढाल लिया । और इस अलौकिक निर्वाण-लीला के माध्यम से भी बाबा जी महाराज अपने भक्तों को यही अन्तिम **सीख** दे गये कि ***महाकाल का आलिंगन किस तरह करना चाहिए*** ।

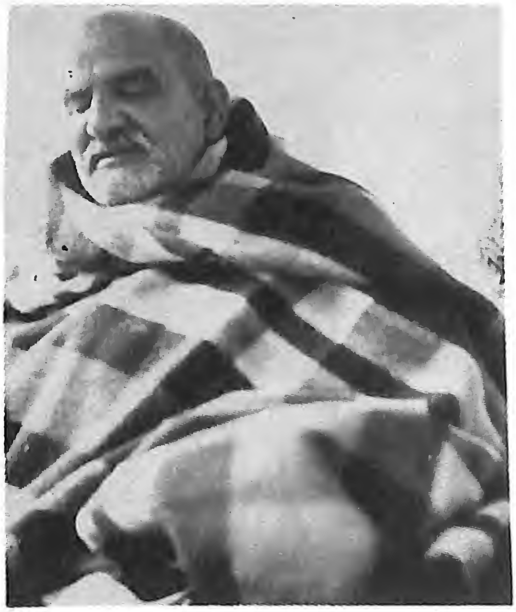

अन्तर्मुखी

अपने **महासमाधि** में जाने की तिथि तो महाप्रभु बहुत पूर्व ही निश्चित कर चुके थे । इस लीला के डेढ़ दो वर्ष पूर्व से ही आपने अपने को **अलग-**सा करना प्रारम्भ कर दिया था। सदा से अत्यन्त वाचाल रहे महाराज जी ने अब कुछ **मौन-**सा साध लिया था । बोलना बहुत कम कर चुके थे तथा भीड़-भाड़ के मध्य भी आप अधिकतर चुपचाप बैठे रहते थे —विशेषकर अन्तिम ५-६ माहों में । लगता था कहीं दूर, बहुत

अस्त-व्यस्त

भये सोचवश सोच विमोचन
(चरणाश्रितों को क्या दे जाऊँ?)

दूर चले गये हैं — प्रायः समाधिस्थ-से । मिलने का समय भी *सीमित* हो चुका था — केवल अत्यन्त आर्त को ही असमय दर्शन देते थे । कारण पूछने पर केवल इतना भर कह देते थे — **"किसी के आँख ही नहीं जो (मुझे) पहिचान सके। सभी केवल स्वार्थ से (मुझसे कुछ न कुछ माँगने) आते हैं — मेरे लिये (परमार्थ हेतु) कोई नहीं आता । मुझे अशान्ति हो जाती है ।"**

अधिकतर गहनता में खोये, शौचादि के लिये भी उन्हें सचेत करना पड़ जाता । भीतर अपने कक्ष में जाकर कम्बल, उत्तरीय आदि भी उतार कर फेंक देते — केवल एक धोती, वह भी अस्त-व्यस्त अवस्था में लपेटे, अधनंगे बने ध्यानावस्थित हुए बैठे या लेटे रहते ।

अपने अन्तरंगों को सचेत करने हेतु कहते रहते, **"यह तो मृत्युलोक है — जो आया है जायेगा भी । राम गये, कृष्ण गये, भीष्म पितामह (आजन्म ब्रह्मचारी) भी चले गये ।** ***हम भी* चले जायेंगे ।"** परन्तु फिर शीघ्र ही, भ्रमित करने को यह भी कह देते, **"अभी मैं कहाँ जा रहा हूँ — राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम ।"** भक्तगण समझ ही न पाते कि महाप्रभु ने *अपने भी* **चले जाने** का इशारा कर दिया है ।

परन्तु *इसी* **रामकाज** के कारण, इतनी तटस्थता अंगीकार करने पर भी, महाप्रभु ने अपनी दया-कृपा की लीलाओं को विश्राम नहीं दिया — वे अन्त तक चलती रहीं — निर्बाध — **महाप्रयाण** के *उपरान्त* भी !! और *आज* भी चल रही हैं !! बिना *रामकाज* पूरा किये विश्राम भी कहाँ इन लीलाओं को ?

अपने **जाने** के पूर्व ही वृन्दावन आश्रम में वृन्दावनेश्वरी मंदिर एवं कैंचीधाम में यज्ञशाला का निर्माण बाबा जी ने अपने ही सामने *विशेष* **हलचल** मचाकर माह अप्रैल तथा अगस्त १९७३ में ही पूर्ण करवा लिये थे। तब यह समझ में नहीं आता था कि आखिर इन कार्यों के सम्पादन में सरकार *इतनी जल्दबाजी* क्यों कर रहे हैं ।

अपने अन्तर्ध्यान हो जाने के कुछ माह पूर्व से महाराज जी यद्यपि भीड़-भाड़ से कतराने लगे थे, फिर भी जो चरणाश्रित वर्षों पूर्व से उनके पास भक्ति से, प्रेम से, सेवा-भाव से अथवा अपना *एकमात्र आसरा* मानकर आते रहे थे, उनके प्रति महाराज जी का व्यवहार अप्रत्याशित रूप से अत्यन्त अपनत्वपूर्ण हो चला था — अन्तिम तीन-चार माह के मध्य और भी

रामकुटी में ध्यानस्थ (१९७३ – जुलाई-अगस्त-सितम्बर)

अधिक। प्रथम तो उन्हें **और और** रोके रहते। फिर जाते वक्त कहते, **"फिर आना, जल्दी"** — या **"फलाँ तारीख या दिन जरूर आना।"** अन्तर से स्वयँ ही परम वैराग्य की प्रतिमूर्ति बाबा जी महाराज *केवल* अपने दयालु स्वभाव के वशीभूत होने के कारण ही उन्हें परम अमोघ आशीर्वादों के साथ भारी मन से विदा करते कि, **"अब फिर मेरा दर्शन कहाँ पा सकेंगे ये लोग।"** किसे क्या दे जाऊँ, यही मनन होता रहता था, शायद। परन्तु उनके इन भावों की **पकड़** किसको थी ?

फिर भी अपनी **पार्थिव विदाई** के कई स्पष्ट से संकेत महाप्रभु देते रहते। चार दिन पूर्व अपनी उंगलियों में गिनते इंगित किया था किसी से —**'एक, दो, तीन, चार।'** किसी से कहा, **'मेरी पेशी है'**, किसी से कहा, **'सेन्ट्रल जेल से छूट रहा हूँ।'** विदेशी भक्तों के 'बाबा नीम करौली संत महाराज की जय' कहने पर जोर से हँस कर बोले थे — **"बाबा नीब करौरी तो मर चुके। अब इनकी आवाज को 'वहाँ' तक पहुँचना पड़ेगा !!"** श्री माँ से कहा था, **"अम्मा, तेरे सामने तो मैं रोते हुए जाऊंगा पर संसार के सामने हँसते हुए।"**

एक भक्त से विदाई के वक्त कहा था, **"अब हम तुझे इस रूप में नहीं मिलेंगे।"** और फिर कैंचीधाम से जाते वक्त एक भक्त से यह भी कह दिया, **"तुम खुश नहीं होते हो अपने घर जाते समय ? हम भी खुश हैं।"** (अपने घर जाते वक्त।)

अपनी भक्त-माइयों से भी कह डाला, **"अब मैं चला जाऊंगा — दूर — जहाँ कोई भी न आ सकेगा मुझे तंग करने — नर्मदा किनारे— अमरकण्टक में — कोई मुझे पहिचान न पायेगा — नंगा रहूँगा — टाँट लपेटूँगा — जो आयेगा उसे ढुंग (पत्थर के लिये कुमांउनी पर्याय) मारूँगा"**— इत्यादि।

फिर भ्रमित करने को अपने तखत पर लेटकर नवजात शिशु की तरह हाथ-पाँव चलाते माँ से बोले, **"अब मैं नानू-नानू (नवजात बालक) हो जाऊंगा। पहिचानेगी तू मुझे तब ?"** कौन बूझ पाता इन लीलाओं-उक्तियों को तब ?

परन्तु **अपने चले जाने** की पुष्टि तो श्री सिद्धी माँ से कर ही गये। डेढ़-दो वर्ष पूर्व से महाराज जी एक कापी में नित्य राम-नाम लिखने लगे थे। (यह भी एक रहस्य की ही बात थी कि *जिनके* श्वास-प्रच्छवास से

राम-नाम प्रतिध्वनित होता रहता था, वे भी राम नाम लिखें !! सम्भवतः यह भी एक संकेत था अपने भक्तों को ऐसा स्वयँ भी करने हेतु, क्योंकि **रामनाम** *जपने से अधिक* **रामनाम** *लिखना* अधिक प्रभावी एवं सार्थक है । (इस क्रिया में अनेक इन्द्रियों को केन्द्रित होना पड़ता है ।)

राम-नाम लिखने के पूर्व महाप्रभु उस दिन का **वार** एवं **तारीख** अंकित कर देते थे । ९ सितम्बर को (कैंचीधाम से अन्तिम स-शरीर विदाई की सुबह) महाराज जी ने नित्य की तरह राम-नाम लिखा, **वार** और **तारीख** अंकित किये, फिर अगले पृष्ठ में १० सितम्बर की तारीख और **वार** लिखकर उसे भी राम-नाम से भर दिया (९ सितम्बर को ही !!) और फिर अगले पृष्ठ में केवल ११ तारीख और उस दिन का **वार** (मंगलवार) भी अंकित कर उसे सादा ही (बिना राम-नाम लिखे) छोड़ दिया। तदुपरान्त इस कापी को श्री सिद्धी माँ को सौंपते हुए कहा, **"अम्मा, अब इसे तू लिखना ।"**

इस प्रकार बाबा जी ने न ***केवल स-शरीर रहने की अवधि*** (१० सितम्बर १९७३) इंगित कर दी, अपितु अपने **पार्थिव शरीर** की भी अवधि (११ सितम्बर, मंगलवार — जिस दिन उस दिव्य शरीर को अग्निदेव को समर्पित कर दिया गया था) बता दी !! (बाबा जी द्वारा लिखित यह राम-नाम पुस्तिका श्री माँ के पास श्री धाम कैंची में सुरक्षित है ।)

परन्तु सदा ही अपनी लीलाओं से भ्रमित करने वाले महाप्रभु कैंचीधाम से अन्तिम विदाई के वक्त भी पुनः *छलावा* दे गये — यह कह कर कि, **"अभी हाल चार दिन में लौट आऊंगा । वहाँ (आगरा-वृन्दावन में) गरमी भी है और मच्छर भी ।"** यद्यपि कुछ अन्तरंग भक्तों के अन्तर में आपकी इन कई अटपट उक्तियों तथा हरकतों से आशंकायें उत्पन्न हो गई थीं, पर फिर भी सबके लिये यह कल्पनातीत ही था कि महाराज जी *सचमुच* अन्तर्ध्यान हो जायेंगे — *देह त्यागने का* प्रश्न तो स्वप्न में भी न उठ सकता था, विशेषकर, जबकि आप अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में, विनोद करते हँसते हुए कैंचीधाम से ९ सितम्बर को २ बजे बाद सबसे अपार प्रेम दर्शाते हुए विदा हुए थे ।

परन्तु जो कभी पूर्व में नहीं किया था *कहीं से भी विदाई के समय,* अबकी वह भी कर डाला । प्रथम तो कुटी से निकलकर हनुमान मन्दिर में खड़े रहे हनुमान जी से कुछ बोलते हुए-से — मानो कैंचीधाम को तथा

अपने भक्तों-आश्रितों को उन पर छोड़े जा रहे हों, उन्हें सौंपे जा रहे हों। *वहीं पर आपने अपने से (कुटी के बाहर) कभी अलग न होने वाले* ***कम्बल*** *को गिरा दिया।* भक्तों ने फिर डाल दिया उन पर वह कम्बल, परन्तु लक्ष्मीनारायण एवं शिव मन्दिर के बाहर पुनः गिरा दिया कम्बल को — मानों कह रहे हों, ***'मेरा यह कम्बल ही अब से मेरा जागृत प्रतीक, मेरा प्रतिरूप होगा,*** **जिसे मैं अपने भक्तों, आश्रितों की रक्षा एवं मनोकामना पूर्ति हेतु छोड़े जा रहा हूँ — अपनी *शक्ति* समेत !!'** फिर भी भक्तों ने वह कम्बल तहिया कर महाराज जी के साथ कार में रख दिया।

और फिर, मानो, अपने वचनों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए आप **चार दिन** बाद पुनः कैंचीधाम लौट भी आये, पर *तब स-शरीर नहीं* वरन अपने पार्थिव शरीर के भस्मीभूत अवशेषों के रूप में — ***अस्थिरूप लिये अपने श्री-चरणों को अस्थिकलश*** का सिंहासन बनाकर !!

लीला-नाटक तो महाप्रभु सदा करते ही थे भ्रमित करने को। देह विसर्जन हेतु भी आपने यही कर डाला। श्री धाम कैंची से **जाने** के दो दिन पूर्व आपने अपने (तथाकथित) हृदय-रोग की हलचल मचा दी। भवाली एवं नैनीताल दौड़ा दौड़ा कर भक्तों से डाक्टर भी बुलवा लिये जिन्होंने महाराज जी का उपचार तो कम पर मरणासन्न अवस्था में पड़े भक्त हुकुमचन्द जी (मद्रास) का तथा बीमार **खिलौने वाले** का ही इलाज अधिक किया। हुकुमचन्द जी को *जीवनदान* जो देना था।

फिर एक और *छलावा* कर कैंची में भक्तों से आगरा जाकर अपने हृदय-रोग की डाक्टरी परीक्षा करवाने की इच्छा प्रकट की। अगर कहीं आपकी अटपट वाणी समझ में आ गई होती तो महाराज जी के लाख मना करने पर भी या तो साथ में या फिर पीछे पीछे भक्त लोग भी अवश्य ही भागते। परन्तु साथ में काठगोदाम से आगे ले गये एक नादान, कुछ ही माह पूर्व शरण में आये एक कम उम्र के युवक — रवि खन्ना को, ताकि आपकी *इस* लीला का रहस्य किसी के पल्ले न पड़ने पाये। वह नादान भी न समझ सका कि आपने दूध का थर्मस ट्रेन से बाहर क्यों फेंक दिया यह कर कि **इसकी जरूरत अब नहीं पड़ेगी।** और गंगाजली भी रिक्शेवाले को क्यों दे दी कहते हुए कि **किसी वस्तु से मोह नहीं करना चाहिए।**

आगरे में भी आप अपने पारिवारिक गृह न जाकर अपने भक्त, श्री जगमोहन शर्मा के घर चले गये । वहीं आपने अपना क्षौर-कर्म करवाया, स्नान किया, नई धोती धारण की । परन्तु साथ ही अकबरपुर में त्रिगुणी-माया से संभूत एवं प्राप्त अपने पार्थिव शरीर को गृहस्थ धर्मानुसार लौकिक संस्कार-पूर्ति हेतु पुनः अपने घर वालों को सौंपने तथा उन्हें भी पितृ-ऋण से उऋण करने हेतु ***केवल*** कनिष्ठ पुत्र को वहीं बुलवा लिया ।

अन्तिम **छलने** की लीला महाप्रभु ने आगरे में अपनी डाक्टरी जाँच के माध्यम से कर दी । लोगों में धारणा बन गई थी कि महाराज जी हृदय-रोग से ग्रसित हैं । (स्वयं भी तो आप ऐसा ही आचरण भी करते रहते थे !! और भक्तों के हृदय-रोग को स्वयं में लेकर उन्हें रोगमुक्त करते रहते थे ।) परन्तु *जब आगरे* में हृदय-रोग विशेषज्ञों द्वारा जाँच हुई तो उन्होंने *यही* पाया कि महाराज जी का हृदय एकदम स्वस्थ स्थिति में है !! कहीं कोई, किसी प्रकार की खराबी नहीं है !! आगरे में भक्तगण भी *इस* रिपोर्ट से निश्चिन्त हो गये और बाबा जी महाराज ने डाक्टरों से *जब यह* भी कहलवा दिया कि वे यात्रा के लिये पूर्ण रूपेण स्वस्थ हैं तथा *पहाड़ों* में स्थित कैंचीधाम भी जा सकते हैं तो भक्तों ने, बाबा जी के कहने पर, उसी रात की गाड़ी में काठगोदाम के लिये उनके, रवि खन्ना तथा कनिष्ठ पुत्र के लिये रिजर्वेशन भी करा दिया !!

दिन भर शर्मा जी के घर पर ही महाराज जी बने रहे उस दिन । शर्मा जी को सीख दी कि, **"बड़ा मकान मत बनाना । अपनी समृद्धि का दिग्दर्शन कभी न करना । बहुत खराब समय आने वाला है । बड़ी मारकाट होगी"** — आदि । और भी कि — **"अब सब वस्तुएं अशुद्ध हो गई हैं — अब मैं केवल *राम दाना* खाऊंगा !!"**

और रात को आप काठगोदाम जाने वाली **आगरा-फोर्ट** ट्रेन में बैठ गये, रवि खन्ना तथा अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ — पुत्र को भविष्य के प्रति **सचेत** करतीं बहुत कुछ **सीखें** देते। परन्तु दो ही घंटे बाद *मथुरा जंक्शन में ही (अपनी पूर्व नियोजित लीला के अन्तर्गत) उतर गये*। कुछ आगे चलकर स्टेशन में ही **अचेत** हो गये। परन्तु इन दोनों को इतना समय दे दिया कि एक प्रेस-वाली टैक्सी में वे महाराज जी को चढ़ाकर उन्हें *वृन्दावन के रामकृष्ण मिशन अस्पताल ले जा सकें*। लेकिन डाक्टरों के पूर्ण उपचार के पूर्व ही सरकार ने अपना पार्थिव लीला-शरीर त्याग

दिया। ***न आगरे में* अपने घर *को ही पूछा, और न अपने* कैंचीधाम अथवा वृन्दावन आश्रम *को ही चयन किया इस शरीर-लीला हेतु*** !! (**'दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।' यदाकदा स्वयँ भी यही कहते रहते थे।**)

भक्तगण अपने इष्ट के पार्थिव शरीर को वृन्दावन आश्रम ले आये। इस प्रकार अपनी जीवन लीला को कैंचीधाम से रामकृष्ण मिशन अस्पताल तक बनाये रख शरीर-लीला को उक्त प्रकार का **मोड़** देते हुए महाप्रभु ने अपने पार्थिव शरीर को *अपनी* मंशा के अनुकूल वृन्दावन आश्रम पहुँचा ही दिया, किसी *अन्य* स्थान में नहीं !!

रात्रि के १ बजकर १५ मिनट के समय शरीर-लीला हुई वृन्दावन में और सुबह ६ *बजे के ही प्रसारण में* बी० बी० सी० द्वारा यह दुःखद समाचार प्रसारित हो गया !! (जब कि भारत में आकाशवाणी द्वारा आठ बजे केवल एक वाक्य में हिन्दी में प्रसारित हुआ ।) यह रहस्य ही बना रहा कि लन्दन में यह घटना इतने शीघ्र कैसे जानकारी में आ गई । न तार भेजे गये कहीं और न अन्य किसी प्रकार की सूचना ही दी गई । शरीर-लीला के संदर्भ में टेलीफोन सूचना भी भारत में केवल ३-४ स्थानों को ही श्री बनवारी पाठक ने ढाई-तीन बजे सुबह ही दी थी !! परन्तु महाराज जी तो अपने विदेशी भक्तों की भावनाओं के प्रति भी समान रूप से जागरूक रहे — तब कैसे उन्हें न मालूम होने देते अपनी यह लीला भी शीघ्रातिशीघ्र ?

इसी बीच यह दुःस्वप्न-युत दुखद-समाचार आगरा, मथुरा, दिल्ली, नैनीताल, हल्द्वानी, बरेली, लखनऊ, कानपुर, तथा अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में भी विद्युत की भाँति फैल गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया भक्तों के मध्य। अपने परम इष्ट, परमगुरु, अपने प्रियतम, अपने एकमात्र आधार के पार्थिव लीला–शरीर के अन्तिम दर्शन हेतु जिसे जो भी साधन मिला, उसी के द्वारा वह वृन्दावन को भागा। न तंन की सुध, न मन-मानस में चेतना। अन्तर में मूक रुदन का उच्छ्वास दबाये जिसने जिस अवस्था में सुना उसी अवस्था में भागा चला आया आश्रम की ओर। इस दुर्दान्त समाचार की चोट से आकुल-व्याकुल, क्लान्त, निढाल, शक्तिहीन हो चुका था एक एक चरणाश्रित। एक ही प्रश्न बार बार मन में उठता—अब क्या होगा ? *इतनी* आश्रयहीन, निराधार, अनाथ अवस्था हो गई सबकी। लगा—सब कुछ तो शेष हो गया उनके जीवन में। बाबा जी महाराज के समक्ष न तो भय

था किसी बात का, न कोई चिन्ता रह पाती, और न परवाह रहती थी **कल** की। परन्तु अब *उसी* **कल** का विचार भी *काल-सा* लगने लगा था। **अभय** करने वाली उस **साया** के सिर पर से उठ जाने के बाद एकाएक ऐसा **डर** समा गया अन्तर में, मन-मानस में, जो किसी भी तरह किसी भी मानसिक तर्क से दूर न हो पा रहा था ।

वह विभूति जिसके दर्शन मात्र से जग भूल जाता था, अन्तर की व्यथा-पीड़ा विलुप्त हो जाती थी, अशांति तिरोहित हो जाती थीं, जिस शरीर द्वारा की गई इतनी वृहद अलौकिक लीलाओं को देखकर परमानन्द की प्राप्ति हो जाती थी, जिसके माध्यम से अपार-असीम करुणा-दया-क्षमा-कृपा, प्रेम, वात्सल्य, अपनत्व बरसता रहता था, जिसकी दृष्टि मात्र से समस्त दैहिक-दैविक-भौतिक ताप देखते देखते तिरोहित हो जाते थे, आज वही विभूति, वही शरीर **मात्र पार्थिव** बनकर रह गया था — यही देख, यही सोचकर हर भक्त, हर चरणाश्रित मूक होकर अपने अन्तर की करुणा-व्यथा उड़ेलता रहा आँखों से ।

स्वयँ तो **निराकार** बन गये, और शरीर को भी **पार्थिव** रूप दे दिया,परन्तु **लीला-नायक** की लीलाएँ *फिर भी* चलती रहीं !! किंकर्त्तव्यविमूढ़ भक्त समुदाय यही निर्णय न ले सका कि आपके पार्थिव शरीर को हरिद्वार ले चलें या आपके जन्मस्थान (अकबरपुर) को या यहीं वृन्दावन में जमुना के किनारे। तभी *आप ही के द्वारा प्रेरित हो* वृन्दावन के सन्त, **पागल बाबा** ने जोर देकर राय दी कि आश्रम के प्रांगण में ही आपके लीला-शरीर को पंचभूतों में विसर्जित कर दिया जाये। (इस हेतु महाराज जी ने विगत नवरात्रों में किस तरह आश्रम के प्रांगण में स्थल-चयन कर दिया था, इसका पूर्ण विवरण आगे दिया जा रहा है।) एक अनुपम **विमान** की व्यवस्था की गई जिसमें आपका दिव्य शरीर आसीन किया गया—इस उद्‌देश्य से कि उसे घुमाकर समस्त वृन्दावन क्षेत्र में सभी वृन्दावन वासियों को भी आपके अन्तिम दर्शनों का अवसर प्राप्त हो जाये ।

परन्तु अभी आपको **अपने** कुछ अनन्य सेवक भक्तों (श्री सिद्धी माँ एवं श्री जीवन्ती माँ) के कैंचीधाम से आने की प्रतीक्षा थी। अस्तु, इस दिशा में आपने अलीगढ़ के एक भक्त, श्री विशम्भर को प्रेरित कर उनके द्वारा *कुछ और* प्रतीक्षा का प्रस्ताव भी रखवाया। लेकिन प्रस्तुत भक्त समाज को अब अधिक विलम्ब रुचा नहीं, और उन्होंने विमान उठाने का निर्णय ले

लिया। परन्तु लीला नायक की तो अपनी रुचि कुछ और ही थी— उन्हें तो अपने इस लीला-नाटक के *सभी* **अंकों** का प्रदर्शन करना था। अतएव *तभी* एकाएक बड़े आकस्मिक रूप से बड़ी-बड़ी बूँदों-युक्त इतनी भीषण वर्षा प्रारम्भ हो गई कि इस मूसलाधार वर्षा से यत्र-तत्र सारा आश्रम क्षेत्र भर गया और बाहर निकलना असंभव हो गया। स्वाभाविक था कि सभी को रुकना पड़ गया। और कुछ देर बाद उन विशिष्ट भक्तों के पहुँच जाने पर वर्षा का प्रकोप भी स्वतः थम गया !! तब विमान द्वारा समस्त वृन्दावन वासियों को कोलाहल एवं हाहाकार के मध्य आपके दर्शन कराये गये। सभी तो आपको किसी न किसी रूप में स्वीकार करते थे अवतार विभूति मानकर। **'बाबा नीब करौरी महाराज की जय'** के नारों से बीथिकायें गूँजती रहीं। चन्दन, रोरी, अक्षत, पुष्पों की वर्षा होती रही विमान पर। अश्रुपूरित नयनों से विदा देते रहे वृन्दावन वासी — आरती-पूजन के साथ। विचित्र लीलाएँ चलती रहीं — एक ओर से दिव्य प्रक्रियायें और दूसरी ओर पूर्ण रूपेण सांसारिक !!

तब पुनः आश्रम पहुँचकर बाबा जी के पार्थिव शरीर को पंचतत्वों में पुनर्विलीन करने का विधान रचा जाने लगा। चन्दन चर्चित वेदिका में महाराज जी का दिव्य शरीर आसीन किया गया। चीत्कार कर उठीं मातायें यह दृश्य देखकर। बिलख उठे बाबा जी महाराज के भावुक भक्त अपने प्रियतम, अपने प्राण को, रोम रोम में बसे अपने इष्ट, अपने देवता को इस स्थिति में देखकर ।

और फिर वेदोच्चारण — पंडितों द्वारा कर्मकाण्डी सूत्रों की प्रतिध्वनि। भक्तों ने अपने **ईश्वर,** अपने **जीवनाधार** का अन्तिम दर्शन, अन्तिम स्पर्श किया और वेदी में अग्नि प्रवेश हुआ। देखते देखते अग्नि की लपटें आसमान छूने लगीं। पुनः पुनः करुण क्रन्दन, चीत्कार गूँजता रहा । अभी तक तो दर्शन हो रहा था, भले ही **पार्थिव** का ही, पर अब वह भी लुप्त हो गया अग्नि की लपटों के मध्य। एक अग्नि सरकार के लीला शरीर को भस्म कर रही थी— धू-धू कर—और दूसरी, *उससे भी अधिक* ज्वलनशील ***समर्पित*** भक्तों के हृदयन्तर को, उनके मन प्राण को दग्ध कर रही थी — जीवितावस्था में ही ।

इस बीच एक बहुत ही निष्ठ पुराने भक्त ने इस वेदी के पास बैठे **'श्री राम जय राम जय जय राम'** के संकीर्तन के मध्य (अपनी भाव समाधि में) देखा कि बाबा जी महाराज वेदी के ऊपर बैठे हैं तथा उनके

दोनों ओर श्रीराम और शंकर भगवान खड़े हैं उनको घी से स्नान कराते हुए, और देवगण ऊपर से यह दृश्य देखकर उनके ऊपर पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं । और श्री जगमोहन शर्मा ने *स्पष्ट* देखा कि एक स्वर्ण सिंहासन में बाबा जी श्रीराम तथा श्री लक्ष्मण के बीच में बैठे सारा दृश्य देखते हँस रहे हैं तथा साथ में हनुमान जी वेदी की प्रदक्षिणा कर रहे हैं !! यह दृश्य शर्मा जी बड़ी देर तक देखते रहे समाधिस्त-से । शर्मा जी ने महाराज जी से पूछा, "महाराज, अब कब दर्शन होंगे फिर से ।" और बाबा जी ने उत्तर दिया, **"जब तू ५२ साल का हो जायेगा ।"**

सभी एकत्रित भक्त समुदाय भी एक स्वर में **'श्री राम जय राम जय जय राम'** का कीर्तन करने लगा वेदी की परिक्रमा करते हुए — करता रहा आधी रात तक । बड़ा ही विरोधाभासी दृश्य था — दिव्य भी, हृदय विदारक भी !!

विभिन्न भाव थे सबके — किसी को लगा आज वह निराधार हो गया है । किसी को भान हुआ अब संसार में मेरा कोई नहीं रहा । किसी को लगा मेरे पालनहार पिता नहीं रहे । किसी को लगा मेरा प्रियतम चला गया सदा के लिये। किसी के अन्तर में अपने **आराध्य** के अन्तर्ध्यान हो जाने की व्यथा थी । किसी को अपने **सखा** की अन्तिम विदाई की अनुभूति हुई । **सब कुछ** लुट जाने का भाव लिये कोई बिलखता रहा । सभी ने तो किसी न किसी रूप में, किसी न किसी भाव से बाबा जी की मूर्ति अपने अन्तर में संजो रखी थी वर्षों से । आज *उसी* परम देवता की ऐसी आकस्मिक विदाई देखकर मूक रुदन से अन्तर्मन पूर्णतः व्यथित हो चला था — सबका ।

महाराज

और फिर सुबह कैंचीधाम वासी बाबा जी महाराज के *श्री-चरणों* की भस्मी अस्थिकलश में लेकर कैंची चले गये । तीसरे दिन कई कलशों में बाबा जी महाराज के लीला शरीर के भस्मीभूत अन्य अवशेषों को आसीन कर विभिन्न स्थानों हरिद्वार, प्रयाग, लखनऊ, कानपुर आदि को गंगा जी में प्रवाहित करने अथवा समाधि बनाने हेतु ले जाया गया । इस प्रकार बाबा जी महाराज की *स-शरीर* लीलाओं ने *विश्राम* पा लिया ।

महाराज

अपने व्यक्तित्व, अपने तत्व एवं शक्ति के प्रतीक कम्बल को महाराज जी ने कैंचीधाम में ही छोड़ दिया था । फिर भी भक्तों ने उसे तहिया कर महाराज जी के साथ कार में ही रख दिया था । *वह कम्बल* रवि खन्ना के पास ही कार में, आगरा जाती ट्रेन में, आगरे में, पुनः मथुरा तक ट्रेन में, अस्पताल में और फिर वृन्दावन आश्रम में **अमानत** बना रहा, जिसे रवि खन्ना ने बाबा जी का अन्तिम प्रसाद मान अपने ही पास रख लिया था । परन्तु महाराज जी की **शक्ति** का, उनके व्यक्तित्व का वह **प्रतीक** केवल एक व्यक्ति का ही कैसे हो सकता था ? अतः बाबा जी ने, *मानो*, श्री माँ को वियोग की उस विक्षिप्तावस्था में भी झकझोर कर अपने कम्बल का स्मरण करा दिया, और रवि खन्ना ने भी शालीनता के साथ वह कम्बल धर्मनारायण शर्मा जी के माध्यम से पुनः श्री माँ को सौंप दिया । आज वही कम्बल **बाबा जी महाराज** बनकर कैंचीधाम में महाराज जी की कुटी में विराजमान है, जिसके दरसन-परसन से *वही* शांति, *वही* शक्ति, *वही* आनन्द, *वही* दया-करुणा-क्षमा-कृपा, मनोरथसिद्धि प्राप्त होती है जो कि भक्तों को **आप** से प्राप्त होती रही थी ।

महाराज

और इसी के साथ महाप्रभु ने **सांसारिकता** की कुछ और भी लीलाएँ रच डालीं। उधर अकबरपुर में तो महाप्रभु के परिवारीजन, स्वाभाविक ही, अपने **प्रिय** के अंतिम संस्कार हेतु **तेरहवीं** के कर्मकाण्ड को सम्पन्न कर ही रहे थे, पर लगा जैसे महाप्रभु अपने स्थापित वृन्दावन आश्रम में भी, जहाँ उनका पार्थिव शरीर पञ्चतत्वों को समर्पित किया गया था, अपने भक्तों की रुचि एवं **सन्तुष्टि** हेतु **शुद्धि-कर्म** एवं **शुद्धियज्ञ** कराना चाहते थे जिस हेतु भक्त समाज बड़ी संख्या में वृन्दावन आश्रम में एकत्रित हो भी चुका था । चूँकि यही **कर्म** बाबा जी के कैंची आश्रम में भी (पर्वतीय प्रथा के अनुसार) बारहवीं को ही ब्रह्मचारी बाबा द्वारा सम्पन्न किया गया था, श्री माँ एवं जीवन्ती माँ तेरहवीं की सुबह को ही वृन्दावन आश्रम पहुँच पाईं।

सुबह से ही आश्रम में विभिन्न भक्तों द्वारा इस कर्म के निमित्त हलचल मची रही । यज्ञ एवं पूर्णाहुति के बाद एक बृहद भण्डारा भी आयोजित होना था । इन सब कामों की सफल पूर्णता हेतु श्री गुरुदत्त

शर्मा विशेष रूप से दौड़ धूप में थे । यद्यपि अनन्त चौदस के दिन **पार्थिव विसर्जन** हेतु भक्तों एवं परिवारी जनों को ही महाप्रभु ने *आर्थिक योगदान* का अवसर दे दिया था, परन्तु आश्रम में अपनी तेरहवीं तथा भण्डारे हेतु महाप्रभु ने *तब* सेवारत मद्रासी बाबा सेवानन्द जी की महाराज प्रदत्त **रामायण** में सौ-सौ रुपये के ३०० करेंसी नोट ***सृजित कर दिये*** (जिनका ज्ञान *इसके पूर्व* सेवानन्द बाबा को भी न था !!) बाबा जी की इस **सृजनात्मक** लीला को कुछ ही लोग समझ पाये । तब मुख्यतः इसी द्रव्य तथा भक्तों की सेवा से भण्डारा भी हुआ और वृन्दावन ट्रस्ट का एकाउन्ट भी सच्चे अर्थ में प्रारम्भ हुआ !! (बाबा जी की पार्थिव उपस्थिति तक तो केवल नाम के ही ट्रस्ट हुआ करते थे — बाबा जी स्वयँ ही **सब कुछ** थे — ट्रस्ट भी और ट्रस्ट एकाउन्ट भी—जिसके खर्चे-पानी का कोई पारावार न था तथा *दिखावे मात्र* को भक्तों की **सेवायें** स्वीकृत होती थीं ।)

सुबह कर्मकाण्डी पंडितों का आगमन हो चुका था । पूजा की सभी तैयारियाँ बाबा जी की कुटी के आगे के (ग्रिल वाले) बरामदे में पूर्ण हो चुकी थीं । परन्तु सभी कुछ विचित्र-सा लग रहा था मुझे कि *परम तत्व* बाबा जी समान शुद्ध-बुद्ध **परम पुरुष** हेतु भी इस प्रकार की निमित्त-रूप शुद्धि-पूजा एवं यज्ञ का आयोजन किया जा रहा है — क्योंकि जहाँ तक सांसारिक सम्बन्ध की बात थी **ऐसा** कर्म तो अकबरपुर में हो ही रहा था।

तभी गुरुदत्त जी मेरे पास आये और बोले, "मुकुन्द, मुझे बहुत सारे काम करने हैं, भण्डारा भी संभालना है । तुम कर दो यह पूजा और यज्ञ ।" मैंने बहुत मना किया कि मैं इस योग्य कतई नहीं हूँ । मेरा मन वैसे ही भरा था तथा अन्तर में इस सांसारिकता के प्रति विद्रोह भी था । पर शर्मा जी का आग्रह बढ़ता गया । तब मैंने कहा, "इतने भक्त आश्रम में उपस्थित हैं उनसे क्यों नहीं कहते ?" पर उन्हें, मानो, मैं ही इस योग्य प्रतीत हुआ । मुझे याद नहीं कि इस हेतु मैंने श्री माँ का भी आदेश प्राप्त किया, (शायद नहीं, क्योंकि माँ तो स्वयँ ही निढाल पड़ी थीं कुटी के पीछे के आँगन में ।) अन्त में मैं इस सेवा हेतु तैयार हो गया । (क्या महाप्रभु की भी यही इच्छा थी ?)

सुबह ६-६१/२ बजे यह शुद्धि-पूजा प्रारम्भ हुई तथा १२१/२ बजे पूर्ण हो गई । तदुपरान्त *शुद्धि यज्ञ* प्रारम्भ हुआ जिस हेतु एक शाभियाना **उस** स्थान पर लगाया गया था जहाँ अनन्त चौदस को महाप्रभु का पार्थिव

शरीर अग्नि देव को समर्पित किया गया था । पूर्व तथा उत्तर की ओर कनातें लगी थीं । मैं जैसे ही यज्ञ हेतु पूर्वाभिमुख होकर बैठा तो *उसी* समय **कुछ** क्षणों का एक ऐसा **चक्रवात** हवा में उठ गया *शामियाने के भीतर ही* जिसने शाभियाने एवं कनातों को ऐसा हिला कर रख दिया कि अब गिरीं तब गिरीं !! न कहीं हवा, न आँधी !! और यह चक्रवात जैसे एकाएक उठा था, उसी तरह क्षणों में शान्त भी हो गया !! सभी अपनी अपनी जगहों में उठ खड़े हुए और प्रणाम करने लगे । तब पास खड़े गुरुदत्त शर्मा अत्यन्त प्रसन्न हो बोल उठे, **"महाराज जी आये थे ।"** मुझे सुनकर कुछ शांति मिली ।

परन्तु यह शांति भी क्षणिक ही थी । यज्ञ हेतु एकत्रित सामग्री तथा उस हेतु तैयारी देखकर मन और भी खिन्न हो गया । प्रथम तो इस कर्म के प्रति मैं पूर्व से ही समर्पित न था । और अब यज्ञ कुण्ड की दशा, शाकल्य-समिधा तथा घी की न्यून-सी मात्रा को देखकर अन्तर और भी व्यथित हो उठा कि क्या बाबा जी ऐसी विभूति की *तथाकथित* तेरहवीं हेतु शुद्धि-यज्ञ है यह कि *केवल* कर्मकाण्ड का प्रपञ्च ? क्या आवश्यकता थी. इसकी पूर्ण भाव तथा सामर्थ्य के अभाव में ? पर मैं स्वयँ भी तो हर तरह से लाचार-सामर्थ्यहीन था । क्या करता ? भरे मन और आँखों से उमड़ते उच्छ्वास को दबा कर्मकाण्डी पंडितों के आदेशों का यन्त्र-वत् पालन करता रहा । केवल आधे-पौन घंटे में ही निबट गया सब कुछ ११/२ बजे तक । तब भण्डारा भी प्रारम्भ हो गया ।

दिन भर की ऐसी ही सांसारिकता पूर्ण घटनाओं का विश्लेषण करता भारी मन से देर तक जागता रहा रात को । कब आँख लगी पता नहीं । *तब* आश्रम में आवासीय व्यवस्था न्यून ही थी — भीड़ भी थी । बरामंदे में ही दरी के ऊपर सो गया था । डेढ़-दो बजे रात एकाएक श्रीमती कमला सोनी ने मुझे जगाकर कहा, **"देखिये मुकुन्दा ! महाराज जी का चमत्कार !!"** मैंने उठकर उनकी उठी उँगली की दिशा में देखा तो स्वयँ अवाक रह गया । उस छोटे-से यज्ञ कुण्ड से लपटें निकल रही थीं— कैसी ? नीली और श्वेत !! डेढ़-दो फुट ऊँची !! कार्बाइड लैंप की ज्योति जैसी — नीचे कुण्ड की ऊपरी सतह के पास फैली हुई और ऊपर की ओर पतली-नोकीली होती हुई । मैं और श्रीमती सोनी काफी देर तक यह लीला देखते रहे अचम्भित एवं अल्हादित हुए ।

वाह रे प्रभु ! मेरे अन्तर की चोट को *इस तरह* **अपनी** ज्योति में समेट लिया !! इतनी कम सामग्री जो पिछले बारह घंटे पूर्व ही प्रयुक्त हो चुकी थी, *अब* बारह घंटे बाद भी यह रंग दिखा रही है !! क्या प्रभु भी स्वयँ ही आहुति देते रहे थे अपनी अप्रत्यक्ष *दैवी सामग्री* से अपने तत्व-पीठ के स्थान की शुद्धि हेतु जिसका प्रभाव अब दिख रहा है ? (वरना उतनी न्यून सामग्री तो कब की भस्म हो चुकी थी — वृहद् मात्रा में शाकल्य-समिधा-घी का प्रयोग होने पर भी तो यज्ञों के कुछ उपरान्त धुँवा ही अधिकतर उठा करता है अन्य यज्ञ-कुण्डों से ।)

क्या श्रीमती सोनी को महाप्रभु ने ही प्रेरित किया कि मुझे घोर निद्रा से चैतन्य कर इस चमत्कार-पूर्ण कृपा का दर्शन करायें (ताकि चरणाश्रित की अन्तर-व्यथा मिट जाये ? *तब* — १६७३ में — तो मेरा श्री और श्रीमती सोनी से विशेष परिचय अथवा अन्तरंगता भी न थी *एक ही* भक्ति मंच पर आसीन होते हुए भी ।)

वह अलौकिक दृश्य अटल है हृदय-पटल पर । (युगलचरणाश्रित ।)

महाराज

पूर्व में कहा जा चुका है कि **जाने** के पूर्व बाबा महाराज ने कैंचीधाम में अर्ध निर्मित यज्ञ-शाला को स्थायी रूप-स्वरूप देने हेतु बहुत हलचल मचाई थी । स्पष्ट था कि वे धाम में यज्ञों की निरन्तर सम्पन्नता के इच्छुक थे। इस हेतु उन्होंने पूर्व में ही शरत-कालीन नवरातों के मध्य यज्ञों की सम्पन्नता के लिये श्री सर्वदमन सिंह रघुवंशी (श्री इन्दर जी) को मनोनीत करते हुए कहा था — **"इन्दर करेगा (यह यज्ञ) ।"**

अस्तु, वर्ष १६७३ में बाबा महाराज की वृन्दावन में तथाकथित तेरहवीं के उपरान्त श्री माँ, जीवन्ती माँ, दादा मुखर्जी, उनकी पत्नी तथा इन्दर बाबू (सपत्नीक) कैंचीधाम आ गये । बाबा महाराज की *शरीर लीला* के बाद की यह प्रथम नवरात्रि थी और उस नव निर्मित यज्ञ-शाला में प्रथम उत्सव । एक ओर जहाँ सबके मन *भरे* हुए थे बाबा जी के विछोह में, वहीं उनकी इच्छाओं-आज्ञाओं के पालन का भी प्रश्न था । अतएव श्री सर्वदमन सिंह जी (सपत्नीक) एवं दादा (सपत्नीक) ने इस नवरात्रि के पूजन-यज्ञ को सम्पन्न किया । साथ में मुझे और श्री देवकामता दीक्षित जी के पुत्र, महेश को भी इस यज्ञ में शामिल किया गया ।

तब से हर वर्ष इसी प्रकार सर्वदमन जी इस पूजा-यज्ञ को सम्पन्न करते आ रहे हैं । (केवल दो-एक वर्ष ही वे अपनी कुछ पारिवारिक असमंजसों के कारण बीच में न आ सके थे ।) आज इस महान यज्ञ में सैकड़ों की संख्या में बड़े उत्साह से भक्त समाज सम्मिलित होता है ।

इसी यज्ञ-शाला में १५ जून के भण्डारे के पूर्व श्री भागवत सप्ताह की पूर्णाहुति का महायज्ञ भी १४ जून को सम्पन्न होता है जिसमें उपस्थित एवं आगन्तुक भक्त समाज भारी संख्या में सम्मिलित होता है ।

बाबा महाराज की मनसा ।

महाराज

उपरान्त

बाबा जी महाराज के इस प्रकार सहसा **महासमाधि** ले लिये जाने के कारण भक्त-समाज तथा आश्रित जनता में एकाएक नितान्त असहाय-निराशापूर्ण-निराधार-सी अवस्था व्याप गई — पूर्णतः किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये सब कि **'अब क्या होगा ? कैसे होगा ?'** अब तक तो परमशक्ति के श्रोत बाबा जी महाराज पर ही सब कुछ निर्भर था । सभी निर्द्वन्द थे । न धन-शक्ति की चिन्ता थी और न जन-शक्ति की । *सब कुछ* तो बाबा जी महाराज के **प्रताप** से संचालित था । और तब कोई **अन्यथा** *सोच भी* तो न सकता था — कुछ कर लेना तो दूर की बात थी। यहाँ तक कि **अपने संसार** की भी सारी क्रियायें ही बाबा जी का नाम लेकर, उन्हीं की शक्ति का आधार लिये एक अज्ञात-अनजान विश्वास को लेकर चलती थीं हम सब भक्तों-चरणाश्रितों की । अब एकाएक ऐसा अंधकार-सा छा गया कि कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि किस तरह बाबा जी महाराज द्वारा **सृजित** (इन मंदिरों-आश्रमों की) **ऋष्टि** का समुचित संचालन संभव हो पायेगा ।

और अभी तक तो बाबा जी महाराज ही हर लीला, हर क्रिया के केन्द्र-बिन्दु थे, और भक्तगण निःसंकोच एक आश्रम से दूसरे आश्रम/मंदिर तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को बाबा जी के पीछे-पीछे अथवा उनकी आज्ञानुसार निर्द्वन्द हो चले जाते थे, बिना आगा-पीछा सोचे-बिचारे — **कुछ** (सेवा) करने को । पर अब तो इसका भी भरोसा नहीं रह गया था। जनसाधारण में भी यही भाव पनपने लगा था कि अब तो बाबा जी नहीं रहे

— क्या प्राप्त होगा मंदिरों में, आश्रमों में जाकर या उनमें तन-मन-धन लगाकर ? और *ऐसी* जनता की आवा-जाही भी आश्रमों में धीरे धीरे कम होने लगी थी ।

अतएव, भक्त-समाज में कुछ ऐसा **बिखराव**-सा आ गया कि सब कुछ सिकुड़ता-सा प्रतीत होने लगा — अपने अपने क्षेत्र में ही भक्त गण सिमटने लगे थे । महाराज जी की महासमाधि के बाद किसी में भी ऐसी शक्ति, ऐसी सामर्थ्य, ऐसी *लगन* उदित न हो पाई कि ***अपने सब स्वार्थ त्यागकर एक-निष्ठ भाव से इन*** सब क्षेत्रीय आश्रमों/मंदिरों को *एक-सूत्र* में बाँध परिकरों, आश्रितों, भक्तों में *पूर्ववत* स्थिति ला सके ।

और तभी वर्ष १६७४ के उत्तरार्ध में — (तब तक महाराज जी के सहसा **महासमाधि** ले लेने के कारण विक्षिप्तावस्था को प्राप्त) श्री सिद्धी माँ एकाएक चैतन्य हो उठीं — बाबा जी महाराज द्वारा **अपने जाने** के पूर्व दिये गये आदेशों-निर्देशों के सन्दर्भ में उनके **विरद** का स्मरण कर । इस हेतु श्री माँ ने सर्वप्रथम श्री कैंचीधाम के आश्रम एवं मंदिरों की गतिविधियों के संचालन का कार्य प्रारम्भ कर दिया, और कालान्तर में उनके इस प्रयास के फलस्वरूप कैंची मंदिर-आश्रम धीरे धीरे बाबा जी के अन्य *तीर्थों* की माला का **सुमेरु** ही नहीं अपितु एक **आदर्श** भी बन गया अपना वर्तमान स्वरूप लेकर । और श्री माँ की इस एक-निष्ठ सेवा का *सबसे प्रभावशाली* अस्त्र बना कैंची में ***उनके प्रयासों से निर्मित*** महाराज जी का **तत्व-पीठ मंदिर** जिसने ही वृन्दावन, नीब करौरी, लखनऊ तथा मद्रास (वीरापुरम) में भी ऐसे ही तत्व पीठों को *जन्म दे दिया* !!

यद्यपि कैंची आश्रम तथा इससे जुड़े कैंची के मंदिर और फार्म तथा भूमियाधार एवं काकड़ीघाट मंदिरों की व्यवस्था एवं उनके संचालन हेतु १३ सदस्यों का ट्रस्ट मण्डल उ० प्र० सरकार गठित कर चुकी थी, फिर भी ऐसी व्यवस्था एवं संचालन का सम्पूर्ण भार श्री माँ के कन्धों पर ही विविध परिस्थितियों के कारण आन पड़ा था (वे ही तो पूर्व से ही घर-द्वार-सुख-समृद्धि त्याग कैंची में बनी रहीं थीं अग्रिम सेवा हेतु !!) परन्तु, लगता है, महाप्रभु इस *सत्य* से पूर्व से ही *भिज्ञ* थे और (इसी कारण) उन्होंने माँ के कन्धे से कन्धा मिलाकर (आश्रम की सेवा हेतु) जीवन्ती माँ को भी श्री माँ से वर्षों पूर्व ही सम्बद्ध कर दिया था । और साथ में दे दिया **पीर-बबर्ची-भिश्ती-खर** (अर्थात पूरे आश्रम, फार्म, काकड़ीघाट एवं भूमियाधार

मंदिरों की अद्योपांत व्यवस्था के साथ स्टोर एवं आर्थिक लेखा-जोखा तथा उत्सवों के प्रबन्ध का दायित्व संभालने) की भूमिकायें अपनाये (सेवा हेतु) विनोद चन्द्र जोशी जैसे कर्मिष्ठ, संकल्प-निष्ठ युवक को, जिसे अपनी महासमाधि के साथ साथ श्री माँ से इस तरह बाँध दिया बाबा जी ने कि *तबके* एम० एस० सी० पास इस युवक ने सारा संसार भूल, दो-तीन अच्छी खासी नौकरियों को ठुकराकर महाराज जी की सेवा में ही अपना यौवन, अपना (सांसारिक) भविष्य, अपना समस्त जीवन उत्सर्ग कर दिया ।

प्रारम्भ में तो माँ ने कैंची आश्रम में साफ-सफाई भी स्वयँ अपने हाथों से की । भण्डारे हेतु प्रसाद (पूरी-सब्जी-रोटी आदि) भी तैयार किया। गद्दों-रजाइयों, चद्दरों आदि की धुलाई-मरम्मत भी की — संक्षेप में, बाबा जी के आश्रम को *उन्हीं* का स्वरूप मानकर किसी प्रकार के भी सेवा कार्य से संकोच नहीं किया । अपने सद्गुरु रूप बाबा जी महाराज की *ऐसी ही* सेवा हेतु श्री माँ १०-११ वर्ष पूर्व (१९६३ में) ही अपनी सन्तान अपनी ऐश्वर्यपूर्ण गृहस्थी, अपना घर-द्वार — आदि सब कुछ त्याग कर आश्रम जीवन में प्रवेश कर चुकी थीं ।

और तब उन्हीं के इस समर्पण से प्रेरित होकर महाराज जी की अन्य भक्त-माइयों ने भी तन-मन-प्राण लगा दिये इसी प्रकार के छोटे-बड़े तथा *निम्न कोटि* के भी सेवा-कार्यों में — माँ की तरह ही इन सेवा कार्यों को महाराज जी की ही सेवा जान-मान ! और आज तो कैंचीधाम का तीन चौथाई ऐसा सेवा-कार्य इन्हीं (अब वय-प्राप्त) माइयों तथा अन्य समर्पित भक्त-माइयों एवं सुकन्याओं के द्वारा सम्पन्न होता है । केवल कैंची में ही नहीं, वरन श्री माँ-महाराज की सेवा में समर्पित ये माइयाँ बाबा जी के जिस आश्रम में भी जाती हैं, वहीं ये सब कार्य बाबा महाराज की पूजा-अर्चना जान-मान कर ही करने लगती हैं। इनके साथ स्वयँ माँ भी अपना शारीरिक-मानसिक योगदान देती रहती हैं इन सेवा कार्यों में — ***अब भी*** । बाबा जी कह भी तो गये थे माँ से, **"अम्मा देखना, माइयाँ ही सब (सेवा) करेंगी ।"** भविष्य-दृष्टा बाबा जी ने इसी हेतु इन माइयों को अपने ही सामने इन कार्यों के सम्पादन में निपुण करने के साथ साथ इनमें पूर्ण समर्पण का भाव भी प्रदान कर दिया था ।

अस्तु, प्रारम्भिक विरोध, अवरोध एवँ विभिन्न स्तरों एवं प्रकार की कठिनाइयों को झेलते हुए, मान-अपमान की ओर सर्वथा उदासीन-

निर्विकार बनी माँ ने (तब) जीवन्ती माँ एवं विनोद जोशी के साथ श्री कैंचीधाम को बाबा जी का ही रूप-स्वरूप जान-मान कर पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण के भाव से धाम की हर प्रकार की सेवा कर तथा भक्तों को भी *इस ओर* प्रेरित कर अन्ततोगत्वा इस मंदिर-आश्रम को *वर्तमान* रूप-स्वरूप दे ही दिया ।

महाराज

इसी के साथ श्री माँ की यही एक-निष्ठ सेवायें बाबा जी द्वारा स्थापित सभी अन्य मंदिरों-आश्रमों (तथा भक्तों द्वारा बाबा जी की **महासमाधि** के बाद स्थापित मंदिरों) के प्रति भी समर्पित होती रहीं । वृन्दावन तो वे बाबा महाराज के साथ ही जाती रहती थीं आश्रम बनने के पूर्व से ही। फिर वर्ष १९७३-७४ से हर वर्ष दो-तीन बार वहाँ आश्रम-वास हेतु भी वे जाने लगीं और ऐसे प्रवास के मध्य *सक्रिय ट्रस्टी* की भूमिका निभाती रहीं वहाँ की व्यवस्था एवं संचालन में। परन्तु नीब करौरी जाना उन्होंने दिसम्बर १९७४ से ही प्रारम्भ किया। (नीब करौरी धाम में माँ के क्रिया कलापों का संक्षिप्त विवरण द्वितीय खण्ड की द्वितीय पुष्पाञ्जलि के **'नीब करौरी तीर्थ का पुनर्जागरण'** एवं **'गुफा का पुनर्दर्शन'** प्रसंगों में किया जा चुका है और बाबा जी के मनसा-संकल्पों की पूर्ति हेतु ऐसे अन्य क्रिया कलापों का वर्णन इस खण्ड की तृतीय एवं चतुर्थ भावाञ्जलियों में सम्मिलित बद्रीनाथ, पौड़ी, हनुमान चट्टी, ऋषीकेश (वीरभद्र) — आदि प्रकरणों में दिया गया है ।)

साथ में भक्तों द्वारा धारचूला, कोटमन्या, वीरापुरम, पिथौरागढ़ आदि में स्थापित मंदिरों में तथा बाबा जी महाराज द्वारा शिमला, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, आदि स्थानों में स्थापित मंदिरों में भी यदा-कदा पहुँच और वहाँ बाबा जी महाराज के भक्तों-आश्रितों को एकत्रित कर एंव प्रेरित कर इन मंदिरों के विकास में भी नई ज्योति जागृत करती रहीं ।

श्री माँ के इन सब क्रिया कलापों के फलस्वरूप, एवं उनके द्वारा प्रेरित पुराने **निष्ठ** भक्तों के सहयोग से बाबा जी का बिखरा-सा भक्त समाज पुनः जागृत हो एक दूसरे के सम्पर्क में आकर फिर से *एकजुट* हो उठा। और इस प्रकार **बाबा महाराज ने श्री माँ के माध्यम से** नीब करौरी, वृन्दावन, कैंची, उत्तराखण्ड, बरेली, आगरा, अलीगढ़, मथुरा, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, ऐटा, फतेहगढ़-फर्रुखाबाद, मैनपुरी, मद्रास

आदि स्थानों तथा विभिन्न जिलों एवं प्रान्तों के अपने बिखरे-बिछुड़े भक्तों को पुनः अपने **भक्ति-मंच** पर लाकर बिठा दिया ।

श्री माँ के इन क्रिया कलापों के फलस्वरूप जाने-पहिचाने-पुराने भक्त तो पुनः आये ही बाबा जी की प्रेम-डोर से बँधे — साथ में अनगिनत **नये-अनजाने** भी नीब करौरी, वृन्दावन तथा कैंचीधाम की प्रताप गाथाऐं जान-सुनकर, *इन तीर्थों* के दर्शन प्राप्त कर बाबा जी महाराज के इस **प्रेम सूत्र** में गुँथे-पिरोये अंसख्य मोती बन चुके हैं — बनते जा रहे हैं !!

महाप्रयाण के बाद की ये लीला-गाथायें अनिर्वचनीय हैं ।

महाराज

इस संदर्भ में माँ, जीवन्ती माँ, विनोद (और अब आठवें दशक से बाबा जी महाराज के श्री चरणों में समर्पित शाहजहाँपुर स्टेट के कुँवर ज्योति प्रसाद जी की सुपुत्री) डाक्टर (कु०) जया प्रसाद के त्याग, लगन, निष्ठा से बाबा महाराज एवं आश्रमों तथा परिकरों की निःस्वार्थ सेवा को **देख-जान-समझ** कर **मानस** में अपनी बानरी सेना के प्रति श्री राम के उद्‌गारों की बरबस याद आ जाती है कि —

मम हित लागि जन्म इन हारे ।
भरतहुँ तें मोहि अधिक पियारे ।

और *साथ में* बाबा महाराज के उन पुराने-नये निष्ठावान भक्त-सेवकों की उक्त परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रकार की भक्ति और लगन से की गई/की जा रहीं सेवाओं को देखकर श्री राम के ये *अनमोल* वचन भी —

सबतें पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ।।
पुनि पुनि सत्य कहहुँ तोहि पाहीं ।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ।।

बाबा जी महाराज की दृष्टि में तो उनके आश्रमों-मंदिरों एवं उनके भक्त-परिकरों, उनके आश्रितों की सेवा ***उनकी अपनी ही*** सेवा होती थी/होती है ।

महाराज

श्री अनन्त चतुर्दशी
२६-६-१६६३
सिलीगुड़ी

अपने **जाने** के पूर्व महाराज जी श्री माँ से (अन्य बातों के अलावा) स्वयं ही कह गये थे — ***अम्मा*, *तू* *जहाँ* *भी* *जायेगी* *मैं* *तेरे* *पीछे* *पीछे* *आता* *रहूँगा*** (तेरी कल्याणकारी लीलाओं में अपना भी **योग** *समाविष्ट* करने) और भी कि, **तू *जहाँ* जायेगी *वहीं* (जंगल में भी) मंगल हो जायेगा** । बाबा जी की महासमाधि के उपरान्त बाबा महाराज के *उक्त कथन* तथा (*इस कथन में समाहित*) उनके एवं श्री माँ के **अलौकिक योग** की (पूर्ववत) **निरन्तरता** की पुष्टि (अनेकों में से कुछ) निम्नांकित लीलाओं तथा अन्य **भावाञ्जलियों** में वर्णित श्री माँ के कार्यकलापों से स्वयं ही हो जाती है ।

उत्तराखण्ड वासियों में, विशेषकर श्री धाम कैंची से *आत्मिक भाव* से सम्बद्ध माताओं (एवं *ऐसे ही* भक्तों) को बाबा महाराज द्वारा इस प्रकार सहसा महासमाधि ले लेने पर एक ऐसी आधारहीनता, असहायावस्था-सी आ गई जो उन्हें *तोड़ती-सी* जा रही थी । उनको इस दयनीय स्थिति से उबारने हेतु दयानिधान बाबा जी *सार्थक सम्बल* प्रदान करने को तत्पर हो उठे और जब-तब (वर्ष १९७४-७५ में) नये नये रूप धरकर धाम में आ बिराजते — कभी *बाला जोगी* बनकर तो कभी *जटा-जूट* लिये और कभी एकदम सादे-साधारण वेष में । तब *इन रूपों* से भक्तगण एवं माइयाँ उसी अंतरंगता, उसी भाव से वार्तायें एवं व्यवहार करने लगतीं जैसा वे महाराज जी के साथ करती रहतीं थीं । परन्तु *यह केवल एकतरफा का क्रिया-भाव न था* !! ये स्वरूप भी तो स्वयं भी *बाबा महाराज की तरह* आचरण कर बैठते — बीच बीच में *संकेत*-सा देते *अपनी पहिचान* हेतु !! फलस्वरूप मातायें उसी की याद में कुछ काल के लिये *विभोर* बनी रहतीं आपस में चर्चा करतीं । हम सब भी यदा-कदा यह सब लीला देखते रहते — साथ में एक शंका-सी लिये कि क्या वास्तव में महाराज जी ही आये थे ? परन्तु *निर्मल-मना* माइयों को तो भाव का सम्बल मिल ही जाता । अन्ततः अपने इन विभिन्न रूपों में प्राकट्य की पुष्टि महाराज जी ने कर ही दी अपने स्वयं की अन्य लीलाओं के माध्यम से । उदाहरणार्थ :—

जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है कि बाबा महाराज द्वारा महासमाधि ले लिये जाने के बाद जनता की (एवं भक्त समाज की भी) आश्रमों में (विशेषकर कैंची आश्रम में) आवा-जाही कम हो चली थी । साथ में पूर्व में प्राप्त सहयोग में भी कुछ कमी आने लगी थी धीरे-धीरे । परन्तु *धाम* तो बाबा जी ने **अपने निष्ठ प्रेमी भक्तों** के लिये स्थापित किया था ।

तब वे कैसे *किसी प्रकार* की कमी होने देते आश्रम में ? त्रिकालदर्शी बाबा जी तो भविष्य की ऐसी ही सम्भावनाओं के भी प्रति **सचेत** थे । अस्तु, उन्होंने इस परिस्थिति के निराकरण हेतु भी ऐसी लीला रच डाली कि श्री माँ पर (भविष्य में भी) इन परिस्थितियों में किसी भी प्रकार का **दबाव** न आने पाये । यथा :—

वर्ष १९७५; जून माह के प्रारम्भ में एक दिन ७० वर्षीया भक्त माता लीला माई धाम में **विष्णु कुटी** की ऊपरी मंजिल में सड़क की ओर वाले कमरे में बैठीं अपनी हज़ारा माला लेकर जाप कर रही थीं । चिन्ता ने उन्हें बुरी तरह घेर रखा था कि (उक्त वर्णित परिस्थिति में) श्रीधाम कैंची के १५ जून के भण्डारों की व्यवस्था सिद्धी माँ कैसे कर पायेंगी (जब हजारों लोग देसी घी के मालपुवों का भोग-प्रसाद पाने आ पहुँचेंगे, यद्यपि माँ इस सम्बन्ध में पूर्णतः निरपेक्ष बनी रहीं ।) तभी उन्होंने सामने की खिड़की से देखा कि हल्की जटाओं वाले, श्वेत वस्त्रधारी (धोती के ऊपर चादर लपेटे) एक साधू बाबा सामने सड़क की पैरापेट पर बैठे हैं, और थोड़ी ही देर बाद (लीला माँ की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट हुई देख) उठकर मंदिर के मुख्य द्वार की ओर बढ़ गये । यह कोई विशेष घटना तो न थी । फिर भी लीला माई यह देखकर (प्रभु प्रेरित-सी) स्वयं ही अपनी हज़ारा माला को बीच ही में छोड़कर तत्काल मंदिर-क्षेत्र के फाटक की ओर द्रुत गति से चल पड़ीं । वहाँ पहुँचकर उन्होंने पाया कि साधू महाराज पूर्व से ही बाहर की **श्यामकुटी** के बराम्दे में विराजमान हैं । लीला माँ भी वहीं पहुँचकर साधू बाबा से बातें करने लगीं — आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? — आदि, आदि ।

तभी श्री माँ भी सूचना पाकर वहीं पहुँच गईं जीवन्ती माँ के साथ। माँ ने देखा कि साधू बाबा लीला माँ की गोद में सिर रखे, **नन्हें बालक** की भाँति उसे इधर-उधर घुमाते न मालूम क्या-क्या कह रहे हैं उनसे (जैसे पूर्व में बाबा जी किया करते थे उनके साथ !! — बालक के अपनी माँ के साथ के व्यवहार की तरह !) और कि लीला भाई भी; पूर्व की भाँति ही, अत्यन्त आनन्द विभोर हुई गदगद हो मंद मंद हँसती जा रही हैं — उनके कपोल भी अत्यन्त अरुण हो चले हैं आनन्दातिरेक से । माँ को लगा कि लीला माँ ने भी बाबा जी को पुनः *पा* लिया इस नये रूप में ।

साधू बाबा जी तब **अपनी** पहिचान-सी कराते बोलते रहे कि, **"जब मैं छोटा ही था तभी मैंने घर छोड़ दिया था"** — आदि, आदि, लगभग बाबा जी महाराज की-सी कथाओं को दुहराते हुए । पर भ्रमित भी करने को बीच बीच में कुछ और भी कह देते !! और जब माँ ने प्रणाम करते पूछा — **"बाबा हमारे लिये क्या लाये ?"** तो (लीला माई की तरफ देख) बोल उठे, **"बेकार चिन्ता करती है कि भण्डारा कैसे होगा । जा, बासन ला !!"** एक बड़ी थाली ले आई रेखा, और साधू बाबा ने अपने झोले से निकाल निकाल कर **चुटकी भर** आटा, चावल, दाल, हल्दी, नमक-मसाले तथा अन्य *जिन्सें* थाली में रखना प्रारम्भ कर दिया !! (बाबा महाराज की *यह* लीला सभी परमानन्द में डूबे देखते रहे ।) और फिर बोले, **"ले, लबालब होगा भण्डारा — चकाचक होगा !!"** साथ में कैंचीधाम की **भण्डारी माई**, जीवन्ती माँ की हथेली में भी **एक रुपिया** रखकर बोले, **"ले तू बामणी (ब्राह्मणी) है, तुझे रुपिया दे देता हूँ !!"** (बाबा जी अपने विनोद में ब्राह्मणों-ब्राह्मणियों को बामण-बामणी नाम दिये थे । पर इन साधू बाबा को इतनी महिलाओं के बीच कैसे ज्ञात हुआ कि इनमें केवल जीवन्ती माँ ही ब्राह्मणी है !!)

(इस लीला के बाद कैंचीधाम के विभिन्न भण्डारों में किसी भी परिस्थिति में कोई भी कमी नहीं आने पाई कभी — न जन-शक्ति में और न धन शक्ति में । न्यून धन एवं न्यून मात्रा की सामग्री से भी बाबा महाराज की शरीरावस्था के समय से भी बृहत्तर आयोजन होते रहे/हो रहे हैं । **जिसके रामधनी, उसके क्या कमी** — यही तो कहते रहते थे बाबा जी । अस्तु, **और और** ही प्रगट हो गये/होते जा रहे हैं *ऐसी* सेवा हेतु पुराने निष्ठ सेवक भक्तों के साथ । बाबा जी का यही **खेल** तो उनके सभी आश्रमों में भी देखने को मिलता है । **अपनी ऋष्टि को *अधूरा* कैसे छोड़ सकते हैं बाबा जी ?** *सृजन* किया है तो *पालन* भी करना पड़ेगा उन्हें। केवल ***विश्वास*** की आवश्यकता है *इस* हेतु और ***सम दृष्टि*** एवं **स्वार्थहीनता** की भी ।)

साधू बाबा ने मंदिरों में आरती प्रार्थना के बाद रात्रि में **श्यामकुटी** में ही महाराज जी को अर्पित भोग-प्रसाद पाया और वहीं विश्राम भी किया। तब सभी अपने अपने कार्यों में रत हो गये । रात हो चली थी । पर तभी एकाएक माँ ने तथा अन्य आश्रमवासियों एवं सेवादारों ने *हजारों कंठों* से

निकली आवाज में **महाराज जी जय-जय कार** सुनी !! सुनकर सभी **जे जैसे तैसे ही उठ धावहिं** समान मंदिर प्रांगण में आ गये (कि कहाँ से आ गये एकाएक इतने भक्त !!) परन्तु वहाँ तो *केवल* साधू बाबा जी विद्यमान थे !! (तब इतनी कंठ-ध्वनियाँ कहाँ से आईं ?)

तब माँ के आग्रह पर साधू बाबा महाराज जी के तखत-आसन के पास बराम्दे में बैठ गये । अन्य बातों के अलावा माँ से यह भी बोले, **"देख, *बिना* आज्ञा के कोई फाटक न खोले (निर्धारित) समय के बाद।"** (चौकीदार ने उन्हें *रात के समय* भी फाटक खोलकर मंदिर क्षेत्र में प्रवेश दे दिया था ।)

इस घटना के पूर्व दो माह से पहाड़ों में **सूखा** पड़ा था । उक्त दर्शन एवं बाबा जी की *इस* लीला के बाद माँ ने कहा था, **"देखना *अब* । खूब बारिस होगी ।"** और *उसी* रात आँधी-तूफान के साथ *जमकर* बारिस हो गई !!

वर्षा थमने के बाद सुबह ४ बजे माँ ने जब सेवक गणेश को **श्यामकुटी** को भेजा साधू बाबा की कुशल पूछने तो साधू बाबा का कोई पता न था वहाँ !! कैंचीधाम के भण्डारों को सदा के लिये परिपूर्ण कर बाबा जी महाराज पुनः अन्तर्ध्यान हो गये थे !!

महाराज

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर बाबा महाराज बीरभद्र धाम (ऋषिकेष) भी पहुँच गये एक नये वेष में — सिर में ग्रामीणों की तरह पगड़ी बाँधे, चोला-सा पहिने । *तब* धाम में आवासीय भवन न थे, और श्री माँ भी टेन्ट में निवास करती थीं । उन दिनों उस धाम में विप्लव-सा मचा रखा था कुछ विरोधी तत्त्वों ने (जिसका वर्णन *न* करना ही श्रेयस्कर होगा।) केवल माँ को छोड़ अन्य सभी के अन्तर में उहापोह की स्थिति बनी थी तथा श्री जीवन्ती माँ के आदेशानुसार हनुमान जी से प्रार्थना होती रहती थी—**पवन तनय बल पवन समाना— बुधि विवेक विज्ञान निधाना । कवन सो काज कठिन जग माहीं — जो नहिं होत तात तुम पाहीं ।।**

साधू बाबा क्षेत्र के फाटक तक आये और कुछ भ्रमति-सा करते दर्शन वाले शामियाने में माँ के पास आ गये। आते ही **'हो ! तेरी जय हो'** के नाद के साथ माँ के अभिवादन का उत्तर दिया । फिर पुनः भ्रमित

करने को बोल उठे — **"मैं तो झाड़ीवाले बाबा के पास जा रहा था, यहां आ गया ।"** उन्हें अन्य सेवाओं के साथ जब संतरे का केसर निकाल माँ खिलाने लगी तो बोल उठे — **"तैने खाया, मैंने खाया — ले तू भी खा — हो ! तेरी जय हो ।"** और बीच में **बाबा आप कहाँ से आये** का उत्तर होता — **"मैं किसी की नहीं सुनता, बस अपनी कहता हूँ — हो ! तेरी जय हो । मैं तो झाड़ीवाले बाबा के पास जा रहा था"** — आदि ।

और जब वे जाने लगे तो माँ के आदेशानुसार श्री झल्डियाल जी के पुत्र, श्री डब्बू उन्हें अपनी कार में बिठा ले चले झाड़ीवाले बाबा के पास। हम सब भी पीछे-पीछे गये । पर जब डब्बू जी कुछ ही दूर उन्हें ले जा पाये तभी एक अन्य कार वहाँ प्रगट हो गई तथा साधू बाबा उसमें बैठकर शीघ्र ही अन्यत्र चले गये !!

परन्तु साधू बाबा के इस आगमन के उपरान्त **'कवन सो काज जग माहीं, जो नहिं होहि तात तुम पाहीं ।।'** की प्रार्थना हनुमान जी ने भी सुन ली और बीरभ्रद धाम के निर्माण में उपजी तथा उपजतीं सभी समस्यायें एक के बाद एक सुलझती चली गईं !! और अन्ततः **जय** भी हो ही गयी !!

महाराज

श्री माँ, जीवन्ती माँ एवं विनोद धाम की व्यवस्था पर मंत्रण

द्वितीय भावाञ्जलि

अपने तत्व-पीठों हेतु स्थल-चयन

लगभग ५०-५५ वर्षों तक निरन्तर की गईं अपनी प्रेम, वात्सल्य, एवं अपनत्व की मनोहारी लीलाओं के प्रभाव से बाबा जी महाराज अपने भक्तों एवं आश्रितों के रोम रोम में *इतना* समा चुके थे कि *उनसे* अल्पकालिक विछोह भी **ऐसे** भक्तों-आश्रितों के लिए असह्य हो उठता । वे सदा ही बाबा महाराज के दरसन-परसन के लिये तरसते रहते थे तथा एक ओर जहाँ ये भक्त इस हेतु इधर-उधर भागते रहते थे, वहीं बाबा जी भी इन भक्तों के भावों की प्रबलता के वशीभूत हो जब-तब स्वयँ भी उनके पास पहुँच उन्हें अपने दर्शनों से, अपनी लीलाओं से तृप्त करते रहते थे । *ऐसी* स्थिति में, उनका *बिल्कुल ही अन्तर्ध्यान हो जाना* कल्पनातीत ही था सबके लिए । बाबा जी महाराज को भी अपने ऐसे भक्तों की अपने प्रति *ऐसी* भावना का पूरा ज्ञान था । अस्तु, अपनी **शरीर लीला** के बाद इन भक्तों-आश्रितों-शरणागतों को (उनका मन बाँटने को, उन्हें *उलझाने* को) कुछ न कुछ आधार देना ही था । और *उनके स्वयँ के* **तत्व-पीठ** रूपी मंदिरों की तुलना में ऐसे आश्रितों के लिये और अधिक विश्वस्त संबल हो भी क्या सकता था । केवल अब तक निर्मित मंदिर और आश्रम ऐसा आधार दे भी तो न पाते ।

साथ ही महाप्रयाण के बाद उनकी कल्याणमयी लीलाओं की निरन्तरता हेतु भी बाबा जी के इन **तत्व-पीठों** को भी तो *स्वयँ बाबा जी महाराज की ही भूमिका निभानी थी* । अतएव महाराज जी ने पूर्व से ही बड़े सुनियोजित ढंग से अपने *ऐसे* मंदिरों की स्थापना के लिये स्वयँ ही *वांछित* स्थानों में स्थल चयन भी कर डाला !! और अपने इस संकल्प को किसी से भी *बिना* प्रगट किये, बिना स्पष्ट किये ही बाबा जी महाराज ने *केवल* अपनी **मनसा-शक्ति** से ही भक्तों को भी *इस* ओर प्रेरित कर *उन्हीं उन्हीं* चयनित स्थलों में ही अपने मंदिर भी बनवा लिये !! इस चयन प्रक्रिया में भक्तों का कोई योगदान नहीं रहा और न उनकी मंशा ही ।

यद्यपि हमने इन मंदिरों को समाधि-मंदिरों की संज्ञा दे डाली, तथापि *सही* अर्थ में ये मंदिर समाधि-मंदिर न होकर नित्य-लीला रत बाबा जी महाराज के *स्वयँ* के मंदिर हैं — उसी प्रकार जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण,

हनुमान जी एवं शंकर जी आदि के मंदिर होते हैं, पर इन मंदिरों से भिन्न भी, क्योंकि इन मंदिरों में बाबा जी महाराज की मूर्तियों के नीचे उनके दिव्य लीला-शरीर के **अवशेष फूल** भी प्रतिष्ठित हैं । अस्तु, ये मंदिर समाधि-मंदिर न होकर महाराज जी के **तत्व पीठ** हैं जहाँ बाबा जी महाराज *अब* अपने लीला-शरीर के अवशेषों के रूप में अपने सम्पूर्ण तत्वों, शक्ति एवं मूर्ति-रूप से अपना ही स्वरूप लेकर स्वयँ विद्यमान हैं — और वही लीलाएँ कर रहे हैं जैसे स-शरीर करते रहे थे ।

महाराज

श्री वृन्दावन आश्रम में स्थल चयन

श्री वृन्दावन धाम में महाराज जी ने केवल हनुमान मंदिर एवं आश्रम की स्थापना करवाई थी और अपने **जाने** से पूर्व वृन्दावनेश्वरी देवी के प्रतिष्ठापन की व्यवस्था भी कर दी थी । परन्तु वृन्दावन आश्रम के भीतर पूर्व में कभी भी देवी अनुष्ठान नहीं करवाया था ।

वर्ष १९७३ (मार्च माह) में बाबा जी श्री देवकामता दीक्षित जी को साथ लिये आश्रम के प्रांगण में घूम रहे थे। बाबा जी कहीं न कहीं तो आसन ग्रहण करेंगे ही — यही सोचकर दीक्षित जी अपनी बगल में एक छोटा-सा चटाई-आसन भी दबाये थे। कुछ देर बाद बाबा महाराज कुछ रुक रुक कर बोलने लगे (मानो अपने से ही)— **"कहाँ बैट्टूँ ? कहाँ बैट्टूँ ?"** और फिर (कुछ जोर से — लल्लू दादा से)— **"बोलते क्यों नहीं कहाँ बैट्टूँ ?"** लल्लू दादा की समझ में नहीं आ रही थी यह बात— बरामदा भी था, और घास का मैदान भी था बैठने के लिये। तभी एक *स्थान-विशेष* को इंगित कर बाबा जी स्वयं ही बोल उठे, ***"यहाँ बैठता हूँ ।"*** दादा ने *वहीं* चटाई बिछा दी, और बाबा जी भी *कुछ* देर बैठ कर *वहाँ* से उठ लिये।

और फिर वर्ष १९७३ की चैत्र की नवरात्रों में (अप्रैल – १९७३ में) महाराज जी ने आश्रम के प्रांगण में **उसी** उक्त स्थान में ही — (जो उत्तर में आवासीय भवनों से लगभग १/३ भाग दक्षिण की ओर तथा श्री हनुमान मंदिर की चहार दीवारी से २/३ भाग उत्तर की ओर स्थित है) — अलीगढ़ के एक भक्त, श्री विशम्भर जी से ९ दिन का देवी-पूजन एवं

हवन-यज्ञ करवा डाला !! और जब पूर्णाहुति हो गई तो बाबा महाराज ने उस स्थल-विशेष की यह कहकर घेराबन्दी करवा दी कि, **"*यह जगह अब* शुद्ध हो गई है। इसे घेर कर *सुरक्षित* कर दो ।"** बाबा जी के इस आदेश का अर्थ अथवा स्थल विशेष की घेराबन्दी का प्रयोजन *तब* केवल रहस्य–मात्र बन कर रह गया था ।

और जब ११ सितम्बर, १६७३ को वृन्दावन में भक्तों द्वारा यह निर्णय न लिया जा सका कि महाप्रभु का पार्थिव शरीर अन्तिम संस्कार हेतु कहाँ (जन्म स्थान अकबरपुर या हरिद्वार या वृन्दावन में जमुना किनारे) ले जाया जाये तब महाराज जी ने ही वृन्दावन के प्रसिद्ध योगी, **पागल बाबा** को प्रेरित कर आश्रम भिजवाया और उनके द्वारा अपने पार्थिव शरीर को आश्रम के प्रांगण में *उसी* स्थल-विशेष में ही पंचभूतों में विसर्जित कर देने हेतु आग्रहपूर्ण राय दिलवा दी जिसे उपस्थित भक्तों ने भी स्वीकार कर लिया, *महाप्रभु* की **मंशा** के अन्तर्गत ।

और फिर *उसी* **शुद्ध किये गये** स्थल में ही महाराज जी के लीला शरीर को अनन्त चतुर्दशी के पावन पर्व में अग्निदेव को समर्पित कर दिया गया तथा **उसी** स्थल पर ही महाराज जी का **तत्व पीठ**-रूप मंदिर भी उनकी मूर्ति को लिये खड़ा है जिसके दर्शन हेतु हजारों की संख्या में भक्तगण प्रति वर्ष आते हैं — और यहीं ही बाबा जी महाराज की *लौकिक* पुन्यतिथि भी वृहद भण्डारे के साथ आयोजित होती है । **"कहाँ बैट्रूँ ?"** पूछा था महाराज ने ।

महाराज

नीब करौरी में स्थल-चयन

बाबा जी महाराज ने नीब करौरी ग्राम को वर्ष १६३४-३५ के आसपास बाह्य रूप से छोड़ दिया था। परन्तु साथ में अपनी *प्रथम* लीला-स्थली नीब करौरी में वे अज्ञात रूप से जब-तब आ ही जाते थे — अपने हनुमान-स्वरूप से मिलने ।

वर्षों पूर्व एक बार वे इसी प्रकार मैनपुरी के श्री वीरेन्द्र सिंह के साथ (जो उस समय केवल किशोरावस्था-प्राप्त थे) चुपचाप नीब करौरी ग्राम में हनुमान मंदिर तक आये । वीरेन्द्र जी ने देखा कि मंदिर क्षेत्र में

कुएँ से कुछ हटकर एक अधबनी बिल्डिग और खड़ी है — (प्रसंगवश — यह अधबनी मंदिरनुमा बिल्डिग, गाँव वालों के कथनानुसार बाबा महाराज की कच्ची कुटिया तथा द्वितीय भूमिगत गुफा-क्षेत्र के ऊपर गंगादीन महाजन ने साधु-संतों के रात्रि विश्राम हेतु बनवा दी थी एक भूमिगत कमरे के साथ) और कि उसमें कोई भी देवी-देवता की मूर्ति विराजमान नहीं है । वीरेन्द्र जी के मन में यह देखकर कौतूहल जाग उठा । अस्तु, उन्होंने बाबा जी से पूछ ही दिया, "महाराज जी, ह्याँ का बनैगो ?" तभी महाराज जी ने तपाक से (अविलम्ब) उत्तर दे दिया — **"ह्याँ हौं बैठोंगो !!"** महाराज जी के *इस* कथन के अर्थ को वीरेन्द्र जी कुछ न समझ पाये । परन्तु (तब) समझ भी कौन पाता इस अटपट वाणी को ?

और अन्ततोगत्वा, वर्ष १६८४ में (१५ फरवरी को) बाबा जी महाराज मूर्ति रूप में वहीं बैठ गये !! (बाबा जी की इस **मनसा** पूर्ति का विवरण द्वितीय खण्ड में **'नीब करौरी तीर्थ का पुनर्जागरण'** प्रकरण में दिया जा चुका है।)

महाराज

श्री कैंची धाम में स्थल-चयन

महाप्रयाण के एक-डेढ़ वर्ष पूर्व से अपने कैंचीधाम निवास के मध्य महाराज जी **रामकुटी** में एकान्त में विराजे दक्षिण की ओर खुलने वाली

रामकुटी से दृष्टिपात

जालीदार खिड़की के बाहर एक *विशिष्ट* स्थान की ओर अक्सर टकटकी लगाये, निर्निमेष दृष्टि से देखा करते थे । ऐसे अवसरों पर उनके होंठ भी वार्ता-सी करने की मुद्रा में हिलते रहते थे। यह क्रम उनके कैंची निवास के मध्य अन्तिम कई माह तक बराबर चलता रहा, जब भी एकान्त मिला।

उन डेढ़ वर्षों में धाम में अन्य भक्तों के अलावा बड़ी संख्या में विदेशी भक्त भी (अंग्रेज, अमरीकन, कैनेडियन, जर्मन, ग्रीक — आदि) महाराज जी के दर्शनों को आते थे — सुबह से दिन भर धाम में रहते और साँझ होते पुनः नैनीताल अथवा अन्य आवासीय स्थानों को रात भर के लिये चले जाते थे । ये विदेशी अक्सर बड़े भावपूरित मधुर-गम्भीर स्वर से महाराज जी को हनुमान चालीसा तथा राम-नाम/कृष्ण-नाम कीर्तन सुनाया करते थे । **रामकुटी** की उस खिड़की के बाहर इन विदेशियों तथा अन्य भक्तों के बैठने का स्थान भी *वही* होता था *जहाँ* बाबा जी एकान्त में दृष्टिपात करते होते । स्थान कुटी से लगे पहाड़ का ही हिस्सा था — कुछ ऊबड़-खाबड़ चट्टानों युक्त तथा कुछ समतल ।

वर्ष १९७३ का जन्माष्टमी पर्व आ गया । इन विदेशियों ने भी भारतीय भक्तों की भाँति उपवास-वृत धारण किया हुआ था। आज के दिन इन्हें भी धाम में ही रहने की छूट मिली थी आरती-प्रसाद तक। कैंची में जन्माष्टमी के दिन प्रचलित पद्धति के अनुसार रात्रि के बारह बजे भगवान कृष्ण की (श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर में) आरती-पूजन के साथ बाबा महाराज का भी आरती-पूजन हुआ करता था। (आज भी ऐसा ही होता है।) इन विदेशी भक्तों ने भी रात्रि प्रारम्भ होते ही अपने हाथों में आरती-थाल सजा, मोमबत्तियाँ जलाकर (*उसी* स्थान पर बैठकर जहाँ महाराज जी एकटक दृष्टिपात करते थे) कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। बाबा जी रामकुटी में ही बन्द रहे और खिड़की भी बन्द कर ली। परन्तु कीर्तन चालू रहा — खिड़की पर दृष्टि गड़ाये सभी भाव-मग्न गाते रहे। खिड़की कभी कभी खुलती — महाराज जी उन्हें डाँटते (?) और इस बहाने दर्शन देकर खिड़की पुनः बन्द कर लेते !! परन्तु कीर्तन में कोई अवरोध न आया। वर्षा भी होने लगी। फिर भी ये भक्त अपने स्थानों में यथावत डटे रहे — और भी उच्च स्वर में कीर्तन करते हुए ।

रात्रि के बारह बजने के कुछ क्षण पूर्व बाबा महाराज ने पूरी खिड़की खोल दी । अब क्या था — पागल हुए ये भक्त अन्य भारतीय

भक्तों के साथ श्री कृष्ण का नाम कीर्तन — **'गोपालाSS, गोपाला — जय देवकिनंदन गोपाला'** — गम्भीर नाद से करने लगे । वहीं बाहर से ही बाबा जी महाराज की आरती होने लगी, पूजन होने लगा । अत्यन्त आध्यात्मिक, भावों से परिपूर्ण आत्मिक दृश्य था वह— परम आल्हाद युक्त, नैसर्गिक । सभी भाव विभोर हो महाराज जी के (उस क्षण में *विशिष्ट*) कान्तिपूर्ण मुखचन्द्र को निहारते रहे । किसी को अपने तन का, अपनी स्थिति का होश नहीं — ज्ञान नहीं । नेत्रों से अश्रुपात होता रहा भक्तों के। भावावेश में कोई नृत्य करने लगा, कोई हर्षोन्माद में भाव समाधि में डुबकी लेने लगा, कोई कण्ठ की रुद्धता के कारण अपने को लाचार पा केवल महाप्रभु के मुखारबिन्द की अलौकिकता का ही अपनी निर्निमेष दृष्टि से रस-पान कर रहा था। बड़ी देर तक महाराज जी की यह क्रीड़ा चलती रही। **महाराज जी के रूप में इन भक्तों के देवकीनन्दन का जन्म हो गया। श्री श्री श्री नीम करौली बाबा जी सन्त महाराज की जै** के नारों से वातावरण गूँजता रहा ।

और बाबा जी महाराज द्वारा उनके ऊपर करुणा-दया-कृपा की वर्षा का तो कहना ही क्या जो झल झल चमक रही थी बाबा महाराज के नेत्रों में। धाम के इन भक्तों के लिये महाप्रभु के अन्तर में जो प्रेम-सागर भरा था उसको एक साथ अपने भक्तों के ऊपर उड़ेल देने की चेष्टा महाप्रभु करते रहे नयनाश्रुओं से — परन्तु **सागर** था कि फिर फिर भर आता !! बाबा जी सम्भवतः यही सोच रहे थे कि अब इन चरणाश्रितों को ऐसा अवसर पुनः कहाँ मिल पायेगा ।

और श्री वृन्दावन धाम की भाँति ही श्री कैंचीधाम में भी बाबा जी महाराज ने अपनी तत्वपीठ के लिये अपने *इस* स्थल-चयन को भी उक्त लीला के माध्यम से अन्तिम रूप दे दिया । ६ सितम्बर के दिन बाबाजी कैंचीधाम से यह कहकर विदा हुए थे कि **'अभी हाल चार दिन में आ जाऊँगा'**, और चौथे दिन, १२ सितम्बर को वे आ भी गये अपने वचनानुसार — परन्तु अस्थिकलश में आसीन अपने श्री-चरणों की भस्मी के रूप में — जिसे उन्हीं की मन्शा-शक्ति से प्रेरित हो श्री सिद्धी माँ ने *उसी* स्थान में स्थापित करवाया जिस स्थल पर बाबा जी निर्निमेष दृष्टिपात करते थे, तथा जहाँ **देवकीनन्दन गोपाला** का दिव्य महा-कीर्तन हुआ था ।

और, आज वहीं महाप्रभु का मंदिर भी उनकी श्री-मूर्ति के साथ विद्यमान है — जहाँ अनेक लोग मनौती मान कर अपनी मनसा पूर्ति कर लेते हैं, जहाँ भाव से प्रार्थना करने पर दैहिक-दैविक-भौतिक तापों से मुक्ति मिल जाती है, जहाँ प्रेमी-जिज्ञासु अपने गूढ़तम प्रश्नों का सहज में उत्तर पा साधना का सुफल प्राप्त कर लेता है ।

महाराज

लखनऊ (हनुमान सेतु) में स्थल-चयन

अपने निर्वाण के कुछ वर्ष पूर्व (नया मंदिर बनने के उपरान्त) महाराज जी ने लखनऊ में हनुमान मंदिर के ट्रस्टियों से मंदिर के पार्श्व में अपने लिये कुटी बनवाने को कहा था । अन्य स्थानों में तो भक्त लोग स्वयँ ही ऐसी व्यवस्था महाराज जी की प्रेरणा से ही करते रहे थे — पहले महाराज जी की कुटी बनती थी और फिर मंदिर । अतएव, महाराज जी की लखनऊ के लिए *उक्त* इच्छा की लीला एक आश्चर्यजनक रहस्य ही थी जिसका अर्थ उस समय जान पाना सम्भव न था ।

परन्तु ट्रस्टियों ने महाराज जी के लिये उस विशिष्ट स्थान पर कुटी इसलिए नहीं बनवाई कि आर्किटेक्टों की राय में उस स्थान पर भवन बनने से हनुमान मंदिर की भव्यता में अन्तर आ जायेगा !! अस्तु कुटी अन्य स्थल (मंदिर के पीछे) बनवाई गई ।

और जब १४ सितम्बर १९७३ को महाराज जी के पार्थिव शरीर के **फूल** को लिये अस्थिकलश लखनऊ लाया गया तो *उसे भी* तत्कालीन मुख्य प्रबन्धकर्ता ने मंदिर से दूर, एक कोने में (*न कि उस स्थान* पर जहाँ महाराज जी अपनी कुटी बनवाना चाहते थे) स्थापित कर ऊपर से चबूतरा एवं कमरानुमा समाधि-मंदिर बना दिया जहाँ केवल अनन्य भक्त ही हनुमान दर्शन के बाद मत्था टेकने जाते थे — अन्य दर्शनार्थी नहीं ।

परन्तु महाराज जी की **मनसा** कौन टाल सकता था ? १५-१६ वर्ष बाद *उसी* **मनसा-शक्ति** ने अपना रूप लेना प्रारम्भ कर दिया । ट्रस्टियों में मंत्रणा हुई और उसी स्थान पर *जहाँ महाराज जी अपनी कुटी बनवाना चाहते थे*, महाराज जी का एक बहुत बड़े क्षेत्र में *अत्यन्त विशाल एवं भव्य मंदिर* बन गया, और अस्थिकलश भी अपने *पुराने* स्थल से हटकर *वहीं* आ

गया जिसके ऊपर बाबा जी महाराज एक विशाल मूर्ति रूप में विराजमान हो गये, जिनके दर्शन हेतु अब वे सभी लोग भी आते हैं जो हनुमान जी के दर्शन को आते हैं !!

कहाँ *केवल* कुटी और कहाँ *विशाल मंदिर* !!

महाराज

वीरापुरम (मद्रास) में स्थल चयन

वर्ष १९७३ (जनवरी) में महाराज जी श्री सिद्धी माँ, श्री जीवन्ती माँ तथा अन्य भक्तों के साथ दक्षिण यात्रा पर थे । मद्रास शहर से कुछ दूर स्थित एक विशिष्ट स्थान, वैष्णवी देवी मंदिर के दर्शन हेतु कुछ कारों में महाराज जी का कारवां मद्रास से चला । पूर्व में सदा ही बाबा महाराज की गाड़ी आगे चलती थी, परन्तु इस बार उन्होंने अपनी गाड़ी को पीछे कर लिया !! (ऐसा क्यों किया उन्होंने ? इस रहस्य का पता ११ वर्ष बाद ही हो पाया !!) गाड़ियाँ आगे बढ़ती गईं। आज पहली बार तो वैष्णवी मंदिर नहीं गये थे बाबा जी और उनके परिकर। स्पष्ट था कि जान बूझकर ही बाबा जी ने गाड़ियों को आगे बढ़ने दिया। और जब वीरापुरम (मद्रास से ३१ किमी० दूर) पहुँच गये तो बाबा जी महाराज एकाएक बोल उठे, **"ओहो ! हम तो बहुत आगे चले आये । वापिस चलो ।"** साधारण सी बात थी, परन्तु महाराज जी ने गाड़ी से उतर कर एक विशिष्ट स्थल की परिक्रमा-सी कर डाली । गाड़ियाँ वापिस हो गईं । बात आई गई हो गई।

परन्तु इस घटना में *निहित* तथ्य *तब* ज्ञात हुआ जब श्री हुकुमचन्द जी ने माँ-महाराज जी द्वारा प्रेरित किये जाने पर उनका एक मंदिर वर्ष १९८३ में वीरापुरम में *उसी* स्थल में बनवा दिया जिसकी बाबा ने परिक्रमा की थी !! इस मंदिर में महाराज जी की मूर्ति का प्रतिष्ठापन १९ जनवरी, १९८४ को हुआ। तब इस स्थान को देखकर (जहाँ दण्डायुधपाणि श्री कार्तिकेय जी का भी मंदिर है) श्री सिद्धी माँ को ११ वर्ष पूर्व की उक्त घटना याद आ गई कि किस लीला के साथ महाराज जी ने स्वयँ यहाँ आकर अपनी चरणरज से इस स्थल को विभूषित कर दिया था !! साथ में —

सितम्बर १४, १९७३ से बाबा जी महाराज के पार्थिव शरीर के मेरे द्वारा संचित **फूलों** का एक छोटा कलश इलाहाबाद में मेरे पूजा घर में प्रतिष्ठित था। इस शंका से ग्रसित कि हमारे *बाद* शायद लड़के-बहू इस परम निधि को समुचित आदर न दे सकें, मैंने और मेरी पत्नी ने निर्णय ले लिया था कि हम में से जो भी *पहले जायेगा,* उसी के साथ यह कलश भी गंगा जी को समर्पित कर दिया जायेगा । किन्तु वर्ष १९८० में श्री माँ को अपने इस निर्णय से अवगत कराने पर उन्होंने कहा कि समय आने पर इसकी समुचित व्यवस्था हो जायेगी । परन्तु *तब* इस *समुचित व्यवस्था* का कोई खुलासा नहीं किया । और वीरापुरम में मंदिर बनते बनते उनकी आज्ञा हो गई कि कलश लेकर मद्रास पहुँचो । वहाँ यह कलश बाबा जी महाराज की मूर्ति के नीचे स्थापित हो गया !! इस प्रकार वीरापुरम को भी गुरुधाम का स्वरूप देता यह मंदिर भी महाराज जी का *एक और* **तत्वपीठ** बन गया !! (मुकुन्दा)

महाराज

मद्रास ऐसी जगह में बाबा जी महाराज का मंदिर बनना एक कल्पनातीत सत्य है । परन्तु बाबा जी महाराज की **मनसा-शक्ति** का कोई विश्लेषण नहीं हो सकता और न उनके श्रीमुख से निकली वाणी का ही । बाबा जी ने तो २० जून १९७३ को ही श्री हुकुमचन्द जी के उनसे मद्रास चलने के आग्रह के उत्तर में कह दिया था, **'हाँ, हाँ, मैं मद्रास आऊँगा *और वहीं रहूँगा* ।'** और अपने वचनों की सार्थकता स्वरूप महाराज जी आज वीरापुरम धाम में केवल १८ इंच ऊँची काले पत्थर की अपनी मूर्ति में पूर्णतः *विशेष सजीव* मुद्रा में साकार-रूप मुखमण्डल एवं शारीरिक विन्यास लिये विराजमान हो गये हैं !!

उत्तर भारत की इस विभूति के मंदिर एवं मूर्ति का दक्षिण भारत में प्रतिष्ठापन भी अपने में एक विशिष्ट लीला है बाबा जी की । क्षेत्र के एक जाने माने नागा योगी, **आलामादी के सन्त** ने *न* केवल स्वयँ *अपने* कर कमलों से मंदिर के गोपुरम में कलश-स्थापन एवं ध्वजारोहण किया वरन महाराज जी की मूर्ति का मद्रास के जाने माने विद्वान वेदपाठियों एवं कर्मकाण्डियों के द्वारा वेद-पाठ के मध्य स्वयँ अभिषेक भी किया, अलंकरण भी किया एवं पूजा-अर्चना-आरती कर प्रतिष्ठित भी किया !! क्षेत्र के हजारों

तमिल भक्तों ने अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से समारोह में सम्मिलित होकर बाबा जी का भण्डारा प्रसाद पाया ।

महाराज जी ने जहाँ भी अपने को प्रतिष्ठित करवाया, वहीं उनका मूल स्वरूप भी विद्यमान रहा — हनुमद विग्रह के रूप में । अस्तु, वीरापुरम में भी महाराज जी ने श्री अर्जुनदास जी को प्रेरित कर एक भव्य हनुमान मंदिर का भी प्रतिष्ठापन करवा दिया — गणेश जी के नये-बड़े मन्दिर के साथ साथ !!

महाराज

तृतीय भावाञ्जलि

कैंची तथा वृन्दावन में तत्त्व-पीठ मंदिरों का निर्माण

श्री कैंचीधाम में महाराज जी का मंदिर

कैंचीधाम में महाराज जी के मंदिर एवं उनकी मूर्ति के निर्माण तथा प्रतिष्ठापन की गाथायें भी महाराज जी की अन्य लीलाओं के सदृश ही अति भावात्मक तथा आध्यात्मिकता से परिपूर्ण एवं हृदयग्राही हैं ।

वर्ष १९७३-७४ में भक्तों ने निर्णय लिया था कि (पूर्व में) स्थापित अस्थिकलश के ऊपर एक *छोटा-सा* समाधि मंदिर भी बना दिया जाये। *तब* उसमें महाराज जी की मूर्ति के भी प्रतिष्ठापन का कोई प्रस्ताव न था ।

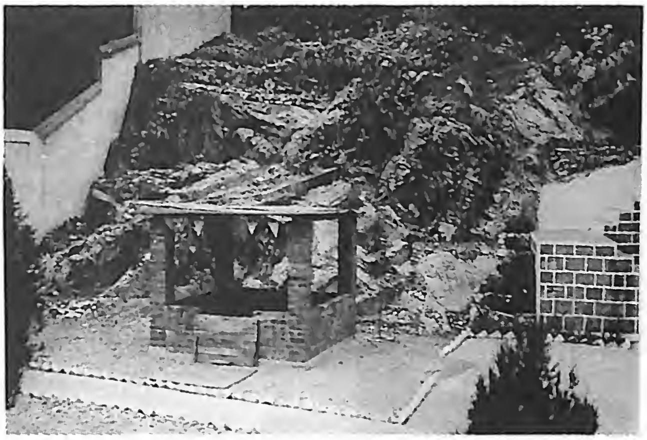

कैंची में प्रारम्भिक समाधि-मंदिर का रूप

परन्तु स्वयँ (ही) **निराकार** में प्रविष्ट बाबा जी महाराज को (शायद) यह स्वीकार न था कि उन्हें ***अब नहीं हैं*** माना जाये और उनकी ***शाश्वत साकारता*** को, चाहे वह जिस रूप-स्वरूप की हो, केवल **समाधि रूप** देकर ही नकार दिया जाये। अतएव, उन्हीं की प्रेरणा से बिना किसी योजनाबद्ध कार्यक्रम के, तथा मंदिर के रूप-स्वरूप के लिये बिना किसी नक्शे (प्लान) के वर्ष १९७५ में श्री सिद्धी माँ की देख रेख में **समाधि कलश** के ऊपर बाबा जी महाराज का मंदिर बनना प्रारम्भ हो गया, और देखते देखते, बनते बनते मंदिर ने स्वयँ ही वर्तमान रूप-स्वरूप ले लिया !! देख रेख करने वालों में, व्यवस्था करने वालों में अथवा निर्माण में संलग्न राज-मिस्त्रियों में कोई भी तो आर्किटेक्ट न था कि जो इस मंदिर को *ऐसा* भव्य (वर्तमान) रूप-स्वरूप देता !! लगा कि महाराज जी स्वयँ ही इसके आर्किटेक्ट रहे।

एक माँ को स्वप्न में दिखा भी तो दिया था बाबा जी ने कि वे एक धोती और फटा-सा कुर्ता पहिने स्वयँ ही अपना मंदिर बना रहे हैं !!

और फिर श्री माँ सहित बाबा जी महाराज के अनन्य भक्तों की भी तो यही लालसा थी कि महाप्रभु का — उनके **आराध्य** का मंदिर भी *उनकी* ही विशालता एवं भव्यता का **प्रतिरूप** हो ।

मंदिर निर्माण हेतु महाराज जी ने धन-शक्ति की भी व्यवस्था करवाई और जन-शक्ति की भी । उन्हीं से प्रेरित हो स्वतः ही किसी भक्त ने द्रव्य अर्पण किया इस हेतु तो किसी ने मकराना-संगमरमर, किसी ने मूर्ति हेतु अपना आर्थिक सहयोग दिया तो किसी ने, (बाद में) प्रांगण को आच्छादित करने हेतु लाल पत्थर । वस्तुतः बाबा जी महाराज की **मनसा** ही *ऐसे* भक्तों के अन्तर में प्रतिबिम्बित हो उन्हें हर प्रकार के सहयोग हेतु प्रेरित करती रही ।

श्री माँ के प्रयासों से निर्मित श्री सद्गुरु देव का तत्त्व-पीठ मंदिर (कैंची)

भक्ति-प्रेम-श्रद्धा के प्रतीक *ऐसे भाव-मंदिर* के निर्माण हेतु मिस्त्री-कारीगर भी महाराज जी के प्रति समर्पित होने चाहिए थे—*केवल* जीविकोपार्जन हेतु पगार प्राप्त करने वाले नहीं । अस्तु, श्री माँ ने बाबा जी महाराज के समय से ही उनके मंदिरों-आश्रमों के निर्माण में वर्षों पूर्व से रत श्रीराम मिस्त्री एवं कारीगरों को इस हेतु वृन्दावन से बुला भेजा। और महाराज जी द्वारा प्रेरित हो ये लोग भी पहाड़ों के

उस (कैंची) गाँव की कठिन परिस्थितियों को झेलने इस सेवा हेतु पूर्णतः समर्पित हो आ गये ।

महाराज जी के वियोग की ज्वाला में झुलसती आश्रम की *भारतीय* एवं *विदेशी* माइयों के लिये तो इस मंदिर का निर्माण **डूबते के लिये जलपोत** बन गया । नदी पार सड़क के निर्माण हेतु आई ईंटों, बल्लियों, बालू, लकड़ियों, मकराना आदि विभिन्न वस्तुओं को ढोकर मंदिर के प्रांगण आश्रम-क्षेत्र तक लाना उनके लिये *नित्य की अर्चना* हो गई । महाराज जी के प्रति श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, निष्ठा आदि की भावनाओं की ऐसी प्रेमपूर्ण बयार चलती रही कि स्त्री-सुलभ कोमलता भी इन कठोर कार्यों के प्रति उन्हें हतोत्साह न कर पाई !!

निर्माण कार्य के प्रथम दिन ही मिस्त्री समेत कारीगरों को सुबह ही फूल मालायें पहिनाकर, उन्हें रोरी-अक्षत से अभिषिक्त कर तथा उनकी आरती कर उन्हें **विश्वकर्मा** का मान-सम्मान दे दिया गया। ये मिस्त्री-कारीगर भी सुबह ही नहा धोकर, शुद्ध वस्त्र धारण कर, हनुमान चालीसा का पाठ कर और महाराज जी का **जय जय कार** करके ही नित्य का कार्य प्रारम्भ करते थे। निर्माणकाल में भक्तों एवं माताओं द्वारा हनुमान चालीसा का पाठ और नामकीर्तन **'श्री राम जय राम जय जय राम'** चलता रहता था श्री माँ के निर्देशों के तहत। मातायें एक एक ईंट पर राम राम लिखती रहीं और कारीगरों को तसलों में गारा भी उठाकर दे देतीं । **'बाबा नीब करौली महाराज की जय'** के नारों से जब-तब वातावरण गूँज उठता। इन माइयों के बाबा जी के प्रति इतने उत्कृष्ट भावों से प्रभावित मिस्त्री और कारीगरों में भी *वही* भक्ति-भाव, निष्ठा, लगन एवं प्रेम जागृत हो गया और इन्हीं भावों से ओत प्रोत हो वे निर्माण कार्य में लगे रहे । बाबा जी महाराज की ही अपनी लीला थी यह सब, जिसके लिये माँ भक्तों एवं माइयों को प्रोत्साहित करती रहती थीं, स्वयँ भी उनमें सम्मिलित होकर। कोई अन्य मंदिर, यहाँ तक कि स्वयँ श्रीराम जी का मंदिर भी, *ऐसे* प्रेम, भक्ति, त्याग, निष्ठा, सेवा आदि की भावनाओं से परिपूर्ण कार्य-कलापों के साथ *स्वयँ भक्तों द्वारा निर्मित न हुआ होगा* । महाराज जी के विछोह में अधमरी-बुझी भारतीय एवं विदेशी माइयों के लिये तो यह मंदिर स्वयँ **महाराज** ही बनकर उभर आया — उनके लिये शेष जीवन की अवधि हेतु एक परम सात्विक आधार, संबल बनकर ।

एक अत्यन्त छोटे क्षेत्र में, जो एक ओर ऊँची पहाड़ी पर्वत श्रृंखला एवं चट्टानों से बँधा और बाकी तीन ओर एक छोटे प्रांगण, आश्रम के लिये प्रवेश मार्ग एवं आवासीय भवनों से घिरा हुआ है, इतना बड़ा और स्थान विशेष में विशाल लगने वाला यह मंदिर स्वयँ में बाबा जी महाराज का *अपना ही भव्य स्वरूप* बन बैठा — उन्हीं की तरह *औसत आकार* का होते हुए भी *विशालता* की अनुभूति देता हुआ !! मंदिर की गाथा जानकर तथा इसे देखकर यही भान होता है कि वास्तव में महाराज जी ने धाम के भक्तों की अपने प्रति निष्ठा, भक्ति, प्रेम के वशीभूत हो उन कारीगरों में *प्रविष्ट* होकर *स्वयँ* ही इस मंदिर को बना दिया — परम प्रेम का प्रतीक ।

महाराज

श्री सद्‌गुरु-मूर्ति का निर्माण

महासमाधि के कुछ वर्ष पूर्व बाबा जी महाराज श्री सिद्धी माँ एवं जीवन्ती माँ तथा कुछ अन्य भक्तों के साथ श्री नाथ द्वारा, श्री बाला जी आदि के दर्शनों को राजस्थान गये थे । वहाँ जयपुर में जीवन्ती माँ ने मूर्ति-बाजार देखने की इच्छा प्रगट की तो बाबा जी ने *रहस्यपूर्ण* तरीके से कह दिया, **"अभी नहीं, फिर *देखेगी* ।"** (*फिर देखना नहीं* !!) बात भी आई गई हो गई ।

परन्तु बाबा जी की अमोघ वाणी !! बाबा जी की मूर्ति हेतु मेरठ के एक उद्योगपति, श्री शारदा प्रसाद ने भेंट अर्पण करने को कहा था। पर वे कुछ काल बाद अपने इस वायदे को लगता है, भूल गये। परन्तु बाबा जी उन्हें कहाँ छोड़ते ? बद्रीनाथ यात्रा से लौटती उनकी गाड़ी मंदिर के सड़क वाले फाटक के *ठीक* आगे **ठप** हो गई !! तब कैंची धाम के मंदिरों को देखकर एकाएक उन्हें अपने वायदे का भी स्मरण हो आया !! मंदिर के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने उपस्थित सेवक त्रिलोक सिंह से जो *पहला* प्रश्न किया, वह था, **"क्या बाबा जी की मूर्ति बन चुकी ?"** नकारात्मक उत्तर पाकर उन्हें संतोष हुआ कि उनका संकल्प अब पूरा हो जायेगा ।

मूर्ति हेतु विनोद जी एवं रब्बू जी सेवानन्द बाबा के साथ जयपुर गये, पर मूर्तिकार के बारे में वे कोई निर्णय न ले सके। तभी सेवानन्द जी ने स्वप्न में बाबा जी को कहते सुना, **"अपनी मूर्ति मैं स्वयँ बनाऊँगा।"** और एक दो दिन के बाद मूर्तिकार कालीचरन ने आकर कहा कि, "मूर्ति

तो हमें ही बनानी है।" और अन्ततोगत्वा मूर्ति निर्माण का कार्य उन्होंने ही किया ।

और *इसी* मूर्ति के गढ़न के मध्य श्री माँ और जीवन्ती माँ को भी रब्बू जी के साथ २-३ बार जयपुर जाना पड़ा तथा *तब* माँ एवं जीवन्ती माँ ने *जी भरकर* जयपुर का मूर्ति-बाजार भी देखा !! बाबा जी महाराज का ***फिर देखेगी*** कैसे चरितार्थ न होता !!

मूर्ति का कैंचीधाम के लिये गमन

मूर्ति बन चुकी थी । परन्तु इसको जयपुर से कैंचीधाम पहुँचाने की समस्या ने विनोद जी एवं रब्बू जी को घेर लिया। महाराज जी के प्रति पूर्णतया समर्पित (तब कम उम्र के) इन दोनों युवकों के अन्तर में यही भाव आया कि मार्ग में महाराज जी को कहीं भी जमीन में न उतारना पड़े। पर कोई ऐसा वाहन न मिल पा रहा था जो सीधे कैंची जाये। तब *भावों के* **गाहक** बाबा महाराज ने उनकी इन उत्कृष्ट भावनाओं के अनुकूल ही विधान रच दिया !! और २३-१२-१९७५ तथा २५-१२-७५ के बीच ऐसे वाहनों को उपलब्ध करा दिया कि मूर्ति को नीचे उतारने की नौबत ही नहीं आ पाई !! पहले दिल्ली तक **एकटनर** में, फिर टनर से यू०पी० बॉर्डर तक दूसरी ट्रक में, और वहाँ से रामपुर तक सीधे एक ऐसी ट्रक जिसमें *केवल* एक बड़ी कड़ाही (बाबा जी के वृहद भण्डारे का प्रतीक) ले जाई जा रही थी, बाबा जी *सीधे सीधे* बैठते चले गये !! और रामपुर पहुँचते पहुँचते *इस* ट्रक ड्राइवर के मन-मानस को ऐसा जकड़ लिया बाबा महाराज ने कि वह मूर्ति लेकर सीधे हल्द्वानी पहुँच गया पहले (और बाद में ही कड़ाही उतारने रामपुर लौटा !!) हल्द्वानी में भी वह *तब तक* ठहरा ही रहा जब तक मूर्ति हेतु दूसरा ट्रक न मिल गया !!

और हल्द्वानी में एक नया खेल प्रारम्भ हो गया बाबा जी का। ट्रक की खोज करने पर भक्त जसपाल से पता चला कि वहाँ एक और भक्त, भूषण लाल ने एक नया ट्रक खरीदा है और उन्होंने संकल्प लिया हुआ है कि उस ट्रक की *पहली* यात्रा कैंचीधाम की सेवा में होगी। बस, फिर क्या था। उन्हें ढूँढकर लाया गया और रामपुर वाली ट्रक से बाबा जी सीधे भूषणलाल की नई ट्रक में विराज गये। तभी हल्द्वानी के अन्य भक्त भी समाचार मिलते ही वहीं एकत्र हो गये और मूर्ति के क्रेट एवं ट्रक को फूल

मालाओं से सुसज्जित कर दिया गया। ढेरों प्रसाद एवं फल चढ़ावे में अर्पित हो बँट गये — मिठाई व फलों का भण्डारा हो गया। **'बाबा नीम करौली महाराज की जय'** के नारे लगते रहे। कई जगह आरती-पूजन हुआ बाबा जी का और **'श्री राम जय राम जय जय राम'** के कीर्तन के साथ बाबा जी अपने साथ कई *अन्य* भक्तों को भी लेकर कैंचीधाम तक पहुँच गये। विनोद जी-रब्बू जी का संकल्प पूरा हो गया। (**'भाव वस्य भगवान ।'**) तब सड़क से मंदिर-क्षेत्र तक उस *भारी* मूर्ति को ले जाना भी समस्या ही थी— बीच में सीढ़ियाँ फिर पुल और पुनः सीढ़ियाँ !! बाबा जी, शायद, हँसते भी रहे इस नई समस्या से ग्रसित हुए भक्तों को देख। और फिर *दयावश इतने हल्के* हो गये कि भक्तों को *विशेष* आभास कराये बिना ही मूर्ति मंदिर क्षेत्र में ही पहुँची दिखाई दी !! और यही लीला क्रेट से मंदिर में अपने लिये बनाये गये आसन में बैठने के लिये भी कर दी महाप्रभु ने !!

महाराज

मूर्ति का प्रतिष्ठापन

वर्ष १६७६ की १५ जून भी आ गई — बाबा जी महाराज का मूर्तिरूप में प्रतिष्ठापन का महापर्व ।

यद्यपि कुछ रूढ़पंथियों एवं कर्मकाण्डियों ने यह दिन शास्त्रीय विधाओं के प्रतिकूल बताया, परन्तु बाबा जी महाराज को, जो स्वयँ ही रूढ़ता, दिन, वार, तिथि, शुभ-अशुभ, आदि सबके परे रहे सदा ही (और इन्हीं बेड़ियों-बन्धनों से अपने परिकरों को भी मुक्त करते रहे) भला इन सब विधाओं से कौन बाँध सकता था । उन्होंने तो *स्वयँ ही* १५ जून का दिन श्री धाम कैंची की स्थापना हेतु निश्चित किया था, और १५ जून (१६७३) को ही उन्होंने *बिना* किसी **लग्न** आदि के श्री विन्ध्यवासिनी देवी का भी प्रतिष्ठापन करवाया था । वर्ष १६७४ में भी १५ जून को ही भक्तों की *सर्वसम्मति* से ही श्री वैष्णवी देवी का भी प्रतिष्ठापन हुआ था, क्योंकि *यही* दिन (१५ जून) आश्रम के वार्षिकोत्सव एवं मालपुए के भण्डारों के लिये महाराज जी ने स्वयँ नियत कर दिया था । अस्तु, श्री माँ ने भी इस मूर्ति के प्रतिष्ठापन का दिन बाबा जी महाराज द्वारा निर्धारित किया हुआ कैंची के महापर्व का दिन — १५ जून, १६७६ ही निश्चित कर दिया ।

श्री सद्‌गुरु देव भगवान (कैंचीधाम में मूर्त्ति रूप में)

स्थापना के पूर्व भागवत सप्ताह एवं हवनादि से धाम में आध्यात्मिक वातावरण और भी विशुद्ध हो चला। महाराज जी में पूर्ण आस्था *रखने वाले* भक्तों से मंदिर का प्रांगण सज उठा उनके भावों के साथ। और तब घंटे-घड़ियालों-नगाड़ों के गम्भीर नाद एवं शंख -ध्वनि से सारी कैंची घाटी गूँज उठी। साथ साथ मंदिर के ऊपर मंगल-कलश की स्थापना एवं ध्वजारोहण हुआ। इस कार्य को बाबा महाराज ने अपने अमरीकन भक्त, रविदास (अब अलास्का में जज) को चुना, जिसने अन्य भक्तों की सहायता से यह महोत्सव सम्पन्न किया। हर्ष-ध्वनि, नाम-कीर्तन एवं बाबा जी के जयकारों से आकाश गूँजता रहा। हर्षोल्लास-आल्हाद पूर्ण वातावरण में नैसर्गिता अपनी चरम सीमा पर थी। माताओं, भक्तों एवं भण्डारा-प्रसाद पाने हेतु आई अपार भीड़ द्वारा मंदिर की तीनों दिशायें आच्छादित थीं। रह रह कर **'बाबा नीम करौली महाराज की जय'** के घोष से वातावरण विद्ध होता रहा।

और तब विभिन्न तीर्थों से लाये जल से, दूध से, घी से, शक्कर से, शहद से, सुगन्धित द्रव्यों से एवं गंगाजल के शुद्धोदक से महाराज जी का अभिषेक स्नान अलीगढ़ के प्रकाण्ड कर्मकाण्डी विद्वान, श्री भीष्मदत्त जी

तथा वृन्दावन के भागवत कथाकार श्री किशोरी रमणाचार्य द्वारा वेदोच्चारण के बीच पूरी पद्धति से बाबा जी की अनन्य भक्त, लीलामाई (अब स्वर्गीया) द्वारा सम्पन्न किया गया । वस्त्रालंकारों में धोती और कम्बल परिधान स्वरूप बाबा जी को अर्पित किये गये ! कुंकुम, केसरयुक्त चन्दन-रोरी, परिमल द्रव्य एवं तरह तरह के पुष्पों एवं मालाओं से अलंकरण किया गया। विविध प्रकार के फलों, मेवों एवं नाना प्रकार के भोग सेवा में अर्पित होते रहे भक्तों द्वारा । उपरान्त धूर्प, कर्पूर एवं घी की बत्तियों से बाबा महाराज की *कई कई* बार आरती उतारी गई । मुक्त भाव से द्रव्यादि, वस्त्रों एवं अन्नादि से भक्तों द्वारा ब्राह्मणों को, साधुओं को एवं याचकों को सन्तुष्ट किया गया । सारा विधान राम-राज्याभिषेक की छटा दे रहा था । वस्तुतः **भक्तों के राम आज बनवास की-सी अवधि के बाद पुनः धाम में विराज गये थे।** भाव-विभोर भक्तों ने अपने राम को नयनों से प्रेमाश्रुओं की मालायें गूँथकर उनके श्रीचरणों में अर्पित कीं ।

और इस प्रकार बाबा जी महाराज मूर्ति-रूप में श्री धाम कैंची में *साक्षात्* विराज-मान हो गये । श्री माँ का मनोरथ पूरा हुआ ।

बाबा जी महाराज ने सेवानन्द जी से कहा था **'अपनी मूर्ति मैं स्वयँ बनाऊँगा'** — यही हुआ — मूर्ति की *प्रारम्भिक अवस्था* धीरे धीरे पूर्णतया साकार रूप लेती चली गई। और आज वह भक्तों — चरणाश्रितों की उनके प्रति अवरिल प्रेम का प्रत्यावर्तन भी करती है और बाबा जी का इन भक्तों के प्रति अपनी परम प्रीति का प्रतिबिम्ब बन चुकी है। यहाँ तक कि पर्यटक दर्शनार्थी भी यह कहते सुने गये हैं कि **'यह तो मूर्ति नहीं है, लगता है, बाबा जी ही स-शरीर बैठे हैं ।'** मूर्ति की *साकारता* का इससे प्रबल प्रमाण क्या हो सकता है ।

आज बाबा जी महाराज के इस मंदिर एवं मूर्ति को समाहित किये कैंचीधाम का *ऐसा* अलौकिक प्रभाव हो चला है कि मंदिर-क्षेत्र में प्रवेश करते ही दैहिक, दैविक, भौतिक एवं अन्य ताप स्वतः तिरोहित हो जाते हैं — संसार भूलने लगता है — *उसी* भाँति *जैसा* स-शरीर बाबा जी महाराज के समक्ष पहुँचने पर हुआ करता था । ऐसी अनुभूति केवल भक्तों को ही नहीं होती — पर्यटक दर्शनार्थी भी यही तथ्य निवेदन कर जाते हैं — वापसी के वक्त !! और श्री माँ की निरन्तर चौकसी के फलस्वरूप सारा मंदिर-आश्रम क्षेत्र **स्वच्छता** का **प्रतीक** बना हुआ है । पर्यटक भी इस

स्वच्छता पर मुग्ध हो जाते हैं । सच ही तो कहा है — **'स्वच्छता में ही भगवान का भी निवास है।'**

और अब तो शुद्ध-सात्विक भावों से युक्त स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी को *इस* मूर्ति में महाराज जी के प्रत्यक्ष दर्शन भी हो रहे हैं — मूर्ति में बाबा जी मुस्कुराते भी दिखाई दिये गये हैं, पलकें झपकाते भी, *अपना कम्बल* ठीक करते हुए (ओढ़ते) भी, हाथ ऊपर उठाकर आशीर्वाद देते भी, और यहाँ तक कि कुछ बोलते हुए भी !! नदी पार सड़क पर चलते एक अनभिज्ञ व्यक्ति को तो अपने मंदिर से *बाहर* आकर इशारे से बुला भी चुके हैं जिसने मंदिर आकर बाबा जी से मिलने का जब आग्रह किया तो यह जानकर कि, बाबा जी तो अपना शरीर त्याग चुके हैं, आश्चर्य से विमूढ़ हो गया !! एक नहीं, अनेक भक्तों से तो स्वप्न में भी कह चुके हैं— **'मैं कहाँ गया हूँ !!'** ***साकार-निराकार में कोई अन्तर नहीं रह गया*** ।

महाराज

अपने **जाने** के कुछ काल पूर्व बाबा जी ने श्री माँ से **एकाएक** कहा, **"अम्मा, एक दिन यहाँ 'घी के दिये' जलेंगे।"** बाबा जी की इस बात में **छिपा** रहस्य समझ में आ पाना दुरूह था, कारण — कैंचीधाम में बिजली की रोशनी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी ही और महाराज जी ने भी स्वयँ ही (कुछ काल के लिये बिजली के गुल हो जाने की अवस्था से निबटने हेतु) दर्जन से ऊपर लालटेनें और गैस बत्तियों की एवं प्रचुर मात्रा में मिट्टी के तेल की व्यवस्था करवा रखी थी आश्रम में। पर किसको पता था कि **घी के दिये** जलने की लगन कब आयेगी और कि महाराज जी ने यह **शुभ-पर्व** अपने स्वयँ के मूर्तिरूप में विराजने के साथ निश्चित किया है।

वर्ष १९७६ — १५ जून का दिन। अत्यन्त हर्षोल्लास के मध्य महाराज जी मूर्ति-रूप में श्री धाम कैंची में विराज चुके थे। एकाएक दोपहर बाद पास के बिजली पूरक ट्रान्सफार्मर में जोर की आवाज हुई और वह क्षतिग्रस्त हो गया। आश्रम सन्ध्याकाल में रोशनी विहीन हो गया । लालटेनें और गैस बत्तियाँ जल गईं ।

पर बाबा महाराज को तो **घी के दिये** जलाने थे । उधर गोदाम में रखे श्री नन्दलाल जी की दूकान से लाये गये नेपाली घी के कुछ टिनों से घी रिस कर बाहर बह चला था जिसे एक माँ ने समेट कर एक पात्र में

जमा कर लिया था। तभी माँ को बाबा जी का कथन, **'घी के दिये जलेंगे'** याद आ गया । तत्काल ही उन्होंने बड़े बड़े दियों में वह घी भरवा कर उसमें रुई की मोटी-मोटी ज्योतियाँ जलवा दीं, और उन्हें राम कुटी, राधा कुटी, बाबा जी महाराज के मंदिर के चारों ओर तथा ऊपर भी, एवं आश्रम-मार्गों में (जहाँ जहाँ बाबा जी विचरण करते थे) और पाँचों मंदिरों में एवं प्रवेश मार्ग में रखवा दिये । सारा मंदिर क्षेत्र एवं आश्रम एक अपूर्व दिव्य ज्योति से जगमगा उठा !! बिजली की रोशनी की चमक **इस** जगमग के समक्ष फीकी ही थी । महाराज जी का **खेल** — दिया-भर घी भी अर्ध रात्रि से ऊपर भी पर्याप्त रहा !!

महाराज

श्री वृन्दावन आश्रम में महाप्रभु का मंदिर

श्री-धाम वृन्दावन परिक्रमा मार्ग में बाबा जी महाराज द्वारा श्री ठाकुर हनुमान मंदिर की स्थापना का प्रकरण पूर्व में दिया जा चुका है। और वृन्दावन आश्रम में *अपने लिये* मंदिर हेतु बाबा जी द्वारा स्थान-चयन का विवरण भी इसके पूर्व दिया जा चुका है। ट्रस्टियों द्वारा *उसी* पवित्र स्थल में, जहाँ महाराज जी के लीला-शरीर को पंचभूतों में विसर्जित किया गया था, अस्थिकलश का स्थापन कर उसके ऊपर समाधि रूप एक चबूतरा भी बना दिया गया था जहाँ नित्य प्रभात एवं सायंकाल में महाप्रभु की पूजा-अर्चना, आरती एवं परिक्रमा होने लगी। इस परम-पवित्र, परम-पूज्य वेदी पर भक्तगण एवं स्थानीय जनता मत्था टेकने एवं अपनी मनोकामना-पूर्ति हेतु प्रार्थना करने हर वर्ष हजारों की संख्या में आती रही।

कैंचीधाम की ही भाँति महाराज जी ने वृन्दावन ट्रस्ट मण्डल को भी अपने मंदिर के निर्माण एवं मूर्ति-स्थापन हेतु प्रेरित किया। यहाँ भी बाबा जी अपनी दिव्य लीलाएँ करते रहे और मंदिर निर्माण को एवं मूर्ति स्थापना को अलौकिकता प्रदान करते रहे। ट्रस्ट मण्डल द्वारा जब इस स्थल पर महाप्रभु का मंदिर स्थापित करने की योजना बनी, कार्यान्वित भी होने लगी, तो *लगा* जैसे महाप्रभु को मंदिर का आकार एवं इसका विन्यास रुच नहीं रहा था। अस्तु, कुछ काल तक कार्य भी रुका रहा। अब तक बनाई गई दीवारों आदि में भी जब-तब बदलाव किये गये और जब महाराज जी की रुचि के अनुरूप सब कुछ होने लगा तो मंदिर भी शीघ्र ही पूरा हो गया।

बाबा महाराज का तत्त्व-पीठ मंदिर (वृन्दावन)

कुछ वर्ष यह मंदिर यूँ ही *बिना* मूर्ति के ही रहा। परन्तु वर्ष १९८१ की बसन्त पंचमी के पावन पर्व में इस मंदिर में सरकार की मूर्ति की स्थापना हो गयी दादा मुखर्जी एवं सर्वदमन सिंह 'रघुवंशी' जी द्वारा। यहाँ मूर्ति को देखकर भी कैंचीधाम की मूर्ति की-सी प्रारम्भिक भावना आने लगी कि महाराज जी की मुखमुद्रा से इसका सामन्जस्य नहीं बैठता। पर **'अपनी मूर्ति स्वयँ गढ़ने वाले'** बाबा जी का *वही* चमत्कार यहाँ भी उसी प्रकार स्पष्ट होने लगा !! शीघ्र ही कुछ ही काल के अन्तराल में, *बिना* किसी भाँति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुए, मूर्ति के मुखमण्डल में बाबा जी की मुखमुद्रा स्वरूप लेने लगी और *अब* तो महाराज जी का ही *प्रतिरूप* हो चली है—प्रसन्न मुद्रायुक्त ।

वेदपाठियों के मन्त्रोच्चारण के मध्य विभिन्न तीर्थों के जल के १००८ घटकों से, दूध, दही, घी, मधु, शर्करा आदि से अभिषेक-स्नानोपरान्त महाराज जी को गंगाजल के शुद्धोदक से स्नान कराया गया, अंग-प्रोक्षण के बाद कुंकुम, रोरी, चन्दनादि से उन्हें अभिषिक्त किया गया। वस्त्राभूषणों में महाराज जी की अभिरुचि वाला परिधान — धोती एवं कम्बल उन्हें पहिनाया गया। तरह तरह के सुगन्धित पुष्पों एवं पुष्प मालाओं से उनका अभिनन्दन किया गया। अनेक प्रकार के फल एवं नाना प्रकार के भोग

अर्पित किये गये । आश्रम में उपस्थित अनेक भक्तों द्वारा बाबा जी महाराज के जयकारों से आश्रम का वातावरण पुनः पुनः विद्ध होता रहा ।

श्री सद्‌गुरु देव भगवान (वृन्दावनधाम में मूर्त्ति रूप में)

तदुपरान्त हजारों की संख्या में मथुरा, आगरा, अलीगढ़, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, बरेली, नैनीताल, हल्द्वानी, ऐटा, मैनपुरी, मेरठ, नीब करौरी आदि से आये भक्तों एवं वृन्दावन वासियों ने महाप्रभु का भोग-प्रसाद पाया । ब्राह्मणों को, साधुओं को, जोगियों को द्रव्य एवं वस्त्रादि से संतुष्ट किया गया ।

इस महोत्सव के पूर्व रामायण जी का अखण्ड पाठ, विष्णुयाग, कीर्तन, भजन, हनुमान चालीसा-सुन्दरकाण्ड आदि के पाठों से आश्रम का सम्पूर्ण क्षेत्र एक नैसर्गिक छटा प्राप्त कर चुका था और समस्त भक्त मण्डली में इस आल्हादपूर्ण वातावरण का उल्लासपूर्ण प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता रहा ।

इस प्रकार उस वर्ष से बसन्तोत्सव महाप्रभु के मंदिर के प्रतिष्ठापन दिवस के रूप में बदल गया ।

महाराज

चतुर्थ भावाञ्जलि

मनसा-पूर्ति

(*निराकार में प्रवेश के बाद भी* !!)

अपना भौतिक शरीर तो अदृश्य कर ही दिया था बाबा जी महाराज ने **शरीरलीला** कर । हमने भी उसे **महाप्रयाण** की संज्ञा देकर श्री अनन्त चतुर्दशी के पावन पर्व में उनकी **पुण्यतिथि — निर्वाणदिवस** भी आयोजित करना प्रारम्भ कर दिया वृन्दावन आश्रम में । परन्तु महाराज जी का लीला-वैचित्र्य तो *केवल* शरीर-मात्र तक **सीमित** नहीं रहा कभी भी — वह तो शाश्वत है, नित्य है — भगवद्-स्वरूप बाबा जी महाराज की भाँति। शरीर धारण करते हुए भी तो वे एक साथ कई स्थानों में वही स्वरूप या अन्य रूप धारण कर लीलाएँ करते रहते थे (जैसा कि पूर्व में दी गई गाथाओं से स्पष्ट है ।) हमने उन्हें *जिस* रूप में देखा, *जिस* शरीर में देखा, वह तो उनके केवल *एक* **युग** की बात थी, उनके *केवल* स-शरीर लीला-काल की माया थी। वे तो इसके पूर्व भी थे और इस शरीर-लीला के बाद (आज) भी वैसे ही मूर्तमान हैं। स्वयँ भी तो इस तथ्य की पुष्टि हेतु किसी के लिये कह बैठते, **"ये तो जन्म-जन्मान्तर से हमारे साथ है ।"** और एक बार श्री आर० एन० सिन्हा, एस० पी० के बंगले के कम्पाउण्ड की सड़क पर बैठे सरकार के श्री-मुख से निकल पड़ा था, **"यहाँ हम 'घोड़ेशाह' से मिले थे"** (जबकि संत घोड़ेशाह ४५०-५०० वर्ष पूर्व हुआ करते थे !!) यद्यपि आज वे हमारे समक्ष स-शरीर *उस* स्वरूप में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हैं परन्तु उनकी कल्याणमयी लीलायें तो, परोक्ष में, आज भी यथावत चल रही हैं — अपितु, और भी वेग से — जिसकी अनुभूति भी नये-पुराने महाभागों को हो रही है — होती जा रही है। उनके श्री मुख से निकली एक एक साधारण-सी बात भी घटित होती जा रही है, उसमें कोई रुकावट नहीं, कोई व्यवधान नहीं — अपितु, उनके भौतिक तत्वों के कारण भक्तों को *जो* **सीमायें**-सी दृष्टिगोचर होती थीं, वे **लोप** हो चुकी हैं और बाबा जी महाराज के **मूल-तत्व** की व्यापकता **असीम** हो निराला ही उद्घोष करने लगी है । लोगों को बाबा जी महाराज के **अपने ही** स्वरूप में तथा उनके नये नये रूपों में दर्शन भी हो रहे हैं । स-शरीर लीलाओं का *वह* **तत्व**, *वह* रूप शाश्वत-अक्षुण्ण बना हुआ है ।

'मैं जिसका हाथ पकड़ लेता हूँ उसे कभी नहीं छोड़ता' — यही **विरद** था महाप्रभु का । परन्तु परम आश्चर्य की बात तो यह है कि स-शरीर तो हाथ पकड़ते ही थे, अब **निर्गुण-निराकार** में प्रवेश कर भी **नये नये** हाथ पकड़ते जा रहे हैं — अपनी **कमलिया** में लपेटते जा रहे हैं !! तब ऐसी प्रत्यक्ष लीलाओं के बाद भी कैसे विश्वास किया जाये कि **'बाबा जी *अब* नहीं रहे ?'** उनके **ईश्वरत्व-अमरत्व** को नकारा जा सकता है क्या कभी — जो कुछ हुआ और हो रहा है उसे जान कर भी ? उसकी अनुभूति करते हुए भी ?

श्री माँ से त्रिकालदर्शी बाबा जी कह गये थे — **"अम्मा, देखती रहना तू, और और ही (लोग) करेंगे (आश्रमों की सेवा)"** और कभी कभी भक्तों से भी कह देते, **"तुम चले जाओ, हमें क्या, हम हजार भगत *और* बनाय लेंगे ।"** महाप्रभु के समक्ष तो ऐसा होता ही था परन्तु अब शरीर लीला के बाद तो महाप्रभु के उक्त *दो* कथन वृहद् रूप से सार्थक होते जा रहे हैं !! एक ओर जहाँ निर्गुण स्वरूप बाबा जी की लीलाएँ विस्तार लेती जा रही हैं, वहीं नये नये सेवक-भक्तों की (जिन्होंने न तो बाबा जी महाराज के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे और न उनकी लीला-माधुरी का रस-पान ही) बाढ़-सी आने लगी है—तन-मन-धन तथा परम उत्साह से इन लीलाओं के पात्र बनकर — आश्रमों की सेवा हेतु — ऐसा *उत्साह* और *त्याग* जो महाराज जी की प्रत्यक्ष उपस्थिति में भी देखने को *कम* ही मिलता था !!

और आज वे लोग भी आश्रमों में शरणांगत भाव से बाबा जी के गुण-गान हेतु आने लगे हैं *जो* कभी अपनी अल्प-बुद्धि, अथवा बाबा जी की अटपटी लीलाओं से भ्रमित होने के कारण उनसे **परहेज** रखते रहे !! अधिकांश पुराने भक्त तो बाबा जी की इस व्यापक लीलाओं के समक्ष ***मूक-दर्शक*** मात्र रह गये हैं ।

बाबा जी महाराज के **तथाकथित** महाप्रयाण के बाद की कुछ रोचक, हृदय-ग्राही लीलाएँ द्वितीय एवं तृतीय भावाञ्जलियों में दी जा चुकी हैं कि कैसी अलौकिक लीलाओं के माध्यम से महाराज जी ने स्वयँ के चयनित स्थलों में *अपने* मंदिर बनवा लिये । यहाँ तथा पंचम भावाञ्जलि में ऐसी लीलाओं के विस्तार की कुछ और गाथायें लिपिबद्ध की जा रही हैं जो *ऐसी* अनगिनत विदित-अविदित लीला कथाओं के दृष्टान्त मात्र हैं ।

महाराज

महासमाधि के उपरान्त भी 'मनसा-पूर्ति !!'

बद्रीनाथधाम में आश्रम

वर्षों पूर्व महाराज जी ने अपने भक्तों की सुविधा हेतु बद्रीनाथधाम में एक आश्रम बनाने के लिये भूमि-क्रय के लिये एक बड़ी धन राशि प्रबन्धकों के पास जमा करवा दी थी । यह राशि मंदिर कमेटी के पास यूँ ही पड़ी रही । और **नर पर्वत** क्षेत्र में आबंटित भूमि अधिगृहीत न हो पाई थी, यद्यपि उसमें एक कुटीनुमा कमरा भी बन चुका था । परन्तु महाराज जी की **मंशा** की पूर्ति तो होनी ही थी । अस्तु, वर्ष १९८३-८४ में, श्री माँ की इच्छानुसार भक्तों, श्री गणेश प्रसाद झल्डियाल एवं श्री शंकरदत्त जोशी के प्रयासों के फलस्वरूप मंदिर कमेटी के साथ एक समझौते के अन्तर्गत **नर-पर्वत**-क्षेत्र में *उक्त आबंटित भूमि के बदले* **नारायण पर्वत** पर श्री बद्रीनाथ जी के मंदिर से केवल २००-२५० गज की दूरी पर आश्रम बनवा दिया गया — **'बाबा नीब करौरी आश्रम — बद्रीनाथ'** के नाम से !! *नारायण पर्वत* पर आश्रम हेतु भूमि प्राप्त करा देना अपने में स्वयँ ही एक अलौकिक लीला थी बाबा जी की !!

महाराज

हनुमान चट्टी (बद्रीनाथ मार्ग) में

भजनानन्दी हनुमान

वृन्दावन आश्रम में महाराज जी के सम्मुख बैठी श्री माँ की दृष्टि एकाएक दीवार में टंगी एक तस्वीर पर पड़ गई जिसमें हनुमान जी हाथों में करताल लिये राम-नाम कीर्तन कर रहे थे। तभी वे बोल उठीं — "महाराज ! आपने हर जगह हनुमान जी की विभिन्न मुद्राओं में — कहीं गदा और पर्वत लिये, कहीं अहिरावण को पैरों के नीचे दबाये, कहीं पर हृदय में सीताराम के दर्शन कराते, कहीं पर वीर-मुद्रा में — मूर्तियाँ स्थापित करवाई हैं, परन्तु *कीर्तन करते हनुमान जी* कहीं भी स्थापित नहीं करवाये ।" महाराज जी तत्काल बोल उठे, ***"ऐसी मूर्ति हनुमान चट्टी में* स्थापित करवा देंगे ।"** (हनुमान चट्टी में ही गँधमादन पर्वत को जाते वक्त भीम को हनुमान जी ने *द्वापर* युग में दर्शन दिये थे ।)

वर्षों पूर्व कहे बाबा जी के ये **मनसा-वाक्य** वर्ष १९९१ में २२ अक्टूबर (सोमवार) को साकार हो गये !! मद्रास के एक भक्त श्री अर्जुन दास आहूजा को (*जिन्होंने बाबा महाराज के पूर्व में दर्शन कभी नहीं किये थे*) श्री माँ ने महाराज जी के साथ हुई *उक्त* वार्ता सुनाई थी कभी। *तभी से* आहूजा जी ने मन ही मन बाबा जी की *इस वाणी* को साकार रूप देने का संकल्प ले लिया था और माँ से आज्ञा प्राप्त कर उक्त कार्य सम्पन्न कर दिया — हनुमान चट्टी में संकीर्तन-रत हनुमान जी की एक अत्यन्त रमणीक संगमरमर की मूर्ति प्रतिष्ठापित कर ।

अपनी वाणी तथा ***श्री माँ के प्रति*** इस भक्त की *ऐसी* निष्ठा देखकर महाराज जी ने भी अपना कौतुक कर दिया। अक्टूबर माह की उस भीषण ठंड में, जब कि आस पास की चोटियाँ हिम से ढक गई थीं, महाराज जी के निष्ठावान भक्तों का *उस* सुदूर क्षेत्र हनुमान चट्टी में जमघट-सा लग गया। तीन दिन के उस महोत्सव में मदहोश हुए बाल-वृद्ध, अतिवृद्ध, युवा-युवती द्वारा **'हनुमान जी, बाबा जी, बद्रीनाथ जी और श्री माँ'** के जयकारों से आकाश मण्डल गुँजायमान होता रहा। मनों की मात्रा में केसरिया हलुवा प्रसाद बँटता रहा आते-जाते सभी यात्रियों को। सैकड़ों की संख्या में आये साधु-सन्तों ने और जनता ने सुबह-शाम भण्डारा प्रसाद पाया । एक अत्यन्त भव्य समारोह पूर्ण हवन-यज्ञ के साथ पूर्णाहुति हुई। (बाबा जी महाराज के ऐसे सभी कार्य *सदा* ही तो वृहद् जन समुदाय को भण्डारा प्रसाद पवा कर ही सम्पन्न होते रहे — हो रहे हैं — होते रहेंगे।) अर्जुनदास जी ने ही *इन* समस्त शुभ कार्यों को बड़ी निष्ठा, कार्य कुशलता, भक्ति-भाव एवं तन-मन-धन अर्पित कर पूर्ण किया।

इस संदर्भ में एक अत्यन्त रोचक तथ्य यह है कि वर्षों पूर्व हनुमान चट्टी में निर्मित इस मंदिर में जो हनुमान मूर्ति प्रतिष्ठित थी वह स्वतः ही सिंहासन के एक किनारे पर स्थापित थी, मानो ***'अपने इस कीर्तन करते स्वरूप'*** के प्रतिष्ठापन हेतु हनुमान जी *पहले* से ही *केन्द्र* में उनके लिये जगह छोड़े हुए थे !! अतएव, उस प्राचीन मंदिर एवं उसमें स्थापित हनुमान जी को अपने इस नये स्वरूप को *ग्रहण* करने में कुछ अधिक इधर उधर करने की आवश्यकता न पड़ी !!

महाराज

पौड़ी में हनुमान मंदिर

छठे दशक में बाबा महाराज ने पौड़ी (गढ़वाल उ०प्र०) में भी एक हनुमान मंदिर की स्थापना हेतु **मनसा** कर ली थी। वहाँ के कुछ भक्तों को यह कार्यभार सौंपा गया था। प्रतिष्ठापन हेतु एक हनुमान विग्रह भी पौड़ी पहुँचवा दिया था बाबा जी ने। अर्थ-व्यवस्था भी हो चुकी थी तथा मंदिर हेतु भूमि का भी चयन हो चुका था। परन्तु कालान्तर में (और फिर महाराज जी द्वारा महासमाधि ले लिये जाने के बाद तो एकदम) उदासी आ गई भक्तों में इस प्रयास हेतु। यह मूर्ति पौड़ी में पहले तो एक भक्त के पूजाघर में अरसे तक बनी रही — वे ही इस विग्रह के प्रति अपनी निष्ठा अर्पित करते रहे नित्य। किन्तु कुछ वर्ष बाद मूर्ति को वहाँ से हटाकर पौड़ी के शिव मंदिर — किंग कालेश्वर में एक भवन की गुफा-नुमा गली में प्रस्थापित कर दिया गया और वहीं इसका आरती-पूजन होता रहा ।

परन्तु महाराज जी की **मनसा** इतने ही से कैसे संतुष्ट-शांत हो जाती ? श्री माँ को महाराज जी की उक्त **मंशा** का पूरा ज्ञान था । वीरापुरम, नीब करौरी, बद्रीनाथ, हनुमान चट्टी तथा ऋषीकेश की प्रारम्भिक उलझनों से निवृत होकर अपने अन्तर की इस (पौड़ी के कारण) *बैचेनी* के निवारण हेतु वे प्रयासरत हो उठीं । आठवें दशक में गढ़वाल के दो समृद्ध भक्तों — सर्वश्री गणेश प्रसाद झल्डियाल एवं शिव प्रसाद घिल्डियाल जी से जब श्री माँ ने चर्चा की तो झल्डियाल जी ने पौड़ी-स्थित अपनी एक रम्य भूमि तथा उसमें बने पुराने भवन को ही हनुमान-मंदिर के निर्माण हेतु सहर्ष अर्पित कर दिया, एवं श्री घिल्डियाल ने मंदिर के निर्माण तथा प्रतिष्ठापन के दायित्व को संभाल लिया । अन्य भक्तों का भी समुचित योगदान इस महोत्सव के लिये मुक्त भाव से प्राप्त हो गया । (यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि *न तो झल्डियाल जी ने और न श्री घिल्डियाल ने ही बाबा महाराज के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे* — झल्डियाल जी ने तो श्री माँ के दर्शन बद्रीनाथ में अपने वहाँ के सेवाकाल में किये थे और घिल्डियाल जी के भी श्री माँ-महाराज के प्रति समर्पित होने के माध्यम बने। घिल्डियाल जी को तो बाबा महाराज की अनुपम कृपा प्राप्त हो गई — उनके गले और जिह्वा का कैन्सर डाक्टरों के असफल प्रयास के उपरान्त भी श्री माँ ने उन्हें *केवल* महाराज जी का चरणोदक पान करा कर ही ठीक कर दिया !!)

मंदिर हेतु अर्पित भूमि पौड़ी से सड़क द्वारा ३-४ कि०मी० ऊपर की ओर लगभग ७००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है — अत्यन्त रमणीक, जंगलों से आच्छादित, सामने हिम पर्वतों का दर्शन कराती. और पार्श्व में एक नवीन मोटर मार्ग की सुविधा लिये । प्रतिष्ठापन एवं मंदिर निर्माण के एक वर्ष पूर्व श्री माँ ने भी इस निर्जन स्थान में बने झल्डियाल जी के अत्यन्त पुराने जीर्ण-शीर्ण भवन में १५ जून के महोत्सव के बाद अपने वार्षिक *एकान्तवास* की अवधि व्यतीत की थी ।

तन-मन-धन से दोनों भक्त मंदिर निर्माण तथा उसे यथाशीघ्र पूर्ण करने में जूझ गये । मंदिर के साथ साथ माँ-महाराज के लिये कुटी तथा भक्तों के ठहरने हेतु आवासीय कमरों का निर्माण भी होता रहा ।

निर्माण के मध्य (बिहार प्रदेश के) मुसलमान ठेकेदार, साबिर को एक विचित्र अनुभूति हुई । उसने कई दिन लगातार स्वप्न में देखा कि एक अधबूढ़े साधू-सदृश महोदय कुछ बढ़ी-सी दाढ़ी लिये तथा *कम्बल लपेटे* क्षेत्र की चारों ओर से परिक्रमा कर माँ-महाराज हेतु बनती कुटी में जाकर अदृश्य हो जाते हैं । तीन चार दिन यह स्वप्न देखने के बाद उसके मन में भाव आया कि अब सर्वप्रथम *केवल* मंदिर तथा माँ-महाराज की कुटी का निर्माण पूरा किया जायेगा ।

बाद में *जब* प्रतिष्ठापन के पूर्व उसने झल्डियाल जी द्वारा लाया गया बाबा महाराज का *चित्र देखा* तो वह चौंक गया कि *यही* महापुरुष तो उसके सपनों में आते थे परिक्रमा करने !! तब उसने अपना स्वप्न सबको सुनाया । उसके बाद तो वह और भी लगन के साथ कार्य पूर्ण करने में जुट गया ।

और जब मंदिर तैयार हो गया तो वर्ष १९६२ की जुलाई माह की ४ तारीख को प्रतिष्ठापन समारोह करना निश्चित हुआ । दिल्ली, लखनऊ, शाहजहाँपुर, कानपुर, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, नैनीताल, देहरादून, ऋषीकेश, भद्री, इलाहाबाद, मद्रास आदि शहरों, जिलों और प्रान्तों के सैकड़ों भक्त महोत्सव हेतु इस सुदूर उत्तर के हिमालय क्षेत्र में एकत्र हो गये — लगता था बाबा जी ने इन्हें धकेल-धकेल कर भेजा है। तीन दिन तक भजन- कीर्तन-भण्डारे होते रहे । बाबा जी महाराज की अलौकिक लीलाएँ चलती रहीं ।

तब प्रतिष्ठापन की पावन तिथि को मंदिर क्षेत्र से २ किमी० दूर किंग कालेश्वर की उस गुफा में भक्त लोग पहुँचे हनुमान जी को लिवाने को । पहले उनकी वहीं पूजा-आरती हुई । उनसे *विलम्ब के लिये क्षमा प्रार्थना की गई तथा चलने के लिये प्रेमाग्रह किया गया* । भोग-प्रसाद अर्पण हुआ और स्थानीय जनता में बाँटा गया । जब हनुमान जी प्रसन्न हो गये तो उन्हें एक भव्य रूप से सजाई गई डोली में विराजमान कर जयकारे के साथ भक्तगण अपने कन्धों में बिठाकर किंग कालेश्वर शिखर से नीचे ले चले सड़क की ओर । तब महानतम आश्चर्य से सबने पाया कि ऊपर शिखर से ऊबड़-खाबड़ पगडंडी मार्ग से *नीचे लाने तक* तथा कच्ची सड़क पार करने तक तो हनुमान जी *हल्के-फुल्के* बने रहे परन्तु पक्की सड़क आते ही *इतने भारी* हो गये कि ६-८ कन्धों का सहारा भी उनका वजन नहीं सहन कर पा रहा था !! और अभी १ किमी० *ऊपर चढ़ती* सड़क में ले जाना बाकी था । अन्ततोगत्वा हनुमान जी को *मय डोली* के एक जीप में सवार कराना पड़ा !! कैसी विचित्र लीला थी यह ? *तब* शाहजहाँपुर की कुंवरानी, श्रीमती प्रमिला ज्योति प्रसाद ने बताया कि उनकी प्रबल इच्छा हो चली थी कि हनुमान जी *उनकी जीप में बैठकर* चलें !! उनकी इच्छा हनुमान जी ने *पूरी* कर दी *इस प्रकार* !!

पूरे मार्ग में बाबा जी और हनुमान जी के जैकारों के साथ-साथ **'श्री राम जय राम जय जय राम'** का संकीर्तन एवं हनुमान चालीसा का पाठ चलता रहा । मार्ग में चलते राही भी इस जुलूस में सम्मिलित हो गये। सभी उत्साह एवं हर्षोल्लास से परिपूर्ण थे जिसका वेग *इतना* बढ़ चला कि मंदिर तक पहुँचते पहुँचते युवक-युवतियाँ तो एक ओर, *बड़े, बूढ़े वयोवृद्ध* भक्त एवं *मातायें* भी उन्मुक्त भाव से नृत्य करने लगीं !!

और तब बड़े विधि-विधान से हनुमान जी को संगमरमर से आच्छादित उस भव्य मंदिर में संगमरमर के सिंहासन पर आसीन कर प्रतिष्ठित कर दिया गया । हवन-यज्ञ के उपरान्त वृहद्-रूप से भण्डारा हुआ जिसमें *बिना* किसी प्रचार एवं घोषणा तथा निमन्त्रण के पौड़ी शहर एवं आस-पास के गाँवों के हजारों लोगों ने हनुमान जी का प्रसाद पाया । सन्ध्याकाल से हनुमान जी के समक्ष रामचरित मानस का अखण्ड पाठ प्रारम्भ हुआ और दूसरे दिन पूर्णाहुति हुई ।

बाबा जी की **मनसा** कब, कैसे और किसके द्वारा चरितार्थ होगी, कहा नहीं जा सकता ।

महाराज

वीरभद्र (ऋषीकेश)

हनुमान मंदिर

अपनी शरीर लीला के कुछ वर्ष पूर्व बाबा महाराज ने जंगलात विभाग से वीरभद्र (ऋषीकेश-हरिद्वार मार्ग में) एक एकड़ भूमि लीज में प्राप्त कर उसे अपने नाम से अधिगृहीत कर ली थी (जिसके विकास के लिये तथा उसमें हनुमान जी के लिये एक बड़ा मंदिर-आश्रम आदि के निर्माण के लिये अपने स्थान पर श्री केहर सिंह जी को मनोनीत कर दिया था ।) हरिद्वार-ऋषीकेश रोड पर ऋषीकेश से ६ किमी० दूर स्थित इस भूमि पर एक छोटी-सी हनुमान मूर्ति स्थापित कर तथा फूस की एक झोपड़ीनुमा कच्ची चौकीदार चौकी बनवा कर, साथ में क्षेत्र की चहार दीवारी और मंदिर के निर्माण हेतु डेढ़ लाख ईंटें जमा करवा बाबा जी ने इसे वहीं पास के एक स्थानीय व्यक्ति के पास *बतौर अमानत* सौंप रखा था। यह भूमि, उसके बाद, *बिना* किसी विकास के उस व्यक्ति के पास यूँ ही पड़ी रही । वर्ष १९७३ में बाबा महाराज ने महासमाधि भी ले ली । डेढ़ लाख ईंटों का अस्तित्व भी काल के गर्भ में समा चुका था ।

परन्तु श्री माँ से तो इस संदर्भ में महाराज जी सभी कुछ बता चुके थे, और *तब* वीरभद्र में हनुमान मंदिर के निर्माण का उनका **मनसा-संकल्प** कैसे अकारथ चला जाता ? श्री माँ यद्यपि इस ओर भी सचेत थीं परन्तु अन्य क्षेत्रों-मंदिरों-आश्रमों के विकास-निर्माण एवं व्यवस्था में व्यस्त रहने के कारण वीरभद्र हनुमान मंदिर के निर्माण की ओर *पूरा* ध्यान न दे सकीं ।

तब श्री माँ ने जून, १९८३ में कैंची में महाराज जी के तत्वपीठ के प्रतिष्ठापन दिवस के अवसर पर उपस्थित श्री पी० के० चोपड़ा (तब देहरादून में जल संस्थान के महाप्रबन्धक) को इस ओर प्रयास हेतु प्रेरित किया । (आगे दिये गये विवरण में (१) वीरभद्र में भूमि के अधिग्रहण, (२) उसमें हनुमान जी के छोटे मंदिर के निर्माण एवं प्रतिष्ठापन, (३) क्षेत्र के विकास, (४) उसमें हनुमान जी के विशाल मंदिर के निर्माण, (५) उसी

में शिव-मंदिर के निर्माण, एवं (६) २७ फुट ऊँचे विघ्न-विनाशक हनुमान जी के निर्माण एवं प्रतिष्ठापन में बाबा जी महाराज की *मंशा-शक्ति* का **खेल** स्पष्ट हो जायेगा ।)

महाराज

श्री माँ से प्रेरित किये जाने पर चोपड़ा जी जब देहरादून से चलकर उक्त भूमि की *वास्तविक* स्थिति (जिसका *तब* किसी को ज्ञान न था) जानने के लिये चले तो सीधी सड़क से न जाकर उनकी कार बाइ-पास से निकली जहाँ एक स्थान पर उन्होंने पाया कि मार्ग *उस* स्थान पर दो ओर को फूट गया है। चोपड़ा जी ने निरर्थक भटकने की अपेक्षा यही उचित समझा कि पास की दूकानों से बाबा जी की उस भूमि का अता-पता मालूम कर लें। पर तब किसको मालूम था उस भूमि का इतिहास और कौन बता पाता। तभी वहाँ पर एक अध-बूढ़ा ग्रामीण *कम्बल ओढ़े*, बीड़ी पीते एकाएक प्रगट हो गया !! और चोपड़ा जी के *बिना* पूछे ही उसने क्षेत्र का पता और उस ओर का रास्ता भी बता दिया। अपनी सुविधा देखते हुए चोपड़ा जी ने उस ग्रामीण को आग्रह कर कार में बिठा लिया ।

और कार के क्षेत्र तक पहुँचने तक उस ग्रामीण ने *एकदम शुद्ध उच्चारण के साथ स्पष्ट अंग्रेजी में* उस क्षेत्र के अते-पते का, बाबा जी द्वारा उस भूमि के अधिग्रहण किये जाने का, बाबा जी द्वारा मंदिर तथा चहारदीवारी निर्माण हेतु डेढ़ लाख ईंटें जमा किये जाने का, झोपड़ी एवं लघु-हनुमान स्थापन आदि का पूरा पूरा विवरण एवं वृतान्त कह डाला !! साथ में *उस* व्यक्ति का नाम भी जिसके पास वह जमीन अमानत बतौर रखी गई थी तथा तत्कालीन जंगलात के अफसरान एवं एम० एल० ए० जो इस अधिग्रहण से जुड़े थे, उनके नाम भी सिलसिलेवार बता दिये। उस निपट देहाती लगने वाले व्यक्ति से शुद्ध अंग्रेजी में बताया गया यह पूरा इतिहास यद्यपि चोपड़ा जी सुनते रहे पर **तथ्य** न समझ पाये कि यह सब उन्हें **कौन** बता रहा है । (समझने भी कैसे देते महाराज जी ?)

परन्तु जब क्षेत्र आ गया तो वह ग्रामीण यह कहता कार से उतर गया कि जो आदमी भीतर बैठा है उससे वह मिलना नहीं चाहता। और इसी बीच श्रीमती एवं श्री चोपड़ा का ध्यान कुछ क्षणों के लिये जब क्षेत्र की ओर गया तो वह व्यक्ति ऐसा ला-पता हो गया (जैसे एकाएक प्रगट भी

हो गया था) कि चारों ओर देखने पर भी वह दृष्टिगोचर न हो पाया—उस सीधी हरिद्वार-ऋषीकेश रोड पर भी नहीं !! तभी दोनों का माथा ठनका — **'कहीं बाबा जी तो नहीं थे स्वयँ ?'** पर तब तक तो देर हो चुकी थी ।

महाराज

इसके उपरान्त चोपड़ा जी ने अकथ परिश्रम से (एवं माँ-महाराज द्वारा उनको इस विषय में दिये गये आन्तरिक मार्गदर्शनों के फलस्वरूप) महाराज जी के समय के कागजातों को प्राप्त कर क्षेत्र का कानूनी रूप से पुनः अधिग्रहण करवा लिया और इन कागजातों को वर्ष १६८४ में बीरापुरम (मद्रास) में श्री माँ को सौंप दिया । इसी के बाद ही माँ की प्रेरणा से तथा बाबा जी महाराज द्वारा विभिन्न रूपों में आते विकट विरोध एवं कठिन परिस्थितियों को सुगम कर दिये जाने के फलस्वरूप चोपड़ा जी ने क्षेत्र की घेराबन्दी कर दी, और फिर श्री गणेश प्रसाद झल्डियाल तथा श्री शंकर दत्त जोशी एवं अन्य भक्तों — सर्व श्री सुभाष अरोरा, राधे श्याम जोशी आदि के सहयोग से हनुमान जी के लिये एक नया (पर अभी) छोटा मंदिर निर्मित करवा कर १० जुलाई १६८४ को उसमें विधि-विधान के साथ हनुमान जी को *नये* रूप में प्रतिष्ठित करवा दिया । (श्री केहर सिंह जी ने तब ट्रस्ट गठित करवाकर, उसका रजिस्ट्रेशन करवाकर मंदिर की व्यवस्था उसे सौंप दी ।)

महाराज

इस प्रतिष्ठापन के मध्य एक अभूतपूर्व संरचना भी बाबा महाराज ने *अपने इन* हनुमान जी के पूर्णरूपेण *जागृत विग्रह* होने की पुष्टि हेतु कर दी । हनुमान विग्रह के सामने चार टोकरे भर कर बूँदी प्रसाद रखा था, तथा दो ऐसे ही टोकरे (प्रसाद के) पार्श्व में भी रखे थे जिन्हें कागज एवं पत्तलों से ढक दिया गया था । विग्रह के सामने भक्त-समाज बैठा था प्रतिष्ठापन समारोह देखता ।

प्रतिष्ठापन समारोह चल ही रहा था कि तभी एक अत्यन्त भीमकाय लाल मुँह बन्दर पीछे की दीवार में प्रगट हो गया तथा देखते देखते उसने अपना शरीर इतना *सिकोड़* लिया कि दीवार में तीन तरंगों के पास पास तने हुए काँटेदार तारों की लगी बाड़ में से दो तरंगों के बीच से पार होता हुआ वह *धम्म* से मंदिर के परिक्रमा क्षेत्र में कूद गया !! और आनन-फानन

उन बूँदी वाले टोकरों में से एक टोकरे का कागज-पत्तल हटाकर उसने मुट्ठी भर बूँदी उठाई और मंदिर के पीछे चलता चौकीदार चौकी में समा गया । सब केवल हक्का बक्का हो यह तमाशा देखते रह गये पर उसे रोकने की हिम्मत किसी में न आई ।

क्षणों बाद सबके मन में आया कि हो न हो ये *हनुमान जी ही थे* जो स्वयँ प्रसाद ग्रहण कर गये — अपने नये मंदिर की स्थापना की *पुष्टि* करते उसका *सत्यापन* कर गये !! तब कुछ लोग केले, सेव, आदि फल लेकर झोपड़ी के दरवाजे पर पहुँच फलों को भीतर फेंकने लगे उस बन्दर को आकर्षित करने । परन्तु *जब* काफी देर हो गई और बन्दर महाशय नहीं दिखे तो डरते डरते भीतर झाँककर देखा गया — *वहाँ कोई बन्दर न था* !! झोपड़ी के पीछे की ओर केवल चहारदीवारी थी — न कोई खिड़की थी, न कोई अन्य दरवाजा और न कोई रोशनदान !! तब कैसे और कहाँ गया वह भीमकाय **महाबीर** ?

अब उसी स्थान पर श्री माँ-महाराज जी की कुटी बन गई है ।

महाराज

कालान्तर में इस छोटे मंदिर के स्थान पर एक बहुत बड़े हनुमान मंदिर का निर्माण प्रारम्भ हो गया जो वर्ष १९६२ — हनुमान जयन्ती के अवसर तक तैयार हो गया और उसमें निर्मित संगमरमर के सिंहासन पर हनुमान जी धूमधाम के साथ बिराज गये । और वर्ष १९६३ तथा १९६४ की हनुमान जयन्ती तक तो मंदिर का रहा सहा निर्माण कार्य भी पूर्ण कर दिया गया — ५०-५२ फीट ऊँचा गोपुरम लिये (हनुमान जी के सामने एक विशाल हॉल-नुमा प्रांगण के साथ, जिसके प्रवेशद्वार के ऊपर श्री विघ्नविनाशन गणेश जी की एक रमणीक मूर्ति प्रतिष्ठित है) एवं विविध प्रकार की नक्कासी से सुशोभित यह मंदिर हरिद्वार-ऋषीकेश क्षेत्र में एक अद्वितीय विभूति हो गया है । श्री माँ से इस मंदिर की चर्चा करते महाराज जी ने भी तो यही मंशा की थी इस मंदिर के लिये ।

साथ में भक्तों की सुविधा हेतु कुछ आवासीय व्यवस्था एवं माँ-महाराज जी की कुटी भी निर्मित हो गई । अब तक तो श्री माँ तथा भक्तगण टेन्टों में ही प्रवास करते आये थे ।

महाराज

श्री वीरभद्र हनुमान मंदिर

ऋषीकेश में वीरभद्र हनुमान जी की बातें करते वर्षों पूर्व एक बार माँ से बाबा जी ने यह भी कहा था कि, **"वहाँ २७ फीट ऊँचे हनुमान जी की स्थापना होगी जिसके दर्शन तीन ओर से दूर से ही हो जायेंगे, और हजारों लोग दर्शन हेतु मंदिर में आयेंगे ।"** (*तब* तो यही धारणा बनी थी कि यह सब कुछ बाबा जी महाराज के समक्ष ही हो जायेगा ।)

महाराज जी की इस वाणी को, प्रसंग उठने पर, माँ ने भक्तों के मध्य सुनाई थी। तब मद्रास शहर के व्यापारी, (श्री माँ-महाराज के भक्त) श्री अर्जुनदास खेराजमल आहूजा ने मन बना लिया कि "बाबा महाराज की यह सेवा भी मैं ही करूँगा।" और इस हेतु उन्होंने महराज जी और श्री माँ से सामर्थ्य के लिये प्रार्थना की । समय आने पर माँ से सम्मति पाकर वे मद्रास से ऋषीकेश आकर कुछ काल के लिये वहीं *जम* गये। और एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने प्रचुर मात्रा में तन-मन-धन अर्पण कर वर्ष १९६३ की हनुमान जयन्ती के पावन पर्व में ८ फुट ऊँचे सिंहासन पर २७ फुट ऊँचे विशाल-रूप हनुमान विग्रह को ५ फुट ऊँचा छत्र पहिना कर खड़ा करवा दिया !!

हनुमान जी की यह विशाल मूर्ति उड़ीसा के प्रसिद्ध मूर्तिकार श्री परेड़ा द्वारा निर्मित की गई है जिसमें हनुमान जी एक हाथ में (चरणों के पास भूमि से लगी) गदा थामें हैं तथा दाहिने हाथ से दर्शनार्थियों को आशीर्वाद देने की मुद्रा अपनाये हैं । मूर्ति इतनी सुन्दर-सजीव और भव्य है कि हनुमद-श्री विग्रह के एक एक अंग की *पूर्ण* छवि दृष्टिगोचर होती है— मये नसों एवं विभिन्न अंगों की अनुपातिक उभार लिये । मुखमण्डल तो, मानो, जन जन के प्रति अपार करुणा-दया-कृपा का अम्बार समाहित किये है अपने में (बाबा महाराज की ही तरह) — अपने नयनों से *इसी* करुणा-दया-कृपा की वर्षा करता ।

इन विशाल-रूप हनुमान जी का प्रतिष्ठापन पूरे समारोह के साथ अर्जुनदास जी ने ही सम्पन्न किया **महाविष्णु** के सहस्त्र नाम के महायज्ञ के साथ। इस अनुपम हनु-विग्रह को श्री जीवन्ती माँ ने **'विघ्न-विनाशक हनुमान'** की संज्ञा देकर इनका नाम कर्म कर दिया—क्योंकि इस हनुमान विग्रह की स्थापना के प्रारम्भ होने के *बाद से ही* आश्रम में छाये अन्य सारे विघ्न—दैहिक, दैविक, भौतिक — सभी शान्त होते चले गये !!

महाराज

विशाल-रूप हनुमान मूर्ति एवं हनुमान मंदिर के मध्य क्षेत्र में वैद्यनाथ कम्पनी की श्रीमती गीता देवी ने भी शंकर भगवान का एक अत्यन्त भव्य मंदिर निर्मित करवा दिया। (एकादशरुद्रावतार हनुमान जी अपने पूर्ण रूप शंकर जी के *बिना* कैसे रहते !!) इस मंदिर में शिवलिंग का प्रतिष्ठापन भी हनुमान जयन्ती (१६६३) के पुनीत पर्व में **अलौकिक यथार्थ** के लेखक श्री रवि प्रकाश पाण्डे – **राजदा** द्वारा पूरे विधि विधान के साथ सम्पन्न किया गया। यह मंदिर भी संगमरमर से आच्छादित है ।

आज बाबा जी महाराज के बीरभद्र का यह क्षेत्र एक ओर इन दो मंदिरों एवं विघ्नविनाशक विशाल-रूप हनुमान जी से विभूषित है, और दूसरी ओर श्री माँ-महाराज की कुटी, आवासीय कुटीनुमा भवनों एवं एक बड़े भण्डारगृह से आच्छादित हो गया है। बाबा जी की **मंशा** से वर्ष १६६२-६३ तथा ६४ के हनुमान जयन्ती के पावन पर्व में प्रति वर्ष १८-२० हजार की संख्या में साधु महात्माओं, स्कूली बच्चों, भक्तों, सेवकों एवं दर्शनार्थियों ने बाबा महाराज, हनुमान जी एवं शंकर जी का भण्डारा-प्रसाद पाया । अब शीघ्र ही स्वयँ बाबा जी महाराज भी क्षेत्र में विराजने आ पहुँचेंगे । (योजना कार्यान्वयन के अंतिम चरण में है ।)

महाराज

बाबा जी ने कहा था — **'हजारों लोग दर्शन को आयेंगे ।'** यही हो रहा है । प्रारम्भ में तो भक्तगण एवं आसपास की ही जनता भण्डारा प्रसाद हेतु अथवा दर्शनों को आती रही । परन्तु अब तो सभी यात्री तथा यात्रा-गाड़ियाँ भी दूर से ही **विशाल हनुमान एवं हनुमान मंदिर** का ऊँचा गोपुरम देखकर स्वतः वहाँ दर्शन हेतु रुकने लगे हैं । और अब तो होड़-सी मच गयी है भक्तों में भी हनुमान जी को **अर्पण** करने हेतु ।

महाराज

क्षेत्र के अधिग्रहण से लेकर विशाल-रूप विघ्न विनाशक हनुमान जी एवं शंकर जी के प्रतिष्ठापन तक तथा हनुमान मंदिर के निर्माण में बाबा महाराज के सभी भक्तों का, श्री माँ-महाराज जी के प्रति अपनी निष्ठा के प्रतीक स्वरूप, तन-मन-धन का अपूर्व सहयोग रहा — विशेषकर सर्व श्री पी० के० चोपड़ा, गणेश प्रसाद झल्डियाल, विनोद जोशी, शंकरदत्त जोशी,

अर्जुनदास आहूजा, मुरादाबाद के उद्योगपति ओम प्रकाश बडेरा, श्रीमती गीता देवी एवं श्री विश्वनाथ शर्मा तथा आगरा की श्रीमती रमा गुप्ता (जीजी माँ) एवं डा० (कु०) जया प्रसाद का तो अनुकरणीय योगदान रहा । साथ ही सर्वश्री सुभाष अरोरा एवं राधेश्याम जोशी जी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हर कदम पर । महाराज जी की ऐसी कृपा रही इन सब पर कि इन्हें *इस हेतु* प्रेरणा भी मिली और सामर्थ्य भी । (**और और ही करेंगे** कहा था बाबा जी ने !!)

महाराज

उक्त चार स्थानों में महासमाधि के उपरान्त भी बाबा महाराज की (श्री माँ के माध्यम से) **मंशा-पूर्ति** के बीच हुई लीलाओं से ही उनकी *शाश्वत साकारता* एवं *ईश्वरत्व* लिए ***अमरत्व*** का पूर्णरूपेण दिग्दर्शन हो जाता है, साथ ही श्री माँ की ***समान-रूप*** **शक्ति-सामर्थ्य** का भी । आगे पंचम भावाञ्जलि में दी गई कुछेक गाथायें तो केवल इस **तथ्य** एवं **सत्य** के केवल दृष्टान्त मात्र हैं ।

महाराज

नित्य लीला-रत बाबा जी (स-शरीर निर्विकल्प अवस्था)

पंचम भावाञ्जलि

निराकार-रूप बाबा जी के कुछ और लीला कौतुक

महासमाधि के उपरान्त बाबा जी महाराज की परोक्ष लीलायें केवल अपने मंदिर बनवाने या अपनी **मनसा-पूर्ति** तक ही *न* तो *सीमित* रहीं और **न हैं** । इन लीलाओं के साथ साथ अपने भक्तों एवं आश्रितों के साथ भी वे *प्रारम्भ से ही उसी* प्रकार की दया-कृपा के लीला-कौतुक करते रहे/कर रहे हैं जैसा स-शरीर करते रहे थे — *अब* परोक्ष रूप से होती हैं ये लीलाएँ । ऐसी कुछ लीलाओं का वर्णन, प्रसंगवश, पूर्व में भी किया जा चुका है । यहाँ भी इन लीलाओं के कुछ और प्रसंग दिये जा रहे हैं ।

महाराज

श्रीमती रेवती साह (श्री सिद्धी माँ की माता जी) को महाराज जी के समाधि ले लिये जाने का दुःसह समाचार कुछ विलम्ब से मिला था। अन्तर में विरह की पीड़ा समेटे वे अपनी अविवाहिता कन्या को लेकर देहरादून से वृन्दावन आश्रम में समाधि-स्थल पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पण करने चल पड़ीं। उनकी बस को साढ़े चार-पाँच बजे तक मथुरा पहुँच जाना चाहिए था। परन्तु बस में कुछ गड़बड़ी उत्पन्न होने के कारण वह बहुत धीरे रुकते-पड़ते जब हाथरस पहुँची तभी ही काफी शाम हो चली थी। वहाँ बस के चेकिंग करने पर ज्ञात हुआ कि खराबी गम्भीर है जिसको ठीक करने में और भी अधिक विलम्ब हो गया तथा बस साढ़े नौ बजे बाद ही मथुरा पहुँच सकी। और तब तक वृन्दावन जाने वाली आखिरी बस भी जा चुकी थी। अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताओं से ग्रसित माँ-बेटी मन ही मन घबराई बैठी रहीं बस अड्डे पर कि अब इस अनजानी जगह में उनका क्या होगा — विशेषकर युवा कन्या के कारण। किसी से अपनी दुविधा कहने में भी भय हो रहा था ।

परन्तु बाबा जी महाराज का कौतुक तो पूर्व में ही प्रारम्भ हो चुका था । ६ बजे से भी पूर्व पहुँच जाने वाली एटा – वृन्दावन बस *अकारण* ही लेट हो गई और उसके साढ़े नौ बजे के बाद मथुरा पहुँचने पर एक नितान्त अनजान (?) व्यक्ति ने उनके पास आकर कहा, "यह बस वृन्दावन जा रही है । इसमें बैठ जाओ ।" (इन्होंने तो किसी से नहीं कहा था कि

ये वृन्दावन जा रही हैं !!) ये दोनों यंत्रवत उस बस में बैठ गईं और तभी *वही* व्यक्ति उनके हाथ में दो टिकट देकर बोला, "अटल्ला चौकी पर उतर जाना और सीधे *आश्रम चले जाना* ।" और जब तक ये अपना सामान सँभाल सुचित हो उस व्यक्ति से पूछने मुड़ीं कि टिकट के कितने पैसे हुए, ***उस व्यक्ति का कहीं पता न था*** !!

महाराज

हल्द्वानी के देसी-घी के बड़े व्यापारी श्री नन्दलाल जी ने बाबा जी की शरीर लीला के बाद कैंचीधाम आना छोड़ दिया *यह* सोचकर कि अब तो बाबा जी नहीं रहे । वैसे भी उनके अपने गुरु — **समता** सत्संग के प्रवर्तक श्री मंगतराम जी थे । परन्तु बाबा जी उन्हें कहाँ छोड़ने वाले थे ? वर्ष १९७४-७५ में कई दिन के खाँसी, जुकाम और बुखार के कारण डाक्टरों ने उन्हें टी०बी० से पीड़ित घोषित कर दिया । (यद्यपि देखने में बाह्य रूप से आप साधारण तौर पर ठीक ही लगते थे ।) आपने इस रोग के निदान की पुष्टि हेतु भवाली सेनेटोरियम में अपना परीक्षण करवाया । वहाँ भी डाक्टरों ने सभी प्रकार के परीक्षणों के बाद पूर्व के डाक्टरों द्वारा किये गये निदान की पुष्टि कर दी । तब अत्यन्त दुःखी और हताश होकर जब ये भोवाली से लौटने को हुए तो (बाबा जी की प्रेरणावश) इनकी पत्नी ने कैंचीधाम में *मत्था टेकने* की इच्छा प्रगट की । आप कैंची आ गये । मन को दुश्चिन्ताओं ने तो घेर ही लिया था । महाराज जी का कौतुक प्रारम्भ हो गया । जब बाबा जी के कक्ष में श्रीमती नन्दलाल भारी मन लिये बाबा जी के आसन में माथा टेक प्रणाम कर रही थीं तो महाराज जी की स्पष्ट वाणी में उन्हें आदेश सुनाई दिया — **"कैंची क्यों नहीं आते ? आया करो।"** श्री माँ को जब यह घटना उन्होंने सुनाई तो माँ ने नन्दलाल जी की बीमारी का कारण *कैंची न आना* ही बताया, और साथ में कहा कि, **"अब नन्दलाल जी बिल्कुल ठीक हो जायेंगे ।"**

यही हुआ भी। बाबा जी ने तो नन्दलाल जी का टी० बी० उक्त वाणी के साथ ही खत्म कर दिया था। केवल औपचारिकता शेष रह गई थी। सो वह भी दिल्ली जाकर पूरी हो गई। वहाँ जब टी० बी० विशेषज्ञों को नन्दलाल जी ने हल्द्वानी तथा टी० बी० सेनेटोरियम की रिपोर्ट और एक्स-रे दिखाये तो उन्होंने पूर्व के सभी निदानों को पुनः परीक्षण के

उपरान्त *नकार* दिया !! और केवल तीन दिन के लिये सर्दी-जुकाम की दवायें नन्दलाल जी को देकर विदा कर दिया । नन्दलाल जी पूर्णतया स्वस्थ हो गये !!

महाराज

श्रीमती शान्ति देवी (मैनपुरी) की कन्या अपने भाई, राजू के साथ ३० सितम्बर १९८७ को बस द्वारा मैनपुरी से मेरठ जा रही थी। एटा के पास बस दुर्घटना में अन्य हताहतों में राजू भी था जिसके सिर, मुँह तथा हाथों में भीषण चोटें आ गईं — हर जगह **मल्टिपुल फ्रेक्चर** (हड्डियों का कई टुकड़ों में टूट जाना) आ गया। लड़का बेहोश हो चुका था। बुरी तरह रक्त श्राव हो चुका था। भाई को इस स्थिति में देख तथा अपने को नितान्त *असहाय* पाकर बहिन सुमन के पास रोने के अलावा *एक ही* चारा रह गया था — आर्त होकर महाराज जी को कातर स्वर में पुकारना, “कहाँ हो बाबा ! आप तो सदा हमारी विपत्ति में रक्षा करते थे, पुकारते ही आ जाते थे। रक्षा करो ।” और तभी, केवल धोती पहिने महाराज जी वहाँ स्वयँ प्रगट हो गये और सुमन से बोले, **“रोती क्यों है मैं तो यहीं हूँ । चुप हो जा । अभी सब इन्तजाम हुआ जाता है ।”** ऐसा कह वे स्वयँ तो अन्तर्ध्यान हो गये परन्तु *उसके पूर्व* मैनपुरी जाती (अन्य सभी गाड़ियों को छोड़कर) सुमन के पिता के ही विभाग के एक असिटेन्ट इंजीनियर की जीप को रोककर, तथा इंजीनियर को समझाकर (कि यह वीरेन्द्र वर्मा का पुत्र है) भाई-बहन को मैनपुरी उनके घर पहुँचाने की व्यवस्था कर गये !! साथ में इलाज के लिये ३५००) रु० की भी व्यवस्था कर गये !! उसके बाद तो राजू का इलाज भली भाँति हो गया ।

एक असहाय महिला के, ऐसी विकट परिस्थिति में **गजेन्द्र** की तरह के करुण क्रन्दन ने बाबा जी महाराज को *स्वयँ* प्रगट होने को विवश कर दिया । (केहर सिंह)

महाराज

दिल्ली से एक समृद्ध-धनी परिवार, गर्मियाँ बिताने जून वर्ष १९८२ में नैनीताल आया था । पर्यटन हेतु वे कैंचीधाम भी आ गये । स्थान की सुन्दरता, स्वच्छता एवं परम आध्यात्मिक शांति से वे बहुत प्रभावित हुये । सभी माडर्न (आज के रंग में रंगे) थे । परन्तु उस समय नदी पार आश्रम

के लिये लकड़ियों से भरी एक ट्रक में से आश्रमवासियों तथा कुछ अन्य महिलाओं को एवं छोटे छोटे बच्चों को ऊपर से पुल पार कर आश्रम में लकड़ियाँ लाते देख यह पंजाबी परिवार भी इस कार्य में जुट गया । महाराज जी, शायद, इनके इस *प्रेम पूर्ण श्रम-दान* पर रीझ गये । (और उन्हीं की प्रेरणा से) इन्होंने, ज्ञात होने पर, श्री माँ के दर्शनों की भी इच्छा प्रगट की । श्री माँ ने इन्हें बुला लिया । वहाँ अन्य भक्तों के मुँह से इस परिवार को बाबा जी महाराज की अनेक लीलायें सुनने को मिलीं । तब परिवार के मुखिया ने बाबा जी की फोटो छबि की इच्छा की । श्री माँ ने इन्हें बाबा जी का चित्र देते हुए कहा, **"इसे हमेशा अपने पास रखना और कोई संकट आये तो इन्हीं से प्रार्थना करना ।"** ढेर सा प्रसाद लेकर परिवार तृप्त और प्रसन्न हो नैनीताल चला गया ।

वहाँ पहुँचकर बच्चों ने झील की सैर की इच्छा की तो दो नावों में पूरा परिवार झील में निकल पड़ा । दैवयोग से आधी झील में पहुँचते पहुँचते तेज हवायें चल पड़ीं । अन्य अनुभवी नाव वाले तो हवा के पहले झोंके के साथ ही शीघ्र ही तट की ओर भगा ले गये अपनी नावों को, पर इनके युवा नाविक इस आशा से कि तेजी से चलकर उस पार पहुँच जायेंगे, नावों को बीच में ही चलाते रहे । तब क्षणों में हवाओं ने आँधी का रूप ले लिया ओर इनकी नावें बुरी तरह डगमगाने लगीं बड़ी बड़ी लहरों के थपेड़ों में । वर्षा भी प्रारम्भ हो गई । कुछ जल भी उछलकर नावों में आ गया । नाविकों के हाथ से पतवारें भी छूट गईं । मृत्यु निश्चित थी डूबकर, और इसी दुराशा से किनारे पर खड़ी जनता धड़कते हृदय से सारा तमाशा देखती रही । अपने को सपरिवार नष्ट होते देख परिवार के मुखिया को एकाएक महाराज जी के चित्र और श्री माँ की हिदायत याद आ गई । तब उसने महाराज जी का चित्र निकालकर कातर हो कर प्रार्थना की, "बाबा, आज ही तुम्हारे दर्शन किये और आज ही मेरा परिवार नष्ट हो जायेगा क्या ?"

और *तब* एकाएक उस तूफान में एक दम मंदी आ गई परन्तु नावें, मानो स्वचालित नौकायें हो, द्रुत गति से किनारे आ लगीं !! ये सब किनारे पर कूद गये । और सबके किनारे पर कूदते ही तूफान और वर्षा का वेग पुनः बढ़ गया !! महाप्रभु ने प्रकृति को **गजेन्द्र** की रक्षा हेतु उतने क्षणों के लिये नियन्त्रित कर दिया था !!

दूसरे दिन पुनः कैंचीधाम आकर परिवार ने श्री माँ को रो-रो कर महाराज जी द्वारा अपनी रक्षा, अपने पुनर्जीवन की कहानी सुनाई ।

महाराज

वर्ष १९८५ में मेरे भाई राजन की शादी थी । अपनी माँ के कई बार कहने के बाद मैंने महाराज जी को वृन्दावन के पते पर (तब श्री माँ वहीं थीं) एक अत्यन्त भाव-भरा पत्र लिखकर उनसे निहोरा किया कि वे विवाह में *अवश्य अवश्य* आयें । रुद्रपुर के बाजार में स्थित उस मकान में महाराज जी ने विवाह के सफलतापूर्ण सम्पन्न हेतु क्या क्या कर दिया — बताना मात्र बचपना होगा । किन्तु बाबा जी का मेरे आग्रह पर वहाँ पहुँच जाने का ही मैं वर्णन करना चाहती हूँ ।

बारात वधू के घर को विदा होने जा रही थी कि मेरे भाई कैलाश ने मुझे आग्रह किया कि *जो भी* आये उसे भरपेट प्रसाद पवा देना। जो कुछ प्रसाद बना उसे मैंने एक थाल में सजाकर बाबा जी के (चित्रराज के) सम्मुख रख दिया था। तभी समाचार मिला कि मेरे कालेज के प्रेजिडेन्ट आये हैं — भीड़ के कारण भीतर आने में संकोच कर रहे हैं। (महिलाओं का जमघट लगा था घर में।) सो मैं (महाराज जी को भोग अर्पण कर ही चुकी थी) उनके लिये भी एक थाली में भोजन-प्रसाद लेकर *जब* सड़क के उस पार खड़ी उनकी कार की तरफ चलने लगी तो देखा कि बहुत ही लम्बे कद के एक साधू की तरह एक महात्मा एक *अत्यंत सुन्दर और महंगा कम्बल* ओढ़े पास में खड़े हैं। मुझे ख्याल तक न आया कि वे महाराज जी ही होंगे, (जिन्हें मैंने आग्रह-पूर्वक आमंत्रित किया था।) और मैं थाल लेकर कार की तरफ बढ़ चली। परन्तु साधू बाबा तभी *बीच में* आ गये। उनका *कम्बल* देखते ही मुझे महाराज जी की याद आ गई और मैंने उनसे पूछा, **"क्या आप भी प्रसाद पायेंगे ?"** उन्होंने तत्काल उत्तर दे दिया, **"हाँ, हाँ, क्यों नहीं !"** तब उन्हें भीतर ले जाकर *महाराज जी को अर्पित भोग* पवा दिया । मेरा आग्रह महाराज जी ने स्वीकार कर लिया था। (मंजु पांडे)

महाराज

(स्व०) कन्हैयालाल श्रीवास्तव (कटरा – इलाहाबाद) बाबा जी महाराज के अनन्य भक्त रहे । २० जुलाई १९९१ को इनके बड़े पुत्र श्री

प्रकाश नारायण (*तब* डिवीजनल मैनेजर, टेलीफोन्स, ईस्टर्न जोन) इम्फाल से बर्मा बार्डर पर अपने अधीनस्थ इंजीनियर के साथ किसी संयत्र का निरीक्षण करने जा रहे थे कि जंगल की राह में एक युवक ने इनकी जीप रोक ली। तभी ७-८ युवकों ने ए० के० – ४७ राइफल लिये इन्हें घेर लिया तथा उतर कर जीप छोड़ देने को कहा । प्रकाश जी बाबा महाराज का ध्यान कर उनका स्मरण करने लगे । **'तुम रक्षक काहू को डरना'** वाले बाबा जी ने इन्हें मनोबल दे दिया और इन्होंने जरा भी घबराहट नहीं दिखायी। बहस करने लगे कि सरकारी जीप है, मेरी नौकरी चली जायेगी, आदि । साथ में मुस्कुराते रहे । उग्रवादियों के पास तो एक ही तरीका होता है अपनी बात मनवा लेने का — अगर सीधी तरह न मानो तो **धाँय-धाँय**, और खेल खत्म। पर मानो *बाबा जी ने इन सबकी मन-बुद्धि पर कब्जा कर लिया हो* — वे बोले, "नौकरी नहीं जायेगी । यहीं पास की झोपड़ी में बैठो । हम आधे घंटे में एक मरीज को अस्पताल पहुँचा कर जीप वापिस कर देंगे।" प्रकाश जी ने भी इसी में कुशल देखी और दोनों अपना सामान उतार कर झोपड़ी में चले गये । प्रकाश जी का मनीपुरी ड्राइवर उन उग्रवादियों को जीप में बिठा कर ले गया ।

कुछ देर बाद, मानो बाबा जी ने इनसे कहा हो — भाग जाओ । ये घबराकर झोपड़ी से बाहर निकल आये । तभी २-३ महिलायें वहाँ प्रगट हो गईं । और उस झोपड़ीनुमा मकान में ताला लगा कर अन्यत्र चली गईं। इनका सामान वहीं बन्द हो गया । अब इन्होंने मंत्रणा की कि अभी तक तो कुशल है, उनके लौटने पर हमारा अपहरण भी हो सकता है — भाग चलो। सो ये भाग कर पुनः सड़क पर आ गये । बाबा जी की कृपा से इन्हें एक सवारी गाड़ी भी मिल गयी और ये वापिस इम्फाल आ गये और वहाँ रिपोर्ट दर्ज करा दी ।

कई घंटों के बाद इनका मनीपुरी ड्राइवर मये जीप और सामान के लौट आया । उसने बताया कि एक मरीज को अस्पताल पहुँचा कर ये उग्रवादी मार्केट गये और वहाँ कुछ गोलीबारी कर एक जवान महिला का अपहरण कर लाये !!

पर बाबा जी ने तो अपना खेल पूरा कर अपने भक्त के पुत्र को बचा ही लिया था ।

महाराज

"धर्म के कार्यों में सहयोग" की बाबा जी द्वारा **सीख** की चर्चा मैं पूर्व में ही कर चुका हूँ । परन्तु उनकी यह **सीख** उनके निर्गुण में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त भी चलती रही, (और अब भी चल रही है जिसका अनुभव अनेक भक्तों को होता रहता है ।)

वृन्दावन आश्रम की एक *महत्वपूर्ण* मीटिंग वर्ष १६७६ में होनी थी, जिसमें कुछ गम्भीर मुद्दों पर विचार एवं निर्णय होना था । परन्तु कुछ तो मनः स्थिति के कारण तथा परिस्थितियों के कारण भी मैं असमंजस में ही पड़ा रह गया । दूसरे ही दिन मीटिंग होनी थी । मैं बरामदे में बैठा अखबार पढ़ रहा था, तभी देखा कि बाहर लॉन में एक साधू-सदृश आदमी बैठा है । यह सोचकर कि फाटक बन्द होने पर भी यह आदमी बिना सूचना-आज्ञा के क्यों भीतर आ गया — मैं उसके पास पहुँचा और फटकार-सी लगाई कि *बन्द फाटक* के भीतर तुम कैसे आये ? बिना किसी प्रकार का *बिचलन दर्शाये* वह साधू संयत शब्दों में बोल उठा, ***"हम तो ऐसे ही आ जाते हैं ।"*** इस पर मुझे रोष-सा हो आया । तभी वह पुनः बोल उठा, "***वृन्दावन* से आ रहे हैं ।"**

उसका *वृन्दावन* शब्द कहते ही मुझे पुनः मीटिंग की याद आ गई और मैं भी बोल उठा, "मुझे भी अपने गुरु आश्रम में वृन्दावन जाना था मीटिंग में । पर मैं जा नहीं पा रहा हूँ ।" इस पर साधू-महाराज बोल उठे, **"जाना चाहिए तुम्हें । *गुरु-कार्य में सहयोग देना चाहिए ।*"** तब मैं बोला, "अब कैसे जा सकता हूँ । सीट-बर्थ किसी का भी तो रिजर्वेशन नहीं है ।" इस पर साधू बाबा पुनः बोल उठे, **"क्या होता है रिजर्वेशन ? तुम जाओ। कुछ न कुछ प्रबन्ध हो ही जायेगा ।"**

इस सब वार्ता के मध्य मैं भूल ही गया कि साधू बाबा बन्द फाटक से बिना सूचना के भीतर घुस आये थे । परन्तु सन्ध्या तक मैंने वृन्दावन जाने का निर्णय ले लिया । स्टेशन पहुँच टिकट लिया तो गाड़ी छूटने में *केवल* पाँच मिनट रह गये थे और सभी डिब्बे खचाखच भर चुके थे । सोचा — लौट चलें । तभी एक डिब्बे के कन्डक्टर ने पास आकर मुझ से कहा, "आप मेरी सीट में बैठ जाइये। तब तक मैं डिब्बे की चेकिंग कर लूँ । आधा-पौन घंटा लगेगा ही । शायद कोई बर्थ मिल जाये आप के लिये ।" गाड़ी चल दी और मैं सोचता रह गया कि अगर सीट न मिली तो रात भर क्या होगा ?

परन्तु *मथुरा तक न तो वह कन्डक्टर लौटकर आया* और न मेरे लिये कोई अन्य स्थान की आवश्यकता पड़ी । सारी रात *उसी* बर्थ में आराम से कट गई ।

मीटिंग में मेरा पहुँचना *परमावश्यक* था — वहाँ पहुँचकर ही मुझे *इस तथ्य* का अहसास हो पाया । कुछ अप्रत्याशित घटने से बच गया !!

परन्तु कौन थे वे साधू बाबा जिन्होंने **वृन्दावन** का नाम लेकर मुझे मीटिंग हेतु प्रेरित किया ? और कौन थे वे कन्डक्टर साहब जिन्होंने मेरी प्रार्थना के बिना ही मुझे बर्थ दे दी और रात भर नहीं आये पलटकर, और न फिर दिखे ही ? (देवकामता दीक्षित – कानपुर)

महाराज

श्री ओम प्रकाश सिक्का बम्बई में १६ वर्ष की लम्बी अवधि तक एक औद्योगिक फर्म में इंजीनियर रहे । अपने एक मित्र के कहने पर उसके साथ साझा व्यापार हेतु ये बम्बई की एक नौकरी छोड़ कर वर्ष १६८८ में दिल्ली आ गये जहाँ से पंजाब में इनका घर पास पड़ता था । परन्तु वहाँ भी अपने मन का-सा काम न पाने के कारण ये वर्ष १६६० में हल्द्वानी आ गये एक **केबुल** उद्योग में वाइस-प्रेजीडेन्ट बनकर ।

परन्तु इसी बीच बम्बई वालों ने इनके ऊपर फौजदारी का मुकद्दमा चला दिया था कि ये कम्पनी की गुप्त औद्योगिकी को अपने साथ उठा ले गये हैं, (जब कि सत्य इसके विपरीत था — ये तो स्वयँ ही नई नई औद्योगिकी ईजाद करते रहते थे अपनी ही ।) मुकद्दमें के कारण बहुत परेशान हो गये — कई पेशियाँ हो चुकी थीं बम्बई हाईकोर्ट में ।

एक दिन इनको कुछ परेशान हाल देखकर इनके एक सहायक ने कहा कि, "कैंची में बाबा नीम करौली जी का मंदिर है । वहाँ बाबा जी की मूर्ति के आगे अपनी पेरशानी कहने पर सब दुख दूर हो जाते हैं । उनको कम्बल भी पहिनाते हैं लोग ।" इन्होंने भी सुनकर, मन ही मन ऐसा ही करने का विचार कर लिया, और अप्रैल के अन्त में अपने सहायक के साथ कैंची पहुँचकर महाराज जी को प्रणाम किया । श्री सिद्धी माँ के भी दर्शन किये । पर *तब* कम्बल अर्पण नहीं किया ।

इसके ठीक आठ दिन बाद, ५ मई १६६० को, इनके फैक्टरी वाले मकान में एक बूढ़ा-सा साधू आया और बोला, **"मुझे बद्रीनाथ (!) जाना**

है। एक कम्बल खरीदूँगा । रुपये दो ।" सिक्का जी ने जेब से १००) रुपये का एक नोट साधू को देना चाहा, पर वह साधू बोला, **"सौ रूपये में कोई कम्बल आता है ?"** यह सुनकर भीतर गये और ग्यारह-बारह सौ रुपये (जो कुछ इनके पास थे) लेकर बाहर आये और साधू को देने लगे । साधू महाराज ने उनमें से केवल ५००) रुपये निकाले और बाकी इनको वापिस कर चले गये । जाते जाते कह गये, **"एक साल बाद ही तेरा फैसला होगा । तू जीत जायेगा । भण्डारे में कैंची *आना* ।"** पर उनके जाने के बाद ही सिक्का जी का माथा ठनका, "कहीं ये बाबा जी तो नहीं थे ?" दौड़कर बाहर आये तो साधू महाराज का कहीं पता न था !!

उसके बाद तो ये बराबर कैंची-धाम आते रहे । श्री माँ के भी दर्शन करते रहे । यद्यपि महाराज जी ने इनका कम्बल वाला *संकल्प* तो पूरा कर ही दिया था ५००) रुपये कम्बल हेतु लेकर, फिर भी इन्होंने पुनः कम्बल अर्पण किया महाराज जी को ।

बाद में एक दिन ये माँ के पास कहने आये कि, "बम्बई हाइकोर्ट में सुनवाई है, वहाँ जाना है ।" माँ ने इन्हें बिल्कुल मना कर दिया वहाँ जाने को । तब इन्होंने फिर कहा, "माँ, न जाऊँगा तो केस बिगड़ जायेगा ।" माँ ने दृढ़ शब्दों में इनसे कहा, **"*जब* महाराज जी ने कह दिया कि आप जीत जायेंगे तो फिर वहाँ जाने की कोई जरूरत नहीं है। महाराज जी सब ठीक करेंगे । *आप ही जीतेंगे* ।"** माँ की बात मानकर ये फिर बम्बई नहीं गये । वकील को ही हिदायत कर दी । परन्तु *ठीक* एक साल बाद ५ मई, १९६१ को बम्बई हाइकोर्ट द्वारा केस इन्हीं के पक्ष में निर्णीत हो गया !!

महाराज

वर्ष १९६२ में अगस्त माह में श्री सिक्का की सास जी अपनी बेटी को आशीर्वाद देने हल्द्वानी आई थीं। अन्य स्थानों के अलावा एक दिन पदमपुरी के भी दर्शन कराने हेतु सिक्का जी अपनी पत्नी के साथ सास जी को कार में ले चले। सिक्का जी स्वयँ कार चला रहे थे। घर से दो ढाई किमी० चलने के बाद ही डिग्री कालेज के पास इनके सीने में हृदयक्षेत्र के पास एकाएक बड़ी जोर से दर्द उठ गया। इन्होंने अपनी पत्नी से कहा तो उन्होंने कुछ घबराकर घर वापिस चलने की सलाह दी। परन्तु इन्होंने सोचा कि जब घर से निकल ही चुके हैं तो २-३ घंटे में पदमपुरी

दर्शन के बाद लौट ही आयेंगे। ये आगे बढ़ते रहे, परन्तु एक किमी० बाद दर्द बेहद बढ़ गया। साँस लेने में कठिनाई आ गई। इन्होंने श्री माँ-महाराज जी का स्मरण किया ओर गाड़ी लौटाकर तीव्र गति से गाड़ी चला घर पहुँच गये। वहाँ पलंग पर लेटते ही ये तो हो गये अचेत और इनकी पत्नी तड़प उठीं कि क्या हो गया ? क्या करूँ? पन्द्रह अगस्त थी उस रोज — फोन करने पर भी कोई डाक्टर न मिला। उधर सास जी भी परेशान — अनजान जगह वो कर ही क्या सकती थीं ? तब तक सिक्का जी की नब्ज भी लापता होने लगी थी — शरीर शीतल हो चला था — पसीना बह चला था। (यही स्थिति कुछ देर पूर्व सड़क में ही आ जाती तो क्या होता ? परन्तु महाराज जी ने तो तीनों को ही सकुशल घर पहुँचाना था !!)

पड़ोसी की मदद से किसी तरह एक डाक्टर मिला भी तो उसने इन्हें खतरे में बताकर एकदम अस्पताल ले जाने की सलाह दी । तभी श्रीमती सिक्का को एकाएक महाराज जी के *उस कम्बल* की याद आ गई *जिसको* उन्हें आशीर्वाद स्वरूप देते समय श्री माँ ने कहा था, **"जब कोई गहरी दुःख-पीड़ा हो तो यह कम्बल ओढ़ा देना बीमार को ।"** याद आते ही बिजली की-सी फुर्ती से उन्होंने वह कम्बल निकाला और सिक्का जी के ऊपर डाल दिया ।

पड़ोसी की ही गाड़ी में सिक्का जी को अस्पताल ले जाया गया । पर पन्द्रह अगस्त होने के कारण वहाँ केवल हाउस-सर्जन मिला जो उनकी हालत सुनकर दूसरे कमरे में (कोरोमिन) इंजेक्शन लेने चला गया।

परन्तु *तब तक* तो *विश्वास रूपी* कम्बल का इंजेक्शन लग चुका था — दर्द गायब और सिक्का जी पूरे होश में !! शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ भी हो गया । सिक्का जी अपने वर्तमान शरीर को *अब* बाबा महाराज द्वारा *प्रदत्त* शरीर ही मानते हैं — *पुनर्जन्म का* ।

महाराज

वर्ष १९९० में मेरे पतिदेव (श्री राज कुमार) कार्यवश दौरे पर थे । रात्रि को मैंने स्वप्न देखा कि हम एक ऊँचे पर्वत पर चढ़ते जा रहे हैं और भय से काँप रहे हैं कि अब गिरे, तब गिरे । तभी शेषनाग जी आ पहुँचे और उन्होंने अपने सारे फन फैला दिये । हमें और भी भय हो गया । पर उन्होंने, एक ओर तो हमें प्रणाम किया, और दूसरी ओर आशीर्वाद भी दिया

कि बिना भय के ऊपर चढ़ते जाओ। तब हम आश्वस्त होकर ऊपर चढ़ने लगे और शीघ्र ही शिखर पर पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर देखा कि ऊपर की ओर एक ही कमरे वाला मकान है जिसके भीतर झाँकने पर बाबा जी महाराज एक कुर्सी पर बैठे दिखाई दिये !! उन्होंने हमें भीतर आने को कहा। जब हम भीतर पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया तो आदेश मिला कि, **"वहाँ कागज-कलम रखा है, उठा लाओ।"** कागज-कलम मिलने पर उन्होंने स्वयँ उस कागज में एक मंत्र लिखा और हमसे कहा, **"पढ़कर सुनाओ।"** मंत्र पढ़ते पढ़ते मेरी नींद खुल गई, परन्तु मुझे मंत्र पूरी तरह से स्पष्ट रूप से याद रहा और में उसका नित्य प्रति जाप करती हूँ। मेरा विश्वास है कि यह मंत्र बाबा जी ने मेरे पति की हर प्रकार की रक्षा हेतु दिया है। मुझे मंत्र-प्राप्ति की प्रबल इच्छा भी थी, पर किससे लूँ — यही समस्या बनी रही सदा। महाराज जी ने मेरी यह इच्छा भी पूरी कर दी। (नीलिमा राजकुमार)

महाराज

इसी प्रकार श्रीमती रक्षा रतूड़ी को भी बाबा जी महाराज ने स्वप्न में दर्शन देकर मंत्र दे दिया रक्षा हेतु । अक्टूबर, १९६० में रात्रि के स्वप्न में बाबा जी ने उन्हें आदेश दिया कि **स्त्रोत-रत्नाकर** का अमुक पृष्ठ खोलो — उसे खोलकर **'रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे, सहस्त्र नाम तत्युल्यं राम नाम वरानने'** पढ़ने के साथ राम मंत्र भी उपलब्ध करा दिया। इसी स्वप्न में साथ साथ उन्होंने यह भी देखा कि एक विशिष्ट स्थान पर यज्ञ-हवन भी हो रहा है, और बाबा जी ने उन्हें एक केले के पत्ते में कुछ हवन-सामग्री भी दी तथा उनसे तीन बार आहुति भी डलवाई। साथ में खिचड़ी प्रसाद खाने को दिया !! नींद खुलने पर श्रीमती रतूड़ी को स्तोत्र-रत्नाकर के उस पाठ के साथ मंत्र भी याद रहा तथा उस विशिष्ट स्थान की छटा एवं हवन कुंड की स्मृति भी बनी रही ।

तीसरे दिन जब वे अपने पति, डी० आई० जी० रतूड़ी साहब के साथ कार्यवश नैनीताल आईं तो कैंचीधाम के दर्शनों को भी आ पहुँचीं । श्री माँ को अपना स्वप्न सुनाया तो माँ उन्हें यज्ञ शाला ले चलीं । वहाँ पहुँच कर रक्षा जी ने पाया कि स्वप्न में देखी यज्ञ-शाला और हवनकुण्ड भी तो *यही* था !! तब श्री माँ ने उनके स्वप्न को पूरा कराते हुए उनसे (वहाँ सम्पन्न होते शरत कालीन यज्ञ के मध्य) हवन कुण्ड में तीन आहुतियाँ

दिलवाईं तथा खिचड़ी प्रसाद भी पवाया । अब तो यह भक्त दम्पति बाबा महाराज को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पण करने सभी आश्रमों में — ऋषीकेश हो, कैंची हो, वृन्दावन हो, नीब करौरी हो — पहुँच जाता है ।

महाराज

मेरे पति श्री राजकुमार के मन में विदेश जाने की प्रबल इच्छा बनी रहती थी । एक दिन उन्होंने बड़े भाव से बाबा जी महाराज की फोटो छबि के सामने बैठ प्रार्थना की कि उन्हें किसी तरह विदेश-यात्रा करा दें । **'सबकी इच्छा पूरन करहीं'** वाले महाराज जी ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और एक दिन ऐसा हुआ कि उन्हें कम्पनी के काम से इंग्लैण्ड जाने का निर्देश मिल गया !! मैं भी उनके साथ विदेश जाना चाहती थी, परन्तु उनको निजी खर्च के लिये कम्पनी द्वारा *केवल* १५ पौंड प्रतिदिन भत्ते के रूप में स्वीकृत हुआ था जिसमें होटल का खर्च, खाना, पीना आदि सभी सम्मिलित थे । फिर भी मैं चली ही गई उनके साथ कि किसी तरह गुजारा कर ही लेंगे । विदेश जाने का यह अवसर फिर मिले न मिले।

विदेश यात्रा स्वीकृत तो कर दी महाराज जी ने । पर अब आगे भी तो उन्हें ही निभाना था। इस हेतु जो कृपा-लीला उन्होंने रची उस पर *सहसा* यकीन ला पाना मुश्किल ही होगा *अन्य* के लिये। हुआ यूँ कि जिस होटल में हम ठहरे थे, वहाँ के डबुल-बेड का किराया ही २५ पाउंड प्रतिदिन था। रात्रि को मैंने पुनः बाबा जी से प्रार्थना की कि **'प्रभु, लाज रख दो ।'** यह भी हुआ कि मैं क्यों आ गई इन पर मुसीबत बनकर। परन्तु जब सुबह हम नीचे गये तो होटल मैंनेजर ने स्वयँ ही (हमसे) कहा कि आपको केवल ५ पाउंड ही देने हैं, और इसी में आप यहीं खाना भी खायेंगे !!

ऐसा ही दो अन्य स्थानों में भी हुआ । न्यू कासल में हमें तीस पाउंड की जगह केवल १० पाउंड देने पड़े, और प्रेस्टन में २५ पाउंड की जगह *केवल* ४ पाउंड !! यह सब कैसे हुआ, बाबा जी ही बता सकते हैं । *न मालूम किस वेष में आकर वे हमारी बाकी देनदारी चुका गये* । (नीलिमा राजकुमार)

महाराज

वर्ष १९९१ में मैं कैंचीधाम १५ जून के भण्डारे का प्रसाद पाने गई थी । वहाँ से दर्शनार्थ काकड़ीघाट हनुमान मंदिर के दर्शन हेतु भी श्री माँ का आदेश पाकर चली गई । काकड़ीघाट के शिव मंदिर एवं श्री सोमवारी महाराज के बारे में भी मैं बहुत कुछ कथाएँ सुन चुकी थी । पता नहीं क्यों, वहाँ पहुँचकर इच्छा हुई कि मुझे एक *ऐसा* शिवलिंग मिल जाये जिसमें हनुमान जी बिराजे हों । बाबा जी ने मेरी इच्छा जानी और अपना कौतुक कर दिया । एकाएक नीचे देखने पर मुझे *ऐसा ही* एक शिवलिंग मिल गया जो आज भी मेरे पूजाघर में प्रतिष्ठित है !! (नीलिमा)

महाराज

वर्ष १९९३ में बैंगलूर से कु० गीता निश्शंका का एक पत्र आया था कैंची आश्रम श्री माँ की सेवा में जिसमें उन्होंने बाबा महाराज की **शरीर लीला के** उपरान्त भी (पूर्ववत) सर्वव्यापकता दर्शाती एक कम्बोडियन महिला के जीवन में घटित अभूतपूर्व घटनाओं का विस्तार से उल्लेख किया है । वह कम्बोडियन महिला कु० गीता के बैंगलूर निवास के मध्य उनके घर आ पहुँची थी और उसी ने अपने जीवन में घटित (बाबा जी से सम्बन्धित) ये लीलायें सुनाई थीं । सूक्ष्म में :—

वर्ष १९७४ में एक दिन उस महिला के **नोमफेन** (कम्बोडिया की राजधानी) वाले घर में रात्रि के प्रारम्भ होते ही कम्बोडियन वेष-भूषा में आच्छादित एक अधबूढ़े सज्जन एकाएक प्रगट हो गये जो तेजी के साथ शुद्ध कम्बोडियन एवं संस्कृत भाषा में वार्त्ता कर लेते थे । वे अत्यन्त रहस्यमय थे और घर की ढालदार छत में भी आराम से सो लेते थे । प्रारम्भ में ये लोग उनके प्रति कुछ शंकित भी रहे उनके इस प्रकार से आगमन एवं विचित्र-से व्यवहार पर (क्योंकि *तब* कम्बोडिया में भीषण गृह-युद्ध छिड़ा हुआ था ।) परन्तु बाद में वे उनके प्रति आश्वस्त होते चले गये — उनके द्वारा अपने लिये रक्षा-भाव देख कर — वे जब भी इन्हें किसी स्थान-विशेष में जाने से रोकते थे तो शीघ्र ही सूचना मिल जाती कि वहाँ ख्मेर रूज (विद्रोही सेना) द्वारा भीषण बमबारी हो गई है !! वे यदा-कदा कई कई दिनों के लिये अन्यत्र भी चले जाते थे, और तब कभी अकेले तो कभी कुछ अन्य लोगों के साथ भी, जिन्हें वे अपने शिष्य बताते थे (!) लौट आते थे । वे इस महिला के भाई को भी युद्धाभ्यास कराते रहते थे ।

एक दिन जब यह महिला अपनी मोटर साइकिल पर कहीं जा रही थी तो उसने देखा कि वे सज्जन भी आगे आगे *पैदल* जा रहे हैं । महिला ने यह सोचा कि मैं गाड़ी तेज भगाकर उन्हें पकड़ लूंगी । पर पूरी गति से गाड़ी भगाने पर भी वह उन्हें न पकड़ सकी !!

उनका परिचय पूछने पर उन्होंने बताया था कि **वे उत्तर भारत में *कैंची के नीम करौली महाराज* हैं !!** इस संदर्भ में उस महिला ने कु० गीता से **कैंची** एवं **नीम करौली महाराज** के बारे में जानना चाहा था और वह कैंची भी आना चाहती थी । परन्तु *तब* कु० गीता ने न तो **कैंची** का नाम सुना था और न वह **बाबा जी** के बारे में ही कुछ जानती थी ।

कु० गीता ने आगे लिखा कि — वे वृद्ध महाशय इस महिला और परिवारी जनों को घर का समान बेचकर नोमफेन छोड़ थाइलेंड चले जाने को बार बार कहते रहते थे । पर ये नौकरी छोड़ नोमफेन से चले जाने को तैयार न हुए । तब उन महाशय ने इनको धमकी दी कि ऐसा न करोगे तो **मैं तुम्हारा घर फूंक दूंगा !!** अन्ततः इन्होंने नोमफेन छोड़ थाइलैंड में शरण ले ली । फिर यह महिला अमेरिका चली गई ।

यहाँ तक तो उस कम्बोडियन महिला के बारे में गीता के पत्र से मालूम हो सका । परन्तु बाद में गीता को स्वयं ही एक जर्मन महिला, श्रीमती हेज़मादी से *कैंची* और बाबा जी के बारे में पता चल गया । श्रीमती हेज़मादी से **मिरेकिल ऑफ लव** प्राप्त करने पर गीता स्वयं भी प्रभावित हो वर्ष १९६४ में कैंची आकर *धाम* एवं *श्री माँ* के दर्शन कर गई । अपने पत्र में लिखी उक्त बातों की भी मां से वार्त्ता के अवसर पर उसने पुनः पुष्टि की ।

(*अब आगे* कम्बोडियन महिला, **चाँह्ट रिएट्रे कियो** (Chanht Reatrey Keo) के स्वयँ के मुँह से — सूक्ष्म में —) “वे **वर्ष १९७४** में हमारे घर आये थे और हमारी सब प्रकार से रक्षा करते रहे । मेरा उनके साथ **दादा-पोती** का सम्बन्ध कायम हो चुका था । उन्होंने मुझे भारतीय नाम **चन्द्ररात्रि** दे दिया था । उधर वे अन्य रक्षात्मक बातों के अलावा हमसे नोमफेन छोड़ने को भी कहते रहते थे । इसके लिये उन्होंने हमें ३१ अगस्त की *अन्तिम* तारीख दे रखी थी !! आनाकानी करने पर **घर फूँक देने** की घमकी देते रहते । एक दिन जब मैं बाहर से आई तो देखा कि सचमुच *चिमनी से धुँआ निकल रहा था* !! मैं घबराकर भीतर गई तो पाया

कि कहीं कुछ भी नहीं जला था — गैस स्टोव तक बन्द था !! तभी गृह युद्ध ने भी भयानक रूप ले लिया था । और दादा जी के कहने के मुताबिक ३१ अगस्त को ही हमें थोड़ा बहुत सामान लेकर युद्ध के मध्य थाइलैंड को भागना पड़ा और हैलिकौप्टर में रस्सी की सीढ़ी के सहारे किसी तरह जान बचाने में सफल हो पाये ।"

(उसी के बाद नोमफेन में भीषण युद्ध छिड़ गया था जिसमें हजारों लोग हताहत हुए थे — लेखक ।)

"परन्तु सीमा के पास मेरा भाई बिछुड़ गया हमसे — शायद वह भी गृह-युद्ध में शामिल हो गया था। कुछ काल बाद मैं बैंगकॉक से अमेरिका चली चली गई । मैं तो यही सोचती थी कि अब मैं उनसे कभी न मिल पाऊँगी । पर उनको और उनकी रक्षा-लीलाओं को मैं न भूल सकी।"

(यद्यपि, लगता है कि, कालान्तर में उसे *बाबा जी के नाम* तथा *कैंची शब्द* का विस्मरण हो चुका था, परन्तु उसे **महाराज** शब्द याद रहा, क्योंकि —)

"एक दिन एक लाइब्रेरी में मैंने **मिरेकिल ऑफ लव** नामित पुस्तक देखी तो उसे निकाल कर पढ़ने लगी । और तभी मुझे उसमें एक स्थान पर **महाराज जी** शब्द दिखाई दे गया । इसी के साथ उसमें **कैंची** और **नीम करौली** शब्द भी दिखाई दे गये । तब मुझे *सब कुछ* याद आ गया और मैं पता लगाते यहाँ आ गई हूँ ।"

यह कम्बोडियन महिला — चन्द्ररात्रि — कैंची आकर इतनी मगन एवं उत्तेजित हो गई भावातिरेक में कि वह अपने अन्तर में उठते उद्‌गारों को पूरी तरह व्यक्त भी न कर पाई। यद्यपि महाराज जी के चित्रराजों का निरीक्षण करते उसमें कोई विशेष प्रतिक्रिया नंहीं हुई परन्तु महाराज जी की मूर्त्ति देखते ही वह पूरी तरह उत्तेजित हो उठी, कहते हुए—***हाँ, ये ही थे वे* !! इन्हें केवल कम्बोडियन टोप और काली पैंट पहिना दो—बस !!**

स्पष्ट है कि कैंचीधाम की *इसी* मूर्त्ति (जिसका *तब*, १९७४ में, कोई अस्तित्व भी न था) के अनुरूप ही अपनी **छबि** बनाकर महाराज जी ने इस महिला को नोमफेन (कम्बोडिया) में कम्बोडियन वेष-भूषा धारण कर दर्शन दिये थे !! (और अब *उसी* **छबि** को लिये आप कैंची में विद्यमान हैं !! तभी ही तो चन्द्ररात्रि *इस* मूर्त्ति को देखते ही बावली हो उठी थी ।)

केवल एक रात कैंची में बिता यह महिला अपनी माँ को ढूँढने नोमफेन – बैंकाक चली गई (और इस विषय में निराश हो) पुनः अमरीका चली गई। उसने अब, कैंची में प्रवास करती एक अमरीकन महिला रीटा ग्रीन को लिखा है कि — "विगत २२ वर्षों से मैं सोचती रही थी कि **उन्होंने** मुझे पूरी तरह छोड़ दिया है। पर अब (श्री) माँ तथा अन्य परिकरों से मिलने पर मुझे **उनकी दया एवं स्नेह** *की पूर्व की भाँति ही पुनः अनुभूति होने लगी है* । जब से आई हूँ तब से कैंची ही मेरे हृदय में बसी हुई है ।"

(न मालूम किस जन्म की चरणाश्रित थी यह महिला बाबा महाराज की कि भारत में अपनी शरीर-लीला करने के उपरान्त भी वे कई सीमायें पार जाकर भी उसकी रक्षा करते रहे !! और अब उसे अपनी उक्त विभिन्न लीलाओं के माध्यम से अपने श्री चरणों का प्रश्रय प्रदान कर अपनी छत्र छाया में पुनः ला बिठाया है — लेखक ।)

महाराज

कैंचीधाम में दो अमेरिकन महिलायें आई थीं — भारतीय नाम क्रमशः गंगा एवं जानकी । गंगा कुछ भारी शरीर की और लम्बी चौड़ी थी पर जानकी साधारण शरीर एवं कद की थी । दोनों ही बड़े मनोयोग से मेरे द्वारा कही बाबा जी की चर्चायें सुनती थीं तथा *उसी भाव* से महाराज जी के मंदिर में प्रार्थना में सम्मिलित होती थीं। कुछ काल कैंची में रहने के उपरान्त उन्हें पेट की कुछ *ऐसी* शिकायत हो चली कि वे कुछ भी खा-पी न सकती थीं — आँव एवं उल्टी से त्रस्त हो गईं। न तो उनकी अमेरिकन दवायें इस काम आ सकीं और न भारतीय उपचार। उनकी हालत बिगड़ती गई और अन्त में उन्होंने निर्णय लिया कि तत्काल स्वदेश लौटकर अपनी जीवन-रक्षा कर लें । मुझसे ये सब बातें कह वे दिल्ली को वापिस चली गईं वहाँ से स्वदेश लौट जाने हेतु ।

परन्तु जब मैं सितम्बर माह में बाबा जी महाराज की पुण्यतिथि में सम्मिलित होने वृन्दावन आश्रम पहुँचा तो देखा कि वे दोनों भी वहाँ मौजूद हैं तथा आश्रम की हर भोग-प्रसाद की वस्तुएँ मजे में खा-पी रही हैं !! मैंने उनसे साश्चर्य पूछा, "तुम तो भारतवर्ष से मौत के भय से भाग रही थीं, अब यहीं कैसे हो फिर से ?" तब उन्होंने कहा कि दिल्ली पहुँचकर भी हम *उसी* हालत में रहे और एक होटल में अपनी उड़ान की प्रतीक्षा में लेटे

रात को महाराज जी से रोकर कहा, ***"बाबा, हम तो तुम्हारे आश्रम में रहने को आये थे और तुम्हारा भण्डारा-प्रसाद पाना चाहते थे । पर अब हमें इस बीमारी के कारण भागना पड़ रहा है । हमें ठीक कर दो न (कि हम यहीं रह जायें)"*** तो जब हम सुबह उठे तो पाया कि हमें *न* तो डाइरिया-डीसेन्ट्री है और *न* उल्टी की शिकायत !! हम बिल्कुल ठीक हो गये थे । कुछ दिन दिल्ली में बिताकर अब हम यहाँ आ गई हैं और महाराज जी के भण्डारे की सब चीजें मजे में खा-पी रही हैं !!

बाबा जी जब स-शरीर थे तो उन्होंने मेरा डाइरिया स्वयँ ग्रहण कर मुझे चंगा कर दिया था । पर आज तो निर्गुण-प्रवेश के बाद भी उन्होंने *ऐसा* ही कर दिया गंगा और जानकी के लिये !! (केहर सिंह)

महाराज

बाबा जी की कैनेडियन भक्त सुनन्दा मार्कस अमेरिका के डा० लैरी द्वारा संचालित **सेवा फाउन्डेशन** के कार्य से अपनी सहकर्मी, मीरा बुश के साथ मध्य अमरीका के ग्वाटेमाला नामक देश में वर्ष १९९२ में काम कर रही थी। वहाँ एक सुदूरवर्ती गाँव से ये लोग अपनी गाड़ी में राजधानी स्थित अपने होटल को लौट रही थीं तभी मार्ग में एक निर्जन घने पहाड़ी-युक्त जंगल में इनकी गाड़ी एकाएक रुक गई। हब्शी ड्राइवर ने गाड़ी के करीब करीब सभी कल पुर्जों की चेकिंग कर डाली पर सभी को ठीक पाया। तब गाड़ी कैसे रुक गई ? उधर रात होने लगी। सुनन्दा और मीरा घबरा गईं कि इस सुनसान पहाड़ी जंगल में वे उस ठंड में रात कैसे बितायेंगी और मीलों दूर स्थित अपने होटल में कैसे पहुँच पायेंगी ? तब सुनन्दा ने बाबा महाराज का ध्यान कर उनसे इस कठिन परिस्थिति से मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना की और तभी अपने कानों से उसने बाबा जी महाराज की स्पष्ट वाणी सुनी (!!) **चेक द फ्यूज** (फ्यूज की परीक्षा करो।) सुनन्दा मानो सोते से जाग उठी और उसने ड्राइवर को इस हेतु आदेश दे दिया ।

ड्राइवर के चैकिंग करने पर पता चला कि चार फ्यूजों में से एक फ्यूज जल गया है !! ड्राइवर ने तुरन्त एक नया फ्यूज लगा दिया और गाड़ी चल पड़ी । समय से होटल पहुँच इन्हें प्रसाद भी प्राप्त हो गया और शांति की नींद भी ।

अपनी यह आप बीती सुनन्दा ने स्वयँ वीरापुरम में माँ को सुनाई । (जनवरी १६६४)

महाराज

एक अमेरिकन महिला **ऐनी डिजेन** वर्ष १६६६ में वृन्दावन आश्रम आई थी। अपने कई दिनों के आश्रम प्रवास के मध्य उसने बडे श्रद्धाभाव से महाराज जी की आराधना की तथा उन पर चर्चायें सुनी। उपरान्त वह कुछ काल के लिये कैंचीधाम भी आई और वहाँ का भी आनन्द अपने अन्तर में समेटे दिल्ली चली गई, वहाँ से हवाई मार्ग से अमेरिका वापिस लौटने को।

दिल्ली में (नैनीताल से ही) जिस होटल में उसने अपनी बुकिंग करा रखी थी वहीं वह टेम्पो में बैठ जब पहुँची तो वहाँ मैनेजर ने कह दिया कि होटल पूरी तरह रूसी यात्रियों से भर चुका है। वह अत्यन्त घबरा गई और रुआँसी हो गई कि *इस अनजान* दिल्ली में अब वह कहाँ जाये। उसका टेम्पो भी भाड़ा लेकर चला जा चुका था। तब उसकी स्थिति जानकर होटल मैनेजर ने स्वयँ ही उसके लिये एक दूसरा टेम्पो कर उसे जनपथ मार्ग के किसी अन्य होटल में भेज दिया। यहाँ उसने अपने कमरे में अपना सामान रखा और दिनभर के लिये खरीददारी के लिये निकल गई। पर रात्रि-प्रारम्भ के समय जब वह लौटी तो होटल के आराजकता-पूर्ण माहौल को देखकर वह घबरा गई। परन्तु यही सोचकर कि उसे अपनी उड़ान की प्रतीक्षा में केवल दो ही रातें काटनी हैं यहाँ, वह अपने कमरे में चली गई। इस बीच उसे लोगों द्वारा कुछ *असभ्यता* का भी सामना करना पड़ गया। यह सब देख-जान वह और भी अधिक आतंकित हो उठी। उसने कमरे में रोशनी जली छोड़ कर ही सोने की कोशिश की पर मानसिक तनाव एवं बाहर के शोरगुल तथा होटल के प्रवासी लोगों का असभ्यतापूर्ण व्यवहार याद कर वह पुनः विकल हो गई कि इनके मध्य उसकी रक्षा कैसे होगी ।

तब वह रोते हुए कातर भाव से महाराज जी से प्रार्थना करने लगी कि, "बाबा ! तुमने *अपने चमत्कार* से इतने लोगों की रक्षा की है । मेरी क्यों नहीं कर रहे हो ?" आदि-आदि —

तभी ११.३० बजे रात होटल मैनेजर का कमरे में फोन आ गया कि, "आपकी एयरपोर्ट की टैक्सी आ गई है । आपका इन्तज़ार कर रही है !!"

एयरपोर्ट टैक्सी !! परसों के बदले आज ही ? सुनते ही वह ऊपरी कोट डाल धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतर बाहर आई तो *सचमुच* एक सरदार जी टैक्सी लिये खड़े थे !! उसने टैक्सी ड्राइवर से कहा, "मेरी उड़ान तो परसों है। टैक्सी आज ही **किस गल्ती (!) से** आ गई? पर ठहरो, मैं अभी आई। मुझे कहीं और ले चलो।" और वह अपना सामान जल्दी जल्दी समेट पुनः नीचे आ गई (कि बाबा जी ने आखिर चमत्कार कर ही दिया एयरपोर्ट वालों से *यह* गलती करवा कर!! वह तो इसे एयरपोर्ट वालों की ही गलती समझे थी !!)

और तब वह टैक्सी वाला भी, *एयरपोर्ट वापिस न जाकर*, उसे एक ऐसी अन्य *सुरक्षित* जगह ले चला जहाँ हर तरह की सुविधा १००% ज्यादा थी, वह भी केवल आधे दाम पर !! और जहाँ साथ में परम शान्ति भी थी। बारह बज कर पाँच मिनट में अपने कमरे में पहुँच ऐनी बाबा जी के *इस* **दया-पूर्ण चमत्कार** पर अनुग्रहीत हो खूब रोई। बाबा जी से अपनी प्रार्थना के ३५ मिनट के भीतर ही उसके सारे दुख दूर जो हो चुके थे !!

(अपने अनुभव के इस पूरे विवरण को ऐनी ने कैंची धाम में प्रवास करती अपनी सहेली रीटा ग्रीन को पत्र में लिखकर भेज दिया।)

महाराज

मेरी माँ को श्वास रोग ने परेशान कर रखा था और उधर बाबा जी महाराज का वार्षिक श्रद्धा-दिवस दो दिन बाद सम्पन्न होना था। माँ को उस हालत में वृन्दावन ले जाना बहुत ही कठिन समस्या थी। माँ भी अपनी हालत देख मन मारकर चुप हो गई। मुझे दुःख भी हुआ।

रात को मैंने स्वप्न देखा — बाबा जी मेरा हाथ पकड़कर कह रहे हैं, **"तू अपनी माँ की चिन्ता क्यों करती है ? क्यों दुःखी होती है ? उसका तो *छोटे से छोटा* काम भी मैं ही कर देता हूँ।"**

दूसरे दिन स्कूल पढ़ाने गई तो किसी की मृत्यु के कारण स्कूल बन्द हो गया और मैं बारह बजे ही घर आ गई। माँ ने कारण पूछा तो बता दिया। पर वे बोलीं, "कोई *अच्छा* समाचार सुना। वृन्दावन नहीं चलेगी ?" मैंने उसे समझाया कि — यह *अब* कैसे सम्भव हो सकता है ? न तो पैसे हैं और न प्रिंसिपल से आज्ञा ले रखी है। और अभी घर का सामान संभाल कर बन्द भी करना है। साथ में काठगोदाम पहुँचकर रिजर्वेशन भी लेना होगा जो अब असंभव है — आदि......

पर स्वप्न में महाराज जी का कहा *वचन* भी मुझे याद हो आया । मैंने कहा, **"अच्छा, चल ।"** और फिर माँ के हर काम बाबा जी करने लगे — घर देखने (वहीं सोने) के लिये मेरी सहकर्मी तैयार हो गई — माँ के पास भाई द्वारा भेजे रुपये बचे रह गये थे जो मार्ग के खर्च के लिये पर्याप्त थे — बाहर आये तो असंभव भी संभव हो गया — एन०सी०सी० के लड़कों से भरी बस मिल गई काठगोदाम के लिये (समय के भीतर !!) लड़कों ने हमारी समस्या जान हमें भी बस में बिठा लिया — और साथ में रूद्रपुर में भी और काठगोदाम में भी हमारा सामान स्वयँ ढोकर बस में चढ़ाया भी और उतारा भी !! यद्यपि हम काठगोदाम फिर भी देर से ही पहुँचे थे पर हमें तब भी दो बर्थ जनाना केबिन में मिल गईं। और जब अपने केबिन में पहुँचे तो वहाँ अन्य चारों बर्थों में वृन्दावन जातीं नैनीताल की ही भक्त माइयाँ मिल गईं जो **हमारे लिये भी** पूरी-सब्जी बनाकर लाई थीं !! (हम तो जल्दीबाजी में अपने लिये कुछ भी न ला सके थे मार्ग में खाने को) — बाबा जी जो हर काम कर रहे थे माँ का !!

और फिर बाबा जी के गुन गान करतीं हम छहों ने मिलकर खूब-भजन-कीर्तन किया । (मंजू पाण्डे — रुद्रपुर)

महाराज

मेरी माँ अपने दाँत बनवाने हल्द्वानी गई थीं। मुझे भीषण ज्वर-ताप था। अकेली पड़ी स्वयँ ही अपने माथे पर गीली पट्टी रखते जा रही थी। अपनी दशा देखकर रोना भी आ रहा था। मन में कहती जा रही थी— महाराज ! आप मेरा कष्ट क्यों नहीं देख रहे हैं, इसे दूर क्यों नहीं करते? — आदि। खिड़की की ओर करवट लेकर लेटी रही। आधी रात के समय लगा कि *कोई* मेरी पीठ की तरफ *घुस* कर लेट गया है। उसकी साँस चलने की भी आवाज सुन रही थी मैं और साथ में अपनी पीठ पर दबाव भी महसूस करती रही !! कौन होगा ? *बन्द* दरवाजे के पार होकर भीतर कैसे आ गया होगा ? यही सोचती रही मैं। पर सबसे विचित्र बात यह थी कि मैं जरा भी विचलित नहीं हुई और न भयभीत। ऐसे ही रात कट गई।

सुबह उठी तो न ज्वर था, न सिर में पीड़ा !! बाबा जी महाराज आये, साथ सोये और मेरी व्याधि उठा ले गये । (मंजू पाण्डे — रुद्रपुर)

महाराज

अपना ही दृढ़ विश्वास लिये कि — **'बाबा जी कहीं नहीं गये हैं — शरीर-लीला एक बहकावा है उनका'** — हेम-दा की पत्नी, श्रीमती हरिप्रिया जोशी (नन्नी दीदी) आश्रमों में श्री माँ-महाराज तथा भक्तों की सेवा में *पूर्ववत* रत रहीं । उनके लिये महाराज जी ने स्वयँ भी कहा था कि, **"यह तो सहस्त्रों वर्षों से मेरे साथ है"**, तथा **"यह हनुमान जी की चौकीदार है।"** और श्री माँ से भी कहा था, ***"यह तुझे चाय पिलायेगी ।"*** बड़ी साधारण-सी लगने वाली बातें हैं ये । परन्तु ये तो बाबा जी की वाणी थी — (१) जब बाबा जी की **महासमाधि** का दुःखद समाचार सुन कैंची आश्रम खाली हो गया — सब वृन्दावन को भाग चले (केवल चन्द कर्मचारियों को छोड़कर) तो *केवल* नन्नी माई ही कैंची आश्रम और हनुमान तथा अन्य मंदिरों की **चौकीदारी** करती रहीं — अकेले — (जबकि बाबा महाराज की महासमाधि के कारण सारा वातावरण भयावह हो चला था) — सारे मंदिरों, कुटियों एवं अन्य स्थानों में ताले लगवाकर तथा चाभियाँ अपने पास सुरक्षित रख — और रात भर चौकीदारी कर — *हनुमान जी का चौकीदार बनकर* !!

(२) और जब दूसरे दिन शाम को श्री माँ एवं जीवन्ती माँ पूर्ण रूपेण निढाल अवस्था में अस्थिकलश लेकर कैंची वापिस पहुँचीं — अर्धचेतना में—तो इन्हीं नन्नी माई ने ही चाय बनाकर श्री माँ-माँ को **बरबस** पिलाई । **'यह तुझे चाय पिलायेगी'** कहा था सरकार ने । (पूर्व में भी तो अनेक बार चाय पिला चुकी थीं माँ को नन्नी माई और बाद में भी पिलातीं रहीं। *पर बाबा जी का संकेत तो **उक्त** परिस्थिति की ओर **ही** था* ।)

महाराज

वृन्दावन में बाबा जी का मंदिर नहीं बना था तब — केवल एक चबूतरा-नुमा समाधि-स्थल बना था कलश के ऊपर । वहीं सुबह-शाम आरती-पूजन होता था बाबा जी का । हेमदा की पत्नी अपनी ओर से आरती-पूजन अलग से स्वयँ भी करती थीं ।

एक दिन इस आरती-पूजन के मध्य उन्होंने एकाएक बाबा जी को ***स-शरीर*** चबूतरे पर खड़ा देखा !! उन्हें देखकर वे भावावेश में कंपित गात लिये और भी तन्मय हो उठीं तथा अपने भाव में उन्होंने रोरी उंगली में लपेट समाधि चबूतरे पर **राम-राम** लिख दिया । महाराज जी अदृश्य हुए

तो आकर उन्होंने श्री माँ से रोमांचित हो सब कथा कही । अपने भक्त के इस भाव की कि **'बाबा जी कहीं नहीं गये हैं'** स्वयँ प्रगट होकर महाराज जी ने पुष्टि कर दी !!

और फिर एक खेल और रच दिया। नित्य उस चबूतरे की स्नान-धुलाई-पोछाई होती रहीं परन्तु वह **राम राम** लेखन अक्षुण्ण बना रहा !! और *तभी* मिट सका जब मंदिर निर्माण के मध्य चबूतरा *ही* हट गया।

महाराज

पुष्टि हेतु एक कौतुक और हुआ । वृन्दावन से फरीदाबाद लौटते वक्त फरीदाबाद स्टेशन में उन्होंने एक धार्मिक पुस्तक खरीद ली थी । लाकर उसे पूजा स्थान में बाबा जी के चित्र के आगे रख दिया था । रात को उसे पढ़ने के लिय उन्होंने पुस्तक को जो खोला तो हेमदा से नाराजी से बोल उठीं, **"आपने मेरी पुस्तक में क्यों लिख दिया इस तरह ?"** उत्तर में हेमदा ने कहा कि उन्हें तो पता भी नहीं इस पुस्तक का । और जब दोनों ने मिलकर देखा तो पाया कि उसमें तो *महाराज जी की ही लिखाई में जहाँ तहाँ* **राम राम** *लिखा है* !! हेमदा की पत्नी ने उनके समाधि चबूतरे में **राम राम** लिखा तो प्रत्युत्तर में बाबा जी ने भी उनकी पुस्तक में **राम राम** लिख दिया !!

महाराज

मेरी पत्नी का एक बहुमूल्य आभूषण एकाएक खो गया । उन्होंने उसे बहुत ढूँढा, पर वह न मिल पाया । जिस जगह सभी आभूषण रखे जाते थे वहाँ अन्य आभूषणों के मध्य भी उथल-पुथल कर कई बार तलाश की उन्होंने, पर सब निरर्थक । सोना **खो** जाना परम्परागत मान्यताओं के अनुसार *अशुभ* और भावी अनिष्ट का द्योतक समझा जाता है । अन्त में उन्होंने मुझसे भी यह बात बताई और कहा कि पहिनकर उतारने के उपरान्त उन्होंने उसे यथास्थान संभालकर रख दिया था । सुनकर मैं भी चिन्तित हो उठा — केवल अनिष्ट की संभावना से ही नहीं वरन *इस* बात से भी कि इस प्रकार घर के *भीतरी भाग* से भी वस्तु कैसे गायब हो गई। रात को भी इसी चिन्ता में हम दोनों बिना नींद के लेटे रह गये । महाराज जी का स्मरण करता रहा मैं कि, **"प्रभु, यह कैसा अन्धेर हो गया, होने जा रहा है, रक्षा करें ।"** काफी रात गये (एकाएक कमरे के अन्धकार के

मध्य) एक विचित्र ज्योति *गहरी लालिमा* लिये प्रगट हो गई । हम देखते रहे कि क्या है यह, कहाँ से आई ? कोई भी कारण न मिल पाया *उस लालिमा* के प्राकट्य का । कहीं से कोई प्रकाश नहीं, न कहीं से कोई परावर्तन । मैंने मन ही मन प्रभू को *इस रूप में दर्शन देने* के लिये धन्यवाद दिया और निश्चिन्त होकर सो गया ।

दूसरे ही दिन वह आभूषण *अपने ही* स्थान पर यथावत पड़ा मिल गया !! (देवकामता दीक्षित)

महाराज

एक बार किसी के कहने पर मैंने एक *अच्छे वजन* की सोने की अंगूठी बनवाई और **शुभ दिन** कर पहिन ली । कुछ ही दिनों में मेरे लिये वह साधारण-सी बात हो गई । कुछ काल बाद महाराज जी पधारे हमारे घर । एकाएक उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और अंगूठी को देखकर बोले, **"ओहो ! तुमने तो बड़ी अच्छी अंगूठी पहिनी है।"** महाराज जी का *यह* आचरण मेरी समझ में नहीं आया । पर वे उस अंगूठी को पकड़कर मेरी उंगली में घुमाते रहे कुछ देर तक और बीच बीच में कह देते, **"बड़ी अच्छी है ।"** मेरे मन में भाव आया कि महाराज जी को ही अर्पण कर दूँ इसे, और इसी भाव से मैंने अंगूठी उतारने की मुद्रा में कहा, **"क्या महाराज .....।"** परन्तु महाराज जी ने मुझे मेरा वाक्य पूरा नहीं करने दिया, और न मन में उठे भाव को ही व्यक्त करने दिया, तत्काल यह कहकर कि, ***"अभी नहीं ।"*** अंगूठी मेरे ही हाथ में रह गई। परन्तु बाबा महाराज के शब्द **अभी नहीं** तो *उस* घटनाचक्र से सम्बन्धित थे *जो* उनकी *महासमाधि* के उपरान्त घटित होने वाला *था* !!

सितम्बर १९७३ में महाराज जी ने शरीर त्याग दिया था। परन्तु इसके पूर्व श्री धाम कैंची में श्री वैष्णवी देवी के प्रतिष्ठापन की पूरी योजना बना गये थे। १५ जून, १९७४ के दिन वैष्णवी देवी की प्रतिमा का प्रतिष्ठापन आयोजित हुआ। मैं भी वहाँ इस हेतु तथा ट्रस्ट की मीटिंग में शामिल होने पहुँच गया था। प्रतिष्ठा के पूर्व श्री सिद्धी माँ ने अन्य बातों के मध्य यह भी कहा कि, **"कैसी समस्यायें आ जातीं हैं आश्रम में कभी कभी। अब प्रतिष्ठा कराने वाले पंडित जी कहते हैं कि प्रतिष्ठा हेतु अन्य चढ़ावों के अलावा देवी के लिए कुछ न कुछ स्वर्णाभूषण एवं दान के लिये सोना परमावश्यक है। आश्रम में सोने का क्या काम ? और यदि**

कर्मकाण्ड पूर्ति हेतु जरूरी भी है तो कहाँ से आये सोना ?" — आदि आदि । मैं भी सुनकर उदास-सा हो चला आया ।

उस रात एकाएक मुझे महाराज जी का *वह* छोटा-सा वाक्य— **"अभी नहीं"**—याद आ गया। इतना ही नहीं, सुबह जब मैं सोकर उठा तो पाया कि अंगूठी मेरी उंगली में नहीं है— ढूंढने पर तकिये के नीचे मिली !! स्नान के समय भी उंगली से न खिसक पाने वाली यह अंगूठी *स्वतः* उतर गयी उस रात !! **अभी नहीं** का *पूरा अर्थ* मेरी समझ में आ गया तब। सुबह के स्नान-ध्यान के बाद मैंने वह अंगूठी लाकर श्री माँ के हाथ में रख दी उन्हें आद्योपान्त पूरा प्रकरण सुनाते हुए। (देवकामता दीक्षित)

एहिमिस कर्मकाण्ड भी पूरा करा दिया बाबा जी ने !!

महाराज

वर्ष १९६२ के मध्य नागालैण्ड के एक प्रतिष्ठित व्यापारी, श्री सीताराम जी की बहू के एक रिश्तेदार के लड़के का अपहरण हो गया । घर में कोहराम मच गया । आस पास के जिलों और प्रान्तों में पुलिस एवं खुफिया विभाग द्वारा खोजबीन का कोई नतीजा न निकल सका । पाँच दिन हो गये । सीताराम जी भी लड़के के माता-पिता के पास गये । उनकी दशा देखकर सीताराम जी का हृदय बहुत दुःखी हो गया ।

तभी उनके मुँह से निकल पड़ा — लखनऊ में बाबा नीब करौरी जी द्वारा एक हनुमान मंदिर स्थापित है जहाँ के लिये बाबा जी ने व्यवस्था कर रखी है कि जो भी दुःख-भरा या जन-साधारण की समस्याओं के निराकरण हेतु पत्र उनके नाम से या हनुमान जी के नाम से आये, उसे पुजारी द्वारा रात को शयन से पूर्व हनुमान जी को सुनाया जाये — ऐसा करने पर हनुमान जी प्रार्थी का संकट दूर कर देते हैं । तुम भी एक पत्र भेज दो बाबा जी को हनुमान जी के नाम लखनऊ को !! अगर लड़का अब भी जीवित है तो शीघ्र आ जायेगा !! मरता क्या न करता — घर वालों ने शीघ्र ही एक पत्र लखनऊ को **स्पेशल कूरियर** के हाथ भिजवा दिया हनुमान जी को अपनी विपदा बताते हुए ।

यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि सीताराम जी ने बाबा महाराज के प्रत्यक्ष दर्शन किये ही न थे कभी । उनकी धार्मिक आस्था से ही प्रसन्न हो बाबा जी ने उन्हें श्री सिद्धी माँ का एवं अपना **प्रेमी** बना लिया

था । कहने को तो वे उक्त बात अपने सम्बन्धियों से कह गये थे पर मन ही मन, आशंका के कारण वे महाराज जी से कहते रहे कि, "बाबा, अब *मेरी लाज* आपके ही हाथ है ।" और महाराज जी ने उनकी लाज रख ली — लड़का ४-५ दिन में ही सकुशल घर पहुँच गया !! अपने भक्त की आस्था, उसके विश्वास पर चोट कैसे पहुँचने देते सरकार ?

उक्त घटना श्री सीताराम जी ने श्री माँ को वीरापुरम (मद्रास) में स्वयँ सुनाई ।

महाराज

वर्ष १९६३ की **पुण्यतिथि** भण्डारे के अवसर पर श्री राम मुरारी तिवारी नीब करौरी ग्राम से वृन्दावन पहुँच गये थे । पास में ५००) – ६००) रु० की रकम थी जिसमें से अपनी भक्ति में बावले मुरारी जी ने मुक्त भाव से अगरबत्ती, भोग-प्रसाद आदि में व्यय किया तथा अन्य लोगों की भी हर तरह से सेवा की । बाबा जी महाराज इस नवयुवक की सेवा से लगता है, बहुत प्रसन्न हो गये और उन्होंने इस *उत्साही* भक्त को एक विचित्र ही प्रकार से अपनी प्रसन्नता का परिचय दे डाला ।

भण्डारे से **पूर्ण** होकर मुरारी जी दिल्ली (अपने कार्यक्षेत्र) के लिये रवाना हुए तो इनकी जेब में पर्याप्त-द्रव्य बचा था । आश्रम से निकलते निकलते, प्रेम भाव से सबसे मिलते-मिलाते इन्हें कुछ विलम्ब हो गया और जब मथुरा जंक्शन पर पहुँचे तो दिल्ली की गाड़ी के छूटने का समय हो गया था, पर बुकिंग खिड़की पर तो ६०-७० लोगों की लाइन लगी थी । यह सोचकर कि आगे खड़े किसी सज्जन से निहोरा कर अपना टिकट खरीदवा लूँ, इन्होंने जो जेब में हाथ डाला तो वहाँ कुछ भी न था !! सभी जेबें टटोल लीं — कुछ न मिला — या तो रहे सहे रुपये गिर गये थे या किसी ने निकाल लिये । अब ये अत्यन्त दुःखी कि जायें तो कहाँ जायें — आश्रम भी १५-१६ कि०मी० दूर था । और न किसी से सहायता हेतु ही कह सके — अनजान व्यक्ति को कौन क्या देता (यद्यपि टिकट मूल्य तब केवल ११)रु० मात्र था ।) ये दुःखी खड़े थे कि इतने में एक २०-२२ वर्ष का युवक इनके पास आ गया, पूछता—"भाई साहब, आप कहाँ जायेंगे ?" और इनके इतना ही बोल पाने पर कि "दिल्ली । पर ...." वह युवक कहता दौड़ गया कि "ठहरिये, मैं आपका टिकट ले आता हूँ ।" और कुछ ही क्षणों में *न मालूम* उस भीड़ में से कैसे (?) इनके लिये दिल्ली का

टिकट ले आया और इन दोनों ने दौड़ते, पटरियाँ फाँदते हुए पटरी पार के प्लेटफार्म पर रेंगती गाड़ी को पकड़ लिया । अब, इस युवक ने इनके लिये सीट पर एक तौलियानुमा रूमाल भी बिछा दिया, (मुरारी जी चिट-सफेद पैन्ट पहिने थे) और उन्हें उस पर जबरन बिठा दिया ।

तब मुरारी जी ने इन्हें अपनी व्यथा सुनाई तथा इस युवक को बहुत बहुत धन्यवाद दिया कि उसने इन्हें कैसी कठिन परिस्थिति से उबार लिया । साथ में मुरारी जी ने इन्हें आश्वस्त कर दिया कि दिल्ली पहुँचकर इस युवक को वे स्वयँ आकर या मनीआर्डर से पैसा भेज देंगे । परन्तु युवक का पता पूछने पर पहिले तो वह आनाकानी करता रहा और फिर बोला कि वह तो आगे तीसरे स्टेशन पर ही उतर जायेगा । फिर भी मुरारी जी ने उसका पता ले ही लिया — उसे भी अपने दिल्ली का पता दे दिया और तीसरा स्टेशन आने पर वह युवक गाड़ी से उतर मुरारी जी वाली खिड़की पर आ गया तथा बातें करता रहा । पर जैसे ही ट्रेन चलने लगी, उसने मुरारी जी से यह कहते कि, "*अभी सफर काफी है, चाय-पानी कर लीजियेगा*", बीस रूपये का नोट इन्हें देना चाहा पर मुरारी जी के मना करते-करते वह चलती ट्रेन में इनके पास नोट डालकर चलता बना। दिल्ली में स्टेशन से घर तक पहुँचने की भी व्यवस्था कर दी बाबा जी ने!!

परन्तु वह युवक कौन था, पता न चला । मुरारी जी द्वारा २-३ पत्र बताये गये पते पर भेजने पर भी कोई उत्तर प्राप्त न हो सका !!

अन्ततोगत्वा बाबा जी ने मुरारी जी को वीरभद्र आश्रम में अपनी सेवा में (फिलहाल) रख लिया है !! (१९९५)

महाराज

सरकार की महासमाधि का समाचार पाकर मैं तो ग्यारह सितम्बर की रात को ही दादा, राजीदा आदि के साथ वृन्दावन को रवाना हो गया था । परन्तु मेरी पत्नी रमा तीनों लड़कों को खिला-पिला-सुलाकर आँगन में बेचैन टहलती ही रह गईं । न आँसू, न विषाद — मन-मानस में केवल एक विचित्र-सी मूकता । तभी साढ़े ग्यारह बजे रात उन्होंने *स्पष्ट* रूप से महाराज जी की *वाणी* सुनी, **"पानी पिला दे, बड़ी जलन हो रही है।"** तभी ही उन्हें ज्ञात हो गया कि महाराज जी द्वारा त्यक्त पार्थिव शरीर को भस्मीभूत कर दिया गया है । (हम तो यही सोचते थे कि अन्य संतों की

तरह उनके शरीर को भी पद्मासन में ला भूमिगत कर समाधिस्त किया जायेगा ।) वाणी सुनकर शीघ्र ही उन्होंने पूजाघर में रखे महाराज जी के चित्र के आगे *काँच के एक गिलास* में जल भरकर रख दिया। (तब से नित्य ही ऐसे ही जल भर महाराज जी के चित्र के आगे रखने का नियम बन गया ।)

फिर भी पत्नी द्वारा उक्त तथ्य सुनकर भी मेरा शंकालु मन हृदय से इसे स्वीकार न कर सका । क्या यह पत्नी के मानसिक उथल-पुथल का ही नतीजा था कि (कल्पना में ही) उन्होंने महाराज जी की उक्त वाणी सुनी ? (मेरी शंका शायद प्रभु को रुची नहीं । और —)

कभी-कभी पत्नी थकान या अति निद्रा की झोंक में जल रखना भूल जाती थीं तो *उसी* रात ऐसा होता था कि ग्यारह बजे करीब निद्रा में उनका कंठ बुरी तरह सूख उठता और वे घबराहट के साथ उठ बैठतीं । तब उन्हें जो पहली बात याद आती वह होती '*कहीं महाराज जी के लिये जल रखना तो नहीं भूल गई*' और देखने पर *यही* सत्य निकलता । तब उनके लिये जल रखकर स्वयँ भी जल पान कर वे सो जातीं । दूसरे दिन ऐसी घटना प्रभु-लीला की चर्चा का विषय बन जाती हमारे लिये ।

परन्तु इससे भी मुझ शंकालु को तृप्ति नहीं हो पाई । और एक दिन रात को मैंने प्रभु से (चित्र में) पूछ ही डाला, '*सरकार, जल ग्रहण करते भी हो या यों ही हो रहा है यह प्रपंच ?*' बात आई गई हो गई । मैं भी भूल गया सब कुछ ।

परन्तु महाप्रभु कैसे भूलते ? जो जल रात को रखा जाता था उसे मैं ही सुबह कुल्ला-मन्जन कर प्रणाम करने के बाद स्वयँ ग्रहण कर लेता था। एक दिन सुबह उठकर, कुल्ला आदि कर प्रणाम करने पहुँचा तो देखा कि काँच के गिलास में जल *एक तिहाई* ही भरा है, यद्यपि ऊपर ढकी जर्मन सिल्वर की तश्तरी यथावत अपनी जंगह स्थित है। कहीं इधर उधर जल भी विफरा-गिरा नहीं है। प्रभु से अपनी कही बात तो मैं भूल गया और स्वभाववश पत्नी पर रोष दिखाते बोल पड़ा, "पूरा गिलास भरकर जल नहीं रखती हो महाराज के लिये ?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं तो रोज ही पूरा गिलास भर कर जल रखती हूँ। और कल रात की तो मुझे पूरी याद है कि पहले कुछ गिर पड़ा था गिलास में तो वह जल फेंककर मैंने उसे फिर से भरकर रख दिया था।"

तब पुनः ख्याल आया कि कहीं लड़कों ने तो कुछ गड़बड़ नहीं की? आँगन पार कर उनके कमरे में पहुँच उन्हें जगाकर पूछा तो उन्होंने कहा, "हम तो रात आरती के बाद पूजाघर में जाते ही नहीं। पहले ही प्रणाम कर आते हैं ।"

तब ? एकाएक महाराज जी से किये गये *अपने प्रश्न* की याद आ गई । अन्तर में रोमांच हो आया । मेरे प्रश्न, मेरी शंका का उत्तर दे दिया था महाप्रभु ने । उस दिन वह *बचा* जल, महाप्रभु का परम प्रसाद, सब में वितरण कर ही मैंने ग्रहण किया, परमानन्द की अनुभूति के साथ । सन्ध्या समय दादा को भी यह घटना सुनाई । (मुकुन्दा)

महाराज

मेरा एक मित्र है — नाम बिजौन चटर्जी । बाबा जी महाराज के पास मैं ले आया था उसे एक महान आर्थिक एवं पारिवारिक संकट से मुक्ति दिलवाने । महाराज जी के परम, अमोघ आशीर्वाद के फलस्वरूप, उसी की मामूली आमदनी पर निर्भर उसकी तीन बहिनों का विवाह देखते देखते २-३ वर्ष के भीतर हो गया — बिना विशेष दहेज दिये — अच्छे अच्छे घरों में !! (बंगाली ब्राह्मण के लिये *यह* एक चमत्कारपूर्ण कृपा थी बाबा जी की ।) और फिर कुछ ही वर्षों में *उसी प्रकार* दो अपनी कन्यायें भी सम्पन्न घरों में वैवाहिक बन्धन में बँध गईं !! बाबा जी के पास बिजौन अक्सर पहुँच जाता था ।

दिसम्बर १६७३ के तीसरे सप्ताह मैं बाबा जी महाराज के विरह में अपनी छुट्टियाँ वृन्दावन, कैंची आदि जगहों में बिता इलाहाबाद लौट आया था। तभी एक दिन बिजौन मुझे एलनगंज चौराहे पर मिल गया। बड़ी उत्फुल्लता से उसने मुझसे कहा, "जोशी जी, *कल* मुझे महाराज जी के दर्शन हुए ।" मैंने उत्सुक होकर पूछा, "कहाँ, कैसे ?" वह बोला, "मैं साइकिल से आफिस जा रहा था। चर्च लेन के आगे डाइमंड जुबली होस्टल के फाटक के पास बाबा जी रिक्शे में बैठकर आनन्दभवन की तरफ जा रहे थे। मुझे आफिस को देर हो चुकी थी और बाबा जी का रिक्शा भी आगे बढ़ने लगा था। तब मैंने उन्हें साइकिल पर से ही झुककर प्रणाम कर दिया। उन्होंने भी सिर झुकाकर मुस्कुराते मेरा प्रणाम स्वीकार कर लिया।" मैं अचम्भित होकर कुछ क्षण उसका मुँह ताकता रहा। फिर

शंकित हो पूछा, "बिजौन, तुमने *ठीक* से पहिचाना कि *वे* महाराज जी ही थे ?" तब वह अपनी स्वाभाविक हँसी के साथ बोला, "अरे जोशी जी ! अब आप पूछेंगे — बिजौन, तुमने *मुझे* ठीक से पहिचाना ? क्या मैं बाबा जी को भूल सकता हूँ ?" उसके चेहरे पर आश्वस्त-विश्वास का भाव पढ़कर मैंने कहा, "बिजौन तुम बहुत भाग्यवान हो । महाराज जी ने तो *१०* *सितम्बर* को ही महासमाधि ले ली थी ।" मेरी बात सुनकर वह कुछ देर मुँह बाये हक्का-बक्का खड़ा रहा । फिर एक लम्बा उच्छ्वास लेकर बोला, "हाँ, जोशी जी ! मैं सचमुच बहुत भाग्यवान हूँ ।"

उक्त लीला कर महाराज जी ने मुझे भी बता दिया कि वे *कहीं नहीं* गये हैं, यहीं हैं । (मुकुन्दा)

इसी प्रकार इलाहाबाद में भी और लखनऊ में भी बाबा जी ने अपनी महासमाधि के बाद भी श्रीमती एवं श्री विजय चन्द्र चौधरी को भी अपने ही स्वरूप में (स-शरीर) दर्शन दे दिये थे ।

महाराज

बाबा जी ने वर्ष १९७३ में अपना पार्थिव शरीर त्याग ही दिया था । यद्यपि उसी ११ सितम्बर को अपने आँगन में निर्विकल्प-सी मूक हुई मैं ११$^{१}/_{२}$ बजे रात बाबा जी की स्पष्ट वाणी में **"पानी पिला दे, बड़ी जलन हो रही है"** सुन चुकी थी, और पुनः *१९७४ जून* में शिला आसन के पास खड़ी यह भी उनकी वाणी में सुन चुकी थी कि **"....... को ......रुपिये भेजा करो ।"** फिर भी मन में यही धारणा पुष्ट थी कि, "जो *गया* वह पुनः स-शरीर प्रगट नहीं हो सकता है ।" इस धारणा के विरोधाभास में यह भी कई लोगों के बारे में सुन चुकी थी कि उन्हें बाबा जी स-शरीर पुनः दर्शन दे चुके हैं। (जैसे श्री विजय चन्द्र चौधरी और उनकी पत्नी को तथा बिजौन चटर्जी को।) परन्तु तब भी मैं अपनी उक्त धारणा में संशोधन करने को तैयार नहीं हुई ।

परन्तु शायद, बाबा जी को मेरी इस धारणा को मिटाने की सूझ गई — केवल दया-कृपा वश । उसी १९७४ में मैं और मेरे पति गुरु-पूर्णिमा के बाद कैंचीधाम से इलाहाबाद लौटते हुए इनके बड़े भाई (श्री पूरनदा) के घर भी हल्द्वानी में रुक लिये । रात गर्मी के कारण *हम* सभी महिलायें बाहर आँगन में चारपाइयों पर लेटी थीं । कई प्रकार के सोच-विचारों एवं

गर्मी के कारण भी नींद ठीक से आ नहीं रही थी । तभी मैंने स्पष्ट देखा कि महाराज जी एकाएक सामने प्रगट हो गये और मुस्कुराते हुए मेरी चारपाई की तरफ आने लगे !! मैं न केवल चौंक उठी यह सब देखकर वरन कुछ भयभीत भी हो गई और चिल्ला उठी अपनी जेठानी जी को सम्बोधित करते, "अरे ! आप के यहाँ (घर) तो महाराज जी साक्षात् रहते हैं !!" और तभी महाराज जी लोप हो गये ।

तब से अब मुझे किसी अन्य के भी द्वारा बाबा जी के हुए दर्शनों में न तो आश्चर्य होता है और न कोई शंका । (रमा जोशी)

महाराज

ग्यारह सितम्बर, १६७३ की देर शाम के बाबा महाराज के पार्थिव शरीर को भस्मीभूत होते देख रहा था मैं वृन्दावन आश्रम के प्रांगण में — मूक रुदन करता । तभी मैंने देखा कि बाबा महाराज श्रीराम तथा श्री लक्ष्मण के मध्य एक ऊँचे सिंहासन पर विराजमान हैं और हनुमान जी उन सबकी परिक्रमा कर रहे हैं !! महाराज जी नीचे की ओर देखते अति प्रसन्न मुद्रा में हैं !! (जब कि उनका ही पार्थिव शरीर, जिसे वे पिछली रात १ बजकर १५ मिनट तक धारण किये थे नीचे पवित्र वेदी पर लुप्त होता जा रहा था अग्निदेव की कोख में !!) अत्यन्त विस्मित होता अपना रुदन, अपना दुख भूला मैं यह दृश्य मूक आश्चर्य के साथ देखता रहा बड़ी देर तक — स्वयं भी एक विचित्र प्रकार की आनन्दानुभूति में सराबोर हुआ । तब कुछ चेतन्य हो मैंने बाबा महाराज से पूछ ही दिया कि, "महाराज ! अब पुनः दर्शन कब होंगे आपके ?" (मैं तो इस सारे दृश्य को एक जागृत स्वप्न-सा समझे था, और यूँ ही प्रश्न कर बैठा — यही समझ कि अब भला दर्शन सम्भव ही कहाँ हो पायेगा ।) पर *तभी* बाबा महाराज ने उत्तर भी दे दिया **"जब तू ५२ वर्ष का हो जायेगा !!"** मैं और भी अधिक आश्चर्य में डूब गया बाबा महाराज की यह वाणी सुनकर । उत्तर सुनकर एक ओर जहाँ परम शान्ति मिल गई मन-मानस को तो दूसरी ओर मेरा अपना विश्वास (जो कुछ देर के लिये डगमगा गया था) *कि बाबा महाराज तो अजर-अमर हैं — यह शरीर-लीला तो उनका एक और खिलवाड़ मात्र है* — पक्का हो गया ।

फिर कई वर्ष बीत गये । उक्त घटना की विस्मृति भी हो चली थी। पर बाबा जी की वाणी ? अपनी चाकरी के मध्य मैं अस्कोट (पिथौरागढ़) में सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर के पद पर नियुक्त था। बच्चे आगरा में थे। विशेष रुचि रह नहीं गई थी नौकरी से, वह भी घर से इतनी दूर । अस्तु, यूँ ही घूमता रहता था आसपास के क्षेत्रों में परिभ्रमण-सा करता मन संयत रखने को । तभी एक दिन मुन्स्यारी के दौरों के मध्य मैं एक निर्जन एकान्त स्थान — कालमुनि शिला — पर जा बैठा । विचारों का क्रम प्रारम्भ हो गया । बाबा महाराज की कई लीलायें स्मरण हो आईं । तभी एक *अन्य* वेष में बाबा जी महाराज प्रगट हो गये !! मैं तो तब उन्हें पहिचान न सका था किन्तु उन्होंने ही विभिन्न प्रकार से अपनी पहिचान करा ही दी मुझे — यह भी इंगित कर कि अब मेरी उम्र *५२ वर्ष* की हो गई !! (तभी मुझे वृन्दावन आश्रम की ११ सितम्बर, १६७३ वाले दृश्य की भी याद हो आई बाबा महाराज के उक्त आश्वासन के साथ ।) तब मेरे आनन्द का पारावार न रहा । पर फिर भी मुझे भ्रमित भी करने को बाबा जी कई प्रकार की अन्य बातें करते रहे कई प्रकार की *सीखें* देते हुए । फिर वे कुछ दूर जाकर अन्तर्ध्यान भी हो गये !!

पर इसके शीघ्र बाद ही मेरा तबादला लखनऊ को हो गया । क्या केवल *इस* दर्शन हेतु ही बाबा जी ने मुझे अस्कोट भेजा था ? (जगमोहन शर्मा – आगरा)

महाराज

जनवरी १६७८ में मेरी पत्नी का स्वास्थ्य एकाएक भीषण रूप से बिगड़ गया । **अल्सर** फूटकर उसका रक्त व मवाद एक गोला बनकर पेट के बाईं तरफ अटक गया । तब डाक्टरों ने मार्च ६ को *केवल* इसलिये पेट का आपरेशन कर डाला कि कहीं यह *गोला* केन्सर का रूप तो नहीं ले रहा है । पर ऐसा कुछ न निकला । पेट वैसे ही सी दिया गया ।

परन्तु उसी वर्ष अगस्त माह में उदर में वही भीषण पीड़ा पुनः उठी । तब मेडिकल कालेज के पाँच विभिन्न विभागों के वरिष्ठ डाक्टरों ने मिलकर जब परीक्षण किया तो पता चला कि पेट के दाहिने भाग की आँतों में कैन्सर पूरी तरह फैल चुका है । और अब **लिवर** भी लपेट में आने वाला है । २४ अगस्त को मुझे इसकी सूचना दे दी गई कि जीवन अधिक से अधिक दो माह का शेष है, और कि व्यापक रूप से फैल जाने

के कारण कैन्सर-प्रभावित आँतों को अधिक परिमाण में नहीं निकाला जा सकता है — फिर भी आपरेशन के बाद ६-८ माह का जीवन बढ़ सकता है। अस्पताल में अपने तीनों बेटों को यह स्थिति बता कर मैं घर वापिस आ गया । अभी तक संयत बना मेरा हृदय टूट-सा गया ।

२५ अगस्त को श्री कृष्ण-जन्माष्टमी थी । **अशुभ** के भय से किसी तरह पूजा की । प्रसाद लेकर अस्पताल पहुँचा, पत्नी को, बच्चों को दिया। पता चला कि पत्नी तो महाकाल के आलिंगन को तैयार है और दिन में लड़कों को विभिन्न निर्देश देती रही हैं तथा दूसरी ओर मझला लड़का पन्नू, आपरेशन हेतु विभिन्न दवाएँ और आपरेशन-संयंत्र जुटाता रहा है । देखरेख में बड़ा लड़का अन्ना रात को भी और दिन भर भी व्यस्त रहा तथा तीनों लड़के हिम्मत के साथ सेवा में लगे रहे — बाबा महाराज को याद करते। परन्तु मैं स्वयं अस्पताल से पुनः लौटकर और भी टूट गया और *उसी* अवस्था में बाबा जी महाराज को आर्त होकर पत्र लिख डाला कि **आपके रहते मेरे लिये यह अन्धेर क्यों हो रहा है** — आदि आदि । इसी प्रकार २६ अगस्त तथा २७ अगस्त को अपने आराध्य को २ पत्र और लिखे और उन्हें एक साथ कैंचीधाम को भेज दिया । महान आश्चर्य, पर पाँचवे-छठे दिन ही कैंची से श्री माँ द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हो गया, **"घबराना मत, *कैंसर नहीं* है, और *है भी तो महाराज जी को ठीक करना पड़ेगा* ।"**

परन्तु इसे भी मैंने सान्त्वना का ही एक अंग समझा । शाम को पत्र लेकर पत्नी को दे आया जिसे उन्होंने अपने सिरहाने रख लिया । इस बीच **अपनी शाश्वत शक्ति** के प्रति मेरी शंका दूर करने हेतु महाराज जी ने एक और **खेल** कर दिया था — (मेरे भतीजे सागर को तीन बजे अपरान्ह स्वप्न में दर्शन देकर कि) — मैं और सागर महाराज जी को अपने कन्धों में बिठाये डा० नैथानी के कमरे में ले गये तथा वहाँ उन्हें एक कुर्सी पर बिठा दिया जहाँ डाक्टर नैथानी अपने विद्यार्थियों को एक डिब्बे से *विचित्र* आकार की गोलियाँ-सी निकाल कर बता रहे हैं — उनसे तरह तरह के आकार बनाकर कि कैन्सर *कैसे होता* है और *कैसे फैलता* है । तभी महाराज जी ने जो *अब तक* गौर से यह सब देख रहे थे, डा० नैथानी से गोलियाँ लेकर कहा ***'अब मैं बताता हूँ कि कैन्सर कैसे ठीक होता है'***, और गोलियों से **विपरीत दिशा में खेलने** लगे !! सागर की नींद टूटी और वह दौड़ा दौड़ा अपने घर से मेरे पास यह कहने आया कि,

"कक्का ! चाची ठीक हो जायेगी । महाराज ने बता दिया है ।" और मुझे अपना स्वप्न सुनाया, कहते हुए कि, "मेरे कन्धे में अब भी महाराज के वजन का दर्द है ।" परन्तु मेरे हृदय ने इस चमत्कार की संभावना से इन्कार कर दिया कि एक तो दिन का स्वप्न, ऊपर से थर्ड स्टेज का कैन्सर — कैसे ठीक हो सकता है । सागर से इतना ही कहा, "यह स्वप्न तेरी सद्भावना का ही प्रतिबिम्ब है, और कुछ नहीं ।"

परन्तु, श्री माँ का कथन कि, **'प्रथम तो कैन्सर नहीं है, और फिर, अगर है भी तो महाराज जी को ठीक करना पड़ेगा'** कैसे असत्य होता ? आपरेशन टलता चला गया — कभी बिजली नहीं तो कभी डाक्टर के विश्वसनीय सहायक नहीं, कभी (उनके घर में पारिवारिक अशांति के कारण) उनका **मूड** नहीं तो कभी उन्हें मेडिकल कान्फ्रेन्स हेतु जयपुर जाना पड़ गया । और इस तरह तीन सप्ताह यूँ ही बीत गये, यद्यपि हम अपनी ओर से हर तरह से, हर परिस्थिति के लिये तैयार थे ।

और उधर, जब से कैंची से पत्र प्राप्त हुआ, मेरी पत्नी में एक नयी स्फूर्ति, उत्साह की वृद्धि-सी होने लगी थी — बातों में और हरकतों में । और *जिस* दिन आपरेशन होना निश्चित हुआ उसकी पहली शाम को जब डाक्टर नैथानी बताने आये तो उन्होंने पाया कि पत्नी के चेहरे का रंग काफी बदल चुका है । उनके मुँह से निकल गया, "आज तो तुम काफी अच्छी दिख रही हो ।" पत्नी ने उत्तर दिया, "हाँ डाक्टर साहब, आज तो मैं अकेले अस्पताल का चक्कर काटकर आई हूँ, और अब बहुत कुछ खाने भी लगी हूँ !!" (कुछ ही दिन पूर्व तक तो उन्हें अटैच्ड बाथरूम में भी सहारा देकर ले जाना पड़ता था !!)

सुनकर डाक्टर साहब कुछ देर सोचते रहे फिर बोले, "ऐसा है तो एक बार फिर सोचना पड़ेगा आपरेशन के बारे में।" और चले गये । दूसरे दिन से तीन दिन तक उन पाँच विशेषज्ञों द्वारा पुनः परीक्षण प्रारम्भ हो गया । इन्डोस्कोपी भी हुई । पता चला कि पेट में, आँतों में कहीं कोई भी लक्षण नहीं है कैन्सर का !! सब कुछ नार्मल है !!

तब २१ ता० सितम्बर को उन्हें अस्पताल से छुट्टी दे दी गई । पर फिर भी डिस्चार्ज रिपोर्ट में डाक्टरों ने **अपनी बचत** के लिये **कैन्सर** ? लिख ही दिया प्रश्न चिन्ह लगाकर !! उधर छोटी माँ (जीवन्ती माँ) ने वृन्दावन में महाराज जी के **तत्व-पीठ** के समक्ष रमा के स्वास्थ्य हेतु

अखण्ड रामायण पाठ का संकल्प ले रखा था । अस्तु, हम वृन्दावन गये और महाराज जी के प्रति कृतज्ञता-रूप अखण्ड रामायण पाठ सम्पन्न किया । फलस्वरूप, अगले ६-१० वर्षों तक मेरी पत्नी ने जैसा स्वास्थ्य पाया, वह उन्हें जीवन-पर्यन्त न पहले और न बाद में, प्राप्त हो सका था । आज भी वे डायबिटीज की मरीज होते हुए भी गृहस्थी के सभी कार्य कर लेती हैं । (मुकुन्दा)

महाराज

पत्नी के साथ पूर्व के एक लीला के संदर्भ में कि, **'तेरे तीन तो थे ही तुझे तंग करने को, एक मैं भी हो गया'**, के साथ बाबा जी की महासमाधि लीला के बाद की एक घटना याद हो आई । वर्ष १९९० की बात है, दिसम्बर आधा बीत चुका था । मैं सुबह साढ़े नौ-दस बजे के करीब गमलों में पौधों की देखभाल में लगा था । इतने में फाटक के बाहर श्वेत-काषाय वस्त्र पहने ३०-३५ वर्ष का एक व्यक्ति आकर खड़ा हो गया जिसके कन्धे से एक झोला लटका था और हाथ में एक पुस्तक-सी थी जिसे मैंने चन्दे की रसीद बुक समझा । उसने मुझे इशारे से बुलाया । स्वाभाविक था मेरा सोचना कि चन्दा माँगने आया है । सो एक-दो रुपये देकर उसे टालना चाहा तो वह बोल उठा, "मुझे पैसे नहीं चाहिए । पानी पिला दो ।" (इतनी ठंड में पानी ?) तभी वह बोल पड़ा कि वह शिरडी-आश्रम से आया है । शिरडी-आश्रम का नाम सुन मैंने फाटक खोला और बाहर ही कम्पाउण्ड में एक आराम कुर्सी लाकर उसे बिठा दिया और अन्दर चला गया पानी लाने । रसोईघर में जाकर पत्नी से ये बात कही तो उन्होंने कहा, "शिरडी-आश्रम से आया है, *केवल* पानी क्यों दे रहे हो ? द्वादशी है आज, कुछ प्रसाद भी ले जाओ ।" मैंने कहा, "तो तुम्हीं जाओ यह सब लेकर ।" तब उन्होंने एक स्टील की तश्तरी में कुछ फल और मिठाई रखकर और साथ में पानी का गिलास ले जाकर उसे दिया । प्रसाद पाते पाते वह पत्नी से बातें करने लगा कि — वह शिरडी से आया है — आप लोग भी वहाँ अवश्य आयें — आपके सब मनोरथ पूरे हो जायेंगे — आप धर्मात्मा लोग हैं — आदि आदि । तब पत्नी ने कहा, "बाबा, हम तो पूर्व में ही दीक्षित हो चुके हैं और अब हमें अपने गुरु जी के सिवा और किसी से भी कोई अपेक्षा नहीं है । हमारे गुरुदेव के तो कई आश्रम हैं । हम लोग वहीं जाते हैं । हमारे गुरु जी **बाबा नीब करौरी** हैं"

— आदि आदि । तब वह व्यक्ति पुनः बोला, "यह तो बड़ी अच्छी बात है। गुरु-भक्ति से ही सब प्राप्त हो जाता है ।" पुनः बोला, **"तुम्हारे तीन बेटे हैं। दो तो ठीक हैं। पर एक कुछ चंचल है।** ***एक और भी बेटा है तुम्हारा जो दूऽऽर से तुम्हारी सेवा करता है*** **।"** (उस वक्त इस **चौथे बेटे** की बात से मेरा तो ध्यान अपने भतीजे रब्बू की ही तरफ गया था।) **"अपने तीसरे बेटे से कह देना कि** ***अप्रैल*** **में उसे नया काम मिल जायेगा। पर उसे चेता देना कि साझे में कुछ भी काम न करे, न व्यापार।"** तब पत्नी ने सोचा कि ऐसी बातें कर यह हमें मोहित करना चाहता है, तो बोलीं, "तुम भी तो मेरे बेटे के समान हो। हमें तो अब अपने बाबा जी का ही भरोसा है, वे ही सब संभालेंगे। ये थोड़ी सी तुच्छ भेंट स्वीकार करो।" और उसके झोले में ११) रु० और कुछ फल डाल दिये। जाते जाते वह व्यक्ति हमें पुनः शिरडी आने का निमन्त्रण दे गया और अपना नाम *जगन्नाथ कुलकर्णी* बता गया (कि मेरा नाम लेने से वहाँ तुम्हारी सब व्यवस्था हो जायेगी ।)

रसोईघर में लौटकर उस व्यक्ति की कही बातों के विवेचन में एकाएक दोनों के दिमाग में उसके शब्द कि, **"एक और भी है जो दूर से तुम्हारी सेवा करता है"** कौंध गये !! ये *महाराज जी तो नहीं थे ?* ***'तेरे तीन तो थे ही एक मैं भी हो गया ।'*** कहा था उन्होंने !! मैं दौड़कर पुनः फाटक के बाहर गया, पत्नी भी पीछे पीछे आईं — कहीं भी न दिखा वह व्यक्ति, *न* आसपास के घरों में था और *न* मेरे घर से मुख्य सड़क के सम्पर्क मार्ग में (जिसे पार करने में ४-५ मिनट लग जाते हैं) — और *न* उसकी वह बस दिखी जिसके बारे में उसने कहा था, **"हमारी बस बाहर सड़क में खड़ी है ।"**

परन्तु देर हो चुकी थी—हम अवसर चूक गये थे। यही सोचकर संतोष कर लिया कि **आये तो**— किसी रूप में ही सही, (यद्यपि अपने ऐसे अहोभाग्य पर फिर भी शंका बनी रही— **मन शंकित वंचित भक्ति धने** ।)

परन्तु (१) तीसरे लड़के ने फरवरी माह में अपनी पूर्व की **हैक्स्ट** कम्पनी हमारे अज्ञान में छोड़ दी थी, (२) उसे *अप्रैल* में सदर्न पेट्रोकेमिकल्स में एक्जीक्यूटिव पोस्ट मिल गई, (३) *इसके पूर्व का अपना साझा व्यापार* करने का इरादा भी स्वतः *छोड़* दिया उसने !! (मुकुन्दा)

महाराज

वर्ष १९९० में १५ जून के *कैंचीधाम के* समारोह के पूर्व भागवद्-सप्ताह के अवसर पर मद्रास निवासिनी एक महिला, श्रीमती पुष्पा ने **परीक्षित** बनकर भागवत सुनी थी। उनके साथ उनके भाई श्री अमरलाल भी आये थे जो काफी अस्वस्थ चल रहे थे । पर अपने को पूरे सप्ताह (७ जून से १३ जून तक) पूरी लगन से भागवद्-पूजा कथा, हवन-यज्ञ तथा भण्डारे में समर्पित करने के फलस्वरूप वे स्वयँ को बहुत स्वस्थ महसूस करते रहे । १६ जून को मद्रास जाने के पूर्व अपने स्वास्थ्य के प्रति उन्हें काफी उत्साह रहा । मद्रास पहुँचने पर उनके मित्रों और सम्बन्धियों ने भी उनके स्वास्थ्य में आये सुधार पर टिप्पणी की तो उन्होंने कैंची आश्रम के प्रताप तथा वहाँ प्राप्त *आनन्द* को ही इसका मूल कारण बताया ।

परन्तु ४ जुलाई १९९० को ही अचानक उनका स्वास्थ्य पुनः बिगड़ गया । वे नर्सिंग होम में भरती हो गये। उनकी ऐसी हालत देख उनके ज्येष्ठ पुत्र ने उनकी जन्म-पत्री एक प्रकाण्ड ज्योतिषी को *इस हेतु* दिखाई कि वे अरिष्ट निवारण हेतु कुछ विधान बतायें। पर ज्योतिषी महोदय को *न* तो यह बताया कि वे अस्वस्थ हैं और न यह कि वे **कोमा** की स्टेज में जा चुके हैं । ज्योतिषाचार्य ने गणनाकर बताया कि, "इनको तो इस वक्त **कोमा** की स्थिति में होना चाहिए । *पर ये जीवित ही कैसे हैं ?* इनकी मृत्यु तो १४ जून (१९९०) को ही हो जानी चाहिए थी । परन्तु, लगता है, ये *उस समय* किसी ऐसे स्थान में होंगे *जहाँ पर* मुख्य रूप से हनुमान जी की आराधना होती है और जहाँ *कोई बहुत बड़ी शक्ति* काम करती है *जिसके प्रभाव* से इनका मृत्यु योग एक माह के लिये *टल* गया है। पर *अब* यदि १४ जुलाई (१९९०) का दिन भी सकुशल बीत जाये तब शायद ये बच जायेंगे ।"

परन्तु १४ जुलाई (१९९०) को ही अमरलाल जी ने अन्ततः शरीर छोड़ दिया ।

(अमरलाल जी कैंची आ ही गये थे । और उन्हीं की बहिन **परीक्षित** बनी थीं । बाबा जी को भागवद्-सप्ताह और १५ जून के भण्डारे के निर्विघ्न समापन हेतु अमरलाल जी को १ माह की आयुर्वृद्धि प्रदान करनी पड़ी !! **महामृत्यु** में भी हस्तक्षेप करना पड़ा !!)

महाराज

श्रीमती सरस्वती साह को उनके अनुशासन के प्रति समर्पित भावों के कारण बाबा महाराज ने प्रारम्भ से उन्हें **कोतवाल माई** नाम दे दिया था। हनुमान जी के प्रति एक निष्ठ इस भक्त माई ने अपने जीवन में घटित बाबा जी तथा हनुमान जी की उनके और उनके परिवार के ऊपर की गई अनेक कृपा-गाथाएँ सुनाईं जिनमें से दो ऐसी कृपा-गाथाओं को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है ।

श्रीमती साह वृन्दावन आश्रम में बाबा महाराज के मंदिर में उनके समक्ष श्री हनुमान चालीसा का पाठ कर रही थीं । पास ही में मंदिर की परिक्रमा में बैठीं श्री माँ राम-राम लिख रही थीं अपनी राम-नाम पुस्तिका में । पाठों के पूर्व उन्होंने श्री माँ को जब प्रणाम किया तो माँ का आँचल स्वतः ही (बिना किसी वायु के झोंको के ही) कोतवाल माई के सिर पर लहरा गया । *ऐसा ही तब भी हो गया* जब अपने पाठ के पारायण के उपरान्त उन्होंने महाराज जी को नमन कर माँ को भी पुनः प्रणाम किया ।

तभी प्रणाम के बाद सिर उठाने पर उन्होंने सामने पूर्व की तरफ आकाश में एक चमकता हुआ तीर-सा प्रकाश पुंज देखा । न तब आकाश में बादल थे न आँधी-पानी का चिन्ह । वे यह देखकर तुरन्त खड़ीं हो गईं माँ से कुछ हटकर । और उनके देखते देखते वह तीर-सा प्रकाश पुंज एक *गोले* में बदल कर मंदिर की तरफ तीव्र गति से आने लगा । तभी मंदिर के पुजारी ने भी कहा कि बिजली गुल हो गई है । स्पष्ट था कि वह प्रकाशपुंज आकाश-विद्युत थी । श्री माँ ने भी देखा और *तभी* उस वेग से आते हुए उस गोले ने अपनी दिशा ही एकाएक बदल दी !! और वह चक्कर काटता आश्रम से पूर्व में ६००-७०० गज दूरी पर एक अधबने मंदिर तथा उसमें स्थापित (परन्तु अभी अप्रतिष्ठित) हनुमान विग्रह से धमाके के साथ जा टकराया और पृथ्वी में समा गया — मंदिर तथा हनुमान मूर्ति को खंड खंड करता हुआ, (यद्यपि मंदिर में लहराता झंडा फिर भी यथावत रहा !!)

परन्तु तब तक पाँवों में खड़ी सरस्वती माई को भी उस आकाश विद्युत ने अपने प्रभाव क्षेत्र में ला दिया था जिसके कारण उनका मुँह श्यामल हो गया और धक्के के कारण वे अपनी ही जगह पर खड़ी खड़ी ३-४ बार घूम गईं और फिर गिर पड़ीं । परन्तु बाबा जी, हनुमान जी तथा

श्री माँ के आँचल ने उस विद्युत गोले की इतने पास आ जाने के बाद भी दिशा बदल कर न केवल मंदिर-आश्रम को बचा लिया वरन कोतवाल माई के प्राणों की भी रक्षा कर दी। काफी देर बाद उपचारों के उपरान्त कोतवाल माई संयत हो पाईं ।

(इस घटना के फलस्वरूप उस खंडित मंदिर का पुनः निर्माण कराना पड़ा और उसमें प्रतिष्ठित हनुमान जी का नाम ही **बिजली वाले हनुमान जी** पड़ गया !!)

महाराज

मेरा पुत्र अजय बी० एस० एफ० में असिस्टेन्ट कमान्डेन्ट की हैसियत से दिल्ली में नियुक्त था । वर्ष १९९३ के जाड़ों में एक दिन वह अपनी रात की ड्यूटी हेतु अपने निवास से स्कूटर में निकला । चलते वक्त उसने कई सरकारी कागजात जिनमें दफ्तर के कुछ विशेष गोपनीय पत्र, उसके अपने १५,०००) रु० के हिसाब के कागजात तथा अपने कमाण्डेन्ट के भी निजी दस्तावेज शामिल थे, *ऐसे ही* खुली स्थिति में स्कूटर की जालीदार डिक्की में डाल लिये थे । रात का वक्त, तेज हवा तथा स्कूटर के मार्ग में जहाँ तहाँ उचकने-उछलने के कारण कागजात धीरे-धीरे, उसके अनजाने में, डिक्की से बाहर निकल यत्र-तत्र उड़ते रहे । आफिस पहुँचने की जल्दी में तथा मंस्तिष्क में आफिस में किये जाने वाले कार्यों के बारे में उलझे रहने के कारण अजय को इस घटना का कुछ भी पता न लग पाया। परन्तु डिपो पहुँचकर उसने जो कागजातों को निकालने के लिये डिक्की में हाथ डाला तो वहाँ कुछ भी न था। घबराहट और चिन्ता में डूबा अजय उल्टे पाँव उसी मार्ग में स्कूटर दौड़ाने लगा जिससे वह आया था । परन्तु कहाँ मिलते वे कागज — उस तेज हवा में न मालूम कहाँ उड़ चले होंगे। निराश हो वह आफिस को लौट चला। मार्ग में पड़ते राजेन्द्रनगर थाने में उसने रिपोर्ट लिखा देना बेहतर समझा। उसकी मिलिटरी की वर्दी देख थानेदार ने रिपोर्ट तो लिख ली परन्तु स्पष्ट भी कर दिया कि उन खुले कागजों का इस तेज हवा में मिल पाने का कोई प्रश्न नहीं उठता ।

हताश हो अजय पुनः डिपो आ गया और फोन द्वारा कमाण्डेन्ट को भी घटना के बारे में सूचित कर दिया । कमान्डेन्ट के पास उसे धैर्य दिलाने के सिवा उस वक्त और क्या होता । बैठे बैठे अजय को प्रेरणा

मिली कि एक बार फिर ढूँढा जाये और वह *हनुमान चालीसा का पाठ करता* उसी मार्ग पर फिर चल पड़ा । एक जगह उसकी गाड़ी स्वतः रुक गई । नीचे देखने पर एक लिफाफा-सा दिखाई पड़ा पर उसके कागजों में कोई लिफाफा तो था नहीं । वह आगे बढ़ गया, और अन्त में पुनः निराश हो लौट चला भरे मन से महाराज जी को याद करता कि, '*महाराज, अब तो आप ही अपना चमत्कार दिखाओ* ।' और आगे बढ़ते उसका स्कूटर पुनः *स्वतः* ही *उसी* जगह फिर रुक गया *जहाँ* पहले उसने लिफाफा पड़ा देखा था !! अबकी उसने जो लिफाफा उठाया तो पाया कि उसमें कुछ कागजात भरे हैं !! हेड लाइट की रोशनी में देखा तो पाया कि *ये तो उसी के कागजात हैं* !! और केवल कुछ ही कागज नहीं वरन एक एक कर *सभी* !! यही नहीं — वरन वह लिफ़ाफा भी एक डोरे से लिपटा बँधा हुआ था (कि कोई कागज फिर न निकल जाये !!) मारे हर्ष के अजय की आँखें बरस पड़ीं । थाने पहुँचकर कागज दिखाते अजय ने जब अपनी रिपोर्ट वापस माँगी तो थानेदार भी इस अचम्भे को जान हतप्रभ रह गया । कमान्डेन्ट भी फोन से सूचना प्राप्त कर आश्चर्य-चकित रह गया । **'जो सुमिरे तुमको उर माहीं, ताकी विपति नष्ट है जाहीं ।'** (सरस्वती साह)

महाराज

श्री ओम प्रकाश सिक्का वर्ष १९९३ की होलियों के पूर्व वृन्दावन आश्रम में महाराज जी एवं श्री माँ के दर्शनार्थ कार में हल्द्वानी से अपनी पत्नी के साथ चल पड़े। बदायूँ के आगे एक गाँव के पास देखा कि सड़क में आर पार पत्थरों की बाड़ लगी है। मन में सोचा कि गाँव के लड़कों ने होली का चन्दा वसूलने हेतु ऐसा किया होगा । उस बाड़ को एक छोर से काटते हुए ये आगे निकल गये । परन्तु कुछ दूर पर एक वैसी ही पत्थरों की बाड़ फिर मिल गई । इसे भी इन्होंने उसी तरह पार कर लिया । परन्तु सोचते रहे कि सड़क पर आती-जाती न तो कोई अन्य गाड़ी दिखाई दे रही है, न स्कूटर-मोटर साइकिलें ही। आगे ही एक पुल आ गया जिसका रास्ता भी एक बड़े पत्थर से रोका गया था। अब ये कुछ पशोपेश में पड़े कि इतना बड़ा पत्थर कैसे हटायें। तभी एकाएक वहाँ एक व्यक्ति प्रकट हो गया जिसने इन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, **"यहाँ कहाँ जा रहे हो, जानते नहीं पुल टूट गया है ? रास्ता कचला से होकर है अब । अच्छा, अब आ ही गये हो तो जाओ । तुम्हारी गाड़ी निकल जायेगी ।"**

और उस व्यक्ति ने वह पत्थर स्वयँ हटा लिया । सिक्का जी तो श्री माँ-महाराज जी के दर्शन की आशा में मदहोश थे। उन्हें दिख ही नहीं रहा था, न समझ में आ रहा था कि *यह सब* क्या हो रहा है और कि पुल टूटा है । ये गाड़ी चलाते रहे । पर जब पुल पार पहुँचे तो *वही* व्यक्ति पुनः वहाँ भी दिखा — पुल के उस पार से रास्ता रोकने के लिये पुल के अन्त में रखे पत्थर को हटा रहा था !! उस वक्त इन्हें यह भी होश नहीं रहा कि *वही* व्यक्ति पुल के इस पार भी इतने अल्प समय में कैसे आ गया !! वाह प्रभो ! अपने को इतनी सरलता से प्रगट भी कैसे होने देते ।

पुल के आगे भी पूर्व की तरह पत्थरों की बाड़ दो जगह मिली । उन्हें पार कर ये वृन्दावन पहुँचे । हनुमान जी एवं महाराज जी को प्रणाम किया — फिर श्री माँ को प्रणाम करते अपने मार्ग के अनुभव सुनाये तो श्री माँ ने केवल इतना ही कहा, **"महाराज जी क्या नहीं कर सकते ।"** तभी इनके मस्तिष्क में विचार कौंधा — ***'महाराज जी ही तो नहीं थे उस व्यक्ति के रूप में ?'***

पर अवसर तो चूक ही गये थे सिक्का जी ।

महाराज

बम्बई में मेरी पड़ोसिन मित्र, श्रीमती तारा झाँवर ने अपनी बेटी का एक विचित्र अनुभव बाबा जी महाराज की चर्चाओं के मध्य सुनाया ।

वर्ष १६८८ में एक रात उनकी पुत्री, रुची ने एक स्वप्न देखा था — एक *मंदिर जैसे स्थान में* भयंकर आकार का एक काला जानवर एकाएक उस पर झपटा था । पर तभी बाबा जी ने (*स्वप्न में कम्बल ओढ़े एक अधबूढ़े व्यक्ति ने*) अपनी ओर खींचकर बचा लिया । (तब रुची ने न तो बाबा जी के बारे में सुना था और न बाबा जी को देखा ही था ।) कुछ काल बाद वह स्वप्न भी भूल गई ।

पाँच वर्ष बाद, १६६३ में जब वे माँ-बेटी पर्यटन हेतु नैनीताल गये तो हनुमान गढ़ भी पहुँचे। और वहाँ जब मंदिर तथा बाबा जी के चित्र को रुची ने देखा तो उसे अपना १६८८ का स्वप्न याद आ गया — वही मंदिर और वही कम्बल ओढ़े बाबा जी !! तब माँ बेटी बाबा जी के बारे में और भी जानकारी प्राप्त कर कैंचीधाम भी पहुँच गये जहाँ उन्होंने श्री माँ के भी दर्शन किये । माँ ने उन्हें महाराज जी का एक *फोटो चित्र* भी दे दिया ।

बम्बई लौटकर एक दिन जब रुची भरी बस में दरवाजे के पास खड़ी अपने स्कूल जा रही थी तो गतिशील बस के *एकाएक* रुक जाने से वह झटके के साथ बस से उछलकर बाहर गिर गई । परन्तु *उछलकर बाहर गिरने की प्रक्रिया के मध्य*, उस विषम अवस्था में भी, उसके नेत्रों के आगे स्वतः ही *माँ का दिया हुआ बाबा जी का चित्र कौंध* गया और बस से गिरते गिरते *उसे लगा* कि किसी ने उसे पकड़ कर थाम लिया है !! (किन्तु सड़क पर आते आते वह दहशत के कारण मूर्छित भी हो गई । साधारण उपचार के बाद रुची पुनः सचेत हो गई ।)

गतिशील बस से इस प्रकार सड़क पर एकाएक गिर जाने की अवस्था में चोट लगने अथवा हाथ-पाँव-सिर आदि की हड्डी टूटने की कल्पना की जा सकती है। परन्तु रुची को तो खँरोच तक न आई !! बाबा जी ने बीच में ही थाम जो लिया था उसे। (श्रीमती गीताञ्जलि—बम्बई)

महाराज

मुरादाबाद के एक परिवार का एक बालक, संदीप राज जब वर्ष १९८३ में १० ही वर्ष का था, तभी से कैंचीधाम अपने परिवारी जनों के साथ आया करता था। श्री माँ-महाराज के आशीर्वाद के फलस्वरूप वह उम्र प्राप्ति के साथ अपने शिक्षा-क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक अग्रसर होता गया, और उसे रूस के एक मेडिकल इंस्टीट्यूट में डॉक्टरी-अध्ययन हेतु स्थान भी मिल गया ।

अपनी पढ़ाई के मध्य फरवरी, सन १९९५ में एक दिन वह उस रूसी कॉलेज से अपने होटल आ रहा था तो मार्ग में रात के भोजन हेतु पाव रोटी आदि खरीदने लगा। तभी उसके पीछे ३-४ बदमाश लग लिये । पर जब वह लिफ्ट में चढ़ने लगा तो उनमें से केवल एक ही व्यक्ति लिफ्ट में घुसा जिसने घुसते ही २ नम्बर का बटन दबा दिया । फलतः लिफ्ट दो नम्बर पर ही रुक गई । परन्तु दरवाजा खुलते ही उसमें उसके बाकी ३ अन्य साथी भी धुस आये और दरवाजा बन्द होते ही उनमें से एक ने बड़ा-सा चाकू निकाल कर संदीप से कहा, "जो कुछ है दे दो चुपचाप ।" संदीप को कुछ ही पूर्व हो चुकी ऐसी ही घटना याद आ गई जब पहिचान लिये जाने के डर से गुन्डों ने एक व्यक्ति को लिफ्ट में ही मार डाला था। और यह सोचकर कि ये मुझे भी मार ही डालेंगे, भयभीत हुए संदीप ने

कहा, "जो कुछ चाहते हो ले लो, पर मुझे छोड़ दो ।" तब उन्होंने पहले तो उसकी किताबें टटोलीं, फिर जेबों की तलाशी ली और जो कुछ पाया उनमें उसे निकाल लिया, घड़ी उतार ली। तभी उनमें से (उनका सरदार-सा लगने वाले) एक व्यक्ति की दृष्टि संदीप के गले में पड़ी चेन पर पड़ गई । परन्तु *जैसे ही* झटके से उसने चेन उतारनी चाही तभी संदीप के गले में लटकता *बाबा महाराज का लाकेट* भी उसके हाथ में आ गया *जिसको देखते ही उसे न मालूम क्या हुआ* कि वह फौरन अपने साथियों से बोल उठा, "चलो" । और वे सब उसे अगले लिफ्ट-स्टाप पर छोड कर चले गये !!

महाराज जी ने केवल **अपने लाकेट** के **माध्यम** से ही रक्षा कर दी संदीप की !!

महाराज

विश्वास

कितना अनुभव-गम्य सूक्त वाक्य है — **विश्वासं फलदायकम्** जिसकी सत्यता-सार्थकता बाबा जी महाराज, पूर्व में भी और अब भी, जब-तब की गई अपनी अलौकिक लीलाओं से पुष्ट करते रहते थे/करते रहते हैं — *केवल विश्वास* की अपेक्षा है उनकी ऐसी कृपा की अनुभूति एवं सुफल प्राप्त करने हेतु (यद्यपि महाराज जी यह भी कहते रहते थे कि, **'विश्वास इतनी सस्ती चीज नहीं है कि कहने-सोचने से ही मिल जाये'** — और भी कि, **'विश्वास चाहिये — अन्ध विश्वास'** जिसमें तर्क-कुतर्क का कोई स्थान नहीं ।

हनुमान जी, बाबा जी महाराज एवं श्री माँ के प्रति ऐसे विश्वास को अपने अन्तर में संजोये भक्तों के जीवन में अनुभूत कुछ घटनाओं का विवरण पूर्व में दिया ही जा चुका है (जिनमें श्रीमती पुष्पा साह, श्री शिव प्रसाद घिल्डियाल, श्री ओम प्रकाश सिक्का के हार्ट अटैक की गाथा, श्रीमती श्यामा पन्त, श्रीमती शान्ता पाण्डे, श्रीमती कमला पाण्डे एवं श्री विजय साह की अनुभूत गाथायें प्रमुख हैं ।) आगे कुछ और भी गाथायें वर्णित की जा रहीं हैं जिनमें इन भक्तों के अन्तर में व्याप्त विश्वास ने ही

उन्हें महान विपत्ति से विमुक्त कर दिया । ऐसी और भी न मालूम कितनी ज्ञात-अज्ञात गाथायें होंगी ।

महाराज

मेरा सदा ही विश्वास रहा है कि महाराज जी के पावन आश्रम की हर वस्तु में स्वयँ महाराज जी की शक्ति, उन्हीं का परम प्रताप व्याप्त रहता है ।

वर्ष १९८० में मेरे छोटे लड़के को एक *ऐसी* बीमारी ने घेर लिया जिसका निदान कोई डाक्टर न कर पाया । कोई चर्म रोग बताता तो कोई दाद-खुजली और कोई बिगड़ा हुआ खसरा । किसी भी इलाज से कोई लाभ न हुआ और मर्ज दिनों दिन बढ़ता ही गया । इस कारण लड़का सूखता ही गया और उसकी तकलीफ की तड़पन बढ़ती गई । तब मैं अल्मोड़ा में थी । एक दिन जब मुझसे रहा नहीं गया तो मैं अपनी सास जी से बोली, "इसका इलाज मैं अब स्वयँ करूँगी ।" उन्होंने पूछा, "क्या करोगी ?" मैंने छोटा सा उत्तर दे दिया, "आप खुद देखियेगा ।" और लड़के को लेकर मैं सीधे कैंचीधाम पहुँच गई जिसकी प्रेरणा महाराज जी ने मुझे मेरे अन्तर्द्वन्द के बीच दी थी । अक्टूबर का महीना था और ठंड भी बहुत थी । परन्तु निर्भय होकर मैं लड़के को लेकर सीधे आश्रम के पार्श्व में बहती **उत्तर वाहिनी गंगा** जी के किनारे पहुँची और जमकर उसे गंगा स्नान कराया और फिर वैसी ही नग्नावस्था में उसे आश्रम के हवनकुण्ड के पास लाकर उसके सारे शरीर में भस्मी लपेट दी । तदुपरान्त *उसी* अवस्था में लाकर मैंने उसे श्री माँ के चरणों में **पटक** दिया। चौंककर जब श्री माँ ने पूछा कि यह सब क्या है तो मैंने उन्हें सारा हाल आद्योपांत बता दिया । श्री माँ ने लड़के के सर पर *हाथ फेरा* और कहा, **"जाओ, इसे कपड़े पहनाकर दोनों प्रसाद पाओ ।"** तब माँ-बेटे ने जमकर प्रसाद पाया, गंगाजल पान किया और शाम को अल्मोड़ा पहुँच गये ।

अपने पोते को एकदम स्वस्थ-नीरोग देखकर सास जी भी अचकचा गईं — "कैसे ठीक हो गया यह इतनी जल्दी ?" प्रश्न का क्या उत्तर होता ? (पुष्पा साह)

महाराज

श्रीमती मंजू (नैनीताल) अपने विवाह के पूर्व जब भी महाराज जी के दर्शन करने आती थीं तो अपने साथ बाबा जी के लिये, अन्य भोग-प्रसाद के साथ जल भी लाती थीं जिसे महाराज जी बड़े प्रेम से ग्रहण करते थे । एक दिन उन्होंने मंजू जी को एक कटोरी देकर कहा, **"ले, इसमें तू भी पीना जल ।"** उन्होंने महाराज जी का यह प्रसाद बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ ग्रहण किया ।

कालान्तर में उनका विवाह हो गया । ससुराल जाते वक्त वे अपने साथ *उस* कटोरी को भी ले गईं जिसे बड़े यत्न के साथ उन्होंने संभाल कर रखा । इधर महाराज जी ने शरीर-लीला भी कर डाली पर वे बराबर कैंची आती रहीं ।

एक बार वे एक असाध्य रोग की शिकार हो गईं । कोई इलाज उनके रोग की बढ़ती भीषणता को न रोक सका । अपना **अन्त** पास देख उन्होंने अपने पति और बच्चों को बुलाकर सब समझा दिया कि कहाँ क्या है और क्या करना है । रात को महाप्रभु का स्मरण कर वे जब सोईं तो **स्वप्न** में महाराज जी ने प्रगट होकर उनसे कहा, **'कटोरे से जल पी।'** सुबह जागने पर रात्रि के स्वप्न की याद आई तो उन्होंने *वह* कटोरी अपने बक्से से निकलवाई, उसे साफ करवाया तथा उसमें जल भरवाकर पहले महाराज जी को भोग लगाया और फिर स्वयँ पी लिया ।

और *उसी* के बाद उनके स्वास्थ्य में अप्रत्याशित रूप से सुधार आने लगा और कुछ ही काल में वे पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गईं !!

महाराज

मेरे पति के मुँह के ऊपरी तालू में सिंघाड़े के आकार का एक काले रंग का फफोला उभर आया कुछ सख्ती लिये । पहले तो हमने यही सोचा कि कुछ दिनों में यह स्वयं ही बिला जायेगा । पर समय के साथ इस फफोले की उग्रता और इसके साथ तकलीफ भी बढ़ती गई । कई प्रकार के उपचार हुए पर सब निरर्थक । अन्त में डाक्टरों ने आपरेशन करवा लेने की सलाह दे दी । परन्तु भाई साहब (श्री के० के० साह) ने आपरेशन के विरुद्ध जाकर पहले कैंची में श्री माँ के पास जाने की सलाह दी । मैंने यही किया । माँ ने मेरी पूरी दास्तान सुनकर बाबा महाराज के समय से संचित भस्मी (विभूति) तथा महाराज जी का ही चरणोदक देकर

कहा कि **'फफोले में भस्मी लगाना और चरणोदक का पान भी कराती रहना । *ठीक हो जायेगा सब* ।'** (*अपने लिये* तो कोई श्रेय *अपेक्षित* ही नहीं रहा माँ को !!) माँ से उक्त आश्वासन पा मैंने *पूरे विश्वास* से यही उपचार प्रारम्भ कर दिया । हम आश्चर्ययुक्त उल्लास से देखते रह गये कि ३-४ दिन की अवधि में ही फफोला स्वतः गायब हो गया बिना किसी अन्य उपचार अथवा आपरेशन के !! (पुष्पा साह – अल्मोड़ा)

महाराज

मैं बैंगलूर गया था अपनी कम्पनी के काम से । वहाँ कुछ दिनों की दौड़-धूप एवं इंजीनियरिंग मशीनों की बारीकी में उलझे उठक-बैठक के कारण एक दिन मेरी रीढ़ की हड्डी की अन्तिम ग्रन्थि में एकाएक भीषण टीस-सी उठी और शीघ्र ही सारे कमर में फैल गई । अब मैं ठीक से न खड़ा हो सकता था और न बैठ ही सकता था । अस्पताल में भरती हुआ जहाँ परीक्षण के बाद लम्बे उपचार हुए, पर स्थिति पूर्ववत बनी रही — हिलना-डुलना दूभर हो चला। *अल्ट्रा साउंड* का निदान था *स्लिप डिस्क* । इसी तरह एक माह से ऊपर बीत गया बैंगलूर में ही । अन्त में डाक्टरों ने दिल्ली जाने की सलाह दी । वहाँ पूरे परीक्षणों के बाद एकमात्र उपचार आपरेशन बताया गया । तब मेरी पत्नी और मुझमें एक ही राय बनी कि इस विषय में पहले श्री माँ से आशीष ले लें । अतः हम किसी तरह कैंची आ गये, और माँ से सब हाल कहा। सुनकर माँ ने तत्काल कह दिया, **"*कुछ नहीं हुआ है* । आपरेशन की कोई जरूरत नहीं है — *ऐसे ही* ठीक हो जायेगा ।"** और इस सम्बन्ध में (अपनी शक्ति पर परदा डालते तथा *लौकिकता* निभाते) आश्रम की एक वृद्धा माता, दादी अम्मा को बुलाकर कहा — **"इसके कमर में दर्द है । ठीक कर दो ।"**

और दादी अम्मा ने भी (आज्ञा पालन हेतु) केवल एक दराँती (हँसिया) कपड़े में लपेट, मेरी कमर में (मन ही मन कुछ मंत्र-से पढ़ते) उस दराँती को घुमा घुमा कर पता नहीं क्या किया कि मेरा दर्द स्वतः ही कम होने लगा और दूसरे दिन इसी क्रिया के अन्तर्गत पूरी तरह लोप हो गया !! उसके बाद तो मैं शीघ्र ही हल्द्वानी अपने काम पर लौट आया और फिर कई बार स्वयं गाड़ी चलाकर माँ-महाराज के दर्शन हेतु कैंची आता-जाता रहा ।

क्या डाक्टर-विशेषज्ञों एवं अल्ट्रा साउंड द्वारा किया गया निदान गलत था ?

या फिर दादी अम्मा की उस दराँती का कमाल था कि दो *माह* से होता भीषण दर्द दो *दिन* में बिला गया ?

या फिर श्री माँ के अमोघ श्री वचनों का कि **'कुछ नहीं हुआ है— ऐसे ही ठीक हो जायेगा'** का सुफल !! (ओम प्रकाश सिक्का ।)

महाराज

मेरे पिताजी को लीवर का एक ऐसा भीषण ज्वर हो गया (१९८१) कि वे ६ माह तक पीड़ित पड़े रहे । कोई भी इलाज कारगर साबित न हो पाया । अन्त में हताश होकर मेरे पिता जी (श्री किशन चन्द्र सैनी) हमारे घर के मंदिर में बाबा जी के चित्र के सम्मुख बैठकर अत्यन्त कातर हो प्रार्थना करने लगे एकदम ध्यानस्थ-से होकर कि "बाबा अब तुम ही कुछ कर दो मेरे लिये ।" तभी उन्हें *लगा* कि बाबा जी सामने प्रगट हो गये और बोले, **"चिन्ता क्यों करता है ? जा बाहर यादव (श्री आर० एस० यादव) आया है । उसके साथ *मोटे वैद्य* (श्री त्रिगुण वैद्य) के पास चला जा । उसकी दवा से ठीक हो जायेगा ।"** तब पिताजी बोले, "बाबा ! यादव आज कहाँ आया होगा । वह तो मंगलवार को आता है । आज तो सोमवार है ।" बाबा जी तब बोल उठे, **"बहस मत कर। जा, यादव बाहर खड़ा है ।"** ध्यान भंग हुआ, बाबा जी भी अलोप हो गये । तब पिताजी उठकर बाहर आये तो यादव जी को खड़ा पाया । पूछा, "आज कैसे आ गये ?" वे बोले, "बस, यूँ ही मन किया तो आ गया ।" तब पिताजी ने अभी अभी हुई बाबा जी की लीला उन्हें बिना बताये पूछा, "तुम जानते हो मोटे वैद्य को ?" यादव जी ने कहा, "हाँ, हाँ, चलो वहीं चलते हैं ।" तब दोनों उनकी गाड़ी में वैद्य जी के पास गये जिन्होंने पिता जी की नब्ज देखकर उन्हें एक दवा की पुड़िया दे दी । जिसे खाकर ही पिताजी एकदम चंगे हो गये !!

बाबा जी का उस तरह प्रगट होना, यादव जी का बे-टाइम घर में पहुँच जाना और वैद्य जी की दवा की पुड़िया से ही ६ माह से चलता ला-इलाज बुखार एकदम ठीक हो जाना — सभी ही तो महाराज जी की ही लीला थी — दया-लीला — जो *केवल* उन पर पूर्ण विश्वास, आस्था

और उनके श्री चरणों में समर्पित होने से ही संभव हुई । (बाला सैनी, नई दिल्ली)

महाराज

इसी संदर्भ में श्रीमती सन्ध्या गुप्ता (आगरा) द्वारा वर्णित एक और रोचक प्रसंग – उन्हीं के शब्दों में :–

हमारे परिवार के एक मित्र (नाम गुप्त रखने का निर्देश) अक्सर हमारे साथ वृन्दावनधाम, और कभी कभी कैंचीधाम भी श्री माँ महाराज के दर्शनों को आते रहते थे । पिछले साल उनकी १६ साल की युवा कन्या को, जो तब इन्टर में पढ़ती थी, एक विचित्र बीमारी ने घेर लिया — अल्ट्रा साउंड परीक्षण से ज्ञात हुआ कि उसके डिंभाशय में ख़तरनाक किस्म की दो अजीब-सी गाठें (सिस्ट) उभर आईं हैं जिसके कारण उदर में भीषण पीड़ा होती थी । चार वर्ष पूर्व भी ऐसा दर्द होता था पर तब मामूली इलाज से ठीक हो गया था । आपरेशन के अलावा और कोई चारा न था। परन्तु उसके बाद कन्या के मातृत्व-प्राप्ति की संभावनायें *नहीं* के बराबर ही होतीं। स्वाभाविक था कि माता-पिता और स्वयं कन्या भी इस कारण अत्यन्त चिन्तित एवं दुखी हो उठे थे । किसी अन्य से इस गोपनीय विषय में वे राय भी नहीं ले सकते थे । तब भी उन्होंने मुझको विश्वास में लेकर फोन में सब बता दिया । जानकर मैं भी बहुत दुखी हो उठी और बोली, "आपने पहले क्यों नहीं बताया । मैं तो कल ही वृन्दावन गई थी (श्री) सिद्धी माँ के पास । उन्हीं से कुछ कहते ।" तब वे बोलीं, "मुझे भी ले चलो कल उनके पास ।" (माँ पर एक अप्रत्याशित रूप के विश्वास ने उन्हें यही प्रेरणा दे दी ।)

अस्तु, हम दूसरे ही दिन वृन्दावन पहुँचे माँ के पास । वहाँ वे माँ के आगे खूब रोईं, पर कारण पूछने पर भी माँ से स्वयं कुछ न बोलीं — मैंने ही माँ को सारी दास्तान बताई । तब माँ बोलीं, **"रोओ मत ।** ***सब ठीक हो जायेगा*** **। कल लड़की को भी लाना यहाँ ।"** और वे दूसरे दिन लड़की को लेकर पुनः माँ के श्री चरणों में पहुँच गईं । माँ ने लड़की से, जो अपनी स्थिति और अपने भविष्य की चिन्ता से दुखी थी, कहा, **"घबराना मत ।** ***सब ठीक हो जायेगा*** **। रोज खूब हनुमान चालीसा का पाठ करना । जाओ ।"** माँ-बेटी कुछ आश्वस्त और कुछ शंकित मन से आगरा वापिस आ गईं ।

अगले सप्ताह लड़की का आपरेशन होना था । परन्तु आगरा पहुँचने के दूसरे दिन ही जब उन्होंने अल्ट्रा साउंड करवाया सफल आपरेशन हेतु तो न तो कोई गाँठ मिली और न कोई अन्य खराबी !! लड़की पूर्णतया *साधारण* स्थिति में थी !! और आज भी पूर्णतया स्वस्थ युवती है !! (१९९५)

महाराज

श्री माँ से गणेश प्रसाद झल्डियाल जी के माध्यंम से सम्पर्क में आये शिव प्रसाद घिल्डियाल जी भी आठवें दशक में बाबा महाराज के भक्त हो चले थे। कुछ काल बाद उन्हें मुँह में कैन्सर हो गया था। रेडियम थेरापी से यद्यपि उनका रोग ९०% खत्म हो गया था पर इस इलाज के कारण उनकी जुबान अस्पष्ट हो गई । और साथ में न तो जीभ में कुछ स्वाद शेष रह गया और न वे कुछ खा सकते थे — केवल रसों का ही सेवन बिना स्वाद करते रहे । अन्त में डाक्टरों ने निर्णय लिया कि बचे १०% कैन्सर से उन्हें मुक्त करने के लिये जीभ को ही काटना पड़ेगा । ये और इनके परिवारी तथा इनकी बहिन, श्रीमती देवी झल्डियाल अत्यन्त दुःखी हो चले ।

तब एक रात देवी जी ने स्वप्न देखा कि एक तरफ तो बाबा जी एक पलंग पर पड़े हैं और दूसरी तरफ शिव प्रसाद जी एक चारपाई पर कम्बल ओढ़े पड़े हैं । तभी बाबा जी एकाएक पलंग से कूद गये और शिब्बू भाई के कम्बल के भीतर समा गये !! और पुनः थोड़ी ही देर में केवल धोती पहिने वहाँ से निकल दौड़ते हुये अन्तर्ध्यान हो गये !!

परन्तु इस स्वप्न के माध्यम में इंगित बाबा जी महाराज की दया-कृपा तो शिब्बू भाई पर होनी ही थी । सो कुछ काल बाद वे सपत्नीक वृन्दावन श्री माँ के पास पहुँचे जहाँ माँ ने उन्हें बाबा महाराज का चरणोदक पान करते रहने तथा बाबा महाराज के समय की विभूति जुबान में लगाने हेतु दी । *अब की* शिब्बू भाई ने श्री माँ के इस आश्वासन पर *विश्वास के साथ* चरणोदक का पान तथा विभूति का सेवन करना प्रारम्भ कर दिया ।

और कुछ ही काल बाद इस अलौकिक उपचार के उपरान्त शिब्बू भाई का पुनः टेस्ट हुआ तो पता चला कि कैन्सर विलीन हो गया है —

वे न केवल बोलने लगे खुलकर वरन सब कुछ स्वाद के साथ खाने भी लगे !!

महाराज

इलाहाबाद के वयोवृद्ध अनन्य भक्त श्री कन्हैया लाल श्रीवास्तव (जो वर्षों महाराज जी की सेवा में शरणागत रहे) अपनी अंतिम सांस तक बाबा जी से यही माँगते रहे कि उनके लड़के-बहू, नाती-पोते श्री माँ-महाराज को *कभी न भूलें* और उन्हीं के चरणाश्रित रहें (जो *तभी* संभव होता *जब* इन सबके अन्तर में भी माँ-महाराज जी के प्रति वही आस्था-निष्ठा-विश्वास बना रहता।) कन्हैया लाल जी की यह भाव-पूर्ण इच्छा बाबा महाराज ने स्वीकार कर ली और उनके समस्त परिवारीजनों को श्री माँ-महाराज के श्री-चरणों के प्रति पूर्णतः परम आस्था-विश्वास-निष्ठा एवं भक्ति प्रदान कर दी ।

उक्त संदर्भ में —

कन्हैया लाल जी की बड़ी बहू, श्रीमती मिनी के ममेरे भाई बबलू की पत्नी नूपुर अपनी पूर्ण गर्भावस्था में थी । प्रसव के पूर्व उसे कुछ कष्ट-सा होने लगा तो डाक्टर ने यह जानने के लिये कि नार्मल प्रसव हो जायेगा या (सीजेरियन) आपरेशन करना पड़ेगा, नूपुर का अल्ट्रा साउंड टेस्ट कर दिया । (प्रसंगवश, नूपुर का पहला प्रसव आपरेशन द्वारा ही संभव हो पाया था ।) परन्तु अल्ट्रा साउंड रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि यद्यपि बच्ची का सिर और धड़ पूर्णरूप से विकसित हो चुके हैं पर हाथ और पैर-टांगें केवल २ माह के बच्चे सदृश ही विकसित हो पाये हैं (अर्थात्, *बौनी* लड़की उदर में पल रही थी ।) तथ्य की पुष्टि हेतु दो अल्ट्रा साउंड टेस्ट और भी कराये गये अन्य जगह । उनकी भी रिपोर्ट यही मिली कि बच्ची बौनी है । तब, स्वभावतः, बबलू दुखी हो गये और घबरा भी गये (यद्यपि इस दम्पति ने ऐसा जानकर भी अपने को संयत रख इस बौनी को स्वीकार कर लिया था ।) फिर भी मन में एक विश्वास लेकर उन्होंने मिनी जी से फोन में सारी स्थिति बताकर जानना चाहा कि इस वक्त श्री माँ कहाँ हैं (ताकि *उनसे ही* प्रार्थना कर इस कठिन स्थिति से उबरा जा सके। प्रसंगवश, मिनी जी के माध्यम से उनके मायके वाले भी श्री माँ-महाराज के प्रति उसी प्रकार समर्पित हो चुके हैं ।) पर (तब) माँ तो वीरापुरम आश्रम (मद्रास) में थीं । मिनी जी ने फोन पर ही माँ को नूपुर की स्थिति बताकर

बबलू को दर्शन देने की प्रार्थना की और माँ की आज्ञा पाकर बबलू को दिल्ली बुलाकर हवाई मार्ग से २६ ता० जनवरी को मद्रास पहुँच वीरापुरम पहुँच गईं । वहाँ बबलू तो माँ को प्रणाम कर केवल अश्रु बहाते रह गये पर मिनी जी ने विस्तार से सब गाथा सुना अल्ट्रा साउंड रिपोर्टें माँ को सौंप दी । माँ ने तब बबलू को सान्त्वना देते हुए कहा कि, **"घबराओ मत । महाराज जी से मंदिर में जाकर प्रार्थना करो — उन्हें ११ हनुमान चालीसा का पाठ सुनाओ । सब ठीक हो जायेगा ।** ***महाराज जी क्या नहीं कर सकते हैं ?"*** और फिर तीनों रिपोर्टों *को महाराज जी के कम्बल* के नीचे दबा दिया । बबलू को माँ की उक्त वाणी से बड़ी सान्त्वना एवं शक्ति मिल गई और सुचित्त होकर उसने महाराज जी को ११ आवृति हनुमान चालीसा पूर्ण विश्वास के साथ सुना दी ।

रात बीती । सुबह तड़के ही ये ६ बजे वाली उड़ान से वापिस चले गये (२७ ता० जनवरी।) जाने के पूर्व माँ ने पुनः निर्देश दिये कि, **'लखनऊ पहुँच कर १०८ हनुमान चालीसा के पाठ सुनाना महाराज जी—हनुमान जी को।'** और तब जैसे ही १०८ पाठ पूरे हुए, नूपुर को प्रसव पीड़ा प्रारम्भ हो गई तथा २९ ता० को नूपुर को आपरेशन द्वारा प्रसव हो गया !! इस पूरे प्रकरण के उपरान्त जो बच्ची हुई वह *अपने सभी अंगों समेत* पूर्णतः स्वस्थ थी !! हाथ-पाँव सब प्रकार से शरीर के अनुपात के अनुकूल थे !!

तब मार्च माह में, उस सब प्रकार से सुन्दर-प्यारी कन्या को लेकर नूपुर मिनी जी के साथ श्री माँ-महाराज के प्रति अनुग्रह लिये उनके श्री-चरणों में रखने वृन्दावन भी आ पहुँची !!

(पुनः, श्री माँ के शब्दों में — **'महाराज जी क्या नहीं कर सकते ? केवल विश्वास चाहिये — शरणांगति चाहिये ।'** गर्भ में स्थित *बेडौल* शिशु को सर्वांग सुन्दर कन्या बना कर उतार दिया धरा पर *इसी* विश्वास एवं शरणांगति ने !!)

महाराज

भक्तों के अनुभवों और अनुभूतियों की उक्त चन्द गाथाओं में ही निराकार में प्रविष्ट बाबा जी महाराज की शाश्वत रूप में कृपा, रक्षा, मन्त्रदान, जीवनदान, इच्छा पूर्ति आदि की *निरन्तरता* की पुष्टि स्पष्ट रूप से हो जाती है ।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता वाले बाबा जी महाराज की ये कुछ छुट पुट लीला-गाथायें केवल दृष्टान्त मात्र हैं । विदित एवं अविदित गाथाओं का कोई पारावार नहीं । जैसी सगुण लीलाएँ रहीं वैसी ही वृहद्-रूप निर्गुण लीला-कथायें भी हैं जिन्हें भक्तगण समय समय पर विभिन्न प्रकाशनों द्वारा बाबा जी की इच्छानुसार प्राप्त करते रहेंगे ।

महाराज

राधाकुटी के आगे तखत आसन (कैंची)

ऊँ तत्सत

कर्महीन बल बुद्धि विहीना ।
तव प्रसाद कछु वर्णन कीन्हा ।।
श्रद्धा के ये पुष्प कछु चरनन धरे संभार ।
हे उपास्य-आराध्य तुम कर लीजे स्वीकार ।।

युगलचरणाश्रित

अन्त्य-कथन

पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है

(बाबा जी के प्रति श्री सिद्धी माँ)

नित्य लीला-रत अवतार विभूति बाबा नीब करौरी जी महाराज की लीला-गाथाओं के संदर्भ में **अन्त्य-कथन** की-सी बात का कोई स्थान तो है नहीं, क्योंकि महाप्रभु की कल्याणमयी अलौकिक लीला-क्रीड़ायें तो सदा की भाँति *अब भी* चल रहीं हैं—चलती रहेंगी—अनन्त रूप में, अनन्त काल तक जिनका भी वर्णन विभिन्न भक्तों, दया-पात्रों द्वारा यदा-कदा लिपि-बद्ध होकर भक्त-समाज के सम्मुख बाबा महाराज की ही इच्छानुसार आता रहेगा। प्रस्तुत रचना में तो अपने जीवन में बाबा महाराज के श्री चरणों में जब-तब सुलभ, तथा उनकी **महासमाधि** के उपरान्त की कठिन कालावधि में एवं (विगत २१-२२ वर्षों में) *श्री माँ के स्नेहाञ्चल तले* प्राप्त अपने अनुभवों तथा अपनी प्राप्त-अनुभूतियों की गाथा अंश रूप में टूटे-फूटे शब्दों में अब तक वर्णन कर ही चुका हूँ। कहने-लिखने को तो *अब भी* बहुत कुछ बाकी रह गई है अपने मन की, अपने स्वयं के एवं अपने परिवारी जनों तथा अन्य *अनेक* भक्तों के ऊपर भी माँ-महाराज जी की दया-क्षमा-कृपा की बातें। परन्तु *इस* **लघु भागवत** में *अभी* इतना ही—आगे महाप्रभु की इच्छा।

पूर्व में वर्णित पूरे प्रकरण से इतना तो भली भाँति स्पष्ट हो ही जाता है कि अपने **विरद** के निर्वाह में बाबा महाराज अपनी **दया-क्षमा** की वर्षा (अर्थात सांसारिक मनेच्छाओं, यथा — वैभव, यश, आरोग्यता, आपराधिक कर्मों के दण्डों से छूट, संतान-प्राप्ति आदि सभी की पूर्ति हेतु, *जिसे ही* हम **उनकी कृपा** की भी **संज्ञा** देते रहे हैं) तो सभी पर **समान रूप** से करते रहे (करते जा रहे हैं *आज भी*) और सभी दया-क्षमा प्राप्त भक्त अपनी-अपनी भावनाओं एवं *मनसानुकूल इस* वर्षा की बूदों को अपने-अपने पात्रों की क्षमतानुसार एकत्र भी करते रहे हैं/करते जा रहे हैं। परन्तु जहाँ तक बाबा महाराज की **कृपा-प्राप्ति** का प्रश्न है, श्री राम की (विभीषण-शरणांगति के संदर्भ में) उक्ति कि ***निर्मल मन* जन सो *मोहि पावा*** — **मोहि कपट *छल-छिद्र न भावा*** के अनुसार तो बाबा जी महाराज को ***पाने*** (अर्थात उनकी **कृपा प्राप्ति** हेतु अथवा उनके **कृपा-क्षेत्र** में प्रविष्टि हेतु) तो केवल **निर्मल मन जन** ही अधिकारी बन पाता है — जो छल-छिद्र रहित, आकांक्षा रहित अथवा कामना-विहीन है — यहाँ तक कि **मुक्ति** की भी कामना नहीं रखता !! और *तब* **उन्हें पाकर**, उन्हें ***जान*** *कर*, ***पहिचान*** *कर स्वतः ही कुछ भी शेष नहीं रह जाता पुनः प्राप्ति हेतु* । **विरुजता** की पहिचान भी *यही* है और यही है **शरणांगति** का अंतिम **सोपान** भी तथा अध्यात्म का परमलक्ष्य भी। इसके उपरान्त तो *केवल* सदगुरु भगवान के **विरद** के प्रसार-विस्तार के कार्यों में यथाशक्ति सहयोग देना ही परमधर्म-परमकर्त्तव्य शेष रह जाता है ।

परन्तु अत्यन्त दुस्तर-दुरूह है कामना-विहीन हो पाना — मनेच्छाओं का दमन-शमन (जो समुद्र की लहरों की भाँति एक के बाद एक उठती रहती हैं) — सांसारिक उपलब्धियों के प्रति (अतृप्त) इच्छा का हनन कर हनुमान जी की तरह **विरुज** हो पाना — **जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन *सहज* सनेह** का भाव हृदयन्तर कर उसका मनसा-वाचा-कर्मणा निर्वाह कर पाना — मन की चंचलता के फल-स्वरूप उठती-बढ़ती कामनाओं के कारण।

तब क्या हो ? मीरा ने तो एक अनुभूत सरल मार्ग अपना लिया था इस हेतु — ***जो* वस्त्र पहिरा दे *सोई* पहिरूँ**, ***जो* देवे *सोइ* खाऊँ**, और कि ***जित* बैठाये *तित* ही बैठूँ, *बेचे* तो *बिक* जाऊँ** — और हर स्थिति, हर परिस्थिति को **उसकी** ही **देन** समझ-मान **निश्छल-निष्कपट-निर्मल** मन से

सहर्ष स्वीकार कर स्वतः **विरुज** हो गई, **पूर्ण** हो गई — तथा *इसी* मार्ग पर दृढ़ रहकर अपने **श्याम से तादात्म्य** पा गई । *न* कोई हठ योग, *न* राज योग, *न* कर्मयोग, *न* कर्मकाण्ड और *न* अन्य प्रपंच ही — *केवल* अपने श्याम की ही इच्छा **सर्वोपरि** — केवल श्याम से ही **कामना-रहित** विशुद्ध प्रेम। (श्री माँ ने तो जीवन में *यही* मार्ग स्वतः ही अपना लिया था प्रारम्भ से ही — बाबा महाराज की सेवा हेतु !!)

और यदि मनन किया जाये — अपने ही जीवन में आई-आती परिस्थितियों एवं वस्तु-स्थिति का विश्लेषण किया जाये — तो स्पष्ट हो जायेगा कि *हम सब भी* तो *यही ही* कर रहे हैं — जो **वह** दे रहा है *वही खा* रहे हैं, *वही पा* रहे हैं, *वही पहिन* रहे हैं, **उसी** की इच्छानुसार *बैठ* रहे हैं (स्थित हैं) — आ-जा रहे हैं, और **उसी** के *विधान* के अनुसार उत्पन्न परिस्थितियों के वश **बिक** भी रहे हैं — परिवार (स्वजनों) के हाथों भी और संसार के हाथों भी — कभी *स्वतंत्र* नहीं रहे !! अन्तर इतना ही है कि मीरा ने *इस* **तथ्य** *इस* **सत्य** को *निर्मल भाव* से **उसकी** ही इच्छा जान-मान सहर्ष स्वीकार कर लिया और **उसे पा गई**। *ऐसी* स्वीकारोक्ति ही वास्तविक **शरणांगति** है — श्री चरणों के प्रति *निःस्वार्थ* **प्रेम** की परिणति है। बाबा महाराज के प्रति भी **ऐसी ही** निर्मल भाव-युक्त शरणांगति अपेक्षित है — बाकी काम **उनके** हैं — जिसे जब चाहेंगे *अपनी* जान-पहिचान करा देंगे ।

और इससे भी सरल मार्ग की एक अनुपम झलक मैंने *उन* भक्त माइयों में पाई जो महाराज जी की बड़ी से बड़ी चमत्कारिक लीलाओं के प्रभाव अथवा ऐसी ही गाथाओं से नहीं, वरन उनके साथ की गई बाबा महाराज की *नगण्य*-सी, *अनर्गल*-सी लगने वाली छोटी छोटी लीला-क्रीड़ाओं में ही **महारास** की-सी अनुभूति करती रहीं हैं, करती रहती हैं, और *आज भी* ऐसी लीलाओं की माधुरी याद कर सजल-नयन, पुलक-वदन हो उठती हैं — उनकी आँखों के आगे वही लीला *सजीव* हो उठती है और उनके सजल नयन कभी बरस भी पड़ते हैं ।

परन्तु यह तो *केवल* **भावों** का खेल है — किसी योग-साधना, तपस्या, व्रत आदि का प्रतिफल नहीं — बाबा जी के शब्दों में — **भगवान, (केवल)** ***भाव*** **खाता है**—(भाव बस्य भगवान।) इन माताओं के भाव-पूरित

प्रेमा-भक्ति के ये दृष्टांत याद दिला देते हैं तुलसी के शब्दों की — **सो अज प्रेम भक्ति बस, कौशल्या की गोद** — *गोद में न सही,* **हृदय में** तो आसन जमा ही चुके हैं सरकार *ऐसी* सब माइयों के । ब्रज की गोपियों ने भी तो यही सरल मार्ग अपना लिया था अपने *श्याम* से तादात्म्य हेतु — श्याम की छोटी छोटी **अपनत्व-भरी** लीलाओं की स्मृति अपने अन्तर में संवार-संजोकर, उसमें डूबे रहकर — *सांसारिक क्रिया-कलापों के मध्य भी* !!

अन्त में — महाराज जी की लीला-क्रीड़ाओं के मध्य एक अप्रतिम-निरुपम तथ्य और भी *अनावृत* होता है । *जहाँ* गीतानुसार भगवान ने भक्त-शरणांगत का योग-क्षेम स्वयँ वहन करने, अथवा उसे पाप-मुक्त करने के लिये *प्रतिबन्ध* रखा कि **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां** (जो मेरा *अनन्य भाव* से चिन्तन करते हैं) तथा **सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं ब्रज** (जो सब धर्मों-कर्मों का त्याग कर मेरी शरण में आते हैं) — अत्यन्त दुस्तर हैं ये दोनों ही साधनायें (*समझने में भी और क्रिया रूप में भी*) — वहीं बाबा जी महाराज ने अपनी **दया-क्षमा** बरसाने हेतु *न* तो अपने प्रति **अनन्य भाव से चिन्तन** की अपेक्षा रखी किसी से और *न* **सब प्रकार के धर्मों-कर्मों का परित्याग कर अपनी शरण आने की ही** !! अपितु इन दोनों बन्धनों के *विपरीत स्वैच्छिक* आचरण करने वाले आश्रितों का भी वे योग-क्षेम वहन करते रहे और उन्हें उनके दुष्कर्मों के दण्ड से भी (पाप मुक्त, श्राप-मुक्त कर) उनकी रक्षा करते रहे !! यहाँ तक कि एक बार जिसका हाथ पकड़ लिया उन्होंने, उसका भी **पीछा** करते रहे इस हेतु, उसके **भाग** जाने पर भी उसे अपनी **दया-क्षमा** प्रदान कर !! (महाराज जी की दया-क्षमा प्राप्त परिकर *इस* तथ्य से भली भाँति अवगत हैं। परन्तु **अति** होने पर **चेटक**-प्रयोग से भी बाबा न तो संकोच करते थे / न कर रहे हैं अब ।)

और बाबा जी की ये **कौतुकी** दया-लीलायें अनवरत रूप से उनकी शरीर-लीला के उपरान्त भी यथावत — अपितु और भी वेग से चल रही हैं जो उनकी *तथाकथित* **महासमाधि** के उपरान्त की *ऐसी* गाथाओं से स्पष्ट है ।

ऐसे परम विरागी, (परन्तु फिर भी) परम अनुरागी, दीन-बन्धु, भक्तवत्सल, सगुण-निर्गुण दोनों रूपों में सर्वसमर्थ-सर्वव्यापी-सर्वशक्तिमान-

सर्वज्ञ सच्चिदानंद महाप्रभु को, जो *बाबा नीब करौरी जी महाराज* का स्वरूप धारण कर हमारे कल्याण हेतु हमारे मध्य प्रगट हुए — बारम्बार नमामि नमामि नमामि ।

ॐ तत्सत

महाराज महाराज महाराज महाराज

"श्रीमाँञ्चल"
७१ बी/२ बी — स्टैनली रोड,
कमलानगर, प्रयाग ।

श्री माँ-महाराज चरणाश्रित
मुकुन्दा

उन्हीं को तेरा हुआ है दर्शन
जो तेरे चरनों में आ चुके हैं
सफल हुआ है उन्हीं का जीवन
जो तेरे चरनों में आ चुके हैं

न पाया तुझको अमीर बनकर
न पाया तुझको फकीर बनकर
उन्हीं की पूजा हुई है पूरन
जो तेरे चरनों में आ चुके हैं

जहां भी जिसने तुझे पुकारा
दिया है तूने उसे सहारा
कटे हैं उसके दुखों के बन्धन
जो तेरे चरनों में आ चुके हैं

अकथ प्रभु-सेवा का एक रूप
(राधा-कुटी प्रांगण — कैंचीधाम)

वन्दे महापुरुषते चरणार्विन्दम

श्री गुरु पद नख मनिगन ज्योती ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।।

"राम नाम में इतनी शक्ति है कि विधि का लिखा कुअंक भी मिट जाता है"

"मेरा कुछ नहीं—सब ईश्वर का है"

"तुम मुझे छोड़ सकते हो पर मैं जिसका हाथ एक बार पकड़ लेता हूँ उसको कभी नहीं छोड़ता"

"गुरु के अन्तर्ध्यान हो जाने पर गुरुस्थान ही गुरु स्वरूप हो जाता है"

"मनुष्य से क्या माँगना, वह दे क्या सकता है ? संत और भगवान सर्वसमर्थ हैं, उनसे माँगना नहीं पड़ता —वे सर्वज्ञ हैं—जो उचित है उसे स्वतः दे देते हैं"

'आत्मज्ञान' – सबकी सेवा

"गुरु, भगवान और मृत्यु को हमेशा याद रखना चाहिए"

"राम राम कहते सब काम बन जाते हैं"

"गुरु बैरा गुरु बावरा गुरु देवों का देव"